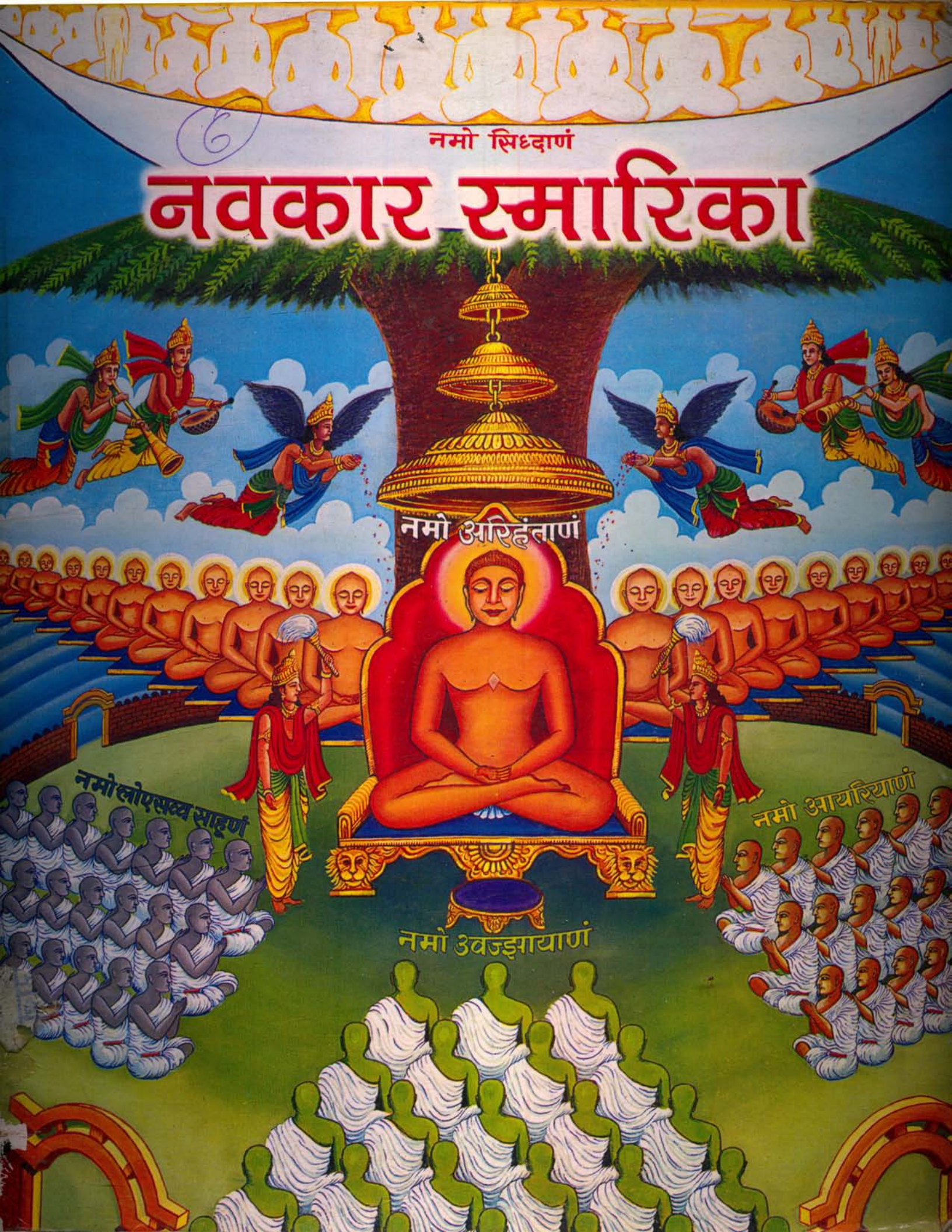
नमो सिध्दाणं
नवकार स्मारिका
नमो अरिहंताणं
नमो लोएसव्व साहूणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं

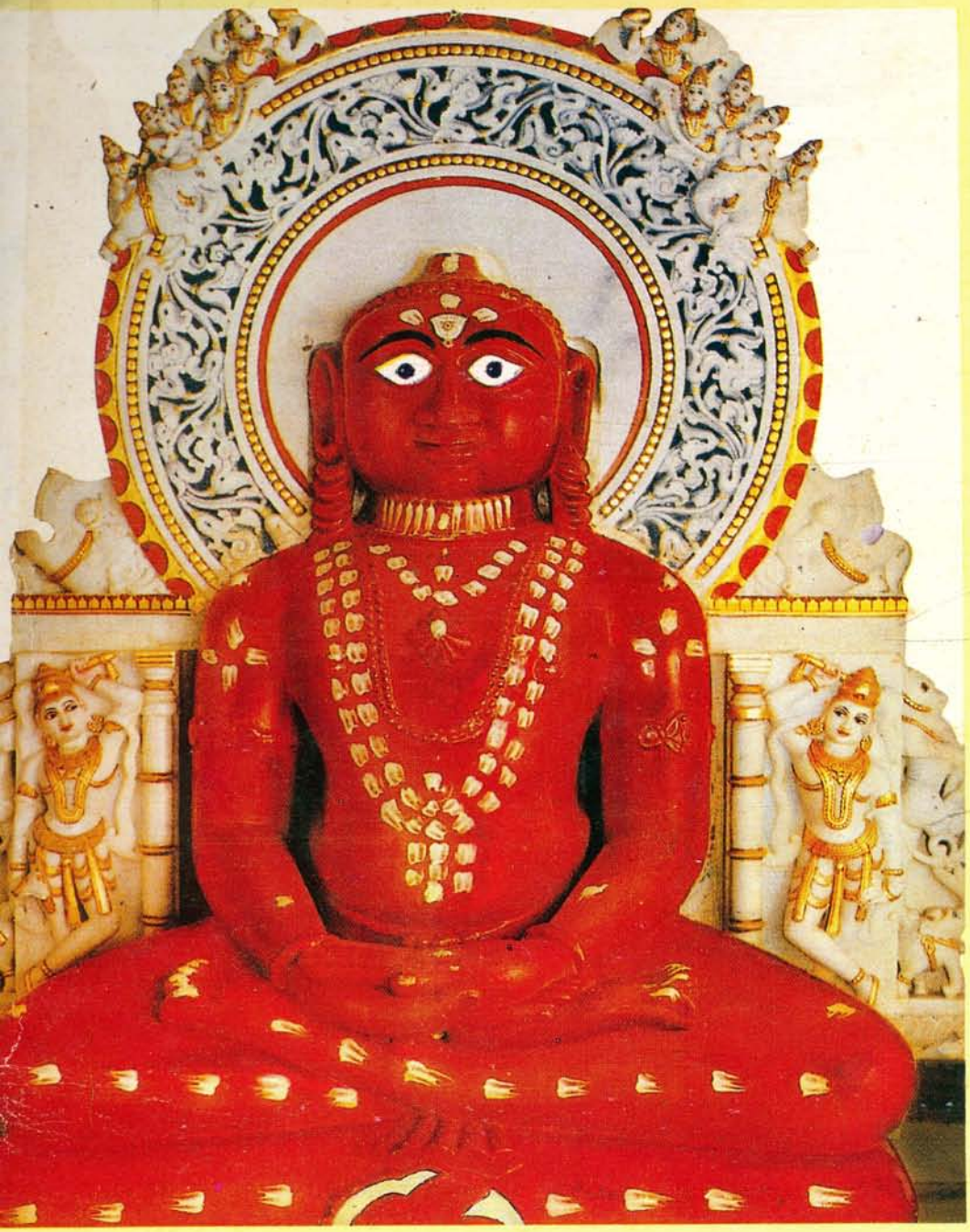

श्री हथूण्डी राता महावीर स्वामी तीर्थ

सैंकडों तीर्थों से भरा हुआ भारत देश का एक ही राज्य - राजस्थान है । राजस्थान राज्य के पाली जिले के गोडवाड प्रान्त की मरूस्थली-मरूभूमि पर बाली तहसील में - अरावली पर्वतमाला की उत्तरी तलहटी में पर्वत की गोद में विराजित हथूण्डी तीर्थ है। वि.सं. 360 की साल में तत्कालीन वीरदेव नामक श्रावक ने यह तीर्थ बसाया था । राठोड़ वंशीय जैन राजाओं ने इसे संभाला था आज लगभग 1700 वर्ष पूर्ण होने आ रहे हैं ।

पुनः पुनः जीर्णोद्धार होते-होते आज भी यह तीर्थ अपना अस्तित्व बनाए रखा है । समग्र विश्वभर में भगवान महावीर स्वामी की रेती-चूने और मिट्टी के संमिश्रण वाली तथा ऊपर लाल (राता) वर्ण के वज्रलेप वाली 54" की विशाल भव्य प्रतिमा यही एक मात्र है । अत्यन्त चमत्कारी महान प्रभावी यह प्रतिमा 1700 वर्ष पुरानी प्राचीन ऐतिहासिक है । सम्पूर्ण विश्व में ऐसी दूसरी नहीं है।

अन्तिम जीर्णोद्धार तथा तीर्थ का सर्वांगीण विकास जैन श्रमण संघ के जाने पहचाने डबल एम. ए., पी.एचडी. हुए विद्वान पू. पंन्यास प्रवर डॉ. श्री अरूण विजयजी की निश्रा में उनकी प्रेरणा से हुआ है तथा पूज्यश्री के मार्गदर्शनानुसार एक अनोखा श्री महावीर वाणी समवसरण मंदिर निर्माण हुआ है ।

फालना या जवाईबांध स्टेशन से, या सिरोही-पाली रोड़ से सीधे बीजापुर होकर हथूण्डी तीर्थ पहुंचा जाता है । धर्मशाला-भोजनशाला की काफी सुंदर सुविधा है । प्राकृतिक सौन्दर्य से सुशोभित शान्त वातावरण वाले इस तीर्थ की यात्रा करने अवश्य पधारिए ।

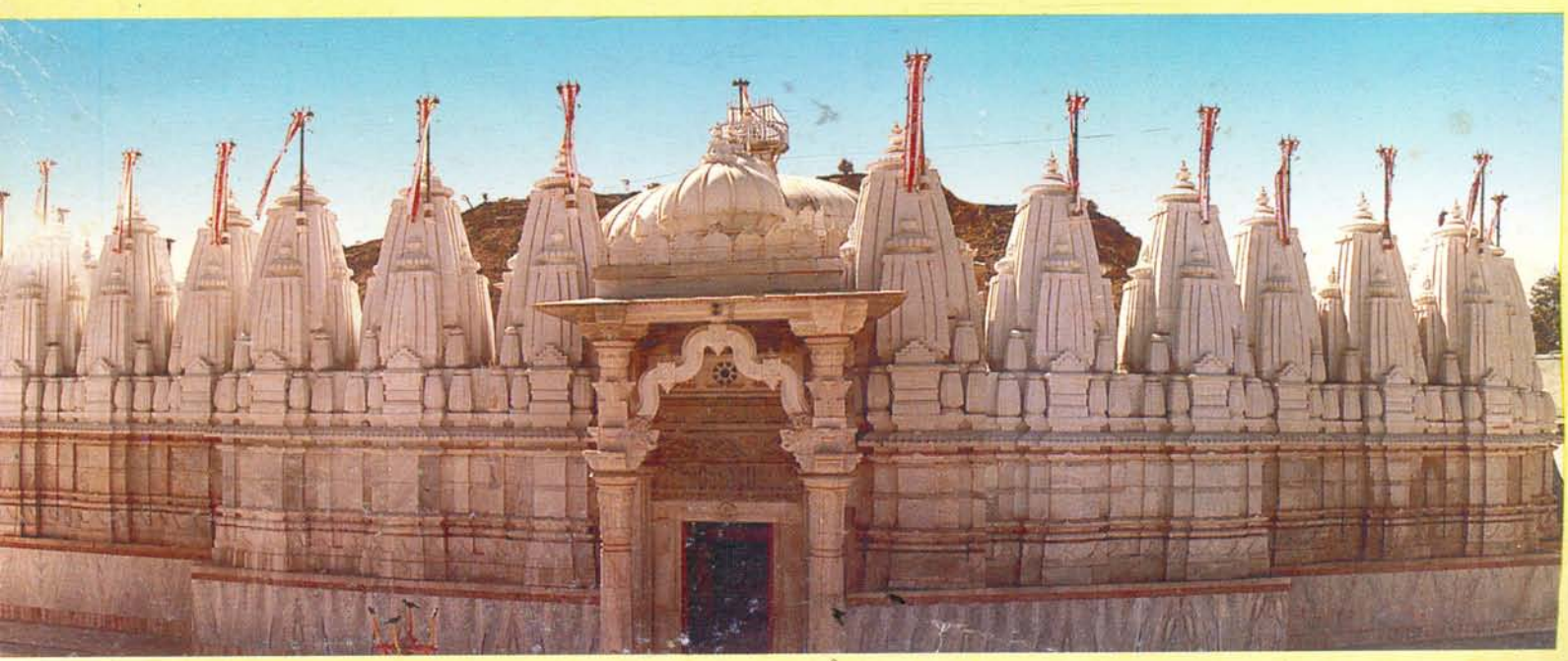

卐 श्री हथूण्डी तीर्थ मंडन-राता महावीरस्वामिने नमः 卐

卐 श्री नागेश्वर पार्श्वनाथाय नमः 卐

卐 श्री आदिनाथाय नमो नमः 卐

नवकार स्मारिका

○ सचित्र शैली के प्रवचनकार एवं लेखक ○

पू. पंन्यास प्रवर डॉ. श्री अरूणविजयजी गणिवर्य महाराज

(राष्ट्रभाषा रत्न, साहित्य रत्न M.A., दर्शनशास्त्री B.A., जैन-न्याय दर्शनाचार्य M.A., Ph.D.)

○ आर्थिक सहयोग ○

श्री लुणावा जैम संघ-लुणावा (राज.)

○ प्रकाशक ○

SHREE MAHAVEER RESEARCH FOUNDATION-VEERALAYAM, POONA

- पुस्तक नाम - **"नवकार स्मारिका"** (नवकार विषयक लेख संग्रह)
- लेखक - प.पू. प्रशान्तमूर्ति आचार्य देव श्री प्रेमसूरीश्वरजी महाराज सा. के वडीलबंधु, एवं गुरूबंधु
  प. पू. स्व. आचार्य देव श्री सुबोध सूरीश्वर जी महाराज सा. के विद्वान शिष्य रत्न-
  प.पू. पंन्यास प्रवर डॉ. श्री अरूणविजयजी गणिवर्य महाराज
  (राष्ट्रभाषा रत्न, साहित्य रत्न M.A., दर्शनशास्त्री B.A., जैन-न्याय दर्शनाचार्य M.A., Ph.D.)
- प्रुफ संशोधक - पू. मुनि श्री हेमन्तविजयजी महाराज
  श्री महावीर जैन साहित्य प्रकाशन-पुष्प-३२
- निमित्त - श्री लुणावा जैन संघ में चातुर्मास में-आयोजित "नवकार सम्मेलन" अवसर पर
  पूज्यश्री लिखित - "नवकार विषयक लेख संग्रह"
- आर्थिक सहयोग - श्री लुणावा जैन संघ - लुणावा (राज.)
- व्यवस्था सहयोग - श्री महावीर जैन युवा मण्डल - लुणावा (राज.)
- प्रकाशक संस्था - SHREE MAHAVEER RESEARCH FOUNDATION, VEERALAYAM
- कार्यालय - C/o अक्षय डेवलपर्स, दाढे सईकर हाउस, 2007 तिलक रोड, सदाशिव पेठ, पुना 411030
  फोन : 4478086
- कार्यालय - C/o मोहनभाई गुर्जर-रीगल एपार्टमेन्ट, दूसरा माला, S.V. Road सान्ताक्रुज (प.) मुंबई 400054
  वीरालयम्-N.H.4. कात्रज बायपास, कोलेवाडी, आंबेगांव (खुर्द) पुना 411046

प्रकाशन इ.स.2002

लुणावा में चातुर्मास
वि.सं. 2052 - इ.स. 1996

ज्ञान भंडारों तथा पू. श्रमणवर्ग को सादर भेंट

प्राप्ति स्थान

- वीरालयम् फोन : 4319057
  N.H.4 कात्राज बाय-पास, कोलेवाडी
  आंबेगांव (खुर्द) पुना 411046
- वीरालयम् फोन : 4478086
  दाढे सईकर हाउस - दूसरा माला,
  2007, सदाशिव पेठ, तिलक रोड
  पुना-411030
- वीरालयम्
  रीगल अपार्टमैन्ट दूसरा माला, एस.वी. रोड,
  सान्ताक्रुज (वे.) मुंबई-400054
- सोहनराजजी तालेडा, महेन्द्र ज्वैलर्स
  नगरथ पेठ, बेंगलोर-560053 (कर्नाटक)
- श्री महावीर जैन युवा मण्डल
  C/o महेन्द्र मुठलिया, शंखेश्वर सिल्क
  5/29, मल्हारवाडी, पहला माला, दादीशेठ
  अग्यारी लेन, कालबादेवी, मुंबई-400002
- श्री लुणावा जैन संघ
  श्री पद्मप्रभु जैन देवस्थान पेढी
  लुणावा - जि. पाली, ताः बाली, स्टे. फालना
  राजस्थान
- वीरालयम्
  महेन्द्र पेपर मार्ट 1056, शुक्रवार पेठ,
  तिलक रोड, पुणे - 411002
  फोन : 4477917

गैडवाड का एक उत्तम गांव - लुणावा

राजस्थान राज्य की मरूस्थली के पाली जिले में-गोडवाड प्रान्त के बाली तहसील में-लुणावा नामक एक प्रसिद्ध गांव है। सर्व प्रकार की सुविधाओं से सम्पन्न एक उत्तम गांव है। 'फालना' रेलवे स्टेशन से सिर्फ 15 कि.मी. के अन्तर पर है। चारों तरफ नदीयों से घिरा हुआ तथा पहाडी सौदंर्य से सुशोभित लुणावा का प्राकृतिक सौंदर्य भी सराहनीय है। शुद्ध हवा-पानी एवं प्रदूषण मुक्त परिसर है। विशाल जल सरोवर 12-15 कुंए, हेण्डपम्प आदि की सुविधा उपलब्ध है। यहां सब जाती के लोगों की आबादी काफी अच्छी है। महाजन जैन समाज के 500 से उपर घर है।

लुणावा गांव में 5 जैन मंदिर एवं अनेक अजैन मंदिर हैं। अतः यहां की प्रजा काफी धार्मिक वृत्ति की है। गांव के मध्य में विजय वल्लभ चौक में श्री आदीश्वर भगवान का चौमुखजी प्रासाद है। ठीक सामने उपाश्रय एवं विशाल प्रवचन हॉल है। यहां पूज्य गुरूदेवों के अनेक चातुर्मास हुए हैं एंव हेतु रहते हैं। पुरूषों की पौषधादि आराधना काफी अच्छी होती रहती है। गांव के महावीर चौक में श्री पद्मप्रभुजी का काफी प्राचीन मंदिर है। इसके सन्मुख शान्तिनाथजी का मंदिर है। चौथा मंदिर गांव से थोडा बाहर दादावाडी के रूप में प्रसिद्ध है। यहां वासुपूज्य स्वामी विराजमान है। गांव के लोग घूमते-फिरने आते रहते है। इसमें कांच का काम दर्शनीय है। बारी वास में श्राविकाओं के लिए सुंदर आराधना भवन है। पू. साध्वीजी महाराजों के चातुर्मास यहां होते रहते हैं। तथा महिलाएं काफी आराधना करती रहती है। चौहटे में अधिष्ठायकजी का मंदिर है। धार्मिक पाठशाला भी चलती है। आयंबिल खाता है।

लुणावा गांव से सिर्फ 1 कि.मी. पर भद्रकंर नगर नामक तीर्थ है। यहां नागेश्वर पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा वाली बडी 17' विशाल प्रतिमाजी है। धर्मशाला भोजनशालादि की सुंदर सुविधा है। पास में ही पांजरापोल है। यहां से सिर्फ आधा कि.मी. पर सेसली तीर्थ भी काफी प्राचीन है। श्री दादा पार्श्वनाथ भगवान की प्राचीन प्रतिमाजी है। पोष दशमी का मेला लगता है।

गांव के बीच धार्मिक वहीवट हेतु -"श्री पद्मप्रभु जैन देवस्थान पेठी" है। गांव में 3 ज्ञाति नोहरे (वाडी) है। आधुनिक भोजनशाला चलती है। यहां पर हॉस्पीटल भी है। शिक्षा हेतु-सागर राजकीय विद्यालय है। कन्याशाला भी है। इस प्रकार सर्व सुविधा सम्पन्न लुणावा गांव का काफी विकास हुआ है। यहां समृद्धि काफी अच्छी बढी है।

श्री महावीर जैन युवा मण्डल

श्री लुणावा गांव में धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियों हेतु - लुणावा गांव के नौजवान जैन युवकों का एक मण्डल गठित किया गया है। जो "**श्री महावीर जैन युवा मण्डल** के नाम से प्रसिद्ध है। एवं सक्रिय रूप से कार्यरत है। सन् १९७८ में लुणावा से जेसलमेर प्रस्थान करने वाले तीर्थ यात्रा संघ के समय इस मण्डल की स्थापना की गई। लुणावा गांव के युवक इसके सदस्य बने। सेवा संगठन और सहयोग के कार्यों से मण्डल की गतिविधियां आगे बढती रही। मण्डल ने लुणावा गांव के 13-14 स्नेह सम्मेलनों का आयोजन किया है। प्रतिवर्ष ही करते रहते हैं। सामाजिक संगठन बढाने की दिशा में यह उचित कदम है। लुणावा गांव की २ निर्देशिकाएं और एक परिचय पुस्तिका तथा "मेलजोल की लघु पुस्तिका प्रगट की है। जो सर्वोपयोगी सिद्ध हुई है।

पू. पंन्यासजी श्री अरूणविजयजी गणिवर्य महाराज द्वारा लिखित - "नमस्कार महामंत्र का अनुप्रेक्षात्मक विज्ञान" नामक नवकार के प्रथम पद के विवेचन वाली पुस्तिका प्रकाशित करवाई। तत्पश्चात् आयोजित "**नवकार सम्मेलन**" की व्यवस्था की। तथा "नवकार स्मारिका" नामक प्रस्तुत पुस्तिका प्रकाशित करवाई। प.पू. पंन्यास प्रवर श्री अरूणविजयजी गणिवर्य महाराज आदि पूज्य साधु-साध्वीजी महाराजों का चातुर्मास लुणावा में कराने में मण्डल ने अहं भूमिका निभाई एवं सारी व्यवस्था की थी।

लुणावा गांव की भोजनशाला तथा ज्ञाति नोहरा के भव्य उद्घाटन समारोह में मण्डल ने सुव्यवस्था कर अपना उत्तरादायित्व अदा किया। राजस्थान में अकाल राहत में लुणावा गांव में तन-मन-धन से सहयोग देकर द्वितीय पुरस्कार हासिल किया था। गांव के संगठन एवं एकता को बनाए रखने में मण्डल की सक्रिय भूमिका रहती है। इस तरह मण्डल की कार्यप्रणाली निरंतर चलती रहती हे। प्रगति पथ पर है।

सहयोग प्रदान करने वाले सभी को धन्यवाद। एवं सबका आभार।

निवेदक
श्री महावीर जैन युवा मण्डल
लुणावा-(समस्त सदस्यगण)

गोडवाड के गौरव - मरूधर की शान - पोरवाल समाज के गौरव स्वरूप.....
प. पू. पंन्यास प्रवर डॉ. श्री अरूणविजयजी गणिवर्य महाराज

तहसील के -1700 वर्ष प्राचीनतम ऐतिहासिक श्री-हथूण्डी राता महावीरस्वामी तीर्थ के समीपवर्ती बीजापुर गांव के सुप्रसिद्ध श्रेष्ठीवर्य श्रीमान शा. चन्दुलाल खुशालचंद कामदार परिवार के श्रेष्ठी श्री हथुण्डी तीर्थ के जीर्णोद्धारक श्रेष्ठीवर्ग श्रीमान शा. झवेरचंदजी चंदुलालजी कामदार के सुपुत्र श्रेष्ठी शा. गुलाबचंदजी झवेरचंदजी कामदार के पुत्र पुज्यश्री हैं।

यौवन की देहली पर प्रवेश करते ही संसार से महाभिनिष्क्रमण करके विरक्त वैरागी अणगार बनकर वर्धा से हिन्दी में राष्ट्रभाषा रत्न, तथा प्रयाग से साहित्य रत्न M.A., तथा भवन्स-मुंबई से दर्शनशास्त्री B.A., एवं जैन-न्याय-दर्शनाचार्य M.A., Ph.D., हुए विद्वद्वर्य **पू. डॉ. श्री अरूणविजयजी म.सा.** लिखित-संशोधनात्मक सर्वदर्शनों का तुलनात्मक शोधमहाप्रबंध - **"जगत् और ईश्वर स्वरूप मीमांसा"** - भाग -1 एवं 2 -प्राप्त करके अवश्य पढीए। तर्क युक्ति पूर्वक प्रतिपादन-हिन्दी-मराठी में प्राप्त करके पढने का रखें।

समर्पण .....

जैन शासन के नवकार के महान साधक .....

नवकारमय जीवन था जिनका .....

ऐसे अध्यात्म योगी ..... नवकार तत्वचितक ..... तत्व गवेषक .....

पू. पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकर विजयजी गणिवर्य महाराज

जिनकी साधना भूमि लुणावा नगरी में .....

स्मरण करते हुए ..... चिन्तन की धारा शुरु हुई .....

जिनके स्मरण से लेखन प्रभावित हुआ ..... तात्विक हुआ .....

ऐसे महापुरुष के चरणारविन्द में .....

"नमस्कार" को चरितार्थ करते हुए ..... तन्मय बनने हेतु .....

सादर .....

समर्पण

पं. अरुणविजय म.

आर्थिक सहयोग

श्री गोडवाड की गौरवमयी पुण्यभूमि – "लुणावा नगरे" —

पू. पंन्यास प्रवर श्री अरूणविजयजी गणिवर्य महाराज

आदि मुनि वृंद का

वि. सं. २०५२ – इ.स. १९९६ में एक स्मरणीय प्रशस्य चातुर्मास हुआ

चातुर्मास दरम्यान आयोजित —

"श्री नवकार सम्मेलन"

प्रसंगे

प्रकाशित नवकार विषयक विविध तात्विक लेख संग्रहमय पुस्तक —

"श्री नवकार स्मारिका"

के प्रकाशनार्थ – मुद्रण व्यवस्थार्थ

श्री लुणावा जैन संघ की तरफ से उदार आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है ।

एतदर्थ – शत्..... शत्..... अभिनन्दन .... सह .... आभार .....

श्री महावीर रिसर्च फाउण्डेशन
वीरालयम्
ट्रस्ट मण्डल
पुना

प्रस्तावना

महामंत्र की महानता

सम्पूर्ण विश्व के असंख्य मंत्रों में अर्थ गंभीरता से भरा हुआ यदि कोई महान कक्षा का सर्वोत्तम मंत्र हो तो वह एक मात्र नवकार महामंत्र है । प्राय: मंत्र शास्त्र में ऐसी बात आती है कि..... मंत्रों का अर्थ नहीं होता है । या मंत्रों का अर्थ नहीं किया जाता हैं चूंकि..... मंत्रों का सीधा संबंध मंत्राधिष्ठाता देवता से होता है । अत: अन्य अर्थों के साथ कोई ज्यादा संबंध नहीं रहता है । लेकिन एक नवकार महामंत्र ही मानों उसमें अपवाद स्वरूप हो ऐसा लगता है । नवकार के प्रथम पांच पद मंत्र पद है और उनका सीधा संबंध उनके अरिहंतादि पांचों अधिष्ठाता से हैं जबकि शेष यूलिका के ४ पद उपरोक्त पांचों पदों के अर्थ की गरिमा को सूचित करते हैं ।

अधिकांश मंत्रों में प्राय: दु:ख निवृत्ति, सुख प्राप्ति, विध्न नाश, शत्रु, नाश, इप्सित प्राप्ति की ही बातें निहित होती है । जबकि नवकार एक ऐसी कक्षा का महामंत्र है जिसका स्तर इन बातों से परे हैं । नवकार का उद्देश्य एक मात्र "सब पापों का नाश" करने का है । जबकि सैंकड़ों मंत्रों के उद्देश्यों का अभ्यास करने पर पाप नाशक लक्षी कोई मंत्र मिलना ही दुर्लभ है । क्योंकि मंत्रों के अधिष्ठाता देवी-देवता ही पाप मुक्त नहीं है । और साधक के पापों का नाश करना उनकी पहुंच के बाहर है । उनके लिए संभव ही नहीं है । जबकि समग्र विश्व का यह एक मात्र मंत्र ऐसा है जिसमें दु:ख निवृत्ति, सुख प्राप्ति, शत्रु नाश, विजय, इप्सित प्राप्ति आदि का कोई लक्ष्य ही नहीं है । एक मात्र पाप कर्म का नाश (क्षय) करने का लक्ष्य है । अत: जिन साधकों की पाप नाश करने की भावना – या प्रबल इच्छा हो उनके ही काम का यह महामंत्र के स्वरूप में है ।

जैसे जैसे पाप कर्मों का क्षय होता जाएगा वैसे वैसे आत्मा शुद्ध शुद्धतर-शुद्धतम कक्षा प्राप्त करती ही जाएगी । और एक दिन ऐसा भी आएगा जिस दिन पाप कर्मों का नाम निशान भी नहीं रहेगा और आत्मा शुद्ध से सिद्ध बन जाएगी । अत: नवकार आत्मा को प्रथम शुद्ध बनाता है और अन्त में सिद्ध बनाता है । ऐसा मंत्र ही महानता की कसोटी पर खरा उतर सकता हैं । एक तरफ नवकार के पांचों अधिष्ठाता अरिहंतादि स्वयं यही प्राप्त कर चुके हैं । जी..... हां..... नवकार से..... । अनन्तों में से एक भी आत्मा बिना नवकार की साधना के मोक्ष में नहीं गई है । अनिवार्य रूप से नवकार की साधना विगत एक नहीं अनेक जन्मों में करने के पश्चात ही मोक्ष सुलभ हुआ है । लेकिन उन्होंने भी प्रथम पाप क्षय किये । और जैसे जैसे पाप कर्म क्षय होते ही गए वैसे वैसे आत्मा शुद्ध होती ही गई । अन्त में सिद्ध बनी । अत: नवकार शुद्धिकर्ता, पाप नाशक, कर्म क्षय कारक, मोक्षदाता मंत्र होने से महानता के विशेषण को पाया हुआ महामंत्र है । इसके पांचों अधिष्ठाता भी मोक्ष पा चुके महान कक्षा के महापुरुष है । अत: नवकार में स्वर्ग के देव गति के संसार चक्रस्थ किसी भी देवी देवताओं को नमस्कार नहीं किया है । ऐसे देवी-देवताओं का नवकार में स्थान ही नहीं है । और यदि होता तो नवकार भी सर्व सामान्य क्षुद्र मंत्रों की कक्षा में आ जाता । बस फिर तो सर्व सामान्य आम आदमी का जो लक्ष है वही इस नवकार का भी बन जाता । तब तो फिर नवकार दुन्यवी कक्षा का ही रह जाता । लेकिन ऐसा नहीं है । पांचों परमेष्ठी स्वयं जो पाप नाश-कर्म क्षय करके मोक्ष में गए हैं । मुक्त बने हैं । उन्हीं के पदों का नवकार में पद है । व्यक्तिगत नामोल्लेख भी नवकार में नहीं है । यहां तक कि..... भगवान का भी नाम इस नवकार मंत्र में नहीं है । जी..... हां..... अरिहंत शब्द भगवान का नाम नहीं है । यह तो विशेषण मात्र है । पद है । अत: एक अरिहंत को नमस्कार करने मात्र से तीनों काल के अतन्तानन्त अरिहंतो को नमस्कार हो

जाता है । प्राय: विश्व का एक भी ऐसा मंत्र..... इस कक्षा का नहीं है । अत: नवकार की महानता स्वयं सिद्ध है । इससे सामान्य व्यक्तियों को यह प्रेरणा लेनी चाहिए कि..... जिसको भी महान बनना हो..... चरम कक्षा का महान बनना हो उन्हें ऐसे नवकार महामंत्र का ही आलंबन-आश्रम लेना चाहिए । 'अन्यथा शरणं नास्ति' अन्य किसी की शरण नहीं नवकार एक की ही शरण स्वीकार्य होनी चाहिए ।

जी..... हां..... हमें भी अन्त में अनामी..... अरूपी बनना ही है, मुक्त होना है । और नवकार बिना किसी के नामोल्लेख का अनामी मंत्र है । यदि मंत्र के अनुरूप हमारी मानसिकता बन जाए तो निश्चित ही अनामी कक्षा प्राप्त होने में विलंब नहीं होगा । लेकिन कर्माधीन स्थिति में हम उस क्षुद्र कक्षा में चले जाते हैं और उसी स्तर के मंत्रों को ढुंढने बैठते हैं । कहीं ऐसा न हो जाय कि..... महान चिन्तामणी जैसा रत्न भी नासमझी में हाथ से निरर्थक गंवा न बैठे ।

बस..... इसी उद्देश्य से लुणावा जैसे छोटे लेकिन अध्यात्म योगी जैसे महापुरुष की साधना भूमि में चातुर्मास दरम्यान नवकार सम्मेलन का आयोजन किया । और इसी उद्देश्य से "नवकार स्मारिका" का निर्माण हुआ । अध्यात्म योगी पू. पंन्यासजी श्री भंद्रकर विजयजी म.सा. की नवकार साधना के परमाणुओं ने भी मुझे प्रेरित किया, अन्तरात्मा से उत्साहित किया । जिसके फलस्वरूप विविध दार्शनिक एवं तात्विक विवेचन से अनेक लेख नवकार केन्द्रित लिखे गए..... जिसका सम्मिलित स्वरुप प्रस्तुत स्मारिका बनी है । नवकार का साधक कैसा हो ? अपनी योग्यता और पात्रता कैसी बनाए ? जैसी और जितनी ऊंची नवकार की कक्षा है उस कक्षा की ऊंची योग्यता-पात्रता साधक-स्वयं अपनी बना सके इस ऊंचे उद्देश्य से प्रस्तुत "नवकार स्मारिका" प्रकाशित की जा रही है । साधक-वाचक वर्ग प्रस्तुत स्मारिका के माध्यम से नवकार के अर्थपूर्ण विविध पहलूओं को समझ सके, ज्ञान की मात्रा बढने रस निष्पात्ति स्वत: बढती है । अत: साधक-वाचक इससे अपनी ज्ञान वृद्धि, श्रृद्धा वृद्धि, करते हुए नवकार में स्थान पाने योग्य स्वयं नमस्करणीय बने..... इसी में मैं प्रयत्न की फलश्रुति मानुंगा । इसी भावना के साथ विरमता हुं ।

— सर्वे नमस्कार योग्याः भवन्तु —

—पंन्यास अरुणविजय महाराज

प्रकाशकीय

नवकार प्रगटीकरण . . . . . परम सौभाग्य . . . . . .

कुछ लोग जिन्दगी में मात्र 'एवरेष्ट' के शिखर पर चढने का ही अन्तिम ध्येय बनाकर उसे ही लक्ष्य बनाकर प्रयत्नशील रहते हैं । लेकिन हमनें तो बिना लक्ष्य बनाए..... ही , ... संसार की अन्तिम कक्षा के सर्वोच्च महामंत्र को पुस्तक रूप में प्रगट करने का परम सौभाग्य प्राप्त किया यह हमारा परम सौभाग्य है ।

पू. पंन्यासजी श्री अरुणविजयजी महाराज की कई वर्षों से अध्यात्म योगी पू. भद्रंकर विजयजी महाराज सा. से प्रत्यक्ष मिलने की प्रबल इच्छा थी । लेकिन..... वह सफल नहीं हो पाई । परोक्ष रूप में पत्रों से मिलना हुआ । पू. अध्यात्मयोगीजी नश्वर देह छोड़कर चल बसे । योगानुयोग श्री हथूण्डी राता महावीर स्वामी तीर्थ के जीर्णोद्धार पश्चात् प्रतिष्ठा कराने पू. पं. अरुणचिजयजी म. का राजस्थान पधारना हुआ । बीजापुर के पश्चात् लुणावा की धरती पर सुंदर चातुर्मास हुआ । नवकार स्मरण की अपेक्षा नवकार चिन्तन काफी गहरा हुआ । पू. अध्यात्म योगीजी को मानसिक चिन्तन के स्तर पर मिलने का साक्षात्कार पूज्यश्री कर पाए । यही एक आनन्द की विशेषता है ।

लुणावा जो कि पू. अध्यात्मयोगीजी की साधना भूमि रही है, वहां पू. अरुणाविजयजी म.सा. ने चातुर्मास में ..... "नवकार सम्मेलन" का आयोजन किया था । बम्बई से कुछ विद्वान पधारे । पूज्य श्री के नवकार विषयक नए रहस्यों का आविष्कार हुआ । नवकार तप की आराधना तपश्चर्या द्वारा हुई । जापादि विशेष रूप से हुए ।

पू. अरुणविजयजी महाराज ने इस अरसे में नवकार पर काफी चिन्तन किया । चिन्तन का नवनीत आम जनता तक पहुंचाया जा सके इस पवित्र उद्देश्य से पूज्य पंन्यासजी म.सा. ने विविध लेखों के रुप में उसे लेखनबद्ध किया । श्री लुणावा जैन संघ – देव स्थान पेठी ने आर्थिक सहयोग देकर इसे प्रकाशित करने सक्षम बनाया । "श्री महावीर विद्याथी । कल्याण केन्द्र ने प्रकाशन करने का बेडा उठाया था । लेकिन उस संस्था ने कालविलम्ब के कारण अपनी सारी प्रवृत्तियां समेट कर हमारे जिम्मे सुप्रद कर दी । अत: सद्भाग्य से प्रकाशित करने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

जोधपुर के मुद्रण व्यवसाय में अग्रगण्य श्रीमान अविनाशजी मेहता ने अपने पर्यटन विषयक साहित्य प्रकाशन से थोडा हटकर नवकार के प्रति अपनी आत्मीयता जोडकर इसे प्रकाशित करने की प्राथमिकता दी अत: हम उनके आभारी है । पू. मुनिश्री हेमनविजयजी महाराज ने इसका प्रुफ संशोधन करके वाचकों के हाथ में शुद्ध प्रति लाई हैं उनका उपहार हम कैसे भूल सकते हैं । पूज्यश्री के ऐसे गहन चिन्तनात्मक इस शब्द सागर को हम पुस्तक देह देकर प्रकाशित करते हुए गौरव अनुभव करते हैं । इसी में हमारा परम सौभाग्य मानते हैं । पुन: श्री लुणावा संघ को हम शत्-शत् धन्यवाद देते हुए विरमते हैं । सभी वाचक नवकार को सही अर्थ में समझने में इस पुस्तक को निमित्त बनावें ..... इस छोटी सी प्रार्थना के साथ ..... नमो नम: —

"वीरालयम्"
पुना

श्री महावीर रिसर्च फाउण्डेशन
वीरालयम्
ट्रस्टीगण

श्री लुणावा जैन संघ में एक प्रशस्य चातुर्मास

राजस्थान राज्य शूरवीर राजपुतानों की धरती रही है । मरू भूमि की इस धरा पर पाली जिले के गोडवाड प्रदेश के बाली तहसील में बीजापुर के समीप अरावली पर्वतमाला की उत्तरी उपत्यका में नदी किनारे १७०० वर्ष प्राचीनतम ऐतिहासिक **श्री हथूण्डी तीर्थ** बसा हुआ है । जैन श्रमण संघ के विद्वद्रत्न पू. पंन्यास प्रवर श्री अरुणविजयजी गणिवर्य म.सा. की प्रेरक प्रेरणा, सदुपदेश मार्गदर्शन एवं अथाग पुरुषार्थ से इस तीर्थ का अंतिम जीर्णोद्धार तथा सर्वांगीण विकास हुआ हैं । **श्री महावीर वाणी समवसरण मंदिर** का भव्य नवनिर्माण हुआ है । इस तीर्थ की शोभा में चार चांद लग गए हैं । वि. सं. २०५२ की साल के मांघ महीने की सप्तमी की शुभ तिथि के मुहूर्त में **श्री हथूण्डी तीर्थ** में भव्यतम प्रतिष्ठा हुई । भारतभर में अनेक संघों एवं भाग्यशाली महानुभवों ने काफी उत्साह और उल्लास से लाभ लिया ।

हथूण्डी तीर्थ से सिर्फ १४-१५ किमी. पर लुणावा गांव है । नदी के किनारे बसे हुए प्राचीन तीर्थ सेसली एवं अभिनव नागेश्वर युक्त श्री भद्रंकर नगर तीर्थ से सुशोभित श्री लुणावा गांव में चातुर्मास कराने हेतु **पू. पंन्यास प्रवर श्री अरुणविजयजी गणिवर्य महाराज सा.** को विनंति करने हमारा श्री संघ हथूण्डी तीर्थ गया । श्री लुणावा संघ एवं महावीर युवक मण्डल के कार्यकर्ताओं ने काफी आग्रहपूर्ण विनंति की ।

पूज्यश्री का विहार पाली-नाकोडा-जोधपुर-कापरडा तीर्थ की तरफ हुआ । जोधपुर में पूज्यश्री की तरफ से हमें चातुर्मास की स्वीकृति मिली । श्रीसंघ ने जय बोली । आषाढ शुद में **पूज्यश्री पंन्यासजी अरूण विजयजी म.सा., पू. मुनिश्री धनपाल विजयजी म., पू. मुनिश्री हेमन्त विजयजी म., पू. मुनिश्री कल्पेन्द्र विजयजी म.** आदि मुनि मण्डल का आगमन लुणावा नगरी में हुआ । काफी उत्साह और आनन्द से श्रीसंघ ने एवं विशेषकर श्री महावीर युवक मण्डल ने पूज्यश्री का चातुर्मास प्रवेश करवाया । सिद्धचक्र महापूजन आदि पढाए गए ।

पू. पंन्यासजी भंद्रकर विजयजी म.सा. जैसे महान साधक महापुरुष की साधना की भूमि लुणावा में **पू. पंन्यासजी श्री अरुणविजयजी म.सा.** ने कुछ दिन नवकार महामंत्र के तात्विक प्रवचन देकर स्मृति ताजी कराई । श्रीसंघ में चातुर्मासिक प्रवचनों हेतु आगम शास्त्र के चढावे हुए । पूज्यश्री नियमित आगमिक प्रवचन फरमाते थे । ऐसी तत्व वाणी श्रवणार्थ जैन-अजैन अनेक पुण्यात्मा पधारते थे ।

नवकार के ६८ उपवास की तपश्चर्या—नमस्कार महामंत्र के महान साधक पू. पंन्यासजी म.सा. की स्मृति में श्रीसंघ में पूज्यश्री ने श्री नमस्कार महामंत्र के ६८ एकांतरा उपवास की आराधना करवाई । पू. धनपाल विजयजी म. ने भी एकांतर ६८ उपवास से नवकार की आराधना की थी । अनेक बहनें एवं पुरुषों ने आराधना की । श्रेष्ठीवर्य श्रीमान शा. जयन्तिलालजी ने तपस्वीयों को बियासणा पारणा कराने का तथा श्रीसंघ की एवं मेहमानों की साधर्मिक भक्ति कराने का लाभ पूरे चातुर्मास में लिया था । ३४ बियासणे सह ६८ उपवास की (एकांतरे) की आराधना सुखरूप पूर्ण हुई । अन्य छट्ठ-अट्ठम एकासणे-आयंबिल आदि की आरांधनाएं भी होती रही ।

श्री पर्युषण महापर्व की आराधना—लुणावा से अमदाबाद-बम्बई और वापिस बम्बई-अमदाबाद आदि से वापिस लुणावा भाग्यशालियों का आवागमन निरंतर चालु रहा । आखिर पर्युषण जैसे महापर्व की आराधना अपने वतन में करने हेतु सैंकडों परिवार लुणावा गांव में पधारे थे । घर-घर में तपश्चर्या का ताता लगा था । तपश्चर्या के माहौल ने घर-घर में अट्ठाइयां, नौं, ११, २१, क्षीर समुद्र आदि तपश्चर्याएं करवाई । संघ में मासक्षमण भी हुए । १४ स्वप्न दर्शन में भी कल्पनातीत उपज हुई । **पूज्य पंन्यासीजी श्री अरूणविजयजी म.सा.** की प्रेरणा एवं सदुपदेश से पुना के कात्रज घाट की सुरम्य पर्वतमाला में ५० एकर की जमीन में जो **"वीरालयम्"** का विशाल विश्वस्तरीय प्रकल्प निर्माण हो रहा है । उसमें अस्पताल, धर्मशाला आदि की योजनाओं में श्रीसंघ के कई उदारमना महानुभावों ने अपनी लक्ष्मी का सद्व्यय करके लाभ लिया है ।

पू. मुनिश्री हेमन्त विजयजी म. ने लाटारा जैन संघ में पर्युषण महापर्व की आराधना काफी धूमधाम से करवाँई थी । काफी अच्छी तपश्चर्या हुई थी ।

चौसठ प्रहरी पौषध के आरोधक भाई-बहन काफी बड़ी संख्या में रहे । संवत्सरी की आराधनार्थ अधिकांश लोग लुणावा पधारे थे । विशाल उपाश्रय भी छोटा पड़ने लगा । बहुत ही अनूठे आनन्दोल्लास से श्रीसंघ में संवत्सरी की आराधना हुई । संवत्सरी प्रतिक्रमण पूज्यश्री ने जिस तरह शान्ति से समझाते हुए कराया वह तो सचमुच इतिहास बन गया । कई छोटे-बड़े भाग्यशालियों ने जीवन में ऐसा प्रतिक्रमण प्रथम बार करने का एहसास किया ।

रथयात्रा एवं तपस्वीयों का सन्मान—महापर्व की पूर्णाहुति पर श्रीसंघ का विशाल वरघोडा लुणावा की गलीयों में निकला । जैन-अजैन सैंकड़ों भाविकों ने दर्शन करके अनुमोदना की । गजराज एवं अश्वों पर आरुढ होकर भक्तों ने शासन शोभा में अभिवृद्धि की । स्वामीवात्सल्य और पारणे हुए । श्री महावीर युवक मण्डल ने समस्त तपस्वीयों की विशिष्ट अनुमोदना एवं सन्मान समारोह आयोजित किया था । चांदी के उपकरणों एवं रोकड़ रकम तथा अन्य उपकरणों से संघ के समस्त तपस्वीयों का काफी सुशोभनीय सन्मान किया गया था ।

पू. साध्वीजी महाराजों की पधरामणी—श्री लुणावा संघ में श्राविका वर्ग में आराधना कराने हेतु श्रीसंघ की विनंति से प. पू. अरिहंतसिद्ध सूरि म. सा. के समुदाय की पू. दिव्यप्रभाश्रीजी म. पू. सा. श्री ..... आदि साध्वी समुदाय पधारे थे । उन्होंने भी काफी आराधना की और करवाई ।

धीरज-कल्पेश की आराधना—मूल सीरोडी के वतनी और बैंगलोर निवासी श्रेष्ठीवर्य श्रीमान शा. सागरमलजी बाबुलालजी के सुपुत्र धीरजकुमार एवं कल्पेशकुमार ये दोनों बालकुमार जो कि पूज्य पंन्यासजी म. सा. के साथ ही हमारे श्री लुणावा संघ में पधारे थे । पूज्यश्री के साथ ही चातुर्मास किया । शिक्षा प्राप्त करने स्कूल में भी जाते रहे और शिक्षक के पास भी पढ़ते रहते थे । नित्य प्रभु पूजा-भक्ति, नवकारशी, सामायिक-प्रतिक्रमण, धार्मिक अभ्यास आदि करते रहते थे । पर्व तिथि के शुभ दिन पौषध आदि करते थे । पुर्यषण में चौसठ प्रहरी पौषध एकासणों के साथ किये । कार्तिक चौमासी को पौषध करके कार्तिकी पूर्णिमा की यात्रार्थ पैदल भंद्रकर नगर-सेसली पधारे । दोपहर को धीरज को बुखार चढा । रात को अस्पताल में लेकर गए । आयुष्य की समाप्ति करके धीरजकुमार ने देवगति प्राप्त की । होनहार हो के ही रहता है । भाग्य दशा कर्माधीन है । ऐसे बैरागी बालकुमार ने हमारी लुणावा की धरती पर जो आराधना-अभ्यास किया वह सदा स्मृति में बना रहेगा ।

आसो मास की शाश्वती ओली की आराधना—चातुर्मास में आई आसो मास की शाश्वती नवपदजी की ओली की आराधना श्रीसंघ में काफी आनन्दोल्लास से हुई आयंबिल की तपश्चर्या अनेक तपस्वीयों ने की । श्रीसंघ में जिनेन्द्र भक्ति महोत्सव आदि काफी ठाठ से हुआ ।

श्री नवकार सम्मेलन का आयोजन—नौं दिवसीय नवकार सम्मेलन का एक अनूठा आयोजन किया गया था । बम्बई-अमदाबाद आदि से अनेक भाविक पधारे थे । नौं दिन तक तपश्चर्या, जाप-ध्यान-पूजा-पाठ आदि सहित चले इस आयोजन में बम्बई आदि से रमणभाई सी. शाह आदि मननीय विद्वान पधारे थे । जिन्होंने श्री नमस्कार महामंत्र पर उद्‌बोधन किया था । पूज्य पंन्यासजी अरुणविजयजी म. सा. ने नवकार महामंत्र के रहस्य समझाए । और २ मास परिश्रम करके नवकार पर मननीय कई लेख लिखे हैं । तथा बाहर से पूज्यों एवं विद्वानों के भी लेखादि आए हैं । जिन्हें श्री लुणावा संघ स्मारिका के रूप में प्रकाशित कर रहा है । प्रकाशन वाचक वर्ग के कर कमलों में प्रस्तुत करते हुए हम धन्यता अनुभव करते हैं ।

श्री लुणावा संघ ने विशिष्ट लाभ लिया—गोडवाड के विविध संघों में एक समृद्ध संघ के रूप में लुणावा संघ की गणना होती है । महाराष्ट्र राज्य की लघु काशी रूप पुना नगरी के कात्रज घाट विस्तार की सुरम्य पहाड़ियों के बीच जहां ५० एकर में **वीरालयम्** की विशाल योजना साकार होने जा रही है । उसमें निर्माण हो रहे **"श्री महावीर समवसरण ध्यान प्रासाद"** के निर्माण में देवद्रव्य खाते में से सुयोग्य राशी पास करके प्रदान की है ।

श्री जीवाभिगम और **पन्नवणासूत्र** जैसे प्राचीन आगम शास्त्र पुन: छपवाकर प्रकाशित करने की ज्ञान लाभ की योजना पूज्य पंन्यासजी श्री अरुणविजयजी म. सा. ने समझाई और संघ के आगेवानों ने सहर्ष करके ज्ञानखाते में से ३ लाख रुपए की राशी पास की है । जिसका मुद्रण कार्य चल रहा है । श्री लुणावा संघ में हुए श्री नवकार सम्मलेन प्रसंग निमित्त पूज्य पंन्यासजी म.सा. ने नवकार महामंत्र पर अनेक पहलुओं से लेख लिखे । तथा बाहर से भी लेख आए हैं, उनकी प्रस्तुत सुंदर स्मारिका प्रकाशित करने का आयोजन किया है ।

पू. पंन्यास प्रवर श्री अरूणविजयजी गणिवर्य म.सा. ने लिखि हुई पुस्तक **"श्री नमस्कार महामंत्र का अनुप्रेक्षात्मक विज्ञान"** जिसमें नवकार के प्रथम पद **"नमो अरिहन्ताणं"** का विशद विवेचन है उसे भी श्री लुणावा जैन संघ ने ज्ञान खाते में से प्रकाशित की है । अत: प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी में तैयार होकर लोगों के कर कमलों में आ चुकी है । इस तरह श्री लुणावा जैन संघ ने ज्ञानवृद्धि आदि कार्यो में काफी अनुमोदनीय लाभ लिया है । अत: श्री लुणावा जैन संघ एवं श्री महावीर युवक मण्डल सविशेष अभिनन्दन एवं अनुमोदना के पात्र है । श्री महावीर युवक मण्डल के अनेक युवकों ने काफी अच्छा योगदान दिया और चातुर्मास आयोजन का बीडा मण्डल के सदस्यों ने अपने कंधे पर उठाकर उसे सफल बनाया । इस तरह धर्माराधनामय चातुर्मास का वातावरण बना रहा । कई प्रसंग एवं विविध आयोजन स्मरणीय बने रहे । गांव के अनेक भाग्यशालियों को अपनी मातृभूमि के गांव में पर्युषण तथा चातुर्मास की आराधना करने का संतोष हुआ । शासन देव से प्रार्थना करते हैं कि लुणावा की धर्मधरा पर हमेशा ही इस प्रकार की धर्माराधना होती रहे ।

विषयानुक्रमणिका

1. "भक्ति में प्रभु और प्रभु में भक्ति" 1
2. पापनाश हेतु : "नमस्कार" 3
3. श्री नमस्कार महामंत्र का— "गणितानुयोग" 12
4. नमस्कार से—सब पाप कर्मों का नाश कैसे होता है ? 16
5. "पंच नमस्कार से — सब पापों का नाश" 21
6. नवकार से दुःख नाश करें ? कि पाप का नाश ? 29
7. तीनों लोक में—चारों गतियों में—नवकार स्मरण 37
8. पाँच मंत्रों का समूहात्मक एक महामंत्र—"नवकार" 43
9. 1 नवकार से 500 सागरोपम नरक का दुःख—पाप टलता है 48
10. आत्मिक एवं आध्यात्मिक कक्षा का महामंत्र—"नवकार" 50
11. नवकार महामंत्र में प्रयुक्त शब्दों के विषय 57
12. नौं तत्त्वों के तत्त्व ज्ञान से परिपूर्ण—"श्री नवकार महामंत्र" 63
13. "शाश्वत महामंत्र का—शाश्वतकालीन अखण्ड जाप" 70
14. नवकार के आधार पर—सम्यक्त्वी-मिथ्यात्वी की पहचान 77
15. मृत्यु के समय नवकार का महत्व 81
16. अगले जन्म में नवकार कैसे पाएं ? 86
17. श्री नवकार महामंत्र का भौगोलिक विस्तार 89
18. मोक्षदायक महामंत्र में—बीजरूप—"नमस्कार की महत्ता" 92
19. एक परमेष्ठी में—सब पाप नाशक सामर्थ्य 101
20. अपरिवर्तनशील शाश्वत महामंत्र—"नवकार" 108
21. ग्रह पीड़ा निवारक — महामंत्र नवकार 111
22. नवकार और नवपद की समानता 115
23. नवकार के नामकरण की सार्थकता 118
24. नवपदजी का नाम—"सिद्धचक्र" ही क्यों ? 120
25. जैनं जयति शासनम् 122
26. आइए... तत्त्वों को पहचानें 123
27. महामंत्र नवकार की महिमा 124
28. "सव्व" शब्द के अर्थ की संयोजना 125
29. बिना किसी के "नाम" का — अनामी महामंत्र 131

30. अनामी बनने की प्रेरणा देता है – "अनामी महामंत्र' 135
31. गुरु तत्त्व में गुण एवं क्रम व्यवस्था 139
32. सिद्ध बड़े होते हुए भी — दूसरे क्रम पर क्यों ? 144
33. अरिहन्त पिता ... और सिद्ध माता स्वरूप है 149
34. 14 गुणस्थानों में "नवकार" की साधना 157
35. "लोए" शब्द से अभिप्रेत—"मनुष्य लोक" 163
36. गुणात्मक एवं धर्मात्मक — "नमो भाव" 169
37. नमस्कार से दुःख—दुर्गति का नाश कैसे ? 177
38. एक भी नमस्कार निष्फल नहीं जाता है 179
39. "सूत्रों-स्तोत्रों में निर्दिष्ट—"नमस्कार" से लाभ" 184
40. श्री नवकार में देव तत्त्व 192
41. प्रणाम और नामस्मरण की महिमा 194
42. पंच परमेष्ठी का वाचक बीज मंत्र—ॐकार 198
43. "मोक्ष की प्राप्ति के शाश्वत पदों का मार्ग" 203
44. जाप में—एकाग्रता लाने के कुछ उपाय 211
45. अध्यात्म योगी गुरुदेव और श्री नवकार 221
46. नवकार की शब्द देह रचना 223

"भक्ति में प्रभु और प्रभु में भक्ति"

—पंन्यास अरुणविजय गणि म.

परमात्म पद की प्राप्ति हेतु प्रभु की प्राप्ति पहला सोपान है, और ध्यान अन्तिम सोपान है । लेकिन प्रभु की प्राप्ति के लिए भक्ति की सर्वप्रथम आवश्यकता है । ध्यान योगियों और ज्ञानियों के लिए ही संभव हो सकता है जबकि भक्ति सर्व सामान्य जीवों के लिए सुलभ-सरल मार्ग है । जी हां...वैसे प्रभु पद की प्राप्ति के लिए अनेक मार्ग है । उन सब मार्ग में सर्व सामान्य जीवों के लिए सुलभ सरल मार्ग भक्ति का हैं । यद्यपि ध्यान सर्वश्रेष्ठ मार्ग है इसमें कोई शक नहीं है, दो मत भी नहीं है । लेकिन हजारों में कोई एक ध्यान कर सकता है । ध्याता बन सकता है । जबकि भक्ति सर्व सामान्य सभी कर सकते हैं । लेकिन ऐसा भी मत समझिए सभी ध्याता जो भी ध्यान करने बैठ गए वे सभी ध्यान की धारा में चढ़कर प्रभु पद को प्राप्त कर ही लेते हैं । जी नहीं, हजारों ध्यानियों या ध्याताओं में सही दिशा में सही शुद्ध ध्यान करने वाले भी मुश्किल से गिनती के नाम मात्र के ही मिलते हैं । क्योंकि ध्यान साधना पद्धति का मार्ग यदि सही हाथ में न आया तो साधक भटक जाता है, और भटका हुआ तो फिर भ्रमण कक्षा में कहीं उड़ाने भरता ही रहता है । ऐसी स्थिति में भ्रान्ति-भ्रमणा भी मृगमरीचिका की तरह सही ज्ञान की तरह काल व्यतीत कराती रहती है, और ऐसी भ्रान्ति-भ्रमणा मिटनी भी बहुत मुश्किल होती है । उसमें भी जब अभिमान अहंकार ममत्वादि का अभिनेवेशिक भाव मिल जाता है तब वह ध्यान साधना भी राग-द्वेष के बंधन में आकर किसी सीमित दायरे वाली संप्रदाय की वाड के बंधन से बंध जाती है । फिर तो उसका शुद्ध स्वरूप रहना ही मुश्किल हो जाता है । बस, अब उस संप्रदाय के लेबल के नीचे उसी की ब्राण्ड बनकर ही बाहरी बाजार में बिकती रहेगी ।

अरे ! कभी सोचिए तो सही...क्या ध्यान की साधना को भी वाडाबंधी में बांधा जा सकता है ?...जी नहीं...व्यवहार नय जब छूट जाता है और निश्चय नय की ध्यान साधना जब अन्तर की कक्षा में होती है तब वहां कोई भेद रहता ही नहीं है । ध्यान भी जब भेद दर्शक रहेगा वहां तक उसमें भी सांप्रदायिकता का रंग लगता ही जाएगा लेकिन जिस दिन अभेदभाव की कक्षा का ध्यान आ जाएगा उस दिन फिर किसी की भी वाडाबंधी का भेद नहीं रहेगा ।

यह भेदादि क्यों बीच में आते हैं ? क्यों ध्यान भिन्न-भिन्न कक्षा का होता है ? इसमें प्रमुख कारण एक ही है—ध्येय की भिन्नता । सभी ध्याताओं के लक्ष्य भिन्न-भिन्न रहते हैं । उसी कारण से तथा ध्यान साधना के अंग भी भिन्न-भिन्न रहने के कारण एक ध्यान पद्धति सर्वविश्वमान्य नहीं बन पाई । जैन कहेगा कि—हमारा ध्येय प्रभु बनना है । स्वयं भगवान बनना है । जबकि हिन्दु कहेगा कि—नहीं हमें तो प्रभु को पाना है...बस प्रभु दर्शन हो जाये तो बहुत हो गया । अब आप ही सोचिए ! इस प्रकार में कितना बड़ा भेद है ? बस तो फिर—जितना ध्येय होगा उसी सीमित दायरे में वैसा ही ध्यान भी होगा । इस तरह आज ध्यान के बाजार में लगी हुई अपनी-अपनी ध्यान की दुकानों में कितनी ध्यान पद्धतियां प्रचलित है ? और किस-किस किस्म के ध्यान बताए जाते हैं ? शायद भोजन की तरह अनेक प्रकार की वानगियों जैसा बन गया है ।

भक्ति में ध्यान और ध्यान में भक्ति—

ध्यान एक आभ्यन्तर कक्षा की सर्वोच्च भक्ति है । जहां भक्त भक्ति करते- करते भगवान में लीन-विलीन हो जाता है वह भक्ति भी ध्यान बन जाती है । इसलिए भक्ति भी ध्यान का ही प्रथम प्रकार है । ध्यान तक पहुंचने का प्रथम सोपान है । इसलिए ध्यान को ही ध्येय बनाकर तदनुरूप भक्ति करनी चाहिए ।

इसलिए भक्ति में ध्यान और ध्यान में भक्ति करना इन दोनों में कौनसा पक्ष उचित लगता है ? उपास्य आराध्य सरल लगता है ? ध्यान में भक्ति करना बहुत आसान है जबकि भक्ति में ध्यान करना बहुत कठिन है । यदि भक्ति को ध्यान के अनुरूप कर सकें और ध्यान को भक्ति के अनुरूप कर सकें तो दोनों में शुद्धि पूरी आ सकेगी ।

वर्तमानकालीन भक्ति ध्यान से विचलित कराती है । सही ध्यान की दिशा में पहुंचना ही उसके लिए संभव नहीं बचा, क्योंकि भक्ति रागाश्रित बन गई है । जो भक्ति भावाश्रित रहती है वह शुद्ध रहं पाती है । वही साधक को आगे बढ़ाती है । लेकिन भक्ति का मुख्य आधार और आश्रय जो भाव था, वह अब कहीं छिप गया है । 10% व्यक्तिगत भक्तों में बचा है । जब ऐसे स्वयं भक्ति करते थे तब तक भक्ति, भाव प्रधान बनी रही, लेकिन जब से भक्ति पराधीन पराश्रयी बन गई, अर्थात् दूसरों को बुलाकर भक्ति कराने लग गए, या पैसे देकर किसी मण्डली या पार्टी को बुलाकर भक्ति कराने लगे तब से भक्ति रागाश्रित बन गई । अब राग प्रधानता चल रही है । क्योंकि राग लोगों को खुश करने का साधन बन चुका है । जबकि भाव में हेतु भिन्न-भिन्न है । हिन्दु धर्म के भक्त कहेंगे कि भगवान को खुश करना है, तब जैन भक्त कहेगा कि नहीं भगवान के आलम्बन रूप माध्यम से स्वआत्मा को प्रसन्न करना है । इन दोनों विचारों में सच्चाई किसमें छिपि है ? इसका निर्णय करना बुद्धिजीवी और भक्ति की अनुभूति करने वाले वर्ग का कार्य है ।

कंठ का राग और दिल का राग—

भगवान जब राग रहित विरागी-वैरागी तथा वीतरागी है तो फिर ऐसे परमात्मा को किस राग से हम सन्तुष्ट करेंगे ? क्या यहां मात्र कण्ठ का राग कामयाब होगा ? भाव को भी दिल का राग, मन का राग या आन्तरिक राग भाव नाम दिया गया है । आपके अन्तर में यदि परमात्मा के प्रति राग (भाव) पूरा है तो कण्ठ का राग उसमें उत्तेजक सहायक जरुर बन जाएगा । अकेले घी या तेल का दीपक नहीं जलता है उसमें वर्तिका होनी ही चाहिए । वह भी घी-तेल में डूबी हुई रहेगी तब उससे क्रमशः घी जलता जाएगा । इसलिए घी का दीपक कहा जाएगा न कि रुई का दीपक ।

वर्तमान काल में जब भक्ति पराधीन दूसरों के आश्रित होती गई तब उसमें भाडुती भक्ति का रूप बढ़ता गया और आज तो आते-आते उस भक्ति में आधुनिकीकरण इतना ज्यादा होता गया है कि...अब तो वह भक्ति...सिनेमा की तरफ फैल गई । सिनेमा के रागों-तर्जों पर प्रभु के स्तवन चलेंगे तब क्या भक्ति का अंश भी बचेगा ? रचयिताओं को राग के साथ जब रस का ही ज्ञान नहीं होगा, तब क्या और कैसी रचनाएं बाहर आएगी ? श्रृंगार रस के गीतों की फिल्मी तर्जों पर जब...शांन्त रस और, वैराग्य रस के स्तवनों को ढाला जाएगा और उसे उस प्रकार की फिल्मी तर्जों पर वैसे भड़क संगीत के साथ गाया जाएगा तब भक्ति और भाव दोनों का गला घोंट दिया जाएगा । क्या यह सच नहीं लग रहा है आपको ? आज के वर्तमान काल में भक्ति में जों विकृति आई है वह फिल्मीकरण और भाडुतीकरण के कारण है, अतः सबसे पहले इस विकृति से बचना होगा । फिल्मी तर्जों की धूनों को तिलांजलि देकर अब शुद्ध देशी रागों पर आना पड़ेगा । भाडुतीकरण कम करके निजीकरण पर आना होगा । आप सोचिए ! कोई आनन्दघनजी जैसे अवधूत योगी के स्तवनों को यदि फिल्मी तर्जों के धमाकेदार सूरों में गाएगा तो कैसी हालत होगी ?

क्या आप जैन तर्क शास्त्र का अभ्यास करना चाहते हैं ?
क्या आप जैन पदार्थ विज्ञान जानना चाहते हैं ?
क्या आप जैन तत्वों के शुद्ध लक्षण जानना चाहते हैं ?
क्या आप जैन प्रमाण पद्धति का अभ्यास करना चाहते हैं ?
यदि ..... हां ..... तो ..... अभ्यास योग्य ग्रन्थ जरूर पढीए .....

वादिदेव सूरि विरचित — "प्रमाण नय तत्वालोक"

सूत्रों और संक्षिप्त टीका तथा हिन्दी भाषान्तरं युक्त अभ्यसनीय ग्रन्थ
संपादक — पू. पंन्यास श्री अरुणविजयजी महाराज
संस्कृत — हिन्दी भाषा युक्त यह पुस्तक अभ्यासुओं को जरुर पढना चाहिए ।

पापनाश हेतु — "नमस्कार"

—पंन्यास अरुणविजय गणि म.

नमस्कार महामंत्र के सातवें पद में 'सव्व पावप्पणासणो' अर्थात् सब पाप कर्मों का नाश-क्षय करने के लिए छट्ठे पद 'एसो पंच नमुक्कारो' में अरिहंतादि पांचों परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है । ऐसे पांचों परमेष्ठियों को नमस्कार करके कोई भी साधक अपने सब पाप कर्मों का क्षय-नाश कर सकता है । लेकिन प्रश्न यह उठता है कि हमारे सब पाप कर्मों का नाश या क्षय कौन करता है ? अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भगवन्त करते हैं ? या उन पांचों को किया हुआ नमस्कार ही हमारे सब पाप कर्मों का नाश-क्षय करता है ? या पांच नमस्कार ? या पांचों परमेष्ठियों को सामूहिक रूप से किया हुआ एक ही नमस्कार ? यहाँ पंच परमेष्ठी और नमस्कार इन दो के विषय में विचारणा करनी है । इसी तरह इनकी संख्या के विषय में भी विचारणा की जा सकती है । क्या परमेष्ठी पांच है तो हमें पांचों परमेष्ठियों को नमस्कार करना ही चाहिए ? या इन पांचों में से सिर्फ किसी भी एक को ही नमस्कार करने से भी कार्य सिद्धि हो सकती है ? जैसे परमेष्ठियों के विषय म संख्या का कम-ज्यादा का विचार करते हैं, वैसे ही क्या नमस्कार के विषय में भी संख्या की दृष्टि से कम ज्यादा का विचार किया जा सकता है या नहीं ? अत: क्या पांचों परमेष्ठियों को अलग-अलग एक-एक स्वतंत्र नमस्कार करें ? या पांचों को संयुक्त रूप से एक ही नमस्कार करने मात्र से भी परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण सब पाप कर्मों का नाश-क्षय होगा या नहीं ? साधक को साध्य की सिद्धि से मतलब है । सर्वथा सब पाप कर्मों का क्षय होना ही चाहिए । चाहे जितने भी नमस्कार करने पड़े और चाहे जिनको भी नमस्कार करना पड़े साधक के रूप में तैयार हूं । इस विषय की विचारणा इस लेख में करते हुए तथ्य को उजागर करने का प्रयत्न करें ।

क्या पांच परमेष्ठी हमारे पापों का क्षय करेंगे ? —

दो देव + तीन गुरु = इस तरह पांच परमेष्ठियों की व्यवस्था है । देव तत्त्व में पहले अरिहंत और दूसरे सिद्ध भगवान की गणना है । जबकि तीन गुरुओं में पहले आचार्य दूसरे उपाध्याय और तीसरे साधु भगवन्त है । अरिहंत परमात्मा सदेह विद्यमान तीर्थंकर परमेष्ठी है । जबकि सिद्ध विदेह मुक्त है । अरिहंत सशरीरी होते हैं । सिद्ध अशरीरी होते हैं । सिद्ध परमेष्ठी सर्वथा कर्मबंधन से मुक्त, शरीर से मुक्त, जन्म-मरण के चक्र से मुक्त और इस संसार से भी सर्वथा मुक्त होकर, अशरीरी होकर, निरंजन निराकार होकर लोक के अग्र भाग पर...लोकान्त के किनारे रहे हुए हैं । वे अब किसी भी रूप में सक्रिय नहीं है । सर्वथा निष्क्रिय है । अत: बाह्य स्वरूप से किसी के लिए भी कुछ करने का उनके लिए रहता ही नहीं है । इसलिए सिद्ध परमात्मा किसी के पाप कर्मों का क्षय या नाश आदि कुछ करते ही नहीं है । अत: सुख देने और दु:ख काटने आदि किसी भी बात की संभावना का विचार सिद्धों के विषय में करना सर्वथा अयुक्त है ।

देव तत्त्व में दूसरे देवाधिदेव अरिहंत परमात्मा है । यदि सिद्धों के साथ तुलना की जाय तो...जो सिद्धों में ज्ञानादि गुण पूर्ण रूप से प्रगट हुए हैं वे ही गुण अरिहंत में भी प्रगट है—जैसे—(1) केवलज्ञान, (2) केवलदर्शन (3) वीतरागता और (4) अनन्त वीर्य । यह अनन्त चतुष्टयी अरिहंत परमात्मा में भी समान रूप से है । एक मात्र आयुष्य कर्म का प्रमाण अस्तित्व में रहने से (आयुष्य समाप्त न होने के कारण) जीवन समाप्त नहीं हुआ है । अत: शरीरधारी स्वरूप में जीवन्त है । शरीरधारी होने के कारण देहधर्म-आहार-निहार की सारी प्रवृत्तियां उनके लिये अनिवार्य है । वीतरागी और सर्वज्ञ बने हुए अरिहंत परमात्मा स्वयं न किसी के दु:खों को दूर करते हैं और न ही किसी को सुख-सम्पत्ति प्रदान करते हैं तथा न ही किसी के पाप कर्मों को क्षय करते हैं । आखिर कैसे करें ? संसार में अनन्त जीव हैं । अरिहंत परमात्मा तो अनन्त (समस्त) जीवों का कल्याण करने की भाव दया सदा ही चिन्तवते रहते हैं । समवसरण में बिराजमान होकर जगत् के जीवों का कल्याण करने के लिए करुणा भाव से तारक देशना फरमाते हैं ।

ऐसी देशना का श्रवण करके, तदनुरूप आचरण करके, अनेक जीव संसार समुद्र से पार उतरते हैं । परन्तु अनेक भारेकर्मी जीव देशना श्रवण नहीं कर पाते हैं तथा कुछ श्रवण करने पर भी श्रद्धा ही नहीं कर पाते हैं, तथा कई जीव आचरण ही नहीं कर पाते हैं । अनेक जीव अपने कृत कर्मों के कारण परमात्मा के प्रति अभाव भी रखते हैं । उनसे प्रतिकूल भी वर्तन करते हैं । भारी नए पाप कर्म भी उपार्जन करते हैं । आखिर वे जीव

अपनी वृत्ति के कारण मन-वचन-काया से वैसी प्रवृत्ति करते रहते हैं। उनकी आत्मा पर अनन्तानन्त कार्मण वर्गणा के पुद्गल परमाणु कर्म के रूप से चिपके हुए हैं। भगवान उन जीवों के पाप कर्मों का नाश कैसे करेंगे ? संभव ही नहीं है।

आप कहेंगे कि परमेश्वर का शक्ति सामर्थ्य अनन्त गुना है। वे एक चमत्कार से, एक झटके से चुटकी बजाते ही जीवों के पाप कर्मों को नष्ट कर सकते हैं, लेकिन ऐसा संभव नहीं है। आपके लिए ऐसा मुंह से बोल देना बहुत आसान है। क्योंकि अनादि कालीन मिथ्यात्व के उदय के कारण ऐसा सोचना या बोलना संस्कारवश आसान लगता है, परन्तु वास्तविकता अलग ही है। भगवान महावीर के समवसरण में कालशौकरिक कषाइ भी रोज आता ही था। आखिर भगवान महावीर उसका क्या कर सके ? श्रेणिक स्वकृत कर्मानुसार नरक गति में जाने वाला जो भगवान महावीर की आंखों के सामने था। लेकिन भगवान महावीर उसे भी कहां बचा सके ? अरे ! यह बात तो और भी दूर रही...' खुद महावीर गोशालक, ग्वाले, कटपुतना व्यंतरी तथा देवों के उपसर्ग के सामने भी कहां बच सकें ? औरों को बचाने की बात तो दूर रही परन्तु स्वयं को भी बचा नहीं पाए, तथा जिन जीवों का जो दुःख या दुर्गति उनके कर्मानुसार है उसमें परमात्मा चाहे कितने भी सामर्थ्यवान हो लेकिन वे कोई जादू-चमत्कार करके किसी के पाप कर्म नष्ट नहीं कर सकते हैं जिससे कि उन जीवों को दुःख भुगतना ही न पड़े। कैसे करे ? जीवों के आत्म प्रदेशों पर अनन्त कार्मण वर्गणाएं जो पाप की प्रवृत्ति के समय लगकर चिपककर रही हुई है उसके लिए भगवान क्या और कैसे चमत्कार कर सकते हैं ? और सचमुच यदि ऐसा कर सकते होते तो...भगवान आदिनाथ से भगवान महावीर तक की तीर्थंकरों की श्रेणी में जो 24 तीर्थंकर भगवान हुए हैं उन्होंने सबने ऐसा चमत्कार अपनी स्वेच्छा से कर लिया होता। आज इस संसार में कोई भी जीव दुःखी होता ही नहीं। रहता ही नहीं। फिर तो भगवान इस संसार के सब जीवों को मोक्ष में भेज देते या साथ में ही ले जाते। फिर आज इस संसार में कोई जीव बचते ही नहीं। लेकिन...प्रत्यक्ष रूप से सारी बात ही अलग दिखाई दे रही है। अनन्त जीव आज भी इस संसार में प्रत्यक्ष उपस्थित हैं तथा दुःख-वेदना-पीड़ा बराबर भुगत रहे हैं।

इससे यह निश्चित हो गया कि इतने तीर्थंकर भगवान होने के बावजूद भी वे इस अवनितल पर किसी भी प्रकार का चमत्कार नहीं कर सके। यहां सामर्थ्य का प्रश्न ही नहीं है, परन्तु जीवों के पापकर्मों का सर्वथा नाश करने का चमत्कार हो ही नहीं सकता है—और न ही सबको एक साथ मोक्ष में ले जाया जा सकता है। जो होते हैं वे सामान्य तुच्छ कक्षा के चमत्कार ही होते हैं। पाप कर्मों का क्षय जीवों को स्वयं ही करना होगा।

कैसों को नमस्कार करें ? —

नमस्कार करने वाले को नमस्करणीय अर्थात् नमस्कार करने योग्य कौन हो ? इसका चयन व्यवस्थित रूप से करना होगा। कर्ता साधक अपने उद्देश्य को पहले स्पष्ट निश्चित करें। उसे नमस्कार कैसे और किस उद्देश्य से करना है ? उसकी भावना कैसी है ? फिर उसके आधार पर नमस्करणीय कौन हो उसका चयन अपने आप करने की सुविधा हो जाएगी। इस संसार में दो-तीन प्रकार के नमस्करणीय हैं। उनमें (1) सर्वथा सर्व पाप कर्मों से मुक्त परमेष्ठी जो सर्वोत्कृष्ट कक्षा के हैं। (2) दूसरे उसी उद्देश्य से सर्वथा पाप कर्मों से मुक्त होने के लक्ष्य को निश्चित करके वर्तमान जीवन में जब तक सब पाप कर्मों का क्षय सर्वथा नहीं हो जाता है तब तक सभी पापकर्म न करने की भीष्म प्रतिज्ञा लेकर वैसा निष्पाप जीवन जी रहे हैं। ऐसे नमस्करणीय महापुरुष हैं तथा (3) तीसरे ऐसे नमस्करणीय भी है जो न तो सर्व पापकर्मों का क्षय कर चुके हैं...न ही अभी वैसा लक्ष्य है और न ही जीवन में वैसी पाप निवृत्ति की प्रतिज्ञा है और निकट भविष्य में भी सर्वथा पापकर्म रहित बनने की संभावना भी नहीं है। फिर भी साधना के मंच पर वे नमस्करणीय बने हुए हैं और लाखों लोग उन्हें नमस्कार कर रहे हैं। ऐसे हैं संसार के रागी द्वेषीदेव-देवियां। स्वर्ग के या देवगति के व्यंतर निकाय के देवी-देवता जो अभी स्वयं राग-द्वेष से बंधे हुए हैं। पाप कर्मों से भरे हुए हैं तथा उनके जीवन में अभी भी किसी न किसी प्रकार की पापलीला चल रही हैं तथा पल्योपमों, सागरोपमों का सुदीर्घ आयुष्य लेकर बैठे हो, उनके निकट भविष्य में सर्वथा पाप रहित होने की संभावना भी कम लग रही हैं। फिर भी ऐसे रागी-द्वेषी देव-देवियां या भगवानों को उनके शक्ति-सामर्थ्य की संभावना से लोग उन्हें नमस्कारादि करते रहते हैं। हो सकता है शायद वे हमारे दुःख-दर्द और दुर्गति को टालेंगें और सुख-सम्पत्ति-शक्ति को देंगे इसलिए ऐसी भावना से मानस बनाकर लोग उन्हें नमस्कार अर्चना आदि करते हैं। आशावादी अनुमान की संभावना से करते हैं।

सम्पूर्ण वीतरागी सर्वज्ञ अरिहंत परमात्मा जो सब प्रकार के पापादि कर्मों से मुक्त है उनके विषय में ऐसा नहीं है। आत्म प्रदेशों पर से भी सर्वथा सम्पूर्ण रूप से सब पापादि कर्मों की सम्पूर्ण निर्जरा कर चुके हैं और आत्मा के वैसे गुणादि प्राप्त कर चुके हैं तथा वर्तमान जीवन के आचार क्षेत्र में भी रत्तीभर पाप की कोई प्रवृत्ति रखते ही नहीं है। फिर प्रश्न ही कहां खड़ा होता है ? इसलिए जिस साधक को "सव्व-पावप्पणासाणो" के सर्वोच्च उद्देश्य से साधना करनी हो उसको ऐसे आदर्शभूत परमेष्ठी भगवन्तों की ही साधना करनी चाहिए।

साध्य-साधना- साधन और साधक की चतुष्टयी में एक ही उद्देश्य की एक वाक्यता, एकरूपता होनी सर्वश्रेष्ठ है । ऐसे परमेष्ठी भगवन्त को नमस्कार करने से पापकर्मों का क्षय होता है ।

तीसरे स्थान पर चरम साध्य जो सर्व पापकर्म रहित परमेष्ठी स्वरूप है वैसा ही बनने की भावनावाले, उस दिशा में प्रयाण करने वाले गुरु पद पर आरुढ आचार्य, उपाध्याय और साधु भगवन्त, जिन्होंने अपने जीवन के आचरण में सर्वथा सभी पापकर्म न करने की भीष्म प्रतिज्ञा रूप महाव्रत ले लिए हैं । जीवन में से पापों को सर्वथा तिलाजलि दे चुके हैं तथा जगत् के जीवों को भी पापकर्म न करने का उपदेश देकर उन्हें भी बचाते हैं तथा अपना अन्तिम लक्ष्य भी सर्व पापकर्म रहित बनने का ही बनाया हुआ है । ऐसे गुरु पदारूढ आचार्य, उपाध्याय और साधु भगवन्तों को नमस्कारादि करने पर पापकर्मों के क्षय या निवृत्ति का लक्ष्य बनाकर साधना उपासना की जा सकती है । जिससे पाप कर्मों से मुक्त बना जा सकता है ।

देव-गुरु को पापनाशक नमस्कार—

ऊपर विचारणा कर चुके हैं वैसे देव गुरु नमस्कार के योग्य हैं । ऐसे नमस्करणीय महापुरुषों को भी पापकर्मों को नाश करने की ऊंची भावना से ही नमस्कार करना चाहिए । याद रखिए, जो जैसे हैं उनको नमस्कार आदि करने से हम भी वैसे बन सकेंगे । नमस्करणीय परमेष्ठी का जैसा स्वरूप है उनकी नमस्कारादि द्वारा उपासना करने पर वैसा बना जा सकता है । आखिर जिसके पास जो है वह वही दे सकता है । जिसके पास जो नहीं है वह क्या देगा ? यदि हमें अपने खुद के पाप कर्मों का समूल नाश (क्षय) करना है, और यदि हम पाप कर्मों से भरे हुए रागी-द्वेषी देव-देवियां या भगवानों को नमस्कारादि करते ही जाएंगे तो निष्पाप होने की संभावना कैसे रहेगी ? साधक स्वयं ऐसों के सामने अपना साध्य भी पाप कर्मों के नाश का बना नहीं पाएगा और यदि सामने परमेश्वर परमेष्ठी ही सर्वथा पाप कर्म रहति हो, जीवन-आचार में भी पापाचार का अंश भी न हो ऐसों की उपासना साधना ही वैसा ही बनाने में सहायक बनेगी । इसलिए नमस्कार यदि किसी को करना भी है तो पहले साधक को नमस्कार करने का हेतु या उद्देश्य अपने मानस पटल पर निश्चित कर लेना चाहिए । नमस्कार करने का हेतु कीये हुए पाप कर्मों का नाश करने का होना चाहिए । यही श्रेष्ठ है । इसी हेतु की भावना बनाकर नमस्कार करते रहने से वैसा फल प्राप्त होता है ।

नमस्करणीय परमेष्ठी भगवन्त देव और गुरु दोनों निष्पाप है, अत: साधक को भी निष्पाप बनने के उद्देश्य से ही साधना करने पर यही मिल सकता है । 4 भंग की दृष्टि से इसमें इस प्रकार विचारणा की जा सकती है ।

(1) नमस्करणीय पाप रहित है और उनको पाप रहित होने के लिए ही नमस्कार करना ।

(2) नमस्करणीय पाप रहित ही है, लेकिन मात्र दु:ख नाश, सुख प्राप्ति के लिए ही नमस्कार करना ।

(3) नमस्करणीय राग-द्वेषादि से पूर्ण है, और उनको पाप रहित बनने के लिए नमस्कार करना ।

(4) नमस्करणीय राग-द्वेषादि पाप पूर्ण है, और उनको अपने राग-द्वेष पापादि कर्म बढाने हेतु नमस्कार करना ।

उपरोक्त चारों में से एक मात्र सर्वप्रथम भंग ही श्रेष्ठ है । जिनको नमस्कार करना है वे नमस्करणीय परमेष्ठी भगवन्त सर्वथा सब पाप कर्मादि से रहित ही है और उनको नमस्कारादि भी साधक पापों का नाश करने की भावना से ही करता रहे यही श्रेष्ठतम भंग है । वीतरागी सर्वज्ञ-अरिहंत-परमात्मा, सिद्ध परमेष्ठी सब पापकर्म रहित हैं । और साधक भी वैसा ही बनने की भावना से...सब पाप कर्मों का नाश-क्षय करने के लिए ही नमस्कार करे यही श्रेष्ठ है ।

दूसरे भंग में नमस्करणीय परमेष्ठी अरिहंतादि सभी पाप कर्म रहित महापुरुष ही है, लेकिन साधक मिथ्यात्वग्रस्त था । परिणाम स्वरूप वह मात्र दु:ख नाश और सुख प्राप्ति के लिए ही उन्हें नमस्कारादि करता रहा । अत: साधक पाप कर्म रहित हो नहीं पाया ।

तीसरे भंग वाले लोगों को नमस्कार योग्य नमस्करणीय देव गुरु रागी द्वेषी ही मिले हैं । अत: वह भी क्या करें ? ऐसे रागी द्वेषी देव गुरुओं के पास वह साधक सर्वथा पाप कर्म रहित बनने के लिए नमस्कारादि करने की साधना करता है । आप ही सोचिए ! जिन देव गुरु के अपने ही सभी पाप कर्म धुले नहीं है वे खुद ही राग द्वेष से भरे हुए हैं । अत: साधक उनको नमस्कारादि करके स्वयं कैसे पापरहित होगा ? पापरहित होने की भावना भी कैसे आएगी ?

अन्तिम चौथे भेद वाले साधक को देव-गुरु भी राग-द्वेष से भरे हुए मिले हैं । और उनको साधक अपने दु:ख-दर्द-संकट टालने के लिये तथा सुख-सम्पत्ति प्राप्त करने या शत्रुओं को मारने आदि के लिए ही नमस्कारादि करता है और इससे नए पाप कर्मों की वृद्धि करता रहता है । इससे और संसार बढाता रहता है । ऐसे जीवों के लिए भविष्य भी अनन्त काल तक संसारवास के 84 लक्ष जीव योनियों में परिभ्रमण का ही

लक्ष्य है । मुक्ति की संभावना ही नहीं लगती । इस तरह कभी अन्त ही नहीं आएगा । अत: संसार का अन्त लाने की भावना से पाप कर्मों का समूल नाश करने के हेतु से देव-गुरु भी सर्वथा पाप कर्म रहित और राग-द्वेषादि से विवर्जित होने ही चाहिए । तो ही लाभ संभव होगा ।

दु:खनाशादि की अपेक्षा पापनाश का फल दीर्घकालीक है —

दु:ख-दर्द का नाश करना, संकट आपत्ति-व्याधि टालना तथा सुख सम्पत्ति साधन सामग्री की प्राप्ति होना आदि का फल अल्पकालीक है । क्षणिक है । एक दु:ख-संकट टला कि...सामने दूसरा तैयार ही खड़ा है । दूसरा गया कि तीसरा आया । इस तरह दु:ख-दर्द-संकट असंख्य है । कोई सीमा ही नहीं है और हम यदि दु:ख-दर्द-संकट को टालने के लिए ही धर्म करते रहेंगे तो कब तक करते रहेंगे ? कोई अन्त ही नहीं रहेगा इसका । संभव है कि...अण्डे-मुर्गी की तरह यह चक्र अनन्त काल तक चलता ही रहे । जब तक पाप कर्म समूल जड़ से नष्ट नहीं होंगे वहां तक पुन: दु:ख-दर्द-संकटों की परम्परा सामने आती ही रहेगी । इसकी मूल जड़ पाप कर्म है । अत: पाप कर्मों का समूल क्षय हो जाने के पश्चात् किसी भी प्रकार के दु:ख-दर्द-संकटादि आएंगे ही नहीं । अत: पाप कर्मों के क्षय का फल दीर्घकालीक है । असर काफी लम्बे काल तक रहती है । इसके बजाय यदि हम...दुख-दर्द-नाशादि के लिए ही नमस्कारादि करते रहेंगे उस समय दु:खादि को दूर करने की प्रवृत्ति में, संकट टालने की प्रवृति में भी हो सकता है कि नए पाप-कर्म और भी लग जाये, या करने पड़े । इससे जीव पुन: पाप कर्म उपार्जन कर लेता है या राग-द्वेष करके नए बांध लेता है । परिणाम स्वरूप पुन: पाप और दु:ख की लम्बी परम्परा चलती रहेगी । इसलिए दु:ख दर्द की मुक्ति ही सच्ची मुक्ति नहीं है, परन्तु पाप कर्म से मुक्ति ही सच्ची मुक्ति है । इससे साधक को स्पष्ट समझना चाहिए कि...दीर्घकालिक लाभ किसमें है ? और अल्पकालिक लाभ किसमें है ? और अल्पकालिक क्षणिक लाभ हेतु कितना बड़ा नुकशान करता हूं तथा पूर्ण लाभ किसमें है ? प्रमाणादि का भी विचार करके साधक को साधना करनी चाहिए ।

पापनाशक परमेष्ठी या नमस्कार ?—

जैन धर्म-दर्शन में सृष्टिवाद, सृष्टि कर्तृत्ववाद, जगत्कर्ता या सुखदाता, दु:ख-दाता, कर्म फलदाता आदि विचारधाराओं को स्थान ही नहीं है । अत: अरिहंत सिद्ध, परमेष्ठी और आचार्य, उपाध्याय तथा साधु ये गुरु परमेष्ठी इस तरह पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को सृष्टि जगत् के विषय में कर्ता-हर्ता नहीं माना है तथा न ही दु:ख-सुख के दाता, और न ही कर्म फलदाता । अत: ये पांचों अरिहंतादि परमेष्ठी स्वयं होकर किसी के पाप कर्मों का क्षय नहीं करते हैं । यदि ऐसा करते होते तो सभी को पाप रहित करके मुक्त कर देते । परिणाम स्वरूप वर्तमान में इस अवनितल पर एक भी जीव संसार में बचता ही नहीं । लेकिन "न भूतो-न भविष्यति" जैसी यह बात है । अत: कर्तृत्व-दातृत्व शक्ति परमेष्ठी के हाथों में नहीं है ।

दूसरे विकल्प में क्या आज्ञा आदेश या हुकम देकर ये पंच परमेष्ठी किसी अन्य सशक्त देवी-देवताओं द्वारा ऐसा करा सकते हैं ? तीर्थंकर अरिहंत परमात्मा की सेवा में करोड़ों देवी-देवताओं उपस्थित रहते हैं । अत: वे क्या उनको आदेश करके भी भक्त-सेवक के पाप कर्मों का नाश करवा सकते हैं ? जी नहीं । कदापि नहीं । आखिर आप ही सोचिए ! किसी भी जीवात्मा पर अनेक जन्मों के पाप कर्मों का ढेर सारा पड़ा हो..जो उसी के द्वारा किये हुए उपार्जित हो उसका क्षय या नाश देवी-देवता कैसे कर सकेंगे ? आत्म प्रदेशों पर कार्मण-वर्गणा के पुद्रग्दल-परमाणु चिपककर एक रस बने हुए हैं । अत: देवता कैसे उसे अलग करके ले जाये ? या बिखेर सकें ? जी नहीं । यहां तक कि करोड़ों देवी-देवता अपनी स्वयं की आत्मा के प्रदेशों पर लगे हुए कार्मण वर्गणा के पुद्गल परमाणुओं को भी बिखेर कर दूर नहीं कर सकते हैं तो फिर दूसरों की तो बात ही कहां रही ?

अरे ! बिचारे सामान्य देवी-देवताओं का तो क्या कहना...परन्तु स्वयं परमेश्वर तीर्थंकर अरिहंत परमात्मा भी अपनी आत्मा पर लगे हुए समस्त कार्मण वर्गणा के पुद्गल परमाणुओं को हटाकर फेंक नहीं सकते हैं । उन्हें भी उदय में आए हुए कृत कर्मों का फल भुगतना ही पड़ता है । काल की परिपक्वता होने पर स्वयं के कर्म उदय में आएंगे और अवधि समाप्त होने पर वे भी आत्म प्रदेशों से बिखरकर दूर हो जाएंगे इसे कहते हैं निर्जरा ।

क्या नमस्कार से पापों का नाश होगा ?—

जी हां ! अवश्य होगा । आप किस प्रकार के नमस्कार, कैसे नमस्कार, कैसी भावना से किसको नमस्कार करते हो ? उस पर आधार है । जैन तत्त्व शास्त्रों में निर्जरा तत्त्व कर्मक्षय के अर्थ में बताया है । आत्म प्रदेशों पर से कार्मण वर्गणा के पुद्गल परमाणुओं को बिखेरकर दूर करने की प्रक्रिया को निर्जरा कहते हैं । जैसे दूधादि किसी भी पर पदार्थ में मिला हुआ पानी भाप बनकर उड़ जाता हैं ठीक वैसे ही निर्जरा में आत्म

प्रदेशों पर से कार्मण वर्गणा के कर्मरूप परमाणु बिखरकर आत्म प्रदेशों से दूर हट जाते हैं। ऐसी निर्जरा करने के लिए शास्त्रों में तप-तपश्चर्या आदि प्रमुख रूप से बताए हैं ।

तप

1. बाह्य तप (6 प्रकार का) 2. आभ्यन्तर तप (6 प्रकार का)

शास्त्रों में बाह्य और आभ्यन्तर तप के 6-6 प्रकार बताए हैं । बाह्य तप में उपवासादिक प्रधान रूप से देह साध्य है । उपवासादि का प्रमुख साधन शरीर है । जबकि प्रायश्चित-विनय-वैयावच्च आदि के आभ्यन्तर 6 भेद मनसाध्य है । आन्तरिक भाव साध्य है । आत्मा अपने भावों से जिसमें प्रधान रूप से सम्मिलित है उसे आभ्यन्तर तप कहा है । विनय वैयावच्च के प्रकारों में आत्मिक भावों की प्रधान भूमिका है । नमस्कार विनय गुण की ही प्रगट क्रिया है । विनय आत्म गुण विशेष है । नम्रता के भाव को प्रगट करने वाला यह विनय गुण नमस्कारादि की प्रवृत्ति द्वारा क्रियात्मक स्वरूप धारण करता है ।

साधक अपने अंतरंग पाप कर्मों को धोने के लिए आत्मिक भावों की विशुद्धि पूर्वक मन-वचन-काया के तीनों माध्यमों (साधनों) द्वारा यदि नमस्कार की क्रिया करता है तो अवश्य पाप कर्मों की निर्जरा होती है । तीनों माध्यमों (साधनों) से होने वाला नमस्कार 3 प्रकार का होता है ।

(1) मानसिक नमस्कार

(2) वाचिक नमस्कार और

(3) कायिक नमस्कार ।

(1) मन द्वारा आन्तरिक भावों से मन ही मन में जो नमस्कार किया जाय उसे मानसिक नमस्कार कहते हैं । (2) वचन योग से शब्दों की भाषा में जो नमस्कार व्यक्त किया जाता है उसे वाचिक नमस्कार कहते हैं । कई लोग चलते-फिरते, आते-जाते भी नमस्कार शब्द का उच्चार कर लेते हैं । एक-दूसरे को बोलते हैं । सुनाते हैं । तथा (3) कायिक-शारीरिक नमस्कार है । जिसमें शरीर को झुकाकर पंचांग प्रणिपात, अष्टांग प्रणिपात या द्वादशावर्त वंदन विधि पूर्वक किया जाता है ।

मन-वचन-काया का यद्यपि एक दूसरे के साथ सम्बंद्ध है । संलग्न है । एक के साथ दूसरा मिलकर भी क्रिया-प्रवृत्ति करते हैं तथा कई बार स्वतंत्र रूप से भी प्रवृत्ति करते हैं । जैसे काया अपनी तरफ से पंचांग प्रणिपात नमस्कार क्रियात्मक रूप से करती ही रहे और मन अपनी तरफ से दुनिया भर के विचारों में घूमता ही रहे । ऐसे ही कभी वचन योग से भाषा के रूप में शब्द प्रयोग हम करते ही रहते हैं, देवस्तुति, गुरुस्तुति बोलते रहते हैं परन्तु मन अन्यत्र घूमता रहता है । दूसरे विचारों में मग्न रहता है । इस तरह तीनों स्वतंत्र रूप से अलग-अलग प्रवृत्ति करने लगे तो निर्जरा कैसे होगी ? अत: इन तीनों योगों को मिलाकर एक रूप बनाकर प्रवृत्ति करें तो निर्जरा का प्रमाण काफी बढता जाता है । 'योग' शब्द का अर्थ भी यही है कि 'संयोजन' अच्छी तरह तीनों को एक साथ जोड़ना । जैसे सूई के एक छिद्र में 3 धागे एक साथ पिरोने हो । जहां एक धागा पिरोना भी कठिन लगता हो वहां 3 धागे और वे भी एक साथ पिरोने तो बहुत मुश्किल लगते हैं । ठीक उसी तरह मन-वचन और काया इन तीनों को आत्मा-ध्यान योग में एक साथ संयोजन करे तब शुभ में निर्जरा होती है । अन्यथा अशुभ पाप प्रवृत्ति में कर्मबंध भी काफ़ी होता है ।

नमस्कार करने की क्रिया बाह्यरूप से काया (शरीर) द्वारा की जाती है । वचन योग से शब्दोच्चार-भाषा में करते हुए स्तोत्र-स्तुति सूत्र बोले जाते हैं । उन सूत्रों के पदों-शब्दों पर चिन्तनात्मक भाव मन द्वारा चेतना व्यक्त करती है । इस तरह मन-वचन-काया तीनों की एक रूपता, एक वाक्यता जोड़ने पर निर्जरा होती है । तीनों को एक साथ जोड़कर, मिलाकर क्रिया प्रवृत्ति करनी चाहिए । तभी विशेष लाभ है ।

नमस्करणीय के अनुरूप नमस्कार हो—

नमस्कार करने योग्य ऐसे नमस्करणीय महापुरुषों को जो नमस्कार करने है, वे उनके अनुरूप और अनुकूल ही होने चाहिए । अनुरूप और अनुकूल का सीधा तात्पर्य यह है कि भाववाही सूत्रों के जो शब्द, पदादि है उसमें प्रयुज्य भावों को मानस पटल पर अभिव्यक्त करने चाहिए । सूत्र रचनाकार ने सूत्र रचना करते समय जो और जैसे भावों को शब्द रचना में भरे हो वैसे भावों को हमें भी मानस पटल पर लाने चाहिए । जिससे भाव विशुद्धि आएगी और भावों की विशुद्धि के आधार पर कायिक क्रिया की भी विशुद्धि होती है । उदाहरणार्थ नमस्करणीय परमेष्ठी अरिहंत परमात्मा है । अत: उनके समक्ष बोली जाती स्तुति-स्तोत्र-स्तवन के शब्दों में रचियता ने अपने भाव बहुत ही ऊंची कक्षा के भरे होते हैं । अरिहंत का स्वरूप वर्णन भी इतना सुन्दर किया हुआ होता है कि उसमें स्पष्ट स्वरूपचित्र उपस्थित होता है । वैसा ही हमें भी अपने मानस

पटल पर भावों द्वारा उपसाना चाहिए । इस प्रकार की भाव विशुद्धि से निर्जरा का प्रमाण बढता है । परमात्मा के अष्ट महाप्रातिहार्यों अतिशयों तथा गुणों को अच्छी तरह जानकर समझकर वैसे भाव बनाते जाये और उनके अनुरूप कायिक नमस्कार की क्रिया भी होती जाएगी । इस तरह नमस्कार श्रेष्ठ कक्षा का बनता जाएगा ।

सिद्ध परमात्मा जो सर्वकर्म रहित, सर्वगुण सम्पन्न हो चुके हैं, उन्हें नमस्कार करते समय भी उपरोक्त प्रक्रिया अपनानी चाहिए । सिद्धों की वाच्य स्तुति स्तोत्र पाठादि में उनके अनन्त गुणों का वर्णन मिलता है । नमस्कार की क्रिया का कर्ता यदि अपने मानस पटल पर वैसा सिद्धों का स्वरूप उपसाने लग जाये तो साधक वैसे भावों से अभिभूत होता है । इसी तरह गुरु पदारुढ आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी भगवन्तों को भी नमस्कार इसी पद्धति से करना चाहिए । नमस्कार इसी तरह विशुद्ध कक्षा का बनता ही जाएगा ।

नमस्कार से निर्जरा—

12 प्रकार से होने वाली निर्जरा में विनय गुण की गणना आभ्यन्तर कक्षा में की गई है । नमस्कार क्रिया का घनीभूत भाव विनय गुण है । सकाम निर्जरा स्वेच्छापूर्वक मनोगत भावों द्वारा होती है । ठीक इसके विपरीत अकाम निर्जरा में स्वेच्छा की प्रबलता नहीं होती है । अनिच्छा पूर्वक दुःख, दर्द, कष्ट सहन करते हुए भी जितनी निर्जरा होती है उसे अकाम निर्जरा कहते हैं । नमस्करणीय महापुरुषों को देखकर, समझकर, उनका स्वरूप पहचानकर उनके गुणों के प्रति पूज्यभाव, अहोभाव जो प्रगट हुआ है उसके अनुरूप हम अपनी इच्छा भावना बनाकर नमस्कार करते हैं उसके आधार पर सकाम निर्जरा होती है । पाप कर्मों का क्षय होता है ।

नमस्कार करने योग्य एक नहीं, पांचों परमेष्ठी भगवन्तों का स्वरूप सर्वोच्च कक्षा का है । अरिहंत सिद्ध दोनों परमेष्ठी पाप कर्मों से सर्वथा मुक्त है । आचार्य, उपाध्याय और साधु भगवंत ये गुरु परमेष्ठी तीनों ही किसी भी प्रकार का पाप न करने की भीष्म प्रतिज्ञा रूप महाव्रत ले चुके हैं । अतः वर्तमान में नए पापों से वे सर्वथा मुक्त है । एक मात्र भूतकाल के किये हुए पाप कर्म अब जो उनकी आत्मा पर लगे हुए हैं उनका क्षय करने के लिए ही साधना कर रहे हैं । अतः वीतरागी और वैरागी उभय प्रकार के परमेष्ठी भगवन्त पाप कर्म से दूर है, ऐसे परमेष्ठी परमात्मा को वैसे स्वरूप में देखते हुए, समझते हुए, पहचानते हुए साधक स्वयं भी वैसा ही बनने की भावना से नमस्कारादि साधना करता जाय वही सर्वोच्च कक्षा की सर्वश्रेष्ठ साधना बनती है । पापकर्म नाशक बनती है । साधक निर्जरा करता है और पाप कर्मों के क्षयरूप निर्जरा का प्रमाण इसी धारा में प्रति क्षण या प्रति दिन बढते ही जाय तो एक दिन ऐसा आएगा कि साधक भी साध्य तुल्य बन जायेगा । अतः पांचों परमेष्ठियों की कक्षा सर्वोच्च कक्षा की होने के कारण उनको किया जाता नमस्कार साधक के सब पाप कर्मों को धोने में सहायक होता है ।

"एसो पंच नमुक्कारो" का अर्थ—

नवकार महामंत्र में नमस्करणीय परमेष्ठी पांच है । एक-एक पद में एक-एक परमेष्ठी का पदवाची नाम रखकर नमस्कार किया गया है । और छट्ठे पद में एक साथ पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार किया गया है । 'एसो पंच नमुक्कारो' इस छट्ठे पद में 'एसो' शब्द किसके साथ जुड़कर अर्थ स्पष्ट करता है ? 'पंच' के साथ या 'नमुक्कारों' के साथ ? 'एसो पंच' इस तरह जोड़कर अर्थ करने पर 'इन पांच' की अर्थ ध्वनि निकलती है कि 'एसो नमुक्कारो' इस तरह बनाने पर 'यह नमस्कार' ऐसी अर्थ ध्वनि निकलती है । अतः अर्थ संयोजना करते समय किसके साथ अर्थ बैठाएं ? आगे सातवां पद— 'सव्व पावप्पणासणो' में सब पाप कर्मों का नाश होता है ऐसा अर्थ स्पष्ट किया है । लेकिन छट्ठा पद कारक रूप में साथ में जुड़ा हुआ है । अतः सब पाप कर्मों का नाश-क्षय किससे होता है ? पंच परमेष्ठी भगवन्तों से ? या उनको किये हुए नमस्कार से ? या मात्र नमस्कार से ? इस तरह तीन विकल्प उपस्थित होते हैं ।

(1) पहले में पांच परमेष्ठी सब पाप कर्मों का नाश करते हैं ।

(2) दूसरे में इन पांचों परमेष्ठियों को किया हुआ नमस्कार सब पाप कर्मों का नाश (क्षय) करता है ।

(3) तीसरे विकल्प में मात्र नमस्कार से सब पापों का नाश होता है ।

उपरोक्त तीनों विकल्पों में से सत्य खोजने की कोशिश करें । पहले विकल्प में—ये पांच परमेष्ठी भगवन्त सब पाप कर्मों का नाश करते हैं, इसका निरसन तो वैसे भी आगे कर चुके हैं । इसलिए अरिहंतादि पंच परमेष्ठी किसी भी जीव के पाप कर्मों आदि का नाश-क्षय नहीं करते हैं । जीवों को स्वयं को ही करना है । तीसरे विकल्प की तो बात बैठती ही नहीं है । मात्र नमस्कार सब पापों को नष्ट कर दे । यह कैसे सम्भव हो सकता है ? नमस्कार सैंकड़ों किस्म के होते हैं । अतः ऐसे सैंकड़ों किस्म के किसी भी प्रकार के कैसे भी नमस्कारों से पाप कर्मों की निर्जरा कैसे होगी ?

नमस्कार कर्ता के द्वारा की जाती हुई क्रिया है तथा यह क्रिया किसी न किसी के सन्मुख ही होती है । बिना नमस्करणीय के नमस्कार किसको करें ? या तो नमस्करणीय परमेष्ठी प्रत्यक्षरुप से सन्मुख हो या फिर परोक्ष रूप में नाम, स्थापना-आकृति विशेष से मानस पटल पर दृश्यमान हो । जिससे उनको सन्मुख रखकर नमस्कार की क्रिया की जा सके । इसलिए नमस्करणीय के बिना नमस्कार संभव नहीं है । अत: तीसरे विकल्प में मात्र नमस्कार से कर्मों की निर्जरा संभव नहीं ही है । न मालुम किसको नमस्कार करते हैं ? या कैसे नमस्कार करते होंगे ? कोई पता नहीं लग सकता है ।

दूसरा विकल्प ज्यादा श्रेष्ठतर कक्षा का है । इसमें अरिहंतादि पांच परमेष्ठी है । उन सबको नमस्कार किया जाय वही पापनाशक होता है । अत: नमस्करणीय सर्वथा पापकर्म रहित सर्वोच्च कक्षा के हैं तथा उन्हें सन्मुख रखकर वैसा बनने के भाव से विशुद्ध कक्षा का नमस्कार किया जाय तो पाप कर्मों की निर्जरा निश्चित ही होती है । यह नि:संदेह है । अत: 'एसो पंच नमुक्कारो' छट्ठे पद का सही अर्थ यही है कि इन पांचों परमेष्ठियों को किया हुआ नमस्कार सब पाप कर्मों का नाश करता है ।

नमस्कार कितने ? पांच या एक ?—

'एसो पंच नमुक्कारों' पद में संख्या की दृष्टि से दोनों तरफ विचारणा करनी चाहिए । 'पंच' संख्यावाची शब्द है । इसको यदि 'एसो' के साथ जोड़कर बोलने पर 'एसो पंच' से 'पांच परमेष्ठी भगवन्तों' का अर्थ स्पष्ट होता है तथा 'नमुक्कारो' शब्द के साथ जोड़ने पर 'पांच नमस्कार' ऐसा अर्थ बैठता है । अत: संख्यावाची 'पंच' किस तरफ जोड़ना सही है ? यद्यपि पूरे छट्ठे पद का सम्पूर्ण अर्थ स्पष्ट ही है कि इन (ऐसे) अरिहंतादि पांच परमेष्ठियों को किया हुआ नमस्कार (सातवां पद साथ में जोड़ने पर) सब पाप कर्मों का नाश करने वाला हो ।

यहां पर छट्ठे पद में नमस्कार की संख्या और पंच परमेष्ठी की संख्या के साथ द्विक संयोगी चार भंग होते हैं ।

1. परमेष्ठी पांच है और उनको नमस्कार भी पांच किये जाय ।
2. परमेष्ठी पांच है और उनको नमस्कार एक किया जाय ।
3. एक परमेष्ठी को एक नमस्कार किया जाय और
4. एक परमेष्ठी को पांच नमस्कार किये जाय ।

पहले भंग के पक्ष में अरिहंतादि पांच परमेष्ठी भगवन्तों को किये हुए पांचों नमस्कार सर्व पापनाशक होते हैं ।

दूसरे भंग के पक्ष में परमेष्ठी अरिहंतादि पांचों वे ही है और साधक ने सामूहिक रूप से उनको (परिपिंडित रूप से) एक नमस्कार किया है । जैसा कि— 'नमोऽर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्य:' के सूत्र में सूत्रकार महर्षि ने किया है । इसमें पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के नाम एक साथ लिये हैं और उन सबको सामूहिक रूप से 1 नमस्कार किया है । इसमें साधक के नमस्कार के भाव की एकाग्रता महत्वपूर्ण है ।

तीसरे भंग में परमेष्ठी भगवन्त एक ही लिये गये हैं और उन्हें एक नमस्कार किया गया है । एक परमेष्ठी की संख्या का चुनाव साधक दो तरीकों से कर सकता है—एक तो सीधे ही पांचों परमेष्ठी भगवन्तों में से किसी भी एक परमेष्ठी भगवन्त को नमस्कार करना । देवतत्त्व में दो हैं, या तो अरिहंत का चयन करे या सिद्ध भगवन्त का । दूसरे विकल्प में तीन गुरु भगवन्तों में से किसी भी एक गुरु भगवन्त को नमस्कार करे । या देव और गुरु दोनों में से किसी भी एक का चयन करे और अपने पाप कर्मों के प्रमाण से नमस्कार करे...यह भी उचित है ।

या फिर दूसरा तरीका यह भी है कि ॐकार रूप में एकीभूत हुए पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को एक साथ एक रूप मानकर नमस्कार कर सकता है । "ॐ नम:" या "ॐकाराय नमो नम:" इस तरह दोनों मंत्र पद प्रचलित है । इस मंत्र में तीसरे भंग की विवक्षा है । लेकिन ऐसा करने वाले साधक को काफी ज्यादा एकाग्रचित्त वाला बनना पड़ता है । जैसे एक ढेला फैंककर कोई पेड़ पर से 5 फल एक साथ गिराना चाहता है, वैसे ही पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के आद्याक्षरों को लेकर एक रूप बनाकर ॐकार का एक उच्चार करता है । ऐसे 1 अक्षर का उच्चारण करते समय साधक को पांचों परमेष्ठी भगवन्तों का बराबर एक साथ स्मरण करना होगा । इस तरह एक में 5 का स्मरण और उन्हें नमस्कार करना है ।

चौथे भंग में...परमेष्ठी को तो एक की संख्या में ही समाविष्ट करके रखा है । ॐकार के रूप में पांचो परमेष्ठी को एक रूप में एक अक्षर मात्र में सम्मिलित रूप से रखे हैं । और उनको साधक नमस्कार 5 करता है । 5 भी करे या 108 भी करे या 1008 भी करे । "ॐ नम:" इस संक्षिप्त मत्र की सैंकड़ों माला साधक गिन सकता है ।

इस तरह पांचों परमेष्ठियों को नमस्कार करना है । साधक करता भी है । इसमें नमस्कार की गुणवत्ता साधक को सुधारनी है । दूसरे पक्ष में पंच परमेष्ठी भगवन्तों की गुणवत्ता सुधारने का तो कोई सवाल ही खड़ा नहीं होता है, साधक के हाथ में कुछ भी नहीं है । पंच परमेष्ठी भगवन्तों

की गुणवत्ता उनके गुणात्मक जीवन से ही द्योतित होती है । स्पष्ट प्रतीत होती है । यदि वे महापुरुष उस कक्षा के गुणवान नहीं बने होते तो परमेष्ठी की गणना में आते ही नहीं । अपने आप ही टल जाते हैं । अत: साधक को परमेष्ठी की गुणवत्ता के विषय में बिल्कुल निश्चिंत रहना है । जी हां एक बात जरुर है कि...साधक को मिथ्यात्व से ग्रस्त होकर पंच परमेष्ठियों के स्थान पर किसी भी रागी-द्वेषी—जैसे देव-देवीयों आदि का संयोजन नहीं करना है, यदि कोई साधक कर लेता है तो वह बड़ी भारी भूल करता है । जिन रागी-द्वेषी-देवी-देवताओं के खुद के ही पाप कर्म नहीं धुले हैं ऐसे उनको नमस्कार करने से साधक के भी पाप कर्मों का क्षय कैसे होगा ? और वैसी भावना भी कहां से बनेगी ? यदि कोई साधक वैसी भावना अपने आप बना भी लेता है तो...भी सामने परमेष्ठी के रूप में जिनका चयन हो ही नहीं सकता है, ऐसे रागी-द्वेषी देवी-देवताओं का चयन कर उन्हें ही पंच परमेष्ठी मान लेता है, और नमस्कार भी करोड़ों की संख्या में करता रहता है । परिणाम स्वरूप हजारों साल के पश्चात् भी जब साधक के पाप कर्मों की स्थिति ठीक वैसी ही बनी रहती है तब जाकर सिर पीटकर रोने का अवसर आता है । सारी मेहनत पानी में गई ऐसा एहसास उसे होता है ।

अन्त में जाकर आखिर पाप कर्म रहित पंच परमेष्ठियों का सही सम्यग् चयन करना पड़ेगा और पुन: अपनी नमस्कार की गुणवत्ता को सुधारकर सर्वोच्च कक्षा की बनानी पड़ेगी । यदि साधक की तरफ से नमस्कार की गुणवत्ता, जो कि उसके पक्ष में है उसे सुधारकर सर्वोच्च कक्षा की बनानी पड़ेगी । यदि साधक की तरफ से नमस्कार की गुणवत्ता, जो कि उसके पक्ष में है उसे सुधारकर सर्वोच्च कक्षा की श्रेष्ठ कर दे... तब तो फिर एक परमेष्ठी को नमस्कार करने मात्र से भी बेड़ा पार हो सकता है । सूत्रकार महर्षि स्पष्ट कहते हैं कि—

इक्कोऽवि नमुक्कारो जिणवर वसहस्स वद्धमाणस्स ।

संसार सागराओ तारेड़ नरं व नारिं वा ॥

जिनेश्वर भगवन्तों में वृषभ समान सर्वश्रेष्ठ ऐसे वर्धमान स्वामी (भगवान महावीर स्वामी) को मात्र 1 नमस्कार करने वाला साधक चाहे स्त्री हो या पुरुष हो इस संसार सागर से तैरकर पार उतर जाता है । इसमें देखिए स्पष्ट है कि... नमस्कार योग्य नमस्करणीय परमेष्ठी भगवन्त महावीर स्वामी सर्वथा सब पाप कर्मों से रहित सर्वोच्च कक्षा के श्रेष्ठ परमात्मा है । इसीलिए 'जिणवर वसहस्स' विशेषण जोड़कर इस भाव को स्पष्ट किया है । परमेष्ठी एक ही है लेकिन सर्वोच्च कक्षा के अन्तिम श्रेणी के है । अत: नर-नारी जैसे साधक को भी अपनी योग्यता सर्वोच्च कक्षा की बनानी ही चाहिये—जिससे नमस्कार की गुणवत्ता सर्वश्रेष्ठ कक्षा की हो सके । नमस्करणीय और नमस्कार दोनों ही सर्वोच्च कक्षा के बन जाय फिर तो पूछना ही क्या ? परिणाम सामने तैयार ही है । संसार समुद्र से पार उतरना । बस, बेड़ा पार ।

नमस्कार की गुणवत्ता

द्विक संयोगी 4 भेदों में—

1. परमेष्ठी की गुणवत्ता उत्कृष्ट कक्षा की है, और नमस्कार निकृष्ट कक्षा का हो ।
2. परमेष्ठी की गुणवत्ता उत्कृष्ट कक्षा की है, और नमस्कार भी उत्कृष्ट कक्षा का हो ।
3. परमेष्ठी की कक्षा नि:कृष्ट कक्षा की हैं, और नमस्कार नि:कष्ट कक्षा का हो ।
4. परमेष्ठी की गुणवत्ता निकृष्ट कक्षा की है, और नमस्कार भी नि:कृष्ट कक्षा का हो ।

उपरोक्त चारों भंगों को समझना सरल है—पंच परमेष्ठी भगवन्तों की गुणवत्ता उत्कृष्ट (चरम) कक्षा की है । लेकिन अफसोस इस बात का है कि...साधक की तरफ से किया जाता जो नमस्कार है उसकी गुणवत्ता नि:कृष्ट कक्षा की है । बिल्कुल हल्की कक्षा के नमस्कार वह करता है । अत: साधक कुछ भी फल नहीं पाता है । जैसे—मीठे आम के वृक्ष के नीचे कोई बावना जाकर मात्र धूल फेंककर आ जाय, तो इससे उसे क्या प्राप्त होगा ? वैसी स्थिति नि:कृष्ट कक्षा के नमस्कार करने वालों की है ।

दूसरा भंग सर्वोच्च कक्षा का है । सामने पंच परमेष्ठी भी सर्वोत्कृष्ट चरम कक्षा के हैं और साधक के द्वारा किये जाते नमस्कार भी उत्कृष्ट कक्षा के हैं अत: साधक इच्छित मनोवांछित फल सर्व पाप कर्मों के नाश का फल प्राप्त कर लेता है । संसार सागर पार उतर जाता है ।

तीसरे भंग में साधक ने अपनी तरफ से नमस्कार करने की गुणवत्ता उत्कृष्ट कक्षा की रखी है लेकिन अफसोस इस बात का है कि...सामने पंच परमेष्ठी भगवन्तों का चयन करने में बड़ी भारी भूल कर ली है । मिथ्यात्व के गाढ संस्कारवश रागी-द्वेषी, देवी-देवताओं को ही परमेष्ठी के रूप में मान बैठा है । और नमस्कारादि करता ही रहा । जैसे कोई नकली चमकते हुए कांच के टुकड़े को ही असली हीरा मानकर हजारों साल तक प्राणों से भी ज्यादा जतन करता ही जाय, संभालता ही जाय और अन्त में जिस दिन पता चलेगा उस दिन क्या होगा ? उसका तो वही जाने ।

चौथे भेद वाले जीवों की तो बात ही क्या करनी....ऐसे जीवों ने परमेष्ठी के रूप में बिल्कुल निःकृष्ट कक्षा के रागी-द्वेषी देव देवीयों का चयन कर रखा है और उन्हें नमस्कारादि भी दुःख संकट निवारक, सुख प्राप्ति की सामान्य वृत्ति से करता ही जा रहा है । न तो पाप-कर्म धोकर आत्मशुद्धि करने का लक्ष्य है, तथा न ही नमस्कारादि की गुणवत्ता को सुधारकर उत्कृष्ट कक्षा की करने की भावना है । आज देवी-देवताओं के उनके चित्रादि रास्ते पर लाकर लोग अपनी मानसिक विकृतियों के अनुसार नाच-गान करते हुए आरती उतारकर संतोष मान लेते हैं । ऐसी आरतीयों में मात्र दुःख-दर्द-संकट टालने और सुख संपत्ति मांगने की ही याचनारूप प्रार्थना कर लेते हैं । बाकी-नाच-गान, प्रभावना और ईनामों की भरमार रहती है । उसमें भी मन रागादि की वृत्तियों से भरा रहता है । अब आपको ही सोचना चाहिए कि..... चौथे भंग की ऐसी वृत्तिवाले जीवों का कल्याण कैसे होगा ? दूसरी तरफ संख्या की गणना करने पर ख्याल आएगा कि.... चार में से किस भंग की वृत्तिवालों की संख्या कितनी है ? प्रतिशत् मात्रा में भी ढुंढने का विचार करने पर स्पष्ट ख्याल आएगा । स्पष्ट लगेगा कि चौथे भंग की वृत्तिवाले जीवों की संख्या बहुत बडी है । जबकि दूसरे भंग की वृत्तिवाले जीवों की संख्या बिल्कुल अल्प मात्र होगी । स्वाभाविक ही है कि..... असली कोहिनूर रत्नों की संख्या मात्र गिनती की होगी । जबकि कांच के टुकडों के चमकने वाले नकली टुकडों की संख्या बहुत बडी होगी । लेकिन किसका कल्याण होगा ? विचार करिए ।

नमस्कार की गुणवत्ता और संख्या

नमस्कार करने वाले तो अनेक हैं । और शायद संख्या की दृष्टि से नमस्कार की संख्या भी बहुत बडी होगी, लेकिन प्रश्न गुणवत्ता का बडा है ।

1. नमस्कार की संख्या बहुत ज्यादा है लेकिन गुणवत्ता कम है ।
2. नमस्कार की संख्या बहुत कम है, और गुणवत्ता बहुत ज्यादा है ।।
3. नमस्कार की गुणवत्ता बहुत ज्यादा है, और संख्या भी बहुत ज्यादा है ।
4. नमस्कार की गुणवत्ता बहुत कम है और संख्या भी बहुत कम है ।

प्रथम भंग की वृत्ति वाले जीवों के उदाहरण संसार में मौजूद है । रोज नवकार महामंत्र का या अन्य किसी भी मंत्रों का स्मरण-जापादि करते हैं, वह भी काफी बडी संख्या में करते हैं । लेकिन एकाग्रता, दत्तचित्तादि की कमी के कारण गुणवत्ता का प्रमाण नगण्य रहता है ।

दूसरे भंग में साधक ने जापादि में गुणवत्ता का प्रमाण बढ़ाया, भाव भी काफी अच्छे बढाए, एकाग्रता काफी अच्छी बढाई तो नमस्कार की, जापादि की संख्या बिल्कुल घट गई । फिर भी सफलता के किनारे जरूर पहुंचा ।

तीसरे भंग की वृत्तिवाले साधक सर्वोत्कृष्ट कक्षा का है जिसने जापादि में नमस्कारादि की संख्या भी काफी अच्छी बढाई और साथ-साथ गुणवत्ता का प्रमाण भी काफी अच्छा बढाया है । भावों के ऊंचे चढने से ही गुणवत्ता का प्रमाण बढ़ता है । एकाग्रता बढती है । परिणाम स्वरूप निर्जरा का प्रमाण भी बढता है ।

चौथे भंग के लोग साधक बनने की कक्षा में ही नहीं है । उन्होंने अपने जीवन में न तो गुणवत्ता बढाई और न ही जाप-नमस्कारादि की संख्या बढाई । वह दोनों तरफ से वंचित रहा । जीवन में कुछ भी प्राप्त नहीं कर सका । अतः पहले नमस्कार करने के लायक स्वयं को बनना चाहिए । तदनन्तर नमस्कार कराने के लिये बनना चाहिए । सभी जीव नमस्कार कराने योग्य नहीं बन सकता है लेकिन नमस्कार करने के योग्य बनना हमारे हाथ में है । जीव वैसा बनने योग्य सतत प्रयत्नशील रहे.... प्रबल पुरूषार्थ करने पर बन सकता है । संभावना पूरी है । परन्तु पुरूषार्थ के अभाव में संभावना भी घटती जाती है ।

इस तरह प्रत्येक साधक को नवकार की साधना के क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए सर्व प्रथम अपनी योग्यता निर्माण करनी अत्यन्त आवश्यक है । प्रस्तुत लेख का भली भांति चिन्तन-मनन करके साधना के अनेक पहलुओं का पूरी तरह गहरा विचार करना चाहिए । चतुर्भंगीयों की विचारणा करनी चाहिए । तथा इनमें सर्वश्रेष्ठ जो हो उस कक्षा के बनने की दिशा में आगे बढना चाहिए । परिणाम स्वरूप साधना भी श्रेष्ठ कक्षा की हो और पाप कर्मों का क्षय करके साधक स्वयं ऐसी कक्षा पर पहुंचे.... जहाँ जगत् के लिए वह स्वयं आदर्श साध्यरूप बन सके । हमारे जैसे लाखों जीव साधना तो करते ही हैं परन्तु साथ ही साथ साधना उत्कृष्ट कक्षा की कैसे हो इसके लिए सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि.... प्रस्तुत लेख साधकों की साधना को सर्वोच्च कक्षा की बनाने में सहायक एवं मार्गदर्शक बनेगा ।

श्री नमस्कार महामंत्र का— "गणितानुयोग"

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

विश्व के समस्त धर्मों में जैन धर्म एक प्राचीनतम धर्म है । इसकी प्राचीनता के सैंकड़ों प्रमाण प्रसिद्ध है । इसके अपने सिद्धान्त और विधान होने से यह विश्व का एक स्वतंत्र धर्म है । न किसी की शाखा है और न ही किसी का भेद है । यह एक स्वतंत्र अलग ही धर्म है और अपनी स्वतंत्र विचारधारा पर आधारित है । जैन धर्म जिन जिनेश्वर भगवान द्वारा उपदिष्ट तत्त्व को कहते हैं । उसका आराधक उपासक एवं अनुयायि जैन कहलाता है ।

जैन धर्म के सारभूत महामंत्र नमस्कार (नवकार) की प्राचीनता अनन्त वर्षों पुरानी है । ठीक ही कहा है कि—

आगे चौबीशी हुई अनन्ती, वली रे होशे वार अनन्ती ।
नवकार तणी कोई आदि न जाणे, एम भाखे अरिहंत ।।

—भूतकाल में 24-24 तीर्थंकर भगवन्तों की अनन्त चौबीशियां हुई है, और भावि में भी अनन्त चौबीशी होगी । इसलिए "नमो अरिहंताणं" का जो प्रथम पद नवकार में है इससे अरिहंतों को नमस्कार किया गया है । ऐसे नवकार महामंत्र की आदि-प्रारम्भ कोई नहीं जानता है ऐसा अरिहन्त भगवान कहते हैं ।

नामकरण—

सूत्रों के नामकरण की दो पद्धति जैन शासन में प्रचलित है । (1) सूत्र के आदि शब्द से प्रचलित परम्परा आद्याक्षरी नामकरण पद्धति है । इसके आधार पर "नमोकार मंत्र" ऐसा नाम पड़ा है । नमोकार मंत्र अर्धमागधी-प्राकृत भाषा में है । प्राकृत भाषा के व्याकरणानुसार 'न' का 'ण' और 'न' दोनों ही विकल्प से होते हैं । दोनों ही सही है । 'नमोकार मंत्र' कहें या 'णमोकार मंत्र' कहें दोनों ही नाम सही है । (2) दूसरी पद्धति है विषयानुरूप नामकरण की । इस पद्धति से कई सूत्रों के नाम भिन्न-भिन्न है । नवकार का नाम— "पंच परमेष्ठि नमस्कार सूत्र और आगम में है— "श्री पंच मंगल महाश्रुत स्कंध" । इसी नाम से उपधान तप होते हैं । महानिशिथ छेदसूत्र आगम में यह नाम प्रचलित है । नवकार नाम व्यवहार में प्रचलित हो गया है । नमस्कार यह संस्कृत शब्द है इसी का प्राकृत नाम नवकार बनता है । अत: संक्षेप में नवकार मंत्र यह नाम प्रचलित हो गया है ।

महामंत्र कहने का हेतु—

अन्य किसी को महामंत्र न कहते हुए नवकार को महामंत्र या मंत्र शिरोमणि या मंत्राधिराज कहा है । इसके लिए अनेक कारण प्रचलित है । एक कारण तो यह भी है कि—इस मंत्र में किसी भी व्यक्ति, भगवान या गुरु का नाम निर्देश भी नहीं है, फिर भी इस मंत्र के पदों से अनन्त अरिहन्त, सिद्धादि परमेष्ठि भगवन्तों को नमस्कार होता है । सभी धर्म के प्रमुख मंत्रों में उन उन भगवानों के नाम का मंत्रपद है । जबकि नवकार में 'नमो महावीराणं" या "नमो आदीश्वराणं" ऐसा किसी भगवान का नामवाची पद नहीं बनाया है । परन्तु 'नमो अरिहन्ताणं' ये शब्द प्रथम पद में रखे हैं । आदीश्वर या महावीर भगवान के नाम का मंत्र पद देने से सिर्फ आदीश्वर या महावीर स्वामी भगवान को ही नमस्कार होता, अन्य को नहीं होता, अत: व्यक्तिवाची नाम न देकर गुणवाची नाम देकर मंत्र पद बनाए गए हैं । व्यक्ति की अपेक्षा पद बड़ा है, गुण बड़ा है । और यह व्यवस्था नवकार महामंत्र के सिवाय अन्यत्र कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती है, अत: नवकार को महामंत्र कहना उचित है । दूसरा कारण यह भी है कि नवकार में जगत् के महानतम् सर्वश्रेष्ठ सर्वोच्च पांच परमेष्ठि भगवन्तों को नमस्कार किया गया है । जगत् में जितने भी सर्वोच्च कक्षा के नमस्करणीय महापुरुष थे उतने सब नवकार मंत्र में आ गए हैं । वे पांच ही है । छ: नहीं है । उन्हें ही नमस्कार किया गया है । यह बात "एसो पंच नमुक्कारो" के छट्ठे पद से व्यक्त की गई है । इन पांच के अतिरिक्त कोई ऐसा सर्वश्रेष्ठ पद नहीं है, अत: नवकार में छट्ठा पद किसी के मंत्र का नहीं लिया गया है । इस तरह भी यह महामंत्र है ।

इस महामंत्र की एक विशेषता यह भी है कि इसमें 'नमो' पद पहले आता है । जबकि प्राय: सैंकड़ों मंत्रों में नमो पद मंत्र के अन्त में दिया जाता है । इस नवकार महामंत्र में पांचों परमेष्ठि भगवन्तों के नाम के आगे पहले 'नमो' पद दिया गया है । यह नमने की आज्ञा का सूचक पद है । अत: 'नमो' पद बार-बार प्रयुक्त किया गया है ।

गणित विभाग —

श्री नवकार महामंत्र के अन्तर्गत गणित की दृष्टि से भी शास्त्रों में काफी विचार किया गया है । यह भी एक प्रकार का अनुयोग है । चार प्रसिद्ध अनुयोगों में इसे गणितानुयोग कहा गया है । गणित का आधार संख्या के ऊपर है । नवकार महामंत्र में गणितीय संख्या का विचार किया गया है । 'समरो मंत्र भलो' के छन्द में संख्या की तुलना करके फल भी बताया गया है—

समरो मंत्र भलो नवकार, ए छे चौद पूरव नो सार ।
एना महिमा नो नहि पार, एनो अर्थ अनन्त अपार ।।1 ।।

अडसठ अक्षर एना जाणो, अडसठ तीरथ सार ।
आठ संपदा थी परमाणो, अडसिद्धि दातार ।।4 ।।

नवपद एना नवनिधि आपे, भवो भवना दु:ख कापे ।
वीर वचनथी हृदये स्थापे, परमातम पद आपे ।।5 ।।

—इस छन्द में संख्या का सूचन करके उनका फल बताया है । इसे 14 पूर्व का सार बताया है । जैन धर्म में संपूर्ण रूप से श्रुतज्ञान के अन्तिम खजाने के रूप में या महासागर के रूप में 14 पूर्वों को बताया है । उसके सार रूप नवकार महामंत्र को कहा गया है । नवकार मंत्र के 9 पदों के कुल अक्षर 68 है । इन अंकों को परस्पर जोड़ने पर 68 – 6+8=14 की संख्या फलित होती है । जिससे चौदह पूर्वों का निर्देश होता है । इसलिए नवकार महामंत्र के 9 पदों के 68 अक्षर 14 पूर्व रूप श्रुत सागर का सार गर्भित मंत्र है । इस महामंत्र के 9 पद की आराधना नवनिधि (चक्रवर्ती के नौ निधान) प्राप्त कराती हैं । जिससे जनम-जनम के दु:ख संकट टलते हैं । आठ संपदा से अष्ट सिद्धियां प्राप्त होती है ।

नवकार महामंत्र के 68 अक्षर का जाप 68 तीर्थों की यात्रा के बराबर है । वर्तमान के 45 आगमों का सार भी इसे ही कहा जाता है । नवकार के नौ पदों की सूचक क्रम संख्या— 1+2+3+4+5+6+7+8+9 इसकी परस्पर जोड़ 45 आती है । यह वर्तमान के प्रसिद्ध 45 आगमों की सूचित संख्या है । और इस 45 की संख्या के दोनों अंकों की परस्पर जोड़ करने पर 4+5=9 फिर नौ पद की संख्या ही शेष आएगी ।

नौ के अंक का शाश्वत चमत्कार—

गणित शास्त्र के क्षेत्र में 9 की संख्या को अजेय शाश्वत संख्या बताई है । यह विजयी नित्य अंक है । गणित के ऐसे कई प्रकार के चमत्कार है जिनमें 9 का अंक ही शेष रहता है । उदाहरणार्थ (1) किसी भी छोटी या बड़ी संख्या का 9 के अंक के साथ गुणाकार करके आए हुए गुणनफल की संख्या के अंकों को परस्पर जोड़ने पर हमेशा जोड़ का अन्तिम शेष अंक 9 का ही आएगा ।

(I) 8756 x 9 = 78804 (II) 98654 x 9 = 888786

7 + 8 + 8 + 0 + 4 =27, 2 +7 = 9 8 + 8 + 8 + 7 + 8 + 6 + = 45, 4 + 5 = 9

(II) नियम—2 किसी भी छोटी या बड़ी संख्या के अंकों की परस्पर जोड़ लगाकर उस आई हुई संख्या को वापिस मूल संख्या में से घटाई जाय और घटाने पर आई हुई संख्या के अंकों की परस्पर पुन: जोड़ लगाई जाय तो अन्तिम अंक शेष 9 ही आएगा । हमेशा 9 ही शेष आएगा ।

(I) 9 + 8 + 7 + 5 = 29
– 29
9 + 8 + 4 + 6 = 27

(II) 8 + 7 + 4 + 5 + 6 = 30
– 30
8 + 7 + 4 + 2 + 6 = 2 + 7 = 9

इस तरह दोनों नियमों के आधार पर हमेशा 9 का अंक ही शेष रहता है । गणित शास्त्र के क्षेत्र में इसे चमत्कार माना है । अत: नवकार महामंत्र के 9 पद शाश्वत है । नौं पदों का यह महामंत्र शाश्वत भाव से कई चमत्कारों से भरा पड़ा है

नियम—3 नौ के अंक (नवाङ्क) का पहाड़ा गिनते हुए आगे बढ़ाते ही जाइये और पहाड़े की संख्या को प्रत्येक बार 9 से गुणाकार करते ही जाइये, अन्त में गुणनफल की आई हुई संख्या के अंकों की परस्पर जोड़ लगाने पर अन्तिम एकाङ्की संख्या 9 ही शेष आएगी । चाहे आप तीन अंक, चार अंक की कितनी भी बड़ी संख्या को 9 से गुणाकार करके देखेंगे आई हुई संख्या के अंकों को परस्पर जोड़ने से 9 ही आएगा । यह नियम 9 के सिवाय अन्य किसी को लागू नहीं होता है । उदाहरणार्थ—

9 x 9 = 81 x 9 = 8 + 1 + 9 = 1 + 8 = 9
15 x 9 = 1 + 3 + 5 = 9
24 x 9 = 2 + 1 + 6 = 9
29 x 9 = 2 + 6 + 1 = 9
31 x 9 = 2 + 7 + 9 = 1 + 8 = 9
36 x 9 = 3 + 2 + 4 = 9
39 x 9 + 2 + 5 + 1 = 9
43 x 9 = 3 + 8 + 7 = 1 + 8 = 9
51 x 9 = 459 = 1 + 8 = 9

नौ पदों की संख्या—श्री नवकार महामंत्र के नौ पदों में अक्षरों की संख्या इस प्रकार है ।

पद क्रम		पद के अक्षरों की संख्या		
1.	नमो अरिहंताणं	—	7	प्रथम गाथा,
2.	नमो सिद्धाणं	—	5	मंत्र गाथा,
3.	नमो आयरियाणं	—	7	कुल 5 पद अक्षर संख्या = 35
4.	नमो उवज्झायाणं	—	7	
5.	नमो लोए सव्व साहूणं	—	9	
6.	एसो पंच नमुक्कारो	—	8	द्वितीय चूलिका
7.	सव्व पावप्पणासणो	—	8	गाथा,
8.	मंगलाणं च सव्वेसिं	—	8	कुल 4 पद की अक्षर
9.	पढमं हवइ मंगलं	—	9	
			68	संख्या 33 = 35 + 33 = 68

68 की संख्या के अंकों की परस्पर जोड़ 6 + 8 = 14

ये पुन: 14 राजलोक में व्याप्त, 14 पूर्वों के सारभूत मंत्र रूप 68 अक्षर वाले 9 पदों का सार है । ऐसे नवपदमय श्री नवकार महामंत्र का नित्य स्मरण जाप-पाठ करना चाहिए । ये रहस्य इस महामंत्र के गणित का है । ध्यान में मन की स्थिरता करने में काफी उपयोगी सिद्ध होती है ।

'नमो' के कुल अक्षर —

नवकार महामंत्र में 'नमो' शब्द का प्रयोग 5 बार हुआ है । जिसके कुल अक्षर 5 x 2 = 10 है । छट्ठे 'एसो पंच नमुक्कारो' पद में प्रयुक्त 'नमुक्कारो' के कुल 4 अक्षर है । इस तरह नमस्कार भाव सूचक 6 बार प्रयुक्त नमो सूचक पदों की कुल अक्षर संख्या 14 (10 + 4 = 14) होती है । इस 14 की संख्या के अंकों की परस्पर जोड़ लगाने पर 1 + 4 = 5 आता है । यह 5 की संख्या पंच परमेष्ठि को सूचित करती है । अत: पंच परमेष्ठि महापुरुष रूप (1) अरिहंत (2) सिद्ध (3) आचार्य (4) उपाध्याय (5) साधु को ही इन 14 प्रकार से नमस्कार करना चाहिए । नमो भाव की 14 अंक की संख्या नमस्कार के 14 प्रकार की तरफ ईशारा करती है । 14 प्रकार से नमस्कार होता है । यह 14 की संख्या 14 गुण स्थान का सूचन करती है । इन 14 गुण स्थानों पर क्रमश: आगे बढने के लिए एवं कर्मक्षय करने के लिए 'नमो' भाव की मुख्य आवश्यकता है ।

यह महामंत्र पाप नाश के उद्देश्य से गिना जाता है । नवकार के सातवें पद 'सव्व पावप्पणासणो' में सर्व पाप के नाश की प्रक्रिया बताई गई है । सैंकड़ों प्रकार के फलों में सर्व पाप का नाश, सर्व कर्म का क्षय यही सर्वश्रेष्ठ फल है । अन्य फल गौण है । अत: यह सातवां पद लक्ष्य या साध्य का उद्देश्यपूर्ण फल गर्भित पद बताया है । आराधक साधक का नवकार गिनने के पीछे या सम्पूर्ण धर्म आराधना के पीछे पाप नाश या कर्म क्षय का ही एक मात्र लक्ष्य रहना चाहिए । यही उचित है ।

यह विषय बड़ा गहन है, रहस्यपूर्ण है । एक विशाल ग्रन्थ का विषय है । यहां अत्यन्त संक्षेप में मात्र दिशा निर्देश किया है । आगे फिर कभी यह भाव साकार होगा तब देखेंगे ।

क्या उत्क्रान्तिवाद सही है या गलत ? क्या आत्मिक उत्थान-विकास संभव है ? निगोद की प्रथमावस्था से मोक्ष की चरमावस्था पर्यन्त आत्मिक विकास कैसे होता है ? विकास के सोपान कौनसे तथा कैसे हैं ? जानने के लिए —

विद्वान लेखक और प्रवक्ता — पू. पंन्यास प्रवर श्री अरुणविजयजी महाराज द्वारा सरल-सुगम हिन्दी भाषा में सैंकड़ों चित्रों के साथ ३ भागों में प्रकट हुई पुस्तक

"आध्यात्मिक विकास यात्रा" – भाग १, २, ३

सार गर्भित गुणस्थान के रंगीन चित्र युक्त मुखपृष्ठ, ऊंची क्लास की छपाई, डेमी साइज में ३ भागों का पूर्ण सेट खरीदीए । ध्यान पूर्व अपने घर में बसाइए..... पढीए..... और पढाइए । पढीए..... ज्ञान का अद्‌भूत खजाना..... आपके हाथों में आएगा..... जरूर खरीदीए.....

---

* **श्री पार्श्वनाथ स्तवनावली** * **श्री महावीर स्तवनावली**

भगवान की भक्ति कलियुग में संसार सागर तैरने का प्रबल आलंबन है । आप प्रतिदिन जिन मंदिर जाते हैं । दर्शन-पूजा करते हैं । चैत्यवंदन में प्रतिदिन विविध प्राचीन स्तवन बोलिए । वे भी १, २ ही नहीं ५, ७ भी बोलिए । तीर्थ यात्रार्थ जाते हैं छोटी सी उपरोक्त दोनों पुस्तिकाएं जरुर साथ ले जाइए । विविध महापुरुषों के प्राचीन १०८ स्तवन पार्श्व प्रभु के, तथा ८६ स्तवन महावीर प्रभु के ऐसा सुंदर संग्रह *मुनि श्री हेमन्तविजयजी महाराज* ने करके मुद्रण करवाया है । साथ ही चैत्यवंदन विधि आदि है ।

प्राप्ति — श्री हथूण्डी तीर्थ, बीजापुर, वाया - बाली, जिला पाली, स्टे. फालना, राजस्थान ३०६७०७

महावीर वाणी

उत्तराध्ययन सूत्रादि आगम शास्त्रों में से चुन चुन कर प्रभु के मूलभूत शब्दों के श्लोक-वाक्यादि का सरल हिन्दी के लघु पुस्तिका तैयार की गई है । वाचक वर्ग यात्रा प्रवास आदि में साथ में रखकर इस पोकेट बुक में से उपदेशात्मक हित शिक्षा के सोनेरी सुवाक्यों का वाचन कर सकता है । २ घडी की सामायिक में स्वाध्याय कर सकता है ।

नमस्कार से—सब पाप कर्मों का नाश कैसे होता है ?

— पन्यास मुनि अरुणविजय गणि म.

'एसो पंच नमुक्कारो' - 'सव्व पावप्पणासणो' इन अरिहंतादि पांच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने से (किये हुए नमस्कार से) सब पाप कर्मों का प्रकृष्ट नाश होता है । नवकार की चूलिका के इन दोनों पदों में गहन अर्थ भर दिया गया है । महामंत्र नवकार क्या है ? कैसा है ? क्यों पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करना चाहिए ? क्या फल प्राप्त होगा ? इत्यादि अनेक प्रश्नों का समाधान सिर्फ ये दो पद ही करा देने में सक्षम है । इन दोनों पदों में कार्य-कारण भाव संबंध भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है । लक्ष्य-प्रयोजन भी ये पद स्पष्ट कर रहे हैं । हेतु-उद्देश्य भी ये पद बता रहे हैं । साधक के लिए भावना, श्रद्धा, और उत्साह बढाने का कार्य भी ये पद कर रहे हैं । पंच परमेष्ठी भगवन्तों को क्यों, किसलिए नमस्कार करना ? और कैसा नमस्कार करना ? तथा परिणामलक्षी साधना को कैसे सबल-प्रबल बनाना ? इसका निर्देश भी इन्हीं पदों के अर्थ में छिपा हुआ है । नवकार की उपादेयता, प्रयोजन एवं जीव मात्र को चरम लक्ष्य कैसा रखना चाहिए ? इसका साफ-साफ उपदेश ये पद दे रहे हैं, तथा रत्नत्रयी की साधना के केन्द्र बिन्दु समान सम्यग् दर्शन-ज्ञान और चारित्र की सर्वोत्कृष्ट साधना इन पदों में छुपी हुई है । मोक्ष का स्वरूप 7वें पद ने स्पष्ट कर दिया है और उसे प्राप्त करने की रीत-तरिका भी इसी पद ने बताया है तथा कारण रूप में साधना को छट्ठे पद से स्पष्ट किया है । इस तरह मोक्ष और मोक्षमार्ग का उभय स्वरूप इन उभय पदों ने व्यक्त किया है ।

समस्त नवकार महामंत्र के सार रूप में इन दो पदों ने संक्षिप्त रूप से सारा सारांश कह दिया है । अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भगवन्तों को किया हुआ नवकार सब पाप कर्मों का नाश करने वाला हो । इस वाक्य रचना में यदि हम क्रिया में तीनों काल का संयोजन करके भिन्न-भिन्न वाक्य रचना करें तो भी दोनों पदों की कालवाची सार्थकता बहार आएगी ।

(1) भूतकाल में हमने पांचों परमेष्ठि भगवन्तों को-जो नमस्कार किये हों, जितने भी नमस्कार किये हो वे नमस्कार हमारे सब पाप कर्मों का नाश करें । (2) वर्तमान काल में आज हम अरिहंत आदि पांचों परमेष्ठि भगवन्तों को जितने भी नमस्कार कर रहे हैं वे प्रत्येक नमस्कार हमारे सब पाप कर्मों का प्रकृष्ट नाश करने वाले हो तथा (3) भविष्य काल में मैं जब-जब भी अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करुंगा या जितने भी नमस्कार करुंगा, उनसे पुन: सब पाप कर्मों का ही नाश हो । इस तरह तीनों कालवाची वाक्य रचना के अर्थ करने पर साध्य और हेतु में नवकार के अर्थ की, समानार्थक भूमिका रहेगी । यह मात्र हमारी ही नहीं...तीनों काल के समस्त जीवों की रहनी चाहिए । इसी के आधार पर नवकार की शाश्वतता समानार्थक या एकार्थकता रहती है । एक ही साध्य को शाश्वतकालीन कर दिया गया है । इससे नवकार जैसे महामंत्र को भी त्रैकालिक शाश्वत बनने में काफी संबल मिला है । भविष्य काल में सदा मेरे नमस्कार पाप कर्म नाशक ही हो यह सम्यग् दर्शन-सच्ची श्रद्धा के आधार भूत पद है । वाक्य है तथा भावना है । सम्यग् दर्शन ही इस भावना को चिरस्थायी स्वरूप प्रदान करता है । भविष्य में कहीं भावना हेतु विचार इच्छा बदल न जाय...अर्थात् कहीं दु:ख नाश करने की इच्छा, सुख पाने की इच्छा, विघ्न, संकट आपत्तियों का नाश करने की वृत्ति न बन जाये इसके लिए भविष्य काल की भावना हेतु वर्तमानकालीन भावना-प्रार्थना को सही बना लेना चाहिए । हमारे मन का कोई भरोसा नहीं है ।

यह कभी भी बदल सकता है । बन्दर की तरह चपल और चंचल के कलंकों से कलंकित यह मन कभी भी बदल जाय और विचारों को बदल न दें अत: हमें सम्यग् दर्शन-सच्ची श्रद्धा से मन को विचारों और भावना से भावित करना हैं हमारे विचार-मन और भावना बदल सकते हैं परन्तु नवकार तो कभी भी नहीं बदलने वाला है । शाश्वत है । मात्र पदरचना या शब्दरचना से ही शाश्वत है ऐसा भी नहीं है अर्थ रचना से भी इसकी त्रैकालिक शाश्वतता बनी रहेगी । अत: अर्थ भी अपरिवर्तनशील है । इसलिए जैसा नवकार अपरिवर्तनशील शाश्वत है वैसी ही हमें भी हमारी भावना, श्रद्धा, विचारधारा को बनानी चाहिए । हम जैसे हैं, या हमारे विचार या भावना जैसी है वैसा नवकार को बनाना नहीं है, परन्तु वास्तव में नवकार महामंत्र अपने आप में सूत्र अर्थ आदि स्वरूप में जैसा है वैसें, मानसवाले, वैसी श्रद्धा-भावना और विचारधारा वाले हमें बनना चाहिए । हमारी दूषित स्वार्थिक वृत्तियों से शाश्वत महामंत्र को हमें दूषित करने का घृणित अपराध नहीं करना चाहिए । नवकार में दु:खनाश,

विघ्ननाश, संकटनाश आदि की स्वार्थिक अधम भावना या वृत्ति न लाते हुए महामंत्र की शुद्धि पवित्रता बनाए रखनी चाहिए । कहीं ऐसा न हो जाय कि अज्ञानी लोग हमारी स्वार्थिक वृत्ति को ही सही समझकर अनुकरण कर बैठे । और फिर 1-2 करेंगे तो आगे उसकी भी परम्परा चलने लग जाएगी तो अनर्थ हो जायेगा । अत: सम्यग् दृष्टि साधकों को नवकार की यथार्थता और शाश्वतता समझकर सही सच्ची श्रद्धा-भावना और विचारधारा की पवित्रता बनाकर रखनी चाहिए तथा वैसी ही प्ररुपणा करके परम्परा भी सही चलानी चाहिए ।

"सव्व पाव"—सब पापों का मूल—

नवकार के 7वें पद में 'सव्व पाव' शब्द का जो प्रयोग किया गया है यह सब पापों का स्वरूप परिचायक है । वैसे शास्त्रों में पापों की 18 जातियां बताते हुए 18 पापस्थानक प्रमुख रूप से बताए गए हैं । वे इस प्रकार है — 1. प्राणातिपात = जीव हिंसा, 2. मृषावाद = झूठ, 3. अदत्तादान = चोरी, 4. मैथून = अब्रह्म सेवन, 5. परिग्रह = अति संग्रह, 6. क्रोध = गुस्सा, 7. मान = अहंकार (घमण्ड), 8. माया = छल-कपट, 9. लोभ = तृष्णा-मोह, 10. राग = प्रेम-स्नेह, 11. द्वेष = दुर्भाव, ईर्ष्या, 12. कलह = झगड़ा, क्लेश, 13. अभ्याख्यान = दोषारोपण, आरोप, आक्षेप, 14. पैशुन्य = (चाडी) चुगली, 15. रति-अरति = अच्छा-खराब, हर्ष, उद्वेग, 16. पर परिवाद = पराई निंदा करना, 17. माया मृषावाद = प्रवंचना, ठगाई और 18. मिथ्यात्व शल्य = सत्य तत्व स्वरूप जीवादि नौ तत्वों एवं देव-गुरु-धर्म को न मानना, श्रद्धा न रखना, विकृत विपरीत मान्यता रखना । इस तरह ज्ञानी भगवन्तों ने ये 18 मुख्य पापस्थान दर्शाएं हैं । यदि इससे भी ज्यादा पाप होते तो सर्वज्ञ भगवन्त जरुर ज्यादा बताते । 19वां भी बताते । इसमें क्यों छिपाते, केवली सर्वज्ञ है । जिन्हें सम्पूर्ण ज्ञान है । सब मालूम है । छिपाकर रखने का कोई प्रश्न ही खड़ा नहीं होता है । अत: जगत् में अनादि काल से ये 18 पापस्थानक है । पाप की जातियां है । यद्यपि इनके पाप संख्या की दृष्टि से सैंकड़ों है..लेकिन मूलभूत जाति तो एक ही कहलाएगी । जैसे मृषावाद = झूठ एक पाप की जाति है । अब कितने प्रकार के झूठ होते हैं ? कितने प्रकार से, कितने तरीकों से झूठ बोले जाते हैं ? कभी पैसों के निमित्त, कभी पत्नी, कभी पुत्र, कभी जगह-जमीन, कभी मकान-दुकान, कभी धर्म के लिए, कभी कन्या की उम्र के लिए इस तरह संसार में कदम-कदम पर सैंकड़ों किस्म के झूठ बोले जाते हैं । ये अवान्तर प्रकार हुए झूठ के । लेकिन मूल जाति झूठ के पाप की एक ही गिनी जाएगी । इसी तरह सभी पापों के बारे में समझना चाहिए ।

कर्म का आधार भूत कारण—"पाप"

कर्म क्या है ? जीव मन, वचन, काया के तीनों योगों से 18 पाप की प्रवृत्तियां करता है उस समय कार्मण वर्गणा के पुद्गल परमाणु असंख्य, अनन्त की संख्या में भी आत्म प्रदेशों में आकर इकट्ठे हो जाते हैं । आत्म प्रदेशों के साथ दूध, पानी या दूध शक्कर या तप्त अय: पिण्ड की तरह एक रूप एक रस बनकर बंध जाते है । उस पिण्ड विशेष को सर्वज्ञ भगवन्तों ने 'कर्म' संज्ञा दी है । अत: यह स्पष्ट होता है कि...कर्मों के लिए भी मूलभूत कारण रूप में पाप ही है । आधार भूत निमित्त ये 18 पाप की प्रवृत्तियां । यदि पाप प्रवृत्ति ही नहीं होती तो कर्म ही नहीं होते । और कर्म ही नहीं होते तो पुन: पाप की प्रवृत्तियां भी नहीं होती । भूतकालीन तथा जन्मान्तरीय असंख्य कर्म जो आत्मा पर पड़े हुए हैं, उनके उदय से, औदयिक भाव से आज पुन: नए पाप की प्रवृत्तियां होती ही जा रही है । और उससे पुन: नए कर्मों का बंध भी होता जा रहा है । इस तरह ये पाप भाव कर्म रूप है । जैसे अण्डे में से मूर्गी और मूर्गी में से पुन: अण्डा बनता ही जा रहा है वैसे ही कर्म से पुन: पाप और पापों से पुन: कर्म । यह क्रम चलता ही जाता है । प्रवाह के रुकने का नाम ही नहीं है ।

जैसे नदी थोड़ा पानी समुद्र में डालती है कि दूसरी तरफ पहाड़ों पर से पुन: नया पानी नदी में आता हीं रहता है । परिणाम स्वरूप शाश्वती नदियां खाली होती ही नहीं है । जल रहित होकर सूखती ही नहीं है । ठीक वैसे ही जीवों ने थोड़े पाप कर्म निर्जरा करके खपाए कि...तुरन्त अनेक नए पापों के जरिए पुन: नए कर्मों का आगमन चालू ही रहता है । यह प्रवाह रुकने का नाम ही नहीं लेता है । अब आप ही सोचिए ! ऐसी परिस्थिति में से जीव को बचकर, छूटकर मोक्ष में जाना कितना दुष्कर कार्य है । इसीलिए नवकार महामंत्र में 'सव्व पावप्पणासणो' की बात बिल्कुल सही कही है ।

क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष ये सब पाप भी है और ये ही पुन: मोहनीय कर्म की प्रकृतियां भी है । एक तरफ पाप की प्रवृत्ति रूप भी ये ही है, दूसरी तरफ कर्म की प्रकृति रूप भी ये ही है । इस तरह प्रकृति और प्रवृत्ति दोनों का ही दरज्जा एक को ही मिल रहा है । पूर्व जन्मों में भूतकाल में जो क्रोध-मानादि के पाप की प्रवृत्तियां जीव ने की उससे बंधे हुए, लगे हुए अनेक कर्म आत्मा पर पड़े हैं । इन्होंने आत्मा का स्वभाव ही वैसा क्रोधी, अभिमानी आदि रूप बना दिया है । अब इस स्वभाव के कारण कदम-कदम पर वापिस क्रोध, मान की प्रवृत्तियां होती ही जाएगी । उसमें पुन: नए कर्म बंधते ही जाएंगे । इस तरह पाप और कर्मों का यह भयंकर विषचक्र चलता ही जा रहा है । भूतकाल में इस चक्र को चलते-चलते अनन्तकाल बीत चुका है । तथा यदि इसी तरह चलता ही रहा तो भविष्य में भी अनन्तकाल बीत जाएगा । परिणाम स्वरूप ऐसे पाप-कर्म

के-संसार चक्र के बंधन में से जीव मुक्त कब होगा ? छुटकारा कब पाएगा ? पाप प्रवृत्ति रूप है । और कर्म प्रकृति रूप है । प्रवृत्ति क्रियात्मक है और प्रकृति स्वभावात्मक है । इससे पूर्व कृत कर्मों की प्रकृतियों ने स्वभाव बनाया और स्वभाव (प्रकृति) ने उदय में आकर पुन: पाप-प्रवृत्ति की क्रिया कराई । ऐसे बनता है संसार । और ऐसे बढता भी जाता है संसार चक्र । और ऐसे ही संसार बिगड़ता भी जाता है । इसीलिए 'सव्व पावप्पणासणो' का पद महामंत्र नवकार में बिल्कुल सही दिया है । अब इसी पद को लक्ष्य-उद्देश्य का पद बनाकर पूरा ध्यान-साध्य इसी पर केन्द्रित करना चाहिए । यही परिणाम लाना चाहिए ।

आत्म गुण—नमो भाव—

उदाहरण के लिए समझिए "मान" यह मोहनीय कर्म के कषाय मोहनीय की कर्म प्रकृत्ति है । प्रकृति उदय में आकर मान-अभिमान का स्वभाव बनाती है । और ऐसे मानी-अभिमानी स्वभाव से जीव पुन: घमण्ड करना, अहंकार करने आदि का दुनिया भर के पाप करता ही जाएगा । इस अहंकार के पाप से पुन: मान कषाय मोहनीय कर्म का बंध निरन्तर होता ही रहेगा, और फिर उदय काल में निरन्तर मान-अभिमान की, घमण्ड करने की, अहंकार करने की पाप-प्रवृत्ति चलती ही रहेगी । इस तरह चलते हुए पाप और कर्म के संसार चक्र का अन्त कैसे आएगा ? जी हां, अन्त आएगा—एक मात्र 'नमो भाव' से । नमो भाव इन दोनों के बीच में आएगा कैसे ? और कर्म क्या अपने विरोधी दुश्मन को बीच में घूसने देगा ? कर्म को अच्छी तरह मालूम है कि यह 'नमो भाव' अपना दुश्मन है । सर्वथा विरोधी-विरुद्ध तत्त्व है । यह एक बार घूस गया तो फिर मुझे यहां रहने ही नहीं देगा । टिकने ही नहीं देगा । इसलिए जब भी जहां कहीं भी नम्रता से नमस्कार करना पड़ता है वहां यह मान मोहनीय कर्म भी अपनी पूरी ताकत लगाता है उसे हटाने की । इसीलिए नम्रता के परिणाम, नमस्कार के संस्कार, नमोभाव और विनय गुण किसी को प्रगट होने ही नहीं देते हैं ये कर्म । परिणाम स्वरूप आप देख ही रहे हैं कि पूरे संसार में मान-अभिमान का साम्राज्य छाया हुआ है । इसी की अहंकार, घमण्ड, अभिमान आदि की प्रवृत्तियां सर्वत्र चल रही है । रुकने का नाम नहीं है । लेकिन इसके सामने नमस्कार का प्रमाण कितना है । यदि मान, अभिमान का प्रमाण 100% शत, प्रतिशत है तो उसके सामने 1-2 प्रतिशत भी नम्रता का प्रमाण है या नहीं ? वर्तमान में पूरे विश्व की जनसंख्या मान लो 6 अरब अर्थात् 600 करोड़ मनुष्यों की जनसंख्या है, तो उसमें से 1%, 2% प्रतिशत अर्थात् 6 करोड़ लोग भी नम्रता के गुण से भरे हुए होंगे ? अरे ! 6 करोड़ तो दूर रहे 1 करोड़ भी कहां संभव होंगे ? अरे ! 1 करोड़ नहीं 1 लाख लोग भी नम्र स्वभावी मिलेंगे ? बहुत मुश्किल लगता है । 600 करोड़ में से 6 करोड़ लोगों तक भी नवकार महामंत्र पहुंचा है या नहीं ? अरे ! 6 करोड़ तो क्या 1 करोड़ लोगों तक भी नवकार पहुंचा है या नहीं ? यह भी संदिग्ध है । और यदि मान लो कि पहुंच भी गया हो तो 1 करोड़ लोगों में से 1 लाख लोग भी नम्रता के स्वभाव वाले, नमो भाव की प्रबलता वाले बने कि नहीं ? शायद और नीचे उतरने के लिए हमें बाध्य होना पड़ेगा कि 1 लाख में से 1 हजार लोगों में भी नमस्कार भाव परिपक्व हो जाय तो भी पर्याप्त है । इतने भी यदि मान, अभिमान रहित हो जाय तो भी वे सही सच्चे अर्थ में भविष्य की पीढ़ी और भाविकाल तक भी नवकार को जीवन्त रखने में सहायक बन जाएंगे । अब आप सोच लीजिए...प्रत्यक्ष संसार में गणना करके देखिए... । कहां मान, अभिमान के कर्म का प्रमाण ? कहां अहंकार, घमण्ड के पाप का प्रमाण और कहां इसके नाशक नमो-नमस्कार का प्रमाण । जब प्रमाण ही इतना रहेगा तो उसका प्रभाव कितने प्रमाण में रहेगा ? आखिर नम्रता के भाव, नमो के नमस्कारात्मक संस्कार से ही...मान-अभिमान का प्रमाण घटेगा । लेकिन पूरे संसार की चिंता करने के बजाय पहले हम अपने आप की चिन्ता तो करें । हम अपने व्यक्तिगत जीवन में भी यदि नमो भाव को, नमस्कार करते-करते... पंच परमेष्ठियों के निमित्त योग से घूंटते-घूंटते इतने अच्छे प्रमाण में विनय गुण बढा लें ताकि मान, अभिमान हमारे व्यक्तिगत जीवन में से सर्वथा नष्ट हो जाय, अदृश्य हो जाय । हम एक सम्पूर्ण मान-कषाय रहित बनकर हमारा अपना आदर्श संसार के सामने खड़ा करके दिखा दें । अपने व्यक्तिगत जीवन में यह संकल्प बल से सिद्ध हो सकता है ।

संसार में पाप करना आसान है कि धर्म ?

"नमो" यह आत्म धर्म है । जबकि ठीक इसका विरोधी मान, अभिमान मोहनीय कर्म है । पाप कर्म है । अब आप बताइये कि पाप करना आसान है ? सीधा सरल है या नमो भाव जन्य नमस्कार सरल है ? नमस्कार का आचरण करना लोगों को कितना कठिन लगता है ? लोक व्यवहार में भी परस्पर नमस्कार करना कठिन लगता है । एक नवकार गिनना भी लोगों को भारी पड़ता है । तब तो नमो भाव तो शायद हजारों माइल दूर रहा । और नमो भाव नहीं आएगा तो 'विनय गुण' पूर्ण विकसित होना तो शायद दिन में तारे देखने जैसा हो जाएगा और बिना विनयगुण के मान अभिमान पाप का सर्वथा नाश कैसे होगा ?

पूर्व जन्मों के बांधे हुए कर्मोदय के कारण वर्तमान जन्म में पुन: वैसे पाप करना जीवों को बहुत सरल-आसान लगते हैं । लेकिन आत्मा के अन्तर में से नमो भाव के धर्म को प्रगट करना मानो आसमान के तारे तोड़ने जैसा असंभव लग रहा हो । इस तरह यदि यह चक्र चलता ही रहा

तो 'सव्व पावप्पणासणो' अर्थात् सब पाप कर्मों का सम्पूर्ण समूल नाश कैसे होगा और कब होगा ? अरे ! 'सव्व' सब पाप कर्मों की तो बात ही दूर रही लेकिन 'सव्व पावप्पणासणो' के पद का अर्थ एक पाप-कर्म का भी सर्वथा सम्पूर्ण समूल नाश करना भी हमारे लिए संभव है या नहीं ? क्योंकि पाप की किसी एक प्रजाती को लेकर उसके भी प्रमाण की संख्या गिनने जाएं तो यह संख्या भी असंख्य तक पहुंचने वाली बहुत बड़ी लम्बी चौड़ी होगी । अत: एक पाप कर्म के अवान्तर सब पाप कर्मों का क्षय-नाश भी हम कर दें तो भी हमारे लिए 'सव्व पावप्पणासणो' आंशिक अर्थ में भी सिद्ध हो जाएगा ।

एक मोहनीय कर्म के 18 ही पाप—

पहले प्राणातिपात-हिंसा, झूठ आदि के जितने भी 18 ही पाप है...यदि इन्हें अच्छी तरह कर्म ग्रन्थ की दृष्टि से देखा जाय तो ये सब एक मात्र मोहनीय कर्म की प्रवृत्तियों में समाते हैं । गिने जाते हैं । ज्ञानावरणीय आदि 8 कर्म है । इन 8 कर्मों में एक कर्म मोहनीय कर्म है । शेष सातों कर्मों की कारण रुप पाप प्रवृत्ति कौन सी है ? इन 18 पापों में ज्ञानावरणीय की या अन्तराय कर्म की या किसी अन्य कर्मों की पापप्रवृत्ति को स्थान भी नहीं दिया है । गिना भी नहीं है । बात भी सही है...क्या गिने ? ज्ञान, ज्ञानी और ज्ञानोपकरण आदि की विराधना आशातना आदि किसी भी प्रकार का पाप करने के लिए कारण रूप तो क्रोध, मान, माया, लोभ, राग द्वेषादि ही है । बिना इन कारणों के तो कोई पाप होना संभव ही नहीं है । इसलिए 18 ही पाप स्थान मात्र एक मोहनीय कर्म के घर की प्रवृत्तियां रूप है और इन 18 में अन्य किसी भी कर्मों की कारण रूप पाप प्रवृत्तियों का समावेश करने की आवश्यकता ही नहीं रहती है । ये अठारह पाप स्थानक ही आठों कर्मों के बंधन में कारण बनते हैं । सहायक बनते हैं । अर्थात् इन 18 पापों की प्रवृत्ति करने से आठों कर्मों का बंध होता ही रहता है ।

इनमें 18 पापों का एक मुख्य राजा राग-द्वेष है । अत: संक्षिप्तीकरण की दृष्टि से 18 पापों का समावेश मात्र राग द्वेष में आसानी से किया जा सकता है । अत: राग-द्वेष ही मूलरूप है । उत्तराध्ययन आगम शास्त्र में स्पष्ट ही कहा है कि... 'रागो य दोसो विय कम्म बीयं' । राग और द्वेष ये दोनों कर्म के बीज है । जैसे बीज में से विशाल वृक्ष बनता है वैसे ही राग-द्वेष के बीज में से आठों कर्मों का वृक्ष बनता है । और आगे आठों कर्मों से सारा संसार चलता ही रहता है । कर्म के तने से राग और द्वेष की दो शाखाएं निकल जाती हैं । फिर आगे-राग की शाखा में से माया और लोभ की पुन: शाखाएं निकलती हैं । इस तरह द्वेष की शाखा में से क्रोध और मान की 2 शाखाएं निकलती है । इसी तरह प्रशाखाओं से वृक्ष का विस्तार होता है तथा आगे जितनी पत्तियां है वे एक-एक पाप के प्रकार बना रही है । इस तरह बीजभूत राग-द्वेष के 8 कर्म रूपी वृक्ष के 18 ही पाप स्थानों से यह समूचा संसार भरा हुआ है । इसमें भी मात्र एक मोहनीय कर्म के ये 18 ही पाप है । अवान्तर भेदों के रूप में प्रजातियां है । अत: इन 18 पापों का नाश करना हो तो इनके बीजभूत राग-द्वेष का नाश करना अत्यन्त आवश्यक है । तब सही अर्थ में 'सव्व पावप्पणासणो' चरितार्थ होगा । और नाश के आगे गुणवत्ता सूचक 'प्र' उपसर्ग लगाकर प्रनाशनं (प्पणासणो) जो बनाया गया है वह भी सार्थक सिद्ध होगा ।

सब पापों-कर्मों का नाशक एक मात्र—'नमो'

"नमो" जैसे पापों और कर्मों के घर में संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया में बीजभूत राग-द्वेष को सही समझा है । ये ही घनीभूत पिण्ड है । बस, इन राग-द्वेष रूपी राजा के पीछे ही आठों कर्मों और 18 ही पाप स्थानों की काफी लम्बी सेना है । ठीक इसीलिए राग-द्वेषात्मक मोहनीय कर्म को ही कर्मों का मुख्य राजा कहा है । अब दूसरी तरफ आत्म-गुणों, धर्मों की दूसरी प्रतिद्वन्दी सेना का स्वरूप भी समझ लें । आत्मा के घर में धर्म अनेक हैं । जिनमें नम्रता, समता, सरलता, संतोष, सज्जनता, क्षमा, दया, करुणा, सत्यता, अकिंचनता, आदि असंख्य गुण है । यद्यपि ये गुण संसार में कम मात्रा में दिखाई देंगे । लेकिन अस्तित्व का सर्वथा अभाव नहीं है । इन और ऐसे समस्त गुणों का घनीभूत या पिण्डीभूत स्वरूप करके किसी एक में समावेश करना हो तो एक मात्र विनय गुण में सबका समावेश होना संभव है । एक विनय गुण को समस्त गुणों की सेना का राजा बनाया जा सकता है । यदि विनय गुण है तो उसके पीछे समस्त गुणों का अस्तित्व है । और यदि विनय प्रधान गुण ही न हो तो शेष सभी गुणों का रहना टिकना भी बहुत मुश्किल है । अत: विनय गुण को सबसे पहले विकसाना बढाना अत्यन्त आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है ।

गुणों का पिण्ड-विनय—

विनय एक ऐसा गुण है जिसमें परोक्ष रूप से सब गुणों का समावेश हो जाता है । क्षमा, समता, नम्रता, सरलता, संतोष, दया, करुणा आदि अनेक गुणों का समूहात्मक पिण्डीभूत गुण विनय है । विनय में नम्रता, नमोभाव घनीभूत होकर रहा हुआ है । अत: क्षमा, समता भाव इसमें साथ ही रहता है । क्योंकि विनय के कारण आई हुई नम्रता के कारण सबके प्रति अहोभाव, पूज्यभाव ही इतना बढ़ जाता है कि वह दूसरों पर क्रोधादि कषाय लाना ही नहीं चाहता है । इसलिए क्षमा, समता और शान्ति की उपस्थिति विनयी आत्मा में सदा बनी रहती है । उसमें भी पूजनीयों के प्रति तो विनयवान साधक का पूज्यभाव सर्वोच्च कक्षा का हो जाता है । परिणाम स्वरूप क्रोधादि कषायों को वह साधक पूज्यों के सामने अवकाश

ही नहीं देता है । परिणाम स्वरूप क्षमा, समता भाव में ही साधक जीता है । इसी तरह विनय गुण में नम्रता नमो भाव इतना घनीभूत होकर रहता है कि नमस्कार करने वाला अपने आप को तृण तुल्य तुच्छ और अणुतुल्य छोटा समझता है । मानता है । जबकि जिनको नमस्कार करता है ऐसे नमस्करणीय को सुमेरु की तरह बड़ा महान देखता है । उनकी महानता के सामने अपने आप को वह चरणों की रज-धूल समान मानता है । अत: मान-अभिमान को आने का कोई अवकाश ही नहीं रहता है । अभिमान के अहंकार भाव को आने ही नहीं देना यही सबसे बड़ा और सही सच्चा नमस्कार है ।

माया कपट की वृत्ति सरलता के गुण को दबा देती है । परिणाम स्वरूप जीव वक्र वृत्ति वाला बन जाता है । मन में मायावी वृत्ति हावी हो जाती है । लेकिन जिनको सदा नमस्कार करना है उनके प्रति आदर और सद्‌भाव इतने ज्यादा बढ़ जाते है कि अब उनके प्रति शठता-वक्रता का आचरण करने का विचार नहीं बनता है । लोभ संतोष भाव को दबाने वाला कर्म है । विनयवान जीव अपने आप को ही तृण, तुल्य, तुच्छ, अणुरूप लघु मानता है । उसे क्या चाहिए ? इतना ही नहीं नमो भाव सम्पूर्ण समर्पणभाव लाता है । पूज्यों के प्रति सर्वथा समर्पित रहने का नमो भाव सीखाता है । अत: समर्पण में कभी भी शर्त बीच में नहीं होती है । मांगने की, या प्राप्ति की अभिलाषा ही नहीं रहती है । निष्काम भाव की भक्ति विनय गुण की नम्रता से ही संभव है । अत: लोभ वृत्ति में आकर मांगना, याचना करना, इकट्ठा करना आदि का सवाल ही खड़ा नहीं होता है । दूसरी तरफ नवकार महामंत्र में 'सव्वपावप्पणासणो' से आन्तरिक कक्षा के समस्त पाप कर्मों का क्षय नाश करने की भावना से ही नमस्कार करता है फिर लोभ में चाहिए ही क्या ? इसलिए नमो भाव वाला नमस्कार महामंत्र लोभ बुद्धि का मंत्र ही नहीं है । यह आत्मिक, आध्यात्मिक मंत्र है । इसमें कुछ भी मांगा नहीं गया है । ऊपर से अपने पाप कर्मों को खपाया गया है ।

इसी तरह विनय गुण के इस नमो भाव ने शरण स्वीकारने का सीखाया है । याद रखिए ! शरण में शर्त कभी बीच में नहीं आती । और शर्त हो तो शरण कभी स्वीकारी ही नहीं जाती । सैंकड़ों लोग नवकार की साधना या अन्य किसी प्रकार के जापादि, पूजादि की धर्माराधना में ऐसी शर्त रखते हैं कि...मेरा ऐसा हो जाय तो मैं इतना जाप कर दूं । इतना ये कर दूं, वो कर दूं । यह सब लोभाभिभूत मंत्रों का काम है । नवकार जैसे महामंत्र में पाप नाश की बात पहले ही स्पष्ट कर दी है अत: कुछ भी लोभ का प्रश्न ही नहीं रहता है ।

विनय गुण-नमो भाव आत्मा के चारों तरफ इतना जबरदस्त सुरक्षा कवच रचता है कि अब किसी भी प्रकार के क्रोधादि कषाय के दोषों को अन्दर प्रविष्ट होने ही नहीं देना है । क्रोधादि आत्मगुण घातक है । कर्म रूप है । विकार रूप है । ये आत्मा के लिए हितकारी ही नहीं है । घातक है । विनय-नमो भाव यह कर्म जन्य नहीं है । यह आत्म गुण है । आत्मा का अपना स्वस्वभाव है । परमात्मा पूर्णरूप से आत्म स्वरूप में है । आत्म स्वभाव में लीन है । इसीलिए उनके वाच्य पदवाची, गुणवाची मंत्र के आगे 'नमो' शब्द जोड़कर नमस्कार किया गया है । यह नमो आत्म गुण को, आत्म स्वरूप को नमस्कार करता है । जिससे साधक स्वयं अपने आत्म स्वरूप को प्रगट करता है ।

आभ्यंतर तप-विनय—

परमेष्ठी भगवन्तों का जो स्वरूप है, जैसा स्वरूप है वह हमारे मन में लाने वाला नमो भाव है । विनय गुण नमस्कार रूप से रहे तो शुभाश्रव का पुण्य उपार्जन कराता है । यही धर्म के क्षेत्र में जागृत रहकर क्रोधादि कषायों, पापों को आते हुए रोककर संवर कराता है । और इसी विनय को 6 प्रकार के आभ्यन्तर तप में दूसरे क्रम पर स्थान दिया है । पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कारादि करना विनय है । अत: आभ्यन्तर तप के रूप में विनय अनेक गुनी निर्जरा कराता है । अनेक पाप कर्मों का क्षय होता है । कई बार ऐसा देखा जाता है कि प्रायश्चित के विषय में लोग 2-3 उपवास करने के लिए तैयार हो जाते हैं, अतः वे अपने से छोटे को किसी भी रूप में नमस्कार वंदन करने के लिए तैयार नहीं है । फिर कैसे निर्जरा होगी ?

इस तरह साधकों को स्पष्ट समझकर भाव और मानस वैसा बनाकर 'एसो पंच' इन अरिहन्तादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करते रहना चाहिए । विनय गुण बढाकर सब पाप कर्मों का सम्पूर्ण क्षय करना चाहिए । यही नवकार मंत्र का सही उपयोग है ।

"पंच नमस्कार से — सब पापों का नाश"

—पंन्यास अरुणविजय म.

नास्तिक का लक्ष्य दु:ख, दर्द, संकट का नाश करने का होता है । जबकि आस्तिक का लक्ष्य पापनाश का होता है । दु:ख नाश क्षणिक है । पाप नाश ही दीर्घकालिक है । दु:ख नाश से मुक्ति संभव नहीं है । पाप नाश से मुक्ति निश्चित है । पाप कर्म ही दु:ख के कारण में है । अत: कारण को ही जड़मूल में से नष्ट करना चाहिए । यही सम्यग् साध्य है ।

यदि साध्य सम्यग् सही है तो साधना भी सम्यग् सही ही करनी चाहिए । साध्य ही यदि गलत है तो उसके अनुरूप साधना भी गलत ही सिद्ध होगी । अत: दु:ख नाश के बजाय सब पापों का नाश करने का लक्ष्य ही सही है । यही साध्य साधक को सिद्धि दिलाएगा ।

संसार में किसका प्रमाण ज्यादा है ? पाप का या दु:ख का ?

इस समग्र विश्व में मनुष्यों की कुल संख्या आज 6 अरब की है । इसमें कितने दु:खी और कितने पापी है का सर्वेक्षण कैसे करें ? फिर भी इतना स्पष्ट दिखाई देता है कि...आज भी इस संसार में दु:खी लोगों की संख्या शत-प्रतिशत नहीं है । हो सकता है कि 50 से 60% हो या 70% भी हो । कोई आश्चर्य नहीं है । लेकिन संसार में पाप करने वाले पापीयों की संख्या कितनी होगी, इसमें प्रतिशत कैसे निकालें ? अत: कहा जाता है कि...शत प्रतिशत होगी । ऐसा कोई नियम नहीं है कि मात्र दु:खी ही पाप करते हैं और सुखी लोग बिल्कुल पाप करते ही नहीं है । ऐसी बात भी नहीं है । या सुखी सब सर्वथा धर्मी ही होंगे । धर्म ही करते होंगे ? और दु:खी सब अधर्म ही करते होंगे । ऐसी भी बात नहीं है । शायद इससे विपरीत चित्र इस संसार में अधिकांश लोगों ने देखा होगा । दु:खी लोगों को धर्म करते हुए देखा होगा और, सुखी-सम्पन्न लोगों को पाप ज्यादा करते हुए देखा होगा । शायद पाठक वर्ग भी इस विचार से सहमत हो जाएंगे ।

भूतकाल में पाप करके जो आया है वह आज दु:खी है और भूतकाल में जो धर्म-पुण्य करके आया है वह उसके उदय में आज सुखी है । दु:खी व्यक्ति किये हुए पाप कर्म को भूल गया और सुखी व्यक्ति भी भूतकाल में किये हुए शुभ पुण्य या धर्म को भी भूल जाता है । दु:खी आज दु:ख में दीन बनकर अपनी हालात खराब कर बैठा है । दूसरी तरफ सुखी जीव सुख में लीन होकर मस्ती में झूम रहा है । सुख की प्राप्ति का भी अभिमान है । अहंकार भाव है । शायद इस तरह दोनों वर्ग धर्म का सही सम्यग् आचरण करने से दूर रह रहे हैं ऐसा लगता है । दु:खी के मन में दु:ख दूर करने की, टालने की, नाश करने की भावना रहती है । दूसरी तरफ उसे पाप याद ही नहीं है । विस्मृति ने उस दु:ख नाश के लिए विवश कर दिया है । और धर्म के मर्म के अज्ञान ने, तथा मिथ्यात्व की अंधश्रद्धा ने भी उसे दु:ख नाश के लिए सब कुछ करने के लिए बाध्य कर दिया है । आप ही सोचिए जहां अज्ञानता और अंधश्रद्धा ये दोनों मिल जाय तो क्या और कैसी स्थिति हो ? जैसे एक तो कोई स्वभाव से अति चंचल-चपल हो और उसमें भी यदि शराब पी ले और नशा चढ जाय तो कैसी बन्दर जैसी हालत हो जाती है ? आप ही सोचिए ! या दूसरे दृष्टान्त में सूर्यास्त हो जाय और अमावस्या की अंधेरी रात में बिजली भी गुल हो जाय तब घने अन्धेरे में कैसी किंकर्तव्यमूढ स्थिति बन जाती है ? इसके बारे में कल्पना करने पर भी आपको ख्याल आ सकता है । शायद इससे भी ज्यादा बदतर स्थिति अज्ञान और अंधश्रद्धा के मिलने से मिथ्यात्व की कैसी स्थिति होती होगी इसका अंदाजा तो सर्वज्ञ ही लगा सकते हैं । ऐसे मिथ्यात्व के गाढ अंधेरे में जीव सत्य तत्त्वों को टटोलता ही रहे तो भी कभी हाथ नहीं लगता है । भले वह सदियों तक भटकता ही रहे ।

दूसरी तरफ सुखी व्यक्ति जो कि कारणभूत भूतकाल में किये हुए शुभ, पुण्य, धर्म को भूलकर बैठा है । वह सुख के नशे में चकचूर है । लोभ संज्ञा कम ही नहीं होती है । वह नवकार गिनता भी है, या देव-गुरु-धर्म की उपासना करता भी है, तो उसमें लोभवृत्ति से और ज्यादा सुख-सम्पत्ति, पद, प्रतिष्ठा की याचना करता रहता है । परिणाम स्वरूप सुखी भी सच्चे धर्म से वंचित रह जाता है । और दु:खी भी सच्चे सम्यग् धर्म करने से वंचित रह जाता है । सब पाप कर्मों का क्षय (नाश) करने के सही संकल्प से जो जो धर्माराधना की जाय, वही सम्यग् धर्माराधना है ।

4 भेदों में विचारणा—

धर्माराधना जीव सदियों से और अनेक जन्मों से करता आया है । नमस्कार भी देव गुरुओं को अनेक जन्मों से करता आया है । परन्तु धर्म करते हुए उद्देश्य पूर्ति हेतु सिद्धि कभी हुई कि नहीं ? इसका विचार कब किया ? मुख्य रूप से धर्म करते हुए...पापों का क्षय होना चाहिए । तथा इसी लक्ष्य से किया हुआ धर्म सार्थक कहलाता है । धर्म करते हुए पापों का क्षय हुआ कि नहीं ? इस विषय में हम 4 भेदों से विचारणा करें—

1. धर्म किया परन्तु पाप कर्मों का नाश नहीं हुआ ।
2. धर्म किया और पाप कर्मों का नाश हुआ ।
3. धर्म किया ही नहीं फिर भी पाप कर्मों का नाश हुआ ।
4. न तो कुछ धर्म किया, और न ही पाप कर्मों का नाश हुआ ।

द्विक संयोगी उपरोक्त 4 भेद होते हैं । अब इन चारों भेदों की दृष्टि से विचार करते हुए पता लगा पाएंगे कि क्या हुआ है ? और क्या नहीं ।

1. प्रथम भंग की दृष्टि का विचार करते हुए यह प्रतीत होता है कि कई जन्मों में नमस्कार आदि कई प्रकार का धर्म जरुर किया लेकिन भावना दु:ख नाश या, सुख प्राप्ति आदि की होने के कारण पाप क्षय से साधक वंचित रह गया । या मात्र पुण्योत्पादक लक्ष्य से ही धर्म करता गया हो, जिससे सुख-सम्पत्ति, समृद्धि, सद्गति आदि पुण्य के फल रूप में मिलते ही गए हो । परन्तु पाप कर्मों का क्षय या नाश कुछ भी नहीं हो पाया । इसीलिए मात्र धर्म कर लेना महत्व की बात नहीं है । अपितु साधक को अपना निर्धारित साध्य सिद्ध करना महत्वपूर्ण सिद्धि है । संसार में सर्वथा निष्प्रयोजन कोई प्रवृत्ति होती ही नहीं है । कहा गया है कि— 'प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते' अर्थात् प्रयोजन या हेतु के बिना कोई मन्दमति जीव भी प्रवृत्ति नहीं करता है अर्थात् वह भी सहेतुक सार्थक प्रवृत्ति ही करता है । सप्रयोजन ही कोई कार्य करता है ।

गत अनेक जन्मों में धर्म काफी किया होगा, ना नहीं कह सकते । लेकिन कब किस जन्म में क्या उद्देश्य रहा हो ? कब क्या प्रयोजन रहा हो ? पता नहीं । याद रखिए, धर्म करने के पीछे जीवों को एक मात्र लक्ष्य-साध्य सम्यग् दर्शन की प्राप्ति का ही होना चाहिए । मिथ्या दृष्टि जीवों का धर्म करने के पीछे का लक्ष्य कभी सही शुद्ध हो नहीं पाता है । क्योंकि देव गुरु धर्म जानने, मानने पहचानने और आचरण करने में ही उसने बड़ी भारी भूल की है । वहीं वह जैसे हैं वैसे मान ही नहीं पाया । जान ही नहीं पाया । सही सच्चे अर्थ में पहचान ही नहीं पाया अत: सही-शुद्ध आचरण का सवाल ही नहीं उठता है । इस विषय में भी 4 भंगों से विचारणा हो सकती है ।

1. देव-गुरु-धर्म है सम्यग् लेकिन उन्हें मानता है मिथ्या रूप से ।
2. देव-गुरु-धर्म है सम्यग् और मानना-जाननादि सब सम्यग् है ।
3. देव-गुरु-धर्म ही मिथ्या रूप है और उन्हें सम्यग् जानता-मानता है ।
4. देव-गुरु-धर्म ही मिथ्या रूप है और उन्हें मिथ्या ही जानता-मानता है ।

इस तरह 4 भेदों द्वारा विचारणा की जा सकती है ।

1. प्रथम भंग में देव का स्वरूप देवाधिदेव वीतरागी सर्वज्ञ अरिहंत का है । गुरु का स्वरूप विरक्त वैरागी त्यागी, तपस्वी, पंच महाव्रतधारी का है और धर्म सर्वज्ञ केवलीओं द्वारा प्ररुपित है । इस तरह देव गुरु और धर्म तीनों का स्वरूप संपूर्ण रूप से उत्कृष्ट कक्षा का है । यही परम और चरम कक्षा का सम्यग् सत्य स्वरूप है । इससे ज्यादा और उत्कृष्ट कक्षा का हो ही नहीं सकता है । अत: है ही नहीं । ऐसा परम और चरम कक्षा का तीनों का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप मिलने के बावजूद भी यदि जानने वाला, मानने वाला और सही सम्यग् आचरण करने वालों की बहुत कमी है । क्यों कमी है ? अरे ! देव-गुरु-धर्म तीनों सर्वोत्कृष्ट कक्षा के होने के बावजूद भी लोगों के ज्ञान का स्तर ऊंचा नहीं है । श्रद्धा प्राप्त करने की दिशा सही नहीं है । इसलिए देव गुरु और धर्म अपने स्वरूप में जैसे हैं उससे बिल्कुल विपरीत कक्षा का ही लोग मानते हैं । अत: वे मिथ्या दृष्टि है । जैसे अंजान गंवार के लिए कोहिनूर हीरा भी मिल जाय तो भी अज्ञानता के कारण निरर्थक जाता है । ठीक उसी तरह मिथ्यात्व की विपरीत वृत्ति के कारण मिथ्यात्वी जीव को मिले हुए शुद्ध सच्चे देव, गुरु, धर्म भी निष्फल जाते हैं । साधक मिथ्यावृत्ति के कारण मात्र सांसारिक भौतिक सुख-सम्पत्ति पाने की दृष्टि से ही उनका उपयोग करना चाहता है और दु:ख, दर्द, संकट आपत्ति टालना चाहता है । इसलिए कोहिनूर हीरे की तरह निष्फल जाते हैं ।

2. दूसरे भंग वाले के विषय में स्पष्ट ही है कि...पूर्व पुण्योदय और अच्छे सद्‌भाग्य या पुरुषार्थ विशेष से...सर्वोच्च कक्षा के परम और चरम कक्षा के उत्कृष्ट सही शुद्ध देव, गुरु, धर्म की यह तत्त्वत्रयी साधक को प्राप्त हुई है । तथा साधक अच्छी तरह समझकर एक मात्र पाप कर्म खपाने के लिए ही उनका उपयोग करता है । मुझे मेरी आत्मा को पवित्र शुद्ध, स्वच्छ करना है । देवाधिदेव परमेश्वर परमात्मा भी संसार के त्यागी और कर्मों के भी सर्वथा त्यागी हैं । गुरु तो संसार के सर्वथा त्यागी, कंचन-कामिनी के त्यागी, तपस्वी, पंच महाव्रतधारी मिले हैं । और केवली का आत्म धर्म भी ऐसा मिला है जिसका आचरण-पालन साधक को पापों से सर्वथा मुक्त कर सकें । फिर सच्ची श्रद्धावाला सम्यक्त्वी आराधक इन तीनों का उपयोग एक मात्र सांसारिक, भौतिक, पौद्गलिक दुन्यवी सुखों की प्राप्ति के लिए क्यों करें ? ऐसा करने को दुरुपयोग कहते हैं । दूसरे भेद की दृष्टिवाला साधक समझता है; श्रद्धा सच्ची है अतः वह कभी भी दुरुपयोग नहीं करता है ।

3. तीसरे भंग की दृष्टिवाला जो साधक जीव है उसको उसकी वृत्ति इच्छानुसार या पूर्वजन्मीय संस्कारानुसार एवं कर्मानुसार देव, गुरु और धर्म तीनों मिथ्या स्वरूप ही मिले हैं । और साधक को चाहिए भी वैसे ही थे । उसे अपने दुःख, दर्द, संकट, विघ्न टालने और सुख सम्पत्ति समृद्धि प्राप्त करने से ही मतलब है । उसी के पीछे वह सतत रहता है । इसके लिए हजार उपाय-उपाचार करते रहने में एक रास्ता धर्म का भी अपना लेता है । चलो शायद इस देव, गुरु, धर्म के माध्यम से भी अपनी धारणा मनोरथ फलीभूत हो सकते हैं । बस, ऐसे ही मिथ्या देव, गुरु, धर्म को ही वह साधक वही सम्यग् रूप जानता है । बस, इसी से मोक्ष मिल जाएगा । इसी से अपना कल्याण हो जाएगा ऐसी मान्यता सही कक्षा की रख लेता है । उनसे ही मेरे सब पाप कर्म धुल जाएंगे ऐसी वृत्ति बना लेता है । जबकि परिणाम शून्य रहता है ।

4. चौथा प्रकार दोनों पक्ष से विपरीत है, निषेधात्मक है । देव-गुरु और धर्म तीनों को विपरीत मिथ्या स्वरूप में ही जानता मानता है और आचरण में या श्रद्धा-भक्ति साधना में भी मात्र सांसारिक क्षणिक भोग सुखों की वृत्ति रखी है । नास्तिक वृत्ति वाले जीव की भी देव-गुरु और धर्म तत्त्व को न मानने की वृत्ति रखते हुए भी यदि दुःख मिट जाय, संकट, विघ्न टल जाये, सुख-सम्पत्ति मिल जाये, रोग मिट जाये इत्यादि ऐसी अनेक प्रकार की मान्यताएं रहती है । ऐसी मान्यता रखने में नास्तिक को भी कोई आपत्ति नहीं है । बिल्कुल तकलीफ नहीं है । क्योंकि नास्तिक को मोक्ष, आत्मा, कर्म, स्वर्गादि मानने में तकलीफ है । शेष संसार के सांसारिक भौतिक, पौद्गलिक वैषयिक आर्थिक सुख सम्पत्ति मानने आदि में कहीं कोई प्रश्न खड़ा ही नहीं होता है । और उसमें भी देव, गुरु, धर्म के सरल मार्ग से बिना कुछ प्रयत्न के यदि आसानी से प्राप्त हो जाय तो फिर चाहिए ही क्या ? जबकि बाहर की दुनिया में तो ये भी प्राप्त करने बड़े ही कठिन है । आसानी से प्राप्त होने वाले नहीं है । ये सब जीवन जीने की आवश्यकता है । इसलिए नास्तिक हो या मिथ्यात्वी या भले ही आस्तिक हो या सम्यग् दृष्टि जीव । सबको समान रूप से सुख सम्पत्ति चाहिए और जीवन जीने के लिए दुःख, दर्द, संकट आदि टलने भी चाहिए । और उनमें भी यदि देव, गुरु, धर्म की भक्ति, उपासना आसानी से मिल जाय तो बहुत ही अच्छा है । सबसे श्रेष्ठ उपाय है । सम्यक्त्वी और मिथ्यात्वी में आसमान, जमीन जितना अन्तर है । मिथ्यात्वी तो सर्वथा विपरीत वृत्ति वाला ही होता है । वह तो आत्मा मोक्षादि कुछ भी मानता ही नहीं है । अतः पाप क्षय और आत्म शुद्धि तथा सिद्धि की प्राप्ति के लिए धर्म करना चाहिए यह उसकी वृत्ति में, इच्छा और भावना में ही नहीं है । इसलिए उसने सुख प्राप्ति और दुःख निवृत्ति का लक्ष्य बना लिया है । इस लक्ष्य की पूर्ति चाहे धर्म के मार्ग से हो या चाहे जिस किसी भी मार्ग से हो, चलेगा । धर्म के मार्ग से लक्ष्यपूर्ति करने में वह इसलिए प्रयत्न करता है कि...बिना झंझट के, बिना किसी कठिनाइ, ऊपर से सामान्य प्रयत्न में ही मिल जाय तो अच्छा है क्यों निरर्थक ज्यादा परिश्रम उठाना ? कोई दुःख, संकट, दर्द, बिमारी दूर करने के लिए वैद्य, हकीमों, डॉक्टरों के पास जाकर मुझे हजारों रुपयों का पानी करना पड़ेगा, इसकी अपेक्षा धर्म के नाम पर देव, गुरु के पास जल्दी से मिल जाय तो अपना काम हो जाय, बस ।

या कभी अपराधों के कारण जेल में जाने की नौबत आती है । तब जल्दी से बचने के लिए वह देव, गुरु, धर्म का सहारा लेता है । सोचता है कि...बाहर कहीं जाऊंगा, मंत्रियों, सांसदों, पार्षदों के पास जाऊंगा या और ऊपर के अधिकारियों के पास जाऊंगा, काफी लम्बे दिनों का समय लगेगा, काफी लम्बी धन राशि का खर्च भी होगा, फिर भी शायद संदिग्धता बनी रहेगी । इसकी अपेक्षा देव, गुरु, धर्म के रास्ते, सस्ते में, और बिना किसी ज्यादा प्रयत्न के, ज्यादा धन राशि भी खर्च किये बिना, और कालक्षेप किये बिना यदि कोई चमत्कार ही जल्दी हो जाय तो मैं तो जेल से शीघ्र बच सकता हूं । ऐसी मानसिक धारणा बनाकर वह धर्म करता है ।

अब आप ही सोचिए ! कैसा और कितना स्वार्थी है । अपने स्वार्थ की सिद्धि करने के सिवाय दूसरा कोई लक्ष्य ही नहीं है । उसे न तो धर्म से मतलब है । न ही देव, गुरु के स्वरूप से मतलब है । और मान लो ऐसे दुःखी लोग आकर ऐसा धर्म वह भी इस प्रकार की अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए करते रहेंगे । इससे न तो धर्म को फायदा है, न ही देव, गुरु को कोई फायदा है, और न ही करने वाले व्यक्ति को किसी प्रकार का लाभ है । ऊपर से देव, गुरु, धर्म पर ऐसी गलत खराब छाप गिर जाएगी कि देव, गुरु, धर्म तो अपराधियों को भी उगार लेते हैं । बिना पाप कर्मों को धोए कोई भी जल्दी से शीघ्र ही दुःख के बंधन से छुटकारा पाना चाहता है । बस, छूट जाएं तो बच गए । इसलिए यह तो और भी अन्याय

होगा । पाप और अपराध करने वाले लोगों को मात्र दु:ख की सजा से बचाने या छुड़ाने के लिए ही धर्म नहीं है । दु:ख, दर्द से बचाने की अपेक्षा पाप कर्म से हमेशा के लिए छुड़ाना, बचाना ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है । इसीलिए नवकार जैसे महामंत्र में "सव्व दुक्ख पणासाणो" का पाठ न देकर "सव्व पावप्पणासणो" का पाठ दिया है । इसी कारण नवकार की महानता और सर्वश्रेष्ठता सिद्ध होती है ।

क्या भगवान पाप माफ करते हैं ?

मनुष्य अपनी-अपनी मान्यतानुसार अपने अपने मन्दिरों, गिरजाघरों या मस्जिदों आदि में जाते हैं । भगवान या देव-देवी आदि को नमस्कार करके ये विनती कर देते हैं कि... हे भगवान् ! आप बड़े हो, महान् हो... बस, मैं तो अज्ञानी बाल जीव हूँ । हे प्रभु ! आप मेरे सब पाप माफ कर दो । मुझे किसी एक भी पाप की सजा दु:ख के रूप में मत देना । मैं आपका ही छोटा नन्हा बालक हूं । क्षमा कर दो । सोचिए ! क्या मनुष्य इस प्रकार की प्रार्थना गिरजाघरों, मस्जिदों या मन्दिरों में जाकर कर दे इतने मात्र से उसके सब पाप कर्म धुल जाएंगे ? या भगवान की तरफ से वह स्वीकृति हां के जवाब में मानकर चला जाय ?

यदि ऐसा होता है...या व्यक्ति ऐसा करता है तो बहुत बड़ा अनर्थ होगा । मनुष्य दुनिया भर के पाप कर्म करता ही जाता है । कहीं किसी का खून किया और गिरजाघर में जाकर ईसा मसीह को प्रार्थना करके यह कह दिया, इतने मात्र से सन्तुष्ट होकर अपने आप को पाप से मुक्त मान लिया...और बिना दु:ख भोगने की सजा मिले ही वह अपने आपको छुटकारा पा लिया ऐसा महसूस कर ले तो कहां तक उचित होगा ? उस मनुष्य की धारणा बनती जाएगी कि...बस, ईसा मसीह को प्रार्थना की है और मेरा पाप, अपराध भगवान ने माफ कर दिया है । अब कहां सवाल उठता है दु:ख की सजा भुगतने का ? वह फिर जाएगा, फिर नया पाप करके आएगा । वापिस भगवान के पास माफी मांग लेगा । फिर मान लेगा कि भगवान ने माफ कर दिया है । इस तरह अपराधी के लिए पाप करना और माफी मांग लेने का यह सिलसिला चलता ही रहेगा । धारणा मन में स्थिर होती जाएगी । न सजा, न दु:ख, न नरक, कुछ भी भुगतने की कोई समस्या ही नहीं, ऐसी धारणा निश्चित हो जाएगी, ऐसा अपराधी पापी भगवान का भक्त कहलाएगा । दुनिया में वह प्रभुभक्त, धर्मिष्ठ का बिरुद पाएगा । शायद समाज में सन्मान पद, प्रतिष्ठा भी पाता रहे । तथा उसके मन में धारणा बन गई कि...भगवान मेरे पाप धोने वाले धोबी है । दुनिया भर के कपड़े धोबी धोता रहे । लेकिन मेरे धोबी तो भगवान है जो सब पाप धोते हैं । वाह-वाह कितने महान है भगवान ? बिना कुछ दु:ख की सजा दिये मेरे सब पाप या अपराध माफ कर दिये ।

हे पाठक ! आप ही अच्छी तरह सोचिए ! बुद्धि का उपयोग करके देखिए । इस और ऐसी बातों में या ऐसी मान्यता में कितना तथ्य लगता है ? क्या सचमुच भगवान वैसे हैं ? या मनुष्य की मान्यता या धारणा वैसी है ? क्या धर्म शास्त्र वैसी शिक्षा, उपदेश देते हैं ? या भगवान ने स्वयं आकर प्रत्यक्ष साक्षात्कार देकर वैसा वचन दे दिया है ? क्या हमेशा से ऐसा होता ही आया है ? या आज ही ऐसा हो रहा है ? क्या सभी धर्मियों की अपने-अपने धर्मों में या भगवान के विषय में मानने की ऐसी ही भावना है ? या क्या बात है ?

जी नहीं ! यह भ्रामक भ्रमणा है । न तो धर्मशास्त्रों में ऐसा लिखा है । न ही कोई भगवान ऐसा कहकर विश्वास दिलाते हैं । यदि किसी भी धर्म विशेष का धर्म शास्त्र ऐसा कहता भी है तो वह गलत कहता है । सुनते हैं कि ख्रिस्ती धर्म में ऐसी मान्यता प्रचुर मात्रा में है । यदि सचमुच ऐसी धारणा बनाई हो तो अनर्थकारी है । इससे पाप करने वाले पापी को और प्रोत्साहन मिलेगा । वह सजा के पक्ष में निश्चिंत हो जाएगा और पाप करने में कभी भी नहीं हिचकिचाएगा । पाप भीरु कभी बन ही नहीं पाएगा । जबकी पाप भीरुपना यह धर्मी बनने की पहली पात्रता है । पात्रता आए बिना वह कभी सच्चा धर्मी बन नहीं पाएगा । संसार के बाजार में वह निर्भीक बनकर अहंकार की वृत्ति में घूमता रहेगा, औरों को भी भ्रमित करता रहेगा ।

जी नहीं ! जैन धर्म में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है । न ही जैन धर्मशास्त्र कोई ऐसी स्वीकृति या अनुमति देते हैं । दूसरी तरफ जैन धर्म के चौबीसवें भगवान सर्वथा संसार से मुक्त होकर मोक्ष में चले गए हैं । वे निरंजन, निराकार होते हैं । वे पुन: संसार में कभी भी कदापि आते ही नहीं है । इसलिए किसी भी जीव के द्वारा जो भी पाप कर्म किये जाते हैं उनको माफ करने आने की कोई संभावना ही नहीं होती है । शायद आप कहेंगे कि उनके अधिष्ठायक देवी, देवता आदि अनेक होते हैं वे भगवान के उपासकों के पाप माफ कर देते होंगे । ऐसी भी मान्यता या धारणा रखना सर्वथा गलत हैं । ये देवी-देवता भी संसारी जीव हैं । देवगति के होने से क्या होता है ? वे भी सर्वथा पाप कर्म से मुक्त नहीं है ।

आखिर किसी के कह देने मात्र से कि... हां जा भाई जा तेरे सब पाप कर्म माफ करता हूं । इतना मात्र शब्द प्रयोग करने से क्या होता है ? क्या सब पाप माफ हो गए ? अच्छा, मान लो क्षण भर के लिए कि पाप माफ हो गए । लेकिन जिस किसी जीव को मार डाला है उसका क्या हुआ ? क्या मरे हुए को वापिस जिन्दा कर देंगे ? यदि मरे हुए को भगवान पुन: जिन्दा कर देते हो, और फिर किसी अपराधी को पापों की माफी देते भी हो तब तो बात विश्वसनीय सिद्ध हो सकती है । अन्यथा कैसे मानें ? यदि किसी वृद्ध माता के एक के एक इकलौते बेटे को कोई मार

दे और वह खूनी गिरजाघर में जाकर ईसा मसीह को अपना पाप कह दे और मान ले कि...मेरे सब पाप माफ हो गए हैं । फिर यदि जाकर उस वृद्ध माता को ऐसा कह दे कि... भगवान ने मेरे सब पाप माफ कर दिये हैं । ये शब्द सुनकर वह बिचारी वृद्ध माता क्या कहेगी ? अरे भाई ! तुम्हारे भगवान जो सब पाप माफ कर रहे हैं उनको कह दो कि... पहले मेरे पुत्र को जिन्दा कर के मुझे वापिस दे दें...फिर तुम्हारे सब पाप माफ करे या न करे मुझे कोई मतलब नहीं है । ये शब्द सुनकर वह खूनी क्या जवाब देगा ? और क्या ईश्वर को जाकर कहेगा ? क्या ईश्वर उस मृत जीव को वापिस जिन्दा करके जैसा का वैसा बनाकर उस वृद्ध माता को दे देंगे ? क्या ऐसा होता है या हुआ है कभी ? किस भगवान ने किसके पुत्र को जिन्दा किया है ? अरे दूसरे के पुत्र की बात तो दूर रही खुद ईश्वर को जिस तरह वधस्तंभ पर फांसी देकर मारा है, या किसी ईश्वर को तीर से मारा था, किसी भगवान को किसी तरह मारा । वे भगवान क्या अपने आप को भी पुन: जीवित कर पाए । जब वे खुद ही जिन्दे नहीं हो सकते हैं तो दूसरे किसी अन्य को कैसे पुन: जीवित करेंगे ? फिर माफी की बात पर कैसे विश्वास करना ? क्या माफी की बात को भी पोकल या अविश्वसनीय, निरर्थक ही समझना ? तो क्या ईश्वर भगवान को कैसा समझना ? समर्थ सर्व शक्तिमान कैसे समझना ? और यदि ईश्वर ने सब पाप माफ कर दिये हैं, तो फिर उस खूनी अपराधी को मृत्यु के पश्चात् नरक गति में जाकर पुन: छेदन-भेदन आदि की वेदना-सजा भुगतनी तो नहीं पड़ेगी ? या तिर्यंच गति में पशु पक्षी के जन्म धारण करके पुन: किसी जन्म में बदला तो नहीं लेना पड़ेगा ?

यदि सचमुच ईश्वर की तरफ से ऐसी माफी मिल जाती हो और जीवों को नरकादि, दुर्गतियों से बचने का फायदा मिल जाता हो तो कितना फायदा हो सकता है ? तो फिर आज नरक गति में 1 भी जीव नहीं होता । सातों नरकों में समस्त पृथ्वियां निर्जन सुनकार पड़ी रहती । परमाधामी राक्षस हिंसक वृत्ति वाले सब निकम्मे बैठे रह जाएंगे । इसी तरह तिर्यंच पशु पक्षी की गति में भी कोई नहीं रहता । वह भी खाली हो जाती । तथा सांप-नेवले का वैमनस्य भी देखने को नहीं मिलता । और न ही मनुष्य गति में भी किसी के जीवन में ऐसा कोई दु:ख, दर्द, वेदना, वध, बंध आदि देखने को ही नहीं मिलता । लेकिन आज भी समस्त संसार में यह स्थिति सदा दृष्टिगोचर हो रही है । कृत कर्मों का फल सभी भुगत रहे हैं । यदि आज यहां कोई खून आदि किसी भी प्रकार का अपराध करे और पुलिस के द्वारा यदि पकड़ा जाय और न्यायालय में न्यायाधीश समक्ष उसे उपस्थित किया जाये ऐसे समय में सजा सुनाते समय यदि अपराधी यह कह दें कि मुझे तो ईश्वर ने माफ कर दिया है । मेरे सब अपराध-गुने सुनकर संपूर्ण माफ कर दिया है । अत: मैं किसी भी प्रकार की सजा भुगतने के लिए तैयार नहीं हूं । मैं जेल में नहीं जाऊंगा । जब सर्वोपरि ईश्वर परमात्मा ने मुझे माफ कर दिया है तब तुम ईश्वर के सामने कौन होते हो ? क्या तुम ईश्वर से भी बड़े महान हो ? ऐसे समय में न्यायाधीश क्या जवाब देगा ? स्पष्ट कह देगा कि बन्द करो तुम्हारा यह बकवास । और पुलिस को हुकम करेगा कि जाओ...ले जाओ इसे डाल दो जेल में । 10 वर्ष तक जेल में कड़ी सजा देना । जब यहां धरती का मानव अपराधी के भारी अपराधों को माफ करने के लिए तैयार नहीं है, तो फिर ईश्वर कहां से माफ करेगा ? व्यक्ति की खुद की भ्रमणा है । बस, उसने कह दिया और खुद ही मान लिया कि ईश्वर ने मुझे माफ कर दिया है । इससे माफी मिल जाती है ? 84 लक्ष योनियों में परिभ्रमण करते हुए आज चारों गतियों में कितने भयंकर कक्षा के दु:ख वेदना आदि जीव भुगत रहे हैं ? यह सब तथा परस्पर दुश्मनी, वैमनस्य आदि पूर्व कृत कर्मों का ही फल है । जो जीव भुगत रहा है ।

ईश्वर-भगवान जब माफ कर देता है तब फिर फल देने के रूप में दीन-दु:खी, गरीब, भीखारी आदि की सृष्टि क्यों निर्माण करता है ? या सृष्टि निर्माण के समय जीवों के पुण्य, पाप को देखकर क्यों फल देने के रूप में सुखी-दु:खी ऐसी विषम सृष्टि निर्माण करता है ? इससे यह प्रतीत होता है कि...ईश्वर के माफ करने के बाद भी जीवों के पाप रह गए हैं जिनका फल जीवों को भुगतना ही पड़ता है ।

दूसरी तरफ श्रीमद् भागवद् गीता में लिखा है कि 'कृतं कर्म अवश्यमेव भोक्तव्यं, कल्पकोटि शतैरपि' किये हुए कर्म अवश्य ही भुगतने पड़ते हैं, चाहे करोड़ों कल्पों का काल बीत जाय, तो भी फल के रूप में सजा आदि भुगतनी तो पड़ेगी ही । बच तो नहीं सकते । प्राय: ये शब्द श्री कृष्ण के बताए जाते हैं । लेकिन कहीं भी ईश्वर सब पापों को माफ कर देता है ऐसे पाठ का उल्लेख मिलता नहीं है । यह जीवों की अपनी बनाई हुई मनघडंत विचारधारा लगती है । अत: अब सच्चे सम्यग् मार्ग पर आना अत्यन्त आवश्यक है ।

पंच परमेष्ठियों को नमस्कार से पापों का नाश कैसे ?

जैन धर्म का महामंत्र नवकार है । इसे समस्त जैन दर्शन एवं धर्म का सार बताया गया है । अत: समस्त जैन दर्शन और धर्म इस एक महामंत्र में सारांश रूप से प्रतिबिम्बित हुआ है । तथा इस महामंत्र नवकार के सिद्धान्तों का प्रतिबिम्ब समस्त जैन दर्शन और धर्म पर पड़ा है । नवकार एक ऐसा महामंत्र है जो सिद्धान्तों से भरपूर है । इसीलिए नवकार के सिद्धान्त के आधार पर जैन धर्म चल रहा है । इसी तरह जैन धर्म दर्शन के सिद्धान्तों के अनुरूप नवकार की साधना चल रही है । इस तरह दोनों एक दूसरे के पूरक है । समानान्तर है । सहयोगी है । नवकार महामंत्र में सिद्धान्त यह दिया है कि आप नमस्कारादि जो भी धर्म करो जितना भी धर्म करो वह सब पापों के नाश के लिए ही करो । सब पाप कर्मों का

नाश करना ही सबसे बड़ा साध्य-लक्ष्य है । इसी लक्ष्य से धर्म करना चाहिए । धर्माचरण की सर्व प्रथम शुरुआत नमस्कार से होती है, तथा क्रमशः धर्म की गुणवत्ता बढ़ती-बढ़ती और आगे प्रबल होती ही जाय तो विशेष रूप से पाप कर्मों की निर्जरा का प्रमाण भी बढ़ता ही जाएगा । इसका आधार साधक की नमस्कार के गुणवत्ता पर निर्भर करता है ।

याद रखिए कि...सब पाप कर्मों के क्षय-नाश से बढ़कर दूसरा कोई लक्ष्य होता ही नहीं है । किसी प्रकार की याचना या, प्रार्थना इसमें नहीं है । स्व आत्मा द्वारा कृत पाप कर्मों का सर्वथा नाश करना, यह मोक्ष प्राप्ति की दिशा में आगे बढने की प्रक्रिया है । निश्चित समझिए कि...पाप कर्मों के नाश-क्षय के बिना मोक्षमार्ग दूसरा कोई है ही नहीं । इसलिए नवकार महामंत्र को मोक्ष साधक, मुक्ति दायक, सिद्धि कारक महामंत्र कहना सर्वथा उचित ही है । न कहें तो दोष लगता है । अतः अन्य मंत्रों की तरह यह इष्ट साधक मंत्र नहीं है अर्थात् क्षुद्र कक्षा के इष्ट-इच्छित लक्ष्यों का साधक यह महामंत्र नहीं है । अतः इसे न तो वैसा बनाना ही चाहिए और न ही वैसा मानना चाहिए ।

पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करने वाला नवकार का छट्ठा पद ऐसा नहीं कहता है कि—हे पंच परमेष्ठी भगवन्त आप मेरे सब पाप माफ करो । या ऐसी कोई याचना भी नहीं है उसमें । एक मात्र नमस्कार ही है नवकार में । अन्यों के जैसी धारणा बनाकर नहीं रखी है । तथा सामने 7वें पद में सब पाप कर्मों का नाश करने की साफ-साफ बात की गई है । इसके सिवाय दूसरे किसी दुन्यवी लक्ष्य की विचारणा नहीं की गई है इसमें । जिसमें दुःख दर्द की निवृत्ति, संकट, विघ्नों का टालना, सुख-समृद्धि की प्राप्ति आदि किसी भी प्रकार की ऐसी कोई याचना नवकार में है ही नहीं । एक मात्र सब पापों का नाश करने की ही बात है ।

क्या नमस्कार से पापनाश संभव है ?

नमो भाव यह विनय गुण प्रदर्शक है । शरीर द्वारा नमन की जो क्रिया की जाती है वह नमो भाव दर्शक है । आत्मा का गुण विनय है । अन्तरात्मा में रहने वाले इस गुण को बाह्य जगत् में लोगों के समक्ष प्रगट करने के लिए जो झुकने की क्रिया हो वह काया के द्वारा की जाएगी । उसे कायिक नमस्कार कहेंगे । लेकिन साथ ही साथ मन के द्वारा भाव पूर्वक किया जाय तब वह फलदायी बनता है । आत्मा के पास, 1. मन, 2. वचन और 3. काया ये तीन साधन है । इन तीनों साधनों द्वारा आत्मा अपनी अभिव्यक्ति प्रगट करती है । मन भावों को अभिव्यक्त करने में सहायक साधन है । वचन शब्दों के प्रयोग से विचारों को व्यक्त करता है । काया मानसिक भावों और वाचिक शब्दों के अर्थ के अनुरूप क्रिया व्यक्त करती है । इन तीनों में एक रूपता, एक वाक्यता, समानरूपता रहनी ही श्रेष्ठ है, और यदि विषमता रहे तो निरर्थक जाता है । उदाहरणार्थ मन अच्छे भाव प्रगट करे और काया कुछ भी साथ न दे तो लाभ की मात्रा घटती है । या फिर काया अपनी क्रिया करती रहे और मन कुछ अलग ही विचारों में भटकता रहे...किसी भाव प्रगट ही न करे तो लाभ की मात्रा नगण्य रह जाएगी ।

मन, वचन और काया इन तीनों का योग बनना चाहिए । ध्यान रखिए कि...शुभ भाव में, शुभ प्रवृत्ति में यदि शुभ योग बनेगा तो शुभ कर्म का बंध आत्मा पर होगा । और यदि अशुभ भाव, अशुभ प्रवृत्ति आदि में योग बनेगा तो अशुभ कर्मों का बंध होगा । शुभ कर्म को पुण्यरूप कहा है और अशुभ कर्म को पाप रूप कहा है । यदि आत्मा संकल्प पूर्वक सर्व पाप कर्मों का क्षय-नाश करने की भावना से तदनुरूप प्रवृत्ति क्रिया धर्माचरण करे तो उससे कर्म क्षय-नाश होगा । यह साधक पर निर्भर करता है कि उसे क्या करना है ?

पाप कर्म नाशक नमस्कार—

नवकार महामंत्र में सब पाप कर्मों का नाश-क्षय करने का लक्ष्य बताया है । अन्य कोई प्रयोजन नहीं बताया है । लक्ष्य-साध्य के रूप में सब पाप कर्मों का नाश बताया है, और उपाय के रूप में नमस्कार बताया है । नमस्कार से ही पाप कर्मों का नाश करना है । यहां मुख्य आधार नमस्कार को बताया है । यद्यपि कर्म क्षय करने के अनेक रास्ते बताए हैं । उनमें एक उपाय नमस्कार का भी बताया है । नमस्कार कर्म क्षय के उपायों में सबसे आसान उपाय है, सरल है, सर्व साध्य है । आबाल-गोपाल सभी आसानी से नमस्कार कर सकते हैं । यह बात जरुर सार्थक है कि....नमस्कार की गुणवत्ता और भावपूर्णता जितनी अधिक होगी उतनी ही पाप नाश की-निर्जरा की मात्रा भी ज्यादा होगी, और इससे विपरीत होने पर परिणाम भी विपरीत ही आएगा ।

शायद आप ऐसा प्रश्न करेंगे कि...यदि नमस्कार से पाप कर्मों का क्षय-नाश होता हो तो...आज दिन तक अनन्त जन्मों में हमने कितने नमस्कार किये ? जरुर अनन्तानन्त नमस्कार कर चुके हैं । तब तो फिर हमारे सब पाप कब के नष्ट हो चुके होते । तो फिर अब तो कोई पाप आत्मा पर अवशिष्ट बचना ही नहीं चाहिए । लेकिन अनन्तानन्त नमस्कार करने के बावजूद आज भी अनेक पाप कर्मों का ढेर आत्मा पर पड़ा है इसका अहसास अनेकों को हो रहा है । तो नमस्कार से पाप कर्मों का क्षय होता है, इसी में संदेह होता है । अतः कैसे यह निश्चित रूप से कहा जाय कि नमस्कार से पाप कर्मों का नाश होता है । इसलिए नमस्कार के तरीके, उसके पीछे का आशय, भावना, नमस्करणीय तथा नमस्कार की रीत

आदि कई बातें ऐसी है जिनका विचार करना आवश्यक है । जबकि पापों के नाश का आधार नमस्कार पर है तो नमस्कार का विचार बड़ी गहराई में जाकर करना ही चाहिए ।

भिन्न भिन्न लक्षी नमस्कार—

नमस्कार करने वाले नमस्कर्ता होते हैं । तथा जिसको नमस्कार किया जाता है वे नमस्करणीय कहलाते हैं । नमस्कार क्रिया है, क्रिया का प्रयोजन अवश्य ही होता है । क्रिया नमस्कार करने की है जो उभय संबंधी है । नमस्कार की क्रिया करने वाले कर्ता से भी संबंध रखती है और जिसको नमस्कार किया जाता है उन नमस्करणीय की तरफ भी लक्ष्य रखती है । इन उभय संबंधी द्वि संयोगी चतुर्भंगी इस प्रकार हो सकती है—

1. नमस्करणीय उच्च श्रेणी के हैं और नमस्कार निम्न कक्षा का है ।
2. नमस्करणीय उच्च श्रेणी के हैं और नमस्कार भी उच्च कक्षा का है ।
3. नमस्करणीय निम्न श्रेणी के हैं और नमस्कार उच्च कक्षा का है ।
4. नमस्करणीय निम्न श्रेणी के हैं और नमस्कार भी निम्न कक्षा का है ।

1. नमस्करणीय महापुरुष पंचपरमेष्ठी 1. अरिहंत, 2. सिद्ध, 3. आचार्य, 4. उपाध्याय तथा 5. साधु है । ऐसे सर्वोच्च कक्षा के पंच परमेष्ठियों को किया जाता साधक का नमस्कार बिल्कुल निम्न स्तर का हो, उतरती कक्षा का जैसा-तैसा हो उससे पाप कर्मो के नाश का परिणाम कहां से आएगा ? अत: इसमें 50% का आधा भाग काफी ऊंचा कि...नमस्करणीय महात्मा ऊंचे मिले हैं । लेकिन उनकी ऊंचाई या महानता, श्रेष्ठता न समझ सकने वाला साधक अपने पक्ष में नमस्कार करने की कक्षा ऊंची नहीं रख पाया । बिल्कुल घटिया स्तर का नमस्कार किया । पर गुणों का स्मरण, न भावों की श्रेष्ठता । ऐसे नमस्कार करने पर भी सर्व पाप कर्मो के नाश का परिणाम नहीं ला सका ।

2. दूसरे भंग में नमस्करणीय महापुरुष पंच परमेष्ठी भगवन्त जितनी ऊंची कक्षा के महान् है उतने ही ऊंची कक्षा के नमस्कार साधक ने गुणों के लक्ष्य के साथ भाव पूर्वक किये । निर्जरा के लक्ष्य से करने पर पाप कर्मों का नाश भी काफी अच्छा हुआ । इसमें 50% + 50% = दोनों पक्ष में शत प्रतिशत रहा ।

3. तीसरे भंग में नमस्करणीय पंच परमेष्ठी मिले ही नहीं । बात भी सही है...कर्मशास्त्र कहता है कि...मिले हुए महान पंच परमेष्ठी की उपासना की ही नहीं ? ऊपर से उनकी उपेक्षा की, परिणाम यह आया कि जन्मान्तर में सर्वोच्च कक्षा के पंच परमेष्ठी भगवन्तों की प्राप्ति ही नहीं हुई । रागी-द्वेषी, देव-गुरुओं की ऐसी प्राप्ति हुई जो निम्न स्तर के रहे । और साधक अपनी तरफ से उन्हें बड़ी ऊंची कक्षा के नमस्कार करता रहा । पाप नाश करने के भाव काफी ऊंचे रखें, जाप साधना एक पैर पर खड़े रहकर बड़ी एकाग्रता से किये लेकिन सामने रागी-द्वेषी देवगुरु ही ऐसे निम्न स्तर के थे कि परिणाम आया ही नहीं ।

4. चौथे भंग की बात तो सर्वथा घटिया कक्षा की है । एक तरफ देव, गुरु, धर्म की प्राप्ति उसे सर्वथा निम्नस्तर की हुई है, और वैसे ही कर्ता साधक के मन में दु:ख निवृत्ति और सुख प्राप्ति का ही लक्ष रहता है । अब पाप नाश करने का तो विचार मात्र भी नहीं है । पाप प्रवृत्ति और पाप कार्य की निर्विघ्न सिद्धि तथा पाप करणी से भी सुख प्राप्ति का लक्ष रखते हुए बीच में आते विघ्न, संकटों को टालने के लिए नमस्कारादि करके देव-गुरुओं के समक्ष इसकी प्रार्थना करता रहेगा । यहां तक कि...दुनिया भर के अपराध करके भी सजा भुगतने के समय जेल आदि में जाने का अवसर आने पर...अब देव, गुरु, धर्म का आश्रय लेकर नमस्कारादि करता हुआ जेल से बचने के लिए हजार उपाय करता रहेगा । इस तरह नमस्करणीयादि भी निम्न स्तर के मिले हैं और उन्हें नमस्कारादि भी घटिया कक्षा का स्वार्थ साधक भावना का करता रहेगा । ऐसी मनोवृत्ति से चलता रहेगा ।

इस प्रकार के इन चार कक्षा के भेदों की वृत्ति वाले जीव संसार में दृष्टिगोचर होते हैं । इनमें एक मात्र दूसरे क्रमांक वाला साधक ही सर्वश्रेष्ठ कक्षा का है । वही आदर्श है । साध्य की सिद्धि कर पाता है । शेष तीन भेदों वाले हाथ से अवसर गुमाते हैं । अत: मात्र नमस्कार ही बलवत्तर कक्षा का होना चाहिए ऐसा नहीं है, नमस्करणीय भी सर्वोच्च कक्षा के होने पर ही परिणाम आता है । जैसे इसी बात को व्यवहारिक जीवन के उदाहरण से समझ सकते हैं—बाजार में मिलती खाद्य सामग्री अनाज सब्जियां आदि मिल जाने के बावजूद भी बनाने वाले पर निर्भर करता है । यदि रसोई बनाने वाला कुशल चतुर हो तो संभव है कि...उन खाद्य सामग्रियों में से ऊंचे स्तर की रसवती निर्माण कर सकता है । अन्यथा ऊंची खाद्य सामग्रियों को प्राप्त करके भी रसोई पकाने वाला चतुर कुशल होशियार न हो तो बिगाड़ भी सकता है । ठीक इसी तरह नमस्कारकर्ता और नमस्करणीय के विषय में भी समझना चाहिए ।

पहले साध्य का निर्णय करें—

साधना के विषय में साध्य चतुष्टयी भी समझने जैसी है— 1. साध्य, 2. साधना, 3. साधक और 4. साधन इस चतुष्टयी में इन चारों अंगों से विचारणा की गई है। साधना करके साधक जो फल पाना चाहता है, या जिस उद्देश्य-लक्ष्य से साधना करता है उसे साध्य कहते हैं। जिन साधनों की सहायता से साधक साधना करता है वे साधन है। बाह्य साधन उपकरण के रूप में उपयोगी उपकारी होते हैं। साध्य की प्राप्ति में निरन्तर लगा हुआ गुणवान् साधक कहलाता है। तथा साध्य की सिद्धि प्राप्त करने के लिए साधनों की सहायता से साधक जो कुछ करता है उसे साधना कहते हैं।

इस चतुष्टयी में शुद्ध चतुष्टयी और अशुद्ध चतुष्टयी दोनों प्रकार के भेद होते हैं। शुद्ध और अशुद्ध का आधार साध्य पर है। क्योंकि साधना साध्य के आधार पर होती है। यदि साध्य-अन्तिम लक्ष्य अशुद्ध गलत होगा तो निश्चित समझिये कि साधना भी अशुद्ध गलत ही होगी। और यदि साध्य सही शुद्ध निर्धारित किया गया है, तथा उसकी प्राप्ति करने के लिए जो साधना की जाएगी वह भी सुविशुद्ध कक्षा की ही की जाएगी तब वह भी शुद्ध होगी और फल प्राप्ति होगी।

यदि सर्वप्रथम हम मोक्ष प्राप्ति का लक्ष्य-साध्य निर्धारित कर लेते हैं तब जो भी साधना साधक के द्वारा की जाएगी वह समस्त साधना मोक्ष प्राप्ति की दिशा में ही आत्मा को अग्रसर करती रहेगी। अत: नवकार महामंत्र में इस साध्य चतुष्टयी का विचार करें...पदों के आधार पर स्पष्टीकरण हो जाएगा। 'नमो सिद्धाणं' इस दूसरे पद में सिद्ध भगवन्त जो मोक्ष में बिराजमान हैं, उनकी तरफ दृष्टि करके साधक को मोक्ष प्राप्ति का साध्य निश्चित कर लेना चाहिए। अब ऐसे मोक्ष रूप साध्य की प्राप्ति के अनुरूप साधना का निर्देश कर रहा है सातवां पद... "सव्व पावप्पणासणो" सब पापों का नाश करने की साधना से ही मोक्ष प्राप्ति होनी संभव है। अत: साधक को कैसा बनना होगा ? "नमो लोए सव्व साहूणं" के पांचवें पद से अढाई द्वीप रूप लोक क्षेत्र में मोक्ष रूप साध्य को पाने के लिए सुयोग्य साधक साधु ही है, क्योंकि साधु ही एक मात्र ऐसा है जिसने सब पाप कर्म के सभी रास्ते बन्द कर दिये हैं, और पूर्वसंचित सभी पाप कर्मों का नाश (क्षय) कर रहा है। और नमो की साधना प्रधान रूप से है। ऐसे भाव नमो (नमस्कार) करने के लिए साधना अरिहंतादि पांच परमेष्ठी भगवन्त की आराधना है। जिनका निर्देश नवकार का छट्ठा पद कर रहा है। "एसो पंच नमुक्कारो" में ये अरिहंतादि पांच परमेष्ठी भगवन्त जो है ये सर्वोत्कृष्ट साधन के रुप में है। साधन माध्यम स्वरूप है, और इनको किया हुआ नमस्कार साधना स्वरूप है।

हमें सर्व पाप कर्म नाश करने की जैसी साधना करनी है वैसी साधना करके अर्थात् सर्व पाप कर्मों का नाश सम्पूर्ण सर्वथा क्षय करके, पाप रहित-कर्म रहित हुए हैं ऐसो को ही नमस्कार करके साधक भी पाप कर्मों का नाश-क्षय कर सकेगा। क्या नमस्कार करने मात्र से पाप कर्मों का नाश हो जाएगा ? नमस्कार यह धर्म रूपी महल का प्रथम प्रवेश द्वार है। आगे महल काफी विशाल है। उसमें आधार स्तंभ आदि अनेक विभाग है। ठीक इसी तरह नमस्कार यह प्रवेश द्वार की तरह आगे प्रथम चरण की साधना है। आगे पंचाचार के समस्त धर्म की साधना है। जो पापों का नाश कराने में सहायक साधन है। यह भी अच्छी तरह याद रखिए ! हम जिनको नमस्कार कर रहे हैं वे सर्वोच्च कक्षा के पाप-कर्म रहित ही होने चाहिए। अन्यथा ऐसे रागी-द्वेषी पाप कर्म सत्ता में लेकर बैठे हुए देवी-देवता सैकड़ों बैठे हैं। उनको नमस्कार करने से न तो वैसे पाप कर्मों का क्षय होगा, और न ही मुक्ति संभव होगी। ऐसा हमारी आत्मा ने अनन्त बार कर लिया है। लेकिन कोई परिणाम नहीं आया, और साध्य की सिद्धि नहीं हुई। अब बहुत कुछ सोच समझकर इन पंच परमेष्ठियों को नमस्कार किया जाय और सब पाप कर्मों का क्षय सर्वथा संपूर्ण रूप से करके मुक्ति की प्राप्ति करें यही शुभकामना।

नवकार से दुःख नाश करें ? कि पाप का नाश ?

—पंन्यास अरुणविजय महाराज

अनादि-अनन्त काल से जीव दुःख से डरता आया है, और सुख प्राप्ति की चाहना रखता आया है । स्वाभाविक है कि जो जिससे डरता है, वह उससे दूर भागता है । लेकिन मनुष्य शायद दुःख से डरकर जितने दूर भागने की कोशिश करता रहा उससे दुगुनी तीव्र गति से दुःख भी इन्सान का पीछा पकड़ता रहा है । परिणाम स्वरूप अनन्त काल में भी मानव दुःख से अपने आपको सर्वथा स्वतंत्र अलग कर नहीं पाया । आज भी दुःख के साथ ही समस्त मानव जाति जी रही है । इसीलिये मानव दुःख से बचने के लिए, दुःख टालने और सुख शान्ति पाने के लिए सदा उपाय करता आया है । यद्यपि उसके सभी उपाय कामयाब नहीं हुए हैं । फिर भी मानव ने पुरुषार्थ नहीं छोड़ा है । ऐसे पुरुषार्थ करते समय नवकार जैसे महामंत्र का भी दुःख निवृत्ति के लिए उपयोग कर रहा है । यह कहां तक उचित है ? इसकी समीक्षा इस लेख में करते हैं ।

महामंत्र नवकार की महानता का आधार किस पर है ? दुःखनाश पर या पाप नाश पर ? 99% लोग दुःख नाश करने के लिए मंत्र का उपयोग करते हैं । करना चाहते हैं । लक्ष्य ही दुःख नाश का बना दिया है । जबकि आपको यह जानकर अनहद आश्चर्य होगा कि...नवकार महामंत्र के फल सूचक 7वें पद में "सव्व पावप्पणासणो" का यह स्पष्टार्थ है कि... "सभी पापों का नाश हो ।" हमें भूल से भी "सव्व दुक्खपणासणो" का पद नहीं बना लेना चाहिए । या मान लें । या न होते हुए भी लक्ष्य या भाव वैसे बना लें तो कितना भारी दोष लगेगा ? यदि नवकार में दुःख नाश सूचक ऐसा पद या ऐसा अर्थ या ऐसे शब्द भी होते और हम वैसा भाव बनाते या, उस अर्थ में ही नवकार की मंत्र साधना करते, या वैसे की आकांक्षा करते तो बात अलग थी । लेकिन नवकार में वैसा दुःख नाश सूचक एक अक्षर भी नहीं है । न ही वैसा फल दर्शक पद भी बताया है ।

सम्यग् दर्शन की व्याख्या का भी कभी विचार करें क्या है और कैसी है ? संक्षेप में— "यथार्थ दर्शनं सम्यग् दर्शनं" । जो जैसा है उसे उसी अर्थ में वैसा ही मानना यह सत्य दर्शन है । और जो जैसा नहीं है उसको भी वैसा मान लेने पर मिथ्या दर्शन का दोष लगेगा । वस्तु या पदार्थ को स्वरूप का होना और हमारा मानना । इस तरह होने और मानने के दोनों के द्विक संयोगी विधेय-निषेध भाव के 4 भंग होते हैं । इस चतुर्भंगी में कौन सा भंग सही है और कौन सा गलत है ? यह हमें ढूंढकर निकालना है ।

1. जैसा है उसे वैसा नहीं मानना ।
2. जैसा है उसे वैसा ही मानना ।
3. जैसा नहीं है उसे वैसा मान लेना ।
4. जैसा नहीं है उसे वैसा नहीं मानना ।

प्रस्तुत विषय नवकार महामंत्र का है अतः हम यहां नवकार के विषय में उदाहरण के रूप में चारों भंग घटाकर देख लेते हैं ।

1. नवकार जैसा पाप नाशक है, उसे वैसा नहीं मानना । नहीं-नहीं... नवकार से भी क्या कोई पाप नष्ट होते होंगे ? यह भी क्या बात है ? और उसमें भी पंच नमस्कार से सब पापों का नाश कैसे संभव हो सकता है ? ऐसी शंकास्पद विचारधारा निषेधात्मक बन जाती है ।

2. दूसरे भेद में जैसा है उसे वैसा ही मानने की बात है । यह सही सम्यग् भंग है । नवकार जैसा पाप नाशक है उसे वैसा पाप नाश करने वाला ही मानना । सत्य यही है कि...नवकार के 7वें पद में "सव्व पावप्पणासणो" में सब पापों का नाश हो ऐसा गर्भित अर्थ स्पष्ट है । इतने सब पापों का नाश किससे होगा ? क्या करने से होगा ? इसका उत्तर छट्ठा पद बराबर देता है— "एसो पंच नमुक्कारो" इन पांच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने से सब पापों का नाश होता है । अतः इस भेद की दृष्टि वाले की विचारधारा बिल्कुल सही है । यह जो जैसा स्वरूप वाला है उसे बराबर वैसा ही मानता है ।

3. तीसरा भंग मिथ्यात्वी का है । यह विपरीत वृत्ति वाला है । जैसा नहीं है फिर भी उसे वैसा मान लेता है । उदाहरणार्थ नवकार दु:ख नाशक नहीं है फिर भी उसे दु:खनाशक मान लेता है, और एक बार वैसी मान्यता बना लेने के पश्चात् अब आचरण भी वैसा ही करता है । जब-जब दु:ख आया कि वह नवकार का उपयोग करने लग गया । ऐसे लोगों को नवकार से मतलब नहीं है, उनको एक मात्र अपने दु:खों का नाश हो उसी से मतलब है । अत: विपरीत मिथ्या वृत्ति वाले ये लोग नवकार का स्वरूप भी विपरीत कर देते हैं ।

4. चौथे भंग की दृष्टि वाला फिर भी काफी समझदार है । वह विधेयात्मक नहीं तो निषेधात्मक दृष्टि से ही सही पुन: सत्य के समीप आता है । दूसरे भंग वाला विधेयात्मक (Positive) विचार धारा वाला है अत: जैसे को वैसा मानकर ही चलता है । जबकि चौथे भंग वाला यह (Negetive) विचारा धारा- निषेधात्मक वृत्ति वाला है । निषेध जरुर करता है लेकिन सत्य का स्वरूप समझकर निषेध करता है । आखिर जो जैसा नहीं है उसी का निषेध करके साफ ना कहता है कि वह वैसा नही है । नवकार मात्र दु:ख नाशक नहीं है इसलिए दु:खनाशक मानना भी नहीं चाहिए । ऐसे निषेधवृत्ति वाले जीव को भी अच्छा ही कहना चाहिए । यह भी सत्य वृत्ति वाला सत्य शोधक सत्य का अन्वेषक है । अत: सम्यग् दृष्टि हैं ।

उपरोक्त 4 भेदों में से दूसरा और चौथा ये दोनों सम्यक्त्वी के सत्यान्वेषी भेद है । जबकि पहला और तीसरा ये दोनों विपरीत वृत्ति वाले मिथ्यावृत्ति के भेद है । अत: नवकार के उपासक-साधक को...उपरोक्त चारों भेदों का स्वरूप बहुत अच्छी तरह समझकर जो सुयोग्य दो भेद है वैसी सम्यग् दृष्टिवाला बनना चाहिए । यदि सुयोग्य दृष्टि नहीं बना सके तो मिथ्यादृष्टि में ही रहकर नवकार का भी दुरूपयोग करते रहेंगे ।

जानना-मानना और आचरना तीनों ही सम्यग् हो—

"सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग:" सम्यग् दर्शन = सच्ची श्रद्धा अर्थात् सत्य स्वरूप ही यथार्थ मानना, ठीक तदनुरुप सम्यग् सत्यस्वरूप ही जानना और आचरण भी वैसा ही सम्यग् सत्य के अनुरूप होना चाहिए । यही मोक्ष का मार्ग है । इसी मार्ग पर अग्रसर होने वाले साधक को मोक्ष की प्राप्ति संभव है । गन्तव्य साध्य जो हो उसी के अनुरूप जो मार्ग हो उसी पर जो सुव्यवस्थित चले वही उस गन्तव्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है । अन्यथा नहीं । सम्यग् दर्शन = सही मानना, सम्यग् ज्ञान = सही सत्य स्वरूप जानना, और सम्यग् चारित्र = सही यथार्थ आचरण करना । ये तीनों ही मोक्ष के अनुरूप है । अत: मोक्ष रूप साध्य की प्राप्ति इन तीनों की सम्यग् साधना से ही संभव होगी ।

प्रस्तुत नवकार के विषय में भी यही बात समझनी है । महामंत्र नवकार में "सव्व पावप्पणासणो" सब पापों का नाश करने का ही लक्ष्य बताया है । और पाप नाश से ही मोक्ष की प्राप्ति होगी । दु:ख नाश की बात यद्यपि नवकार में की ही नहीं है, फिर भी यदि मान लो कि... दु:ख नाश की ही दृष्टि से हम नवकार की साधना करेंगे तो पाप क्षय कैसे होगा ? और दु:ख नाश से मोक्ष की प्राप्ति भी कैसे होगी ? क्योंकि मोक्ष प्राप्ति के लिए दु:ख नाश जरुरी नहीं है । पाप नाश नितान्त आवश्यक है । दु:ख के रहने पर भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं रुक सकती है । लेकिन पापों के रहने पर मोक्ष की प्राप्ति सदा के लिए रुक जाती है । इसलिए पाप नाश का लक्ष्य रखना अत्यन्त आवश्यक है । दु:ख नाश का लक्ष्य आवश्यक नहीं है । मोक्ष का दु:ख के साथ कोई संबंध नहीं है, परन्तु पाप के साथ अनिवार्य संबंध है । पापों के रहते तो मोक्ष की प्राप्ति कदापि संभव नहीं है । इसलिए नवकार को दु:खनाशक मानने की अपेक्षा पाप नाशक मानने में ही नवकार की गरिमा और महानता है । वही स्वरूप मानना चाहिए । वैसा ही पापनाशक के रूप में जानना चाहिए और उसी रूप में आचरण भी करना चाहिए । इसलिए नवकार महामंत्र का आचरण क्षुद्र दु:खादि के नाश के लिए करना यह सम्यग् साधना का मार्ग नहीं है । सम्यग् मानने-जानने के साथ-साथ आचरण भी सम्यग् ही होना चाहिए ।

महानता किसमें ? दु:ख नाश में या पाप नाश में ?

लाखों मंत्रों में नवकार ही एक ऐसा मंत्र है जिसे महामंत्र कहते हैं, और शेष अनेक मंत्र है उनमें से किसी अन्य मंत्र को न कहते हुए एक मात्र 'नवकार' को ही जब महामंत्र कहते हैं तब इसकी महानता को सिद्ध करने के लिए आधारभूत कारण कुछ होंगे तो सही ? उनकी भी विचारणा करनी ही चाहिए । मेरी दृष्टि से महानता सिद्ध करने के लिए विशिष्ट कारण है कि—

1. नवकार के फल के रूप में "पापों का नाश" का लक्ष्य रखा है । याद रखिए दु:ख अल्पकालिक है । सामान्य है । प्रमाण में थोड़ा सा ही है । जबकि इसके सामने पाप का प्रमाण देखने जाएं तो दु:ख से तो लाखों गुना ज्यादा है । इतने लाखों गुना ज्यादा पापों के सामने दु:ख तो नाम मात्र लगता है । इसी तरह पाप दीर्घजीवी है और दु:ख अल्पजीवी है । तथा पाप जितना आत्मा का नुकशान करता है उतना दु:ख कहां नुकशान करता है ? दु:ख के द्वारा नुकशान किया जाता है वह बाह्य नुकशान है । बाहरी में शारीरिक, मानसिक आर्थिक और पारिवारिक आदि आते हैं ।

जबकि पाप कर्म तो सीधे आत्मा का आन्तरिक नुकशान करते हैं । पाप कर्म आत्म गुणों का घात करते हैं । अतः साधक को चाहिए कि वह दुःखों को टालने की चिन्ता करने के बजाय पाप कर्म को जड़मूल से क्षय करने का लक्ष्य रखें ।

अनादि कालीन लक्ष्य में परिवर्तन—

अनादि काल से आत्मा मिथ्यात्व से ग्रस्त है । निगोद से लेकर एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के रूप में जितने अनन्त जन्म बीताए वे सब मिथ्यात्व में ही बिताए हैं । मिथ्यात्व के घेरे में फंसे हुए जीव को पाप की पहचान ही नहीं होती है । पापों का ख्याल ही नही रहता है । अतः पापों का नाश करने का लक्ष्य ही नहीं रहता है । अनादि मिथ्यात्व के काल में भी जीव देहरागी, देहाध्यासी, पुद्गलानन्दि तो बराबर बना हुआ ही था । अतः देह के राग के समय देह विषयक शारीरिक दुःख, पौद्गलिक पदार्थों आदि का दुःख थोड़ा भी उसे ज्यादा लगता है । इसलिए दुःख के लक्ष्य की बात या उसके नाश की बात भी उसे सीखानी नहीं पड़ती है । जी हां, वह तो जन्मजात उसके साथ ही है । अपने सब प्रकार के कार्यों में दुःख का नाश करने की समस्या को हल करने के कार्य को जीव अग्रिमता देता रहा है । लेकिन पाप कर्मों का भी नाश करना चाहिए, इसका लक्ष्य तो आता ही नहीं है ।

जब जीव सम्यग् दर्शन पाएगा, अनादि मिथ्यात्व में से बाहर निकल कर सम्यक्त्वी बनेगा तब जाकर पापों को पहचान पाएगा । पाप कर्मों के रूप में आत्मा के साथ लगे हुए हैं । इसलिए जब आत्मा को पहचानेगा तब पाप कर्मों का पता चलेगा । अन्यथा आत्मा की पहचान के अभाव में देह राग ही इतना भारी रहता है कि देहाध्यास की वृत्ति से ऊपर उठना ही उसके लिए असंभव-सा है । अतः मिथ्यात्वी देहाध्यासी, देहलक्षी, देहरागी ज्यादा रहता है । जबकि सम्यग् दृष्टि आत्मलक्षी कहलाता है । देहराग से ऊपर उठकर अब आत्माभिमुखी, आत्मानुरागी बनता है वह सम्यग् दृष्टि होता है । इसीलिए सम्यग् दृष्टि जीव अपने देह का भोग देकर भी अपनी आत्मा का साधने की कोशिश करेगा । जबकि मिथ्यादृष्टि जीव ठीक इसके विपरीत अपनी आत्मा का भोग देकर भी अपने देह का साधेगा अर्थात् आत्मा का बिगड़े तो भले ही बिगड़े लेकिन देह का नहीं बिगड़ना चाहिए । संसार में सामान्य जीव देह दुःख आदि अनेक प्रकार के दुःखों में विचलित हो जाता है, उससे छूटने बचने के लिए सैंकड़ों उपाय करता है । ऐसे समय में इन सैंकड़ों उपायों की गिनती में एक उपाय नवकार गिनने आदि का भी रखा है । सैंकड़ों उपाय किस-किस किस्म (प्रकार) के हैं ? उनमें से देखने पर अधिकांश मिथ्या उपचार ही दिखाई देंगे । जबकि सम्यग् दृष्टि साधक के विषय में ऐसा नहीं दिखाई देगा क्योंकि लक्ष्य ही अलग है । आत्मलक्षी जीव दुःखों के आधार भूत कारण के स्थान पर अपने कृत पापों को मानता है । अतः वह कारण को दूर करने का लक्ष्य रखता है । कार्य रूप दुःखों की तरफ लक्ष्य नहीं देता है । इसलिए दुःखों से न डरता हुआ वह पापों से ज्यादा डरता है ।

दुःख भय और पाप भय—

दुःख का भय और पाप का भय इन दोनों में से किसका भय हमें ज्यादा लगना चाहिए । भय संज्ञा ऐसी चीज है कि जिस किसी व्यक्ति को जिसका भी भय ज्यादा लगता है वह उससे दूर भागता है । पास में भी जाने के लिए तैयार नहीं होता है । मिथ्यात्वी जीव को दुःखों का भय सताता है, अतः वह दुःखों से बचना और दूर भागना चाहता है । लेकिन दुःखों से कहां बचना संभव है । दूसरा सम्यग् दृष्टि साधक जो पापों से भयग्रस्त है । डरता है । वह पाप भीरु बनता है । पापों से बचने के लिए ऐसा पाप भीरु जीव पापों की प्रवृत्तियों, और पापों के निमित्तों से भी दूर भागने की कोशिश करेगा । दुःखों से दूर भागने पर भी दुःख भीरु दुःखों से बच नहीं सकता है । जबकि पापों से दूर भागने वाला पाप भीरु पापों से जरुर बच सकता है । इसलिए दुःखों से डरने की व्यर्थता के बजाय पापों से बचना ही सार्थक उपाय हैं ।

दूसरी तरफ दुःखों से डरने वाला सुयोग्य धर्मी या धर्म के लिए पात्र नहीं कहला सकता है । लेकिन पापों से डरकर पापों से दूर भागने वाला निश्चित रूप से 'सुयोग्य धर्मी या धर्म के लिए सुपात्र कहलाएगा यह धर्म किसे देना चाहिए ? या यह मंत्र किसे देना चाहिए ? कैसा जीव मंत्र साधना या धर्माराधना के लिए सुयोग्य सुपात्र कहलाता है ? इसके उत्तर में सभी एक साथ एक आवाज से यही स्पष्ट रूप से कहेंगे कि पाप भीरु जीव ही धर्म और मंत्र के लिए सुयोग्य सुपात्र है । ऐसो के हाथ में आया हुआ धर्म या मंत्र ही सफल सार्थक सिद्ध होता है । परन्तु मात्र दुःख भीरु जीव के हाथ में आया हुआ धर्म या मंत्रादि भी विकृत या विपरीत हो जाते हैं, क्योंकि साधक ही दुःख दूर करने की स्वार्थ भावना वाला स्वार्थी जीव होता है । उसे न तो धर्म से मतलब है न ही मंत्र से । उसे तो एक मात्र स्वार्थ सिद्धि अर्थात् दुःख निवृत्ति से ही मतलब है । बस दुःख टल जाय और सुख मिल जाय इतने में उसके कार्य की सिद्धि हो गई, और कार्य सिद्धि होने के पश्चात् वह धर्म या मंत्र को अलमारी पर रख देगा । हां, जब वापिस दुःख आयेगा तब धर्म-मंत्र का पुनः उपयोग करेगा । अन्यथा उन्हें अलमारी में सुरक्षित पड़ा रखेगा । संकट समय की सांकल की तरह रखेगा, और समय आने पर अर्थात् पुनः दुःख आने पर वह पुनः धर्म और मंत्र का आश्रय लेगा ।

चमत्कार जन्य श्रद्धा—

श्रद्धा की उत्पत्ति किस में से होनी चाहिए ? यदि सम्यग् सच्ची श्रद्धा के बारे में विचार करना हो तो उसकी उत्पत्ति कैसे होती है ? कैसी होनी चाहिए ? सम्यग् सच्ची श्रद्धा को जगाने का आधार क्या होना चाहिए ? शास्त्रकार भगवन्तों ने तो "जीवाई नव पयत्थे जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं" भावेण सद्दहंतो अयाणमाणेवि ।

अर्थात् जीव - अजीव - पुण्य - पाप - आश्रव - संवर - निर्जरा - बंध और मोक्ष ये नौं तत्त्व बताए हैं । इन नौं तत्त्वों का यथार्थ वास्तविक स्वरूप जो अच्छी तरह सम्यग् स्वरूप जानता है, भावपूर्वक उन पर श्रद्धा करता है, या संपूर्ण रूप से नहीं तो अपूर्ण रूप से भी जानते हुए अच्छी तरह मानता हो उसे "सम्यग् दर्शन" कहते हैं । नवतत्त्व की तरह तत्त्वार्थकार भी व्याख्या फरमाते हैं कि "तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग् दर्शनं" । जीवादि सभी नौं तत्त्वों को और उनके ही सही अर्थ को जो सम्यग् अर्थात् भलिभांति यथार्थ रूप में मानता और जानता है, ऐसी श्रद्धा को सम्यग् दर्शन कहा है । या देव, गुरु और धर्म भी तत्त्व स्वरूप ही है अतः उन तीनों तत्त्वों का स्वरूप भी सम्यग् जाने उसे सम्यग् दर्शन कहते हैं । इस तरह अन्य अन्य शास्त्रों में भी सम्यग् दर्शन की जो व्याख्याएं मिलेगी वे सभी इसी अर्थ की मिलेगी । अब आप ही बताइये कहां चमत्कार का अर्थ निकलता है । सामान्य जन मानस में एक ऐसी गलत धारणा या भ्रमपूर्ण विचारणा दिमाग में बैठ गई है कि...किसी का दुःख, दर्द यदि किसी मंत्र-तंत्र-यंत्रादि द्वारा अचानक मिट जाय, या इनकी ही साधना द्वारा अचानक सुख सम्पत्ति मिल जाय और उस पर जो श्रद्धा बैठ जाय उसे ही श्रद्धा कहते हैं । इस तरह अचानक आकस्मिक कुछ दुःख दर्द मिट जाना, या टल जाना, या फिर सुख सम्पत्ति की प्राप्ति हो जाने को चमत्कार मान लेना उसको आधार बनाकर चलने को श्रद्धा कहते हैं ।

आप सोचिए ! अच्छी तरह...क्या सामान्य अज्ञानी ऐसे जन मानस की ऐसी चमत्कार पूर्ण श्रद्धा को सही बताना चाहिए ? ऐसी श्रद्धा का आधार सच्चा ज्ञान कभी भी नहीं होता है । कभी भी नहीं बढ़ता है । ज्ञान की तो बात ही कहां रही ? मात्र किसी की आंशिक दुःख निवृत्ति हुई या दर्द मिटा, या किसी को सुख-सम्पत्ति मिली, की बस, उसका देखकर या सुनने मात्र से अंध श्रद्धालु वे भी इसी दिशा में जाने के लिए तैयार हो जाते हैं । न तो पूरी छानबीन कर पाते हैं, न ही उसके तथ्य की गहराई में जाते हैं, और न ही वास्तविकता का जायजा ले पाते हैं । कुछ भी नहीं और बस, लोगों की सुनी, या देखा और भ्रमवश, भ्रान्तिवश उसी क्षण उसे अपना कर तुरन्त स्वीकार लेते हैं । ऐसे अज्ञानी जीवों की हमेशा ही दया चिंतवनी चाहिए । इन पर भाव दया के सिवाय और क्या लाया जा सकता है ?

अब जो भी कोई ऐसी अंध श्रद्धा के पीछे पागल हो जाता है और सब कुछ कर बैठने के बावजूद भी मानों कि उसकी धारणा सफल न हो तब क्या होगा ? न ही उसका दुःख दर्द टले, और न ही उसे सुख सम्पत्ति मिले, तब उस व्यक्ति को मंत्र या देव गुरु या धर्म पर कितनी श्रद्धा रहेगी ? उसकी भावना कितनी बनी रहेगी ? आखिर क्या परिणाम आएगा ? फलस्वरूप वह उन देव, गुरु, धर्म से या मंत्रादि से हमेशा के लिए विमुख हो जाएगा ।

शायद भविष्य में कभी भी पुनः उसकी मानसिकता नहीं बनेगी । ऐसी अंध श्रद्धा के पीछे पागल होने में भविष्य का कितना बड़ा नुकसान है ? इसका भी विचार करीए । क्या निश्चित है कि... ऐसी अंध श्रद्धा से दुःख दर्द मिटेगा ? और मान भी लो कि यदि किसी की इच्छा फलीभूत हो भी जाय और दुःख दर्द मिट भी जाय, या सुख सम्पत्ति प्राप्त हो भी जाय, तो क्या वह सदा के लिए धर्मी या भक्त बन जाएगा ? क्या वह बन भी जाय तो सही सच्चा भक्त बनेगा ? या बनावटी नकली ? यदि भविष्य में भी उसकी कार्य सिद्धि नहीं हुई तो वह किस करवट बदलेगा इसका कोई पता नहीं । ऊंट किस करवट बैठेगा इसका कोई पता नहीं । तथा भक्त बना भी रहेगा तो सशर्त रहेगा । दुःख-दर्द मिटने की शर्त से ही वह भक्त बना रहेगा ।

ऐसी चमत्कार जन्य श्रद्धा अल्पकालीक होती है । ज्यादा लम्बे काल तक चलने वाली दीर्घकालीक नहीं होती है । संसार में बिना दुःख, दर्द के लोग ही कहां है ? और किसको सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति की इच्छा नहीं है । यह सारा संसार इसी का भरा पड़ा है । संपूर्ण रूप से कोई दुःख दर्द रहित जीव हो और वह सुख-सम्पत्ति की किसी भी प्रकार की आकांक्षा रखता ही न हो ऐसा कौन है ? और सही मनुष्य जो होगा वह जो देव, गुरु, धर्म की उपासना करेगा वह कितनी ऊंची कक्षा की होगी ? और कितनी सार्थक, सक्षम होगी ? वह फिर भेड़, बकरियों के प्रवाह की तरह चलने वाले सामान्य अज्ञानी जीवों की तरह नहीं चलेगा । उनके पीछे-पीछे नहीं भागेगा । कहीं भी चमत्कार देखा और तुरन्त नमस्कार कर दिया वैसी धारणा उसके विषय में नहीं रहेगी । हो सकता है कि वह विरल कक्षा का भी हो, और ऐसी व्यक्ति जहां नमस्कार करे वहां चमत्कार खड़ा भी हो सकता है । सही अर्थ में इसे ही शक्ति होती है । कोई नमस्कार करके चमत्कार खड़ा कर दें वही सही लेकिन कौन सा चमत्कार ? कैसा चमत्कार ? किसी रास्ते पर हाथ चालाकी या हाथ की सफाई से खेल दिखाकर बच्चों को आश्चर्यचकित कर दे वैसे चमत्कारों से क्या

फायदा ? ऐसे चमत्कारों में कहां कुछ तथ्य होता है ? वास्तविकता का नाम भी नहीं होता है । ज्यादातर संसार में ऐसे ही ठग लोग होते हैं जो अपनी वाचालता की सफाई द्वारा किसी को भी अपने प्रभाव में जरुर खींच लेगा । परन्तु ठगाई करने के सिवाय अन्य कोई चारा नहीं रहेगा । ऐसी ठगाई तो दुनिया में सर्वत्र रोज चलती है । ऐसे में भी यदि कोई कहे कि इसमें भी श्रद्धा रखनी चाहिए । तो निश्चित समझिए कि...आपको गलत दिशा में भ्रमित कर रहा है ।

क्या नवकार की श्रद्धा चमत्कार जन्य है ?

उपरोक्त विचारधारा नवकार के विषय में लगाकर नवकार के प्रति ऐसी चमत्कार जन्य श्रद्धा जगाकर चलने से कैसे कार्य होगा ? न तो नवकार में कहीं दुःख दर्द नाश करने की बात आती है । और न ही सुख सम्पत्ति प्राप्त करने की बात है । एक मात्र पाप नाश करने की बात है । दुःख दर्द नाश होने के विषय में लोग चमत्कार की बात कर सकते हैं । इसी तरह सुख-सम्पत्ति प्राप्त करने के विषय में लोग मंत्रों के चमत्कार की बातें बना सकते हैं । परन्तु "पाप नाश" के विषय में चमत्कार की बातें कैसे बनाएंगे ? पहली बात तो यह भी है कि... पाप नाश के फलसूचक ऐसे मंत्र ही मंत्रशास्त्रों में मुश्किल से .1% भी नहीं है । फल या लक्ष्यों के आधार पर मंत्रों का वर्गीकरण करने बैठें तो इच्छा पूर्ति, शत्रुनाशक, संकट मोचक, विघ्न नाशक, दुःख नाशक, वेदना-पीड़ा शामक, मनोरथ सिद्धि, लक्ष्मी दायक, सरस्वती मंत्र, सुख-सम्पत्ति कारक, भयहर, ऋद्धि-वृद्धि-सिद्धि दायक इत्यादि हजारों किस्म के मंत्र है । लेकिन पाप नाशक मंत्र के विषय में ढूंढने भी जाय तो नवकार के जैसा दूसरा मंत्र कहां मिलता है जो पापों का नाश होता है ऐसा स्पष्ट निर्देश करता हो ? इन सब प्रकार के फलों में यदि निम्नतर और उच्चतर की कक्षा का भेद देखने जाएं तो स्पष्ट ही ख्याल आ जाएगा कि...शत्रु नाशक, रिपु भंजक, मारक आदि प्रयोग वाले मंत्र-तंत्र-यंत्र निम्नस्तर के हैं । जबकि सुख-समृद्धि दायक, दुःख-दर्द नाशकादि मध्यम कक्षा के मंत्र-तंत्र-यंत्र माने जा सकते हैं । जबकि सर्वथा पाप कर्म के नाशकर्ता मंत्र-तंत्र-यंत्रादि सर्वोत्कृष्ट कक्षा के महामंत्र है । इसलिए नवकार को महामंत्र का दर्जा देना न्याय युक्त है । चमत्कारों से कोई भी दुःख दर्द का नाश या सुख समृद्धि की प्राप्ति करके दिखा सकता है परन्तु पाप कर्मों का नाश करने का चमत्कार कोई भी कदापि दिखा नहीं सकता ।

अम्बड परिव्राजक ने चमत्कार किये । जब अम्बड परिव्राजक राजगृही गया और वीर प्रभु के धर्म लाभ के संदेश को सुलषा श्राविका को कहने गया वहां उसने भिन्न-भिन्न रूप रंग करके दिखाए । यहां तक कि समवसरण की भी रचना कर दी, और सर्वज्ञ तीर्थंकर का रूप भी बनाकर दिखा दिया । लेकिन अपने चारों घातिकर्मों का क्षय करके सच्चे सर्वज्ञ बनकर नहीं बता सका । न ही देशना देकर दिखाया । सिर्फ मायावी जादुनगरी जैसा जादुई रूप बनाकर समवसरण का वैभवी ठाठ दिखा दिया । यद्यपि मंत्र-तंत्रों द्वारा यह संभव है । इसमें कहीं कोई आश्चर्य नहीं है । लेकिन ऐसे इन्द्रजाल वाले मायावी चमत्कार सब क्षणिक है । अल्पकालिक है । जबकि पापकर्मों के क्षय से प्रगट होने वाले आत्मा के केवलज्ञानादि गुण शाश्वत है । सदा काल रहने वाले हैं । वास्तविक गुण रूप है । ऐसे गुण ज्ञानादि किसी भी प्रकार के चमत्कारों से उत्पन्न नहीं होते हैं । इसीलिए चमत्कारों की दुनिया हीन कक्षा की है । इन्द्रजालिक है । मायावी भी है । वास्तविक नहीं है । पापनाश जन्य कक्षा ही यथार्थ वास्तविक सच्ची है । इसीलिए नवकार महामंत्र में पाप नाश के फल का निर्देश स्पष्ट रूप से किया गया है । जबकि दुःख नाश के विषय का उल्लेख मात्र भी नहीं है । इसलिए सम्यग् श्रद्धा से नवकार का पाप नाशक सही वास्तविक स्वरूप समझकर पापों का नाश करने के लिए ही उपयोग करना चाहिए । चमत्कार करने के लिये नवकार का उपयोग कभी भी नहीं करना चाहिये । न ही दुःख-दर्द नाश और सुख समृद्धि की प्राप्ति के लिए । इस तरह सम्यग् श्रद्धा की प्राप्ति होती हैं । और सम्यग् दर्शन का निर्मलीकरण, पवित्रीकरण होता है । श्रद्धा दीर्घकालिक बनती है ।

दुःख और पाप का कार्य-कारणभाव संबंध—

वर्तमान विश्व में यदि सबसे बड़ी विडंबना यदि कोई हो तो वह एक मात्र यही है कि... संसार के सब धर्मों में सुख-दुःख के कारण को ढुंढने में सबने भिन्न-भिन्न कारण बताए हैं । प्रायः अधिकांश धर्मों ने कहा है कि सुख-दुःख की बागडोर ऊपरवाले ईश्वर के हाथ में है । वह सर्व शक्तिमान समर्थ ईश्वर अपनी इच्छानुसार जगत् के जीवों को सुख-दुःख देता ही रहता है । आखिर जो ईश्वर कर्तृत्ववादी धर्म हैं उन्होंने सब कुछ ईश्वर पर ही डाल दिया । इन भले लोगों ने यह भी नहीं सोचा कि ऐसा करने से ईश्वर पर बहुत बड़ा भारी दोषारोपण-कलंक आएगा, और निश्चित ही ईश्वर का स्वरूप-कालिमा से कलंकित हो जाएगा । सच्चाई-वास्तविकता लुप्त हो जाएगी । विकृतियां काफी आ जाने से ईश्वर का सही स्वरूप न होकर कृत्रिम हो जाएगा । कृत्रिम में जो नहीं है वह भी साथ में जोड़ दिया जाता है । सच देखा जाय तो ईश्वर के विषय में ऐसा ही हुआ है । निरर्थक ईश्वर को सुख-दुःख के दाता बनाकर ईश्वर की महीमा-गरिमा सारी महत्ता घटा दी है । यह अत्यन्त गलत कार्य हुआ है ।

जैन दर्शन शास्त्रों में, आगम शास्त्रों में, जैन धर्म के सिद्धान्तों में यह गलती नहीं की गई । ईश्वर को सर्वथा सुख-दुःख के विषय से अलिप्त, दूर ही रखा गया है । तीर्थंकर भगवंतों ने यह स्पष्ट कह दिया कि... प्रत्येक जीव मात्र अपने-अपने शुभ-अशुभ कर्मों का कर्त्ता है तथा जीव ही स्वकृत शुभ कर्मानुसार फलस्वरूप सुख पाएगा, और स्वकृत अशुभ (पाप) कर्मानुसार फल के रूप में दुःख भोगेगा । ईश्वर इसमें अंशमात्र भी कारणरूप में बीच में नहीं आता है । और न ही फलदाता बनता है । सुख-दुःख का आधार एक-मात्र जीवों की उनकी खुद की कर्मवृत्ति प्रवृत्ति पर डाल दिया हैं ।

चित्र में जैसा कि आप देख रहे हैं — कई लोग भिन्न-भिन्न प्रकार की पाप की प्रवृत्ति या क्रिया आदि कर रहे हैं । हिंसा-वध, मारामारी, लड़ाई, आदि करना । झूठ बोलना, चोरी करना, आदि 18 प्रकार की पापों की प्रवृत्तियां जो जो जीव संसार में अपने मन-वचन-काया के साधन से करते रहते हैं वे सब आठों प्रकार के भारी अशुभ कर्मों को बांधते रहते हैं । कालान्तर में जब वे भारी उपार्जित कर्मों का काल परिपक्व होता है तब वे कर्म उदय में आते हैं । कृत कर्मों के उदय में आने पर फल के रूप में सुख दुःख प्राप्त होते हैं । अशुभ हिंसा-झूठ-चोरी आदि पाप कर्मों के उदय में आने पर दुःख और शुभ दानादि की पुण्य प्रवृत्ति जन्य पुण्य कर्मों के उदय में आने पर सुख-संपत्ति-समृद्धि सब कुछ प्राप्त होता है । अतः पू. आचार्य प्रवर श्री हरिभद्रसूरि म. ने शास्त्रवार्ता समुच्चय ग्रन्थ में कारण दर्शाते हुए स्पष्ट ही कहा है कि—

दुःखं पापात् सुखं धर्मात्, सर्व शास्त्रेषु संस्थितिः ।
न कर्तव्यमतः पापं, कर्तव्यो धर्मसंचयः ॥

—दुःख यह पाप करने से उत्पन्न हुआ है, और सुख यह धर्म करने से बना है । यही सब शास्त्रों में संन्निहित है । अतः सभी समझदारों को सर्वथा पापकर्म करना ही नहीं चाहिए । सदा धर्म का ही संग्रह करना चाहिए । इसमें स्पष्ट शब्दों में पाप कर्मों की प्रवृत्ति से दुःख को उत्पन्न होता हुआ बताया है ।

दुःखरूप फल
|
पाप = अशुभ कर्म

सुख रूप फल
|
पुण्य = शुभ रूप कर्म (धर्म)

जैसे जलती हुई लकड़ीयों से धुंआ निकलता जाता है । आग के कारण धुंएं का अस्तित्व है । अतः आग कारण के रूप में है और धुंआ उसका कार्य है । फल स्वरूप है । ठीक उसी तरह अशुभ पाप कर्म कारण रूप है और उसके फल स्वरूप दुःख है । जैसे धुंआ का कार्य-कारण भाव, जन्य-जनक भाव शाश्वत है, ठीक उसी तरह आत्मा के पाप अशुभ कर्मों और दुःख का भी सदाकालीन शाश्वत संबंध है । अग्नि के बिना धुंआ नहीं निकलता है । ठीक उसी तरह पाप कर्मों के बिना दुःख नहीं उत्पन्न होता है । इसी तरह सुख का भी समझना चाहिए । शुभ पुण्य (धर्म) कर्म ही सुख का जनक है । आखिर दोनों ही कर्म है । पुण्य भी कर्म तो है ही... । अन्तर सिर्फ इतना ही है कि... यह शुभ कक्षा का कर्म है । धुंआ-आखिर धुंआ ही होता है । कभी धुंआं बहुत काला श्याम होता है तो कभी-कभी रूई के जैसा सफेद रंगी धुंआ भी होता है । उसी तरह पाप कर्म दुःखदायी अशुभ काले-श्याम धुंएं जैसा होता है । और शुभ कर्म जो पुण्यात्मक-धर्मात्मक होता है । वह रुई के जैसे श्वेतवर्णी धुंए जैसा होता है । जो सुखरूप फल देता है ।

देने आदि के विषय में किसी को कर्ता मानने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती है । कर्म का काल परिपक्व होने पर वह जीव स्वयं ही सुख-दुःख पाते रहते हैं । ईश्वर को न तो कर्म कर्ता, न ही फलदाता, न ही सुखदाता, या न ही दुःख दातादि कुछ भी नहीं मानना चाहिए । एकमात्र सर्वज्ञ-वीतरागी अरिहंत के रूप में उपास्य स्वरूप में भगवान को मानना चाहिए । और उसमें भी स्वकृत शुभाशुभ उभय कर्मों का सर्वथा क्षय (निर्जरा) करने के लिए ऐसे ईश्वर स्वरूप परमात्मा का आलंबन लेना चाहिए । उनके समक्ष दर्शन-पूजन-जाप-ध्यान-भक्ति आदि सब प्रकार की साधना करते हुए, एकमात्र कर्मक्षय का लक्ष्य रखते हुए मुक्ति प्राप्त करने का कार्य सिद्ध करना चाहिए । इस तरह तत्त्व के रूप में ईश्वर की गणना की गई है ।

संसार में विपरीत वर्तन—

पुण्यस्य फलमेच्छन्ति, पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः ।
फलं पापस्य नेच्छन्ति, पापं कुर्वन्ति सादराः ॥

—प्रस्तुत श्लोक में हरिभद्रसूरि म. फरमाते हैं कि... संसार में कितनी भारी विडंबना है कि... जीव कई बार जानते हुए भी विपरीत वृत्तिवाले बनकर विपरीत आचरण करते हैं । पुण्य का जो फल सुखरूप है उसकी प्राप्ति की कामना तो सभी करते ही है । लेकिन स्वयं पुण्य करना कोई नहीं चाहता है । उदाहरण के लिए स्वर्ग सुख, धन-संपत्ति-लक्ष्मी और सब प्रकार का ऐश्वर्य, ऋद्धि-सिद्धि आदि सब सभी चाहते हैं । लेकिन दया-दान-परोपकार का कार्य करने में कठिनाई महसूस करते हैं । और बिना पुण्योपार्जन किये सुख-समृद्धि पाने की आशा रखते हैं । यह कैसे संभव हो सकेगा ? ठीक इसी तरह भगवान के पास, या गुरुओं के पास तथा शासन देवी-देवताओं के पास जाकर भी आज लाखों लोग सुख प्राप्ति के लिए याचना-प्रार्थना करते हैं । क्या ऐसे ही मांगने मात्र से मिल जाएगा ? यदि आपकी रकम बैंक में जमा है और मांगोगे तो मिल जाएगी । लेकिन बैंक में कुछ भी जमा न हो और फिर भी यदि याचना करते रहें या मांगते रहें तो कैसे मिलेगा ?

दूसरी तरफ सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि... जैसी इच्छा पुण्य और पुण्य फल के विषय में रखते हैं वैसी ही इच्छा या धारणा पाप और पाप के फल के विषय में जीव नहीं रखता है । ठीक इससे विपरीत ही रखता है, अर्थात् पाप अशुभ कर्म का फल जो दुःख रूप है उसे पाने की इच्छा तो कोई नहीं करता है लेकिन फिर भी आराम से दुनियाभर के सब पाप कर्म करते रहते हैं । बिना हिचकिचाए सब पाप प्रयत्न पूर्वक या आनन्द पूर्वक करते हैं । मजा या सुख पाने के लिए भी पाप की प्रवृत्ति करना, और पाप की प्रवृत्ति करते हुए भी मजा या सुख पाने की चेष्टा सदा समान रूप से जीवों की बनी रहती है । इसी कारण जीव पाप करते रहते हैं और बाद में किये हुए पाप कर्मों का काल परिपक्व होने पर, और उदयकाल के आने पर जीव स्वयं दुःखी होता ही रहता है । इस तरह संसार चक्र चलता ही रहता है ।

अब जब दुःख उदय में आया है तब असह्य होने के कारण जीव देव-गुरु-धर्म की तरफ भागता है । क्योंकि संसार के सेंकड़ों निमित्त भी जीव को दुःख से बचा नहीं सकते हैं । सगे-संबंधी स्नेही-स्वजन आदि कोई भी जब बचा नहीं पाते हैं तब जीव विचलित होता है और ऐसी स्थिति में देव-गुरु-धर्म मंत्र-तंत्रादि को भी दुःख निवारक उपाय के रूप में अजमाने की कोशिश करता है । यदि पाप कर्म की सत्ता लम्बी है और उदयाविलका का समय भी काफी लम्बा हो तो दुःख उदय में रहेगा ही वह भी अपनी असर बरोबर दिखाता रहेगा तथा जीव चाहता है कि मैं आज नवकार गिनुं, जाप करूं, पूजा उपासनादि करूं और आज ही सर्व दुःख-दर्द-संकट चला जाय । तथा दुःख-दर्द-संकट टलने के बजाय यदि कर्मों की तीव्रता के कारण और बढ़ते ही जाएं, तब जीव की श्रद्धा दाव पर लग जाती है ।

ऐसे समय में यदि ज्ञान जन्य सच्ची सम्यग् श्रद्धा होगी तो वह विचलित नहीं होगा । परन्तु चमत्कार जन्य श्रद्धा, या दुःख निवारक श्रद्धा होगी तो वह ज्यादा टिक नहीं पाएगा । चंचलता-चपलता के स्वभाव के साथ-साथ दुःख निवारक श्रद्धा से भरा हुआ मन होने के कारण वह ज्यादा देर स्थिर नहीं रह पाता है । जैसे कोई मरीज ज्वरग्रस्त हो और उसे सही औषधी वैद्य देता रहे फिर भी यदि ज्वर की मात्रा बढती ही रहे तो वह मरीज विचलित होकर औषधी और वैद्य दोनों को ही छोड़कर दूसरी तरफ भाग जाता है । उसके मन में तो भगवान, न ही गुरु और न ही धर्म या मंत्रादि किसी से कोई मतलब नहीं है । उसे मात्र अपने दुःख-दर्द-संकट से मतलब है । अतः दुःखादि टल जाय और सुखादि मिल जाय तो वह धर्म में रहने के लिए तैयार है । मंत्र जाप करने के लिए तैयार है । अन्यथा नहीं । जैसे मन्दिर का पूजारी होता है उसे भगवान की पूजा-भक्ति या भाव से मतलब नहीं रहता है, उसके बजाय पैसा मिल जाय, या अन्य सामग्री मिल जाने का लक्ष्य बड़ा होता है । वैसी मनःस्थिति यदि नवकार के साधक की होगी तो विनाश है ।

पाप नाश से दुःख नाश—

कारण के अभाव में कार्य का भी अभाव हो जाता है । अग्नि बुझने से धुंआ निकलना भी बन्द हो जाता है । ठीक उसी तरह पापों का समूल नाश-क्षय हो जाने के बाद दुःखों का भी नाश हो जाता है । इसलिए अब समझकर नवकार जैसे महामंत्र का उपयोग दुःखों का नाश करने के बजाय पाप कर्मों का समूल संपूर्ण नाश करने के लिए करना चाहिए । इसीलिए नवकार के 7वें पद में "सव्व पावप्पणासणो" सब पाप कर्मों का नाश करने का लक्ष्य बताया है । यही श्रेष्ठ फल है । नवकार महामंत्र का उपयोग यदि हम पाप होने के समय भी करें तो सद्बुद्धि-सद्भावना जागृत होने से पाप करने से भी बच जाते हैं, और पाप कर्मों के उदय के समय दुःख भी यदि उदय में आया हो उस समय भी महामंत्र की साधना से समता में रह पाते हैं । जिससे नए कर्मों का बंध नहीं होता है । अतः सब पापों का नाश करने की भावना से, ऐसे शुभ संकल्प से ही महामंत्र नवकार का जाप, आराधना करते रहना चाहिए । यही सम्यग् साधना है ।

सामान्य लोग भी समझते ही हैं कि- आग लगने पर आग पर पानी डालना कि धुंएं पर ? यदि कोई धुंए पर पानी डालता है तो लोग उनको मूर्ख-पागल कहेंगे । क्योंकि धुंएं से सब नहीं जल रहा है आग से सब नष्ट हो रहा है । अतः धुंए की चिन्ता छोड़कर आग बुझाने की चिन्ता करनी चाहिए । आग पर पानी डालकर बुझाने वाला ही समझदार कहलाता है । विवेकी और होशियार कहलाता है । धुंआ आकाश में ऊपर ही ऊपर उड़ता जाता है । वह कुछ भी नहीं जलाता है । नुकशान भी नहीं करता है । हां, इतना जरूर है कि दुनिया में दूर से अधिकांश लोगों को धुंआ ही दिखाई देने वाला है । आग कहां से दिखाई देगी ? ठीक इसी तरह धुंए के स्थान पर हमारा दुःख है और आग के स्थान पर पाप कर्म है । जैसे धुंए और आग में जन्य जनक, कार्य-कारणभाव संबंध है, ठीक उसी तरह पाप और दुःख में भी कार्य-कारणभाव संबंध है । जैसे आग जनक है और धुंआ जन्य है । वैसे ही पाप जनक है और दुःख जन्य है । पाप कारण है और दुःख कार्य है ।

जैसे धुंए पर पानी डालना मूर्खता है ठीक उसी तरह पाप कर्म की मूल में सत्ता रहने पर दुःख-दर्द को मिटाने की इच्छा करना या प्रयत्न करना वह भी धुंए पर पानी डालने जैसी मूर्खता सिद्ध होगी । नुकशान दुःख से नहीं अपितु पाप कर्म से होने वाला हैं । हां, संसार में लोगों की दृष्टि में पाप नहीं दुःख दिखाई देगा । पाप कर्मो को कैसे देख पाएंगे ? या तो पाप कर्म कालान्तर में भूतकाल में किये होंगे ? या जन्म-जन्मान्तर में किये होंगे । और आज तो मात्र दुःख उदय में आया है । अब वह पाप कर्म तो सत्ता में पड़ा है और मात्र उदय में आए हुए दुःख के टालने या मिटाने के लिए यदि हम नवकार महामंत्र या देव-गुरु और धर्म का आश्रय लेकर भी मात्र दुःख नाश के लिए उपयोग करने से कैसे होगा ? और दुःख नाश न होने पर वह दुःख निवारक श्रद्धा से धर्म या नवकार की तरफ मुड़ा था उस श्रद्धा पर भी कुठाराघात होगा, और श्रद्धा के स्तंभ हिल जाएंगे । वह साधक बिचारा विचलित हो जाएगा । या तो नवकार और धर्म सब छोड़कर भाग जाएगा या फिर दुःखनाश होगा, कभी न कभी तो होगा... इस आशा में बैठा रहेगा । करता रहेगा ।

हां, यह जरूर हो सकता है कि... धर्माराधना करते-करते तथा तप-जपादि की साधना करते हुए कभी दुःखकारक- उस पाप कर्म की काल अवधि समाप्त हो जाने पर दुःख जरूर टल जाएगा । मिट जाता है । या तपादि द्वारा उदिरणादि करने से भी मिट जाता है । और उससे भी धर्म पर दुःखनाशक की श्रद्धा बैठ जाती है । और जीव धर्म करता रहता है । लेकिन हमेशा ऐसा नहीं होता है । अतः दुःख निवारक श्रद्धा बदल कर पाप नाशक सम्यग् श्रद्धा बनानी चाहिए । सदा के लिये सुखी बनने का यही एकमात्र सही उपाय है । धुंए के बजाय आग पर पानी डालिए । आग बुझ जाएगी, धुंए की चिन्ता छोड़ दो, वह आकाश में लोप हो जाएगा । ठीक इसी तरह दुःख के बजाय पापों का नाश करो । दुःखों की चिन्ता छोड़ दो, वह जीवन में कहीं लुप्त हो जाएगा पता भी नहीं चलेगा ।

क्या आप जैन कर्म विज्ञान जानना चाहते हैं ?
कर्म सिद्धान्त के गहन विषय को क्या आप सरलता से समझना चाहते हैं ?
क्या चित्रों के साथ आसानी से पढना चाहते है ? .....
यदि हां ..... तो ..... आज ही खरीदीए ..... अपने घर में बसाइए .....
जैन श्रमण संघ के जाने पहचाने विद्वान — **पंन्यास श्री अरुणविजयजी महाराज**
द्वारा सरल हिन्दी भाषा में — सचित्र शैली की लिखि गई पुस्तक —
"कर्म की गति न्यारी" भाग १ और २ [हिन्दी और गुजराती दोनों भाषा में उपलब्ध]
कृपया दोनों भाग का सेट साथ ही खरीदिए ..... स्वयं पढीए, मित्रों को भेट दीजिए

तीनों लोक में—चारों गतियों में—नवकार स्मरण

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

सर्वज्ञ तीर्थंकर प्ररुपित समस्त विराट ब्रह्माण्ड का स्वरुप लोकात्मक है । "ब्रह्माण्ड" शब्द वैदिक संस्कृति के आधार भूत ग्रंथ वेद में प्रयुक्त है । श्रमण संस्कृति में यह शब्द ही नहीं आया है । वैदिक संस्कृति की मान्यता ईश्वर कर्तृत्ववादी रही है, अत: वे सृष्टि को ईश्वर निर्मित मानते हैं । जगत् कर्ता ईश्वर की उत्पत्ति का मूल भी जगत् पिता ब्रह्मा को ही माना गया है । "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" ब्रह्मसूत्र के इस सूत्र से ब्रह्माजी की जिज्ञासा व्यक्त की गई है । क्या इच्छा हुई और कैसी इच्छा हुई इसे स्पष्ट करता है आगे का सूत्र "एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय" । मैं अकेला हूँ, बहुरुपी बनुं, प्रजोपत्ति करुं । इस तरह ब्रह्माजी को अकेलापन अखरा और बहुरुपी बनने के लिए प्रजोत्पत्ति की, इस प्रक्रिया से सृष्टि निर्माण हुई । प्रथम ब्रह्म पुरुष बनाया । उसने विराट पुरुष की रचना की । उसने कर्ता ईश्वर की उत्पत्ति की । सम्पूर्ण एक अण्डा बनाया । इसे ब्रह्माजी के नाम के साथ जोड़कर ब्रह्माण्ड शब्द की रचना की । अत: इस ब्रह्माण्ड शब्द के पीछे कर्तृत्ववादी सृष्टि का इतिहास छिपा हुआ है । जो इस शब्द से अभिप्रेत है ।

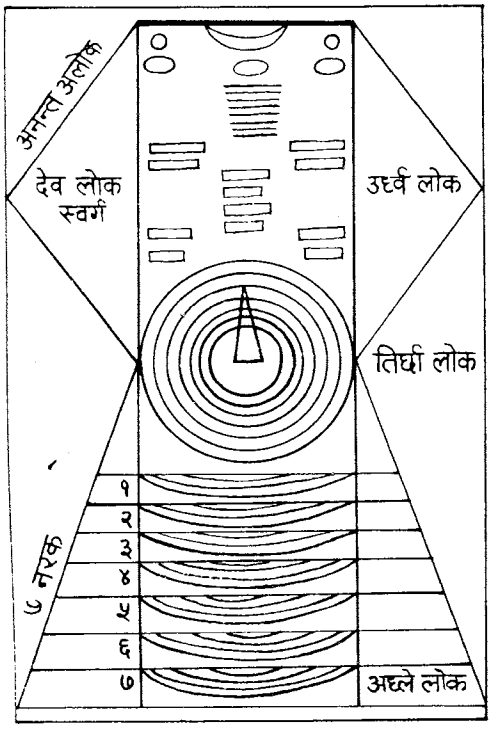

आर्हत् दर्शन सर्वज्ञवादी दर्शन है । तीर्थंकर भगवान जो केवलज्ञानी सर्वविद् समस्त लोकालोक का स्वरूप जानने वाले हैं । ऐसे सर्वज्ञों ने इस जगत्-लोक का जैसा यथार्थ स्वरूप अपने अनन्त ज्ञान योग में जैसा जाना, जैसा देखा वैसा ही वीतराग भाव से जगत् को बताया, दिखाया । इसलिए वैदिक संस्कृति में सृष्टि बनाई गई है । विधाता ने निर्माण की, बनाई हुई बताया है । आर्हत् दर्शन में इसी सृष्टि को सर्वज्ञों ने बताई हुई, दिखाई हुई बताया है । जो त्रैकालिक शाश्वत स्वरूप है उसे बनाना नहीं पड़ता है । एक बिल्कुल सीधा सादा सिद्धान्त सदा याद रखने जैसा यह है कि जो बनाया जाता है वह तीनों काल में शाश्वत नहीं रहता है । तथा जो तीनों काल में शाश्वत होता है उसे बनाने का सवाल ही खड़ा नहीं होता । इस तरह उत्पन्न और अनुत्पन्न का यह भेद समझने जैसा है । उत्पत्ति हमेशा देश, क्षेत्र, काल, भाव, कर्ता सापेक्ष है अत: उसका त्रैकालिक अस्तित्व संभव नहीं है । जबकि अनुत्पन्न जो त्रैकालिक शाश्वत है वह देश, क्षेत्र, काल, भाव और कर्ता से रहित अलिप्त कालातीत स्वरूप में शाश्वत होता है । वैदिकी सृष्टि और आर्हती दुनिया में बनाने और बताने का यह मौलिक सैद्धान्तिक भेद अवश्य ध्यान में रखें ।

लोक स्वरूप—

सर्वज्ञ प्रणीत लोकालोक का संक्षिप्त सारभूत स्वरूप इस प्रकार है— अनन्त अलोक के केन्द्र में 14 रज्जु परिमित लोक स्वरूप है । यह पंचास्तिकायात्मक— षड्द्रव्यात्मक है । 1. धर्मास्तिकाय, 2. अधर्मास्तिकाय, 3. आकाशास्तिकाय, 4. जीवास्तिकाय और 5. पुद्गलास्तिकाय, ये 5 अस्तित्व भूत सप्रदेशी द्रव्य है ।

एक मात्र जीव को छोड़कर शेष सभी अजीव द्रव्य है । आकाश द्रव्य लोक के अन्तर्गत एवं अनन्त असीम अलोक में सर्वत्र समान रूप से प्रसृत है । अवगाहना प्रदान करने वाला यह आकाश सबका आधार भूत द्रव्य है । धर्मास्तिकाय द्रव्य 14 राज लोक तक में सीमित है । यह गति सहायक द्रव्य है । ठीक इससे विपरीत गुणधर्म वाला अधर्मास्तिकाय स्थिति सहायक द्रव्य है । ज्ञान, दर्शनादि गुणात्मक सुख-दु:ख की संवेदना वाला जीव द्रव्य है । जो कर्तृत्व शक्तिवाला सक्रिय द्रव्य है । ठीक इससे विपरीत गुण धर्म वाला ज्ञानादि रहित सुख-दु:खादि की संवेदना से

रहित अजीव जड़ द्रव्य है । जो पुद्गल स्वरूप निष्क्रिय अकर्ता-अभोक्ता द्रव्य है । परमाणु स्वरूप में अनन्तानन्त है । यह वर्ण, गंध रस, स्पर्शात्मक है । ऐसे पंचास्तिकायात्मक यह लोक संस्थान है । काल समय सूचक व्यवस्था है ।

विष्कम्भाकार-पुरुषाकृति समान इस लोक की आकृति है । मान लो कि अपने कटि भाग पर कोई पुरुष दो हाथ रखकर कोनी बाहर निकाले हुए सन्तुलन के लिए पैर फैलाए हुए खड़ा हो वैसा आकार लगता है । इसके अन्दर अनन्तानन्त जीव है और अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओं का भी अस्तित्व है । इनका संघात, विघात होता रहता है । संपूर्ण लोक को 3 विभागों में विभक्त करके देखा गया है । जैसा कि चित्र में स्पष्ट किया गया है । 1. ऊपर के भाग को ऊर्ध्व लोक कहते हैं । देवताओं के निवास की प्राधान्यता होने के कारण देवलोक या स्वर्ग भी कहते हैं । इसके नीचे तिर्छा लोक के असंख्य द्वीप-समुद्र हैं । यहां मनुष्य और पशु-पक्षियों की स्थिति है । अत: नरलोक भी कहते हैं, ठीक इसके नीचे अधो लोक है इसे पाताल नाम भी दिया है । और नारकी जीवों की वसति इस प्रदेश में रहती है इसलिए नरक लोक भी कहते हैं । ऐसी 7 नरक पृथ्वीयां है । इसके बीचों बीच 14 रज्जु प्रमाण त्रस नाडी है । जिसमें त्रस जीवों की प्रधानता है । ऐसे 3 लोक या 3 भूवनात्मक 14 रज्जु परिमित लोक स्वरूप है ।

4 गतियों में, 84 लक्ष योनियों में परिभ्रमण—

ऐसे 14 राजलोक के तीनों भूवनों में अनन्त जीव स्व-स्व कर्मानुसार 84 लाख जीव योनियों में जन्म-मरण धारण करते हुए तैली के बैल की तरह चारों गतियों में परिभ्रमण करते रहते हैं । 1. तिर्यंच, 2. नरक, 3. देव और 4. मनुष्य की, इन चारों गतियों में अनन्त जीव सृष्टि है । जीवों के लिए जन्म लेने के स्थान को योनि कहते हैं । राग-द्वेष ये ही संसार के मूलभूत बीज है । इन्हें कर्म बीज भी कहा है । इसीलिए H_2O = Water की तरह 'राग + द्वेष = संसार', का सूत्र सही लगता है । तिर्यंच गति में पशु-पक्षी कृमि-कीट आदि अनन्त जीव है । नरक गति की 7 नरक पृथ्वीयों में असंख्य नारकी जीव रहते हैं । पशु-पक्षियों के निवास के लिए असंख्य द्वीप समुद्रों की व्यवस्था है । देवलोक में देवी-देवता और ढाई द्वीप रुप नर लोक में मनुष्य रहते हैं । स्वकृत कर्मानुसार जीव जन्म धारण करता है । धारण किया हुआ जन्म समाप्त करके मृत्यु पाकर जीव गति बदलता भी है या उसी गति में भी पुन: जन्म लेता है । गत्यन्तर, जात्यन्तर, जन्मान्तर सब जीव के कृत कर्मानुसार होता ही रहता है । सुख-दु:ख आदि की अनुभूति जीव अपने कर्मानुसार करता ही रहता है । इसके लिए किसी अन्य दूसरी सत्ता की आवश्यकता ही नहीं है । वैदिक संस्कृति की तरह बीच में किसी नियन्ता, विधाता, फलदाता आदि की आवश्यकता सर्वज्ञ दर्शन में नहीं स्वीकारी गई है । कृत कर्मानुसार जीव स्वयं ही अपने आप पाता ही रहता है । जब तक जीव सर्वथा संपूर्ण कर्म रहित नहीं हो जाता है तब तक तो जीव को इस संसार चक्र में परिभ्रमण करते ही रहना पड़ता है । भले ही अनन्त काल बीत जाय । 84 लाख जीव योनियों में जीवों के जन्मं-मरण धारण करते हुए परिभ्रमण करते रहने को ही संसार चक्र कहते हैं । जिस दिन जीव स्वयं सर्व कर्मों का समूल सम्पूर्ण सर्वथा क्षय (नाश) कर दे उस दिन जीव की मुक्ति हो जाती है । मुक्त जीव मोक्ष में सदा के लिए अशरीरी बनकर स्थायी स्थिर हो जाता है । अब वह अशरीरी-अजन्मा बनकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, सर्वथा कर्म बंध रहित होकर लोकान्त में अनन्त काल तक सहजानन्द स्वरूप में रहता है । अब उसे पुन: संसार में आने की या जन्म-मरण धारण करने की आवश्यकता ही नहीं रहती है ।

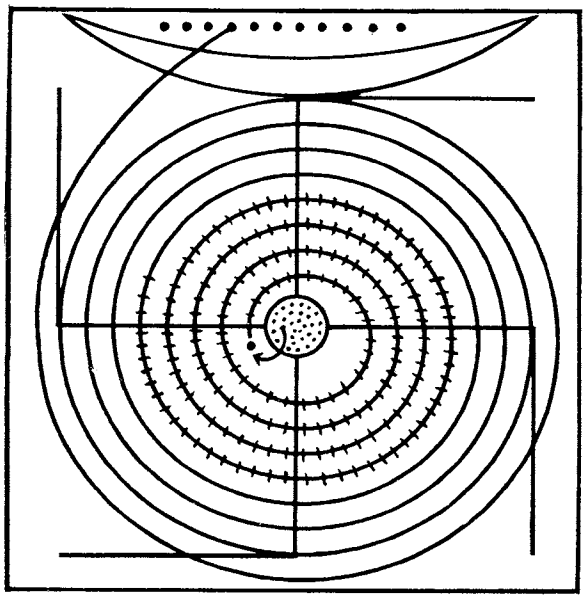

कर्मक्षय साधक — नवकार महामंत्र—

संसार से मुक्त होने का आधार कर्मक्षय पर है, और कर्मक्षय का आधार नवकार महामंत्र पर है । मंत्र जगत् में यदि कर्म क्षय करने के लक्ष्य का उपदेश देने वाला कोई मंत्र हो तो वह है नवकार महामंत्र । दु:ख, दर्द, संकट, आपत्ति, विघ्नादि का क्षय करने वाले लाखों मंत्र मंत्र-शास्त्र में वर्णित है । लेकिन सब पाप-कर्मों का समूल क्षय-नाश करने का लक्ष्य दिखाने वाला एक मात्र नवकार मंत्र है । इसलिए नवकार को कर्म नाशक, पाप नाशक मंत्र कहना उचित है । दु:ख, दर्द, संकट, आपत्ति, विघ्नादि बाह्य है । बाहरी है । कर्म जन्य है । ये देह प्रधान है । नवकार आत्मा पर लगे पाप कर्मों का क्षय करने का प्रधान लक्ष्य लेकर चलता है । इसलिए इसे आत्मिक मंत्र, आत्म शुद्धि कारक मंत्र कहना भी सम्यग् है ।

मोक्षार्थी भवी जीव का चरम लक्ष्य मुक्ति की प्राप्ति का है । मोक्षार्थी मुमुक्षु होता है । वह सम्यग् दृष्टि श्रद्धालु ही होता है । अत: सम्यग् दृष्टि की श्रद्धा नवकार पर अनिवार्य रूप से बनी ही रहती है, क्योंकि सम्यग् दर्शनी देव, गुरु, धर्म के यथार्थ स्वरूप पर अटूट श्रद्धा रखता है ।

ऐसे भी कह सकते हैं कि देव, गुरु और धर्म के तीनों तत्त्व ही सम्यग् दर्शन के आधारभूत केन्द्र बिन्दु है । बिना इनके सम्यग् दर्शन संभव ही नहीं है । नवकार महामंत्र में अरिहंत और सिद्ध परमात्मा ये देव तत्त्व दो स्वरूप में है । आचार्य, उपाध्याय और साधु ये गुरु तत्त्व के अधिकारी है । और नमो यह धर्म तत्त्व का प्रथम सोपान है । इन पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने से सब पाप कर्मों का नाश होता है । ये सर्वज्ञ के शब्द है । त्रैकालिक शाश्वत सिद्धान्त है । इसलिए अवश्य ही श्रद्धेय है ।

नवकार पर श्रद्धा न रखना भी मिथ्यात्व है—

नवकार महामंत्र के पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के पांचों पदों पर बिराजित या प्रतिष्ठित पांचों परमेष्ठी मुक्त हो चुके हैं । आज दिन तक के अनन्त भूतकाल में अनन्त पंच परमेष्ठी भगवन्त हो चुके है तथा भविष्य में और अनन्त होते ही रहेंगे । अनन्त पंच परमेष्ठी मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं । अत: ये पांचों पद शाश्वत है । सदा नित्य है । इनके कारण ही मोक्ष मार्ग प्रशस्त है, अर्थात् जब तक अरिहंतादि परमेष्ठी होते ही रहेंगे तब तक निश्चित रूप से मोक्ष मार्ग चालू ही रहेगा । जिस दिन पांचों परमेष्ठी भगवन्तों का होना बन्द हो जाएगा उस दिन मोक्ष मार्ग भी बन्द हो जाएगा । लेकिन अनन्त काल में भी ऐसा हुआ नहीं है और अनन्त भविष्य में कभी होगा भी नहीं । हां, क्षेत्र, काल की असर के नीचे कुछ काल तक यह जरुर प्रभाव में आएगा । परन्तु मार्ग लुप्त होने वाला नहीं है । आज हमें इस बात का सबसे बड़ा गौरव होना ही चाहिए कि हमको इन्ही पंच परमेष्ठी भगवन्तों का मोक्ष मार्ग विरासत में मिला है । मोक्ष प्राप्ति का साधन मिला है । इसकी परम्परा के प्रतीक रूप में यह महामंत्र नवकार है । इसलिए ऐसा भी कह सकते हैं कि... जिस-जिस को नवकार महामंत्र मिला है उस-उस को मोक्ष का सच्चा मार्ग मिला है । नवकार का सच्चा उपासक भवितव्यता एवं काल की परिपक्वता होने पर अवश्य ही मोक्ष को प्राप्त करेगा । यह नि:संदेह निर्विवाद है । सिर्फ बीच में काल कम-ज्यादा लग सकता है । नयसार के जन्म में नवकार महामंत्र मिला और परिणाम स्वरूप 27वें जन्म में भगवान महावीर बनकर मोक्ष प्राप्त किया । यह हमारे सामने प्रत्यक्ष दृष्टान्त है । श्रद्धा योग्य उदाहरण है ।

इसलिए मोक्ष की प्राप्ति के उपाय रूप यह नवकार महामंत्र है । इसकी उपयोगिता- चरितार्थता का प्राण भूत आधार नवकार में पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने से सर्व पाप कर्मों का क्षय करने पर है । जैसे सूर्य उगेगा तो निश्चित रूप से दिन होगा । यह जैसा सही कार्य-कारणभाव संबंध है, ठीक वैसा ही सब पाप कर्मों का संपूर्ण क्षय होगा तब मोक्ष प्राप्ति होगी । यह कार्य कारण भाव संबंध भी त्रैकालिक शाश्वत है । यह अपरिवर्तनशील अफर नियम है । अनन्त काल में एक दृष्टान्त भी ऐसा नहीं है कि जिसके सब पाप कर्मों का क्षय, संपूर्ण नाश हुआ भी नहीं और मोक्ष की प्राप्ति हो गई हो । अनन्त काल में एक भी दृष्टान्त ऐसा हुआ नहीं है और होगा भी नहीं । इसलिए कोइ भी जीव ऐसे खोटे ख्यालों में रह न जाय कि... अंश मात्र भी पाप कर्म के रहते हुए मोक्ष प्राप्ति हो जाएगी । यह कदापि संभव नहीं है ।

इसलिए ऐसे मोक्ष दायक-कर्म क्षय कारक महामंत्र नवकार की प्राप्ति हमें होनी यह हमारे मोक्ष की निशानी है । हमारे विषय में कालान्तर में, भवान्तर में मोक्ष की प्राप्ति सुनिश्चित हो गई है । इसलिए अब इसी उद्देश्य से, भावना से इस नवकार की उपासना सही स्वरूप में करनी चाहिए । याद रखिए...हमें कोई नमस्कार करे या न करें इससे हमारा मोक्ष कदापि रुकता नहीं है, लेकिन हम यदि ऐसे पंच परमेष्ठियों को नमस्कार नहीं करेंगे तो निश्चित रूप से हमारा मोक्ष तो रुक ही जाएगा । नमस्कार नहीं करने वाले को मोक्ष कदापि प्राप्त नहीं होगा । यह निश्चित रूप से पत्थर की लकीर है । इसलिए अब सौभाग्य से मिले हुए नवकार और पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करने से वंचित रहना यह बहुत बड़ी भारी भूल होगी । पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने से ही समस्त पाप कर्मों का क्षय होगा और सर्व कर्म क्षय से ही मोक्ष प्राप्ति होगी । यही हमारी श्रद्धा का केन्द्र होना चाहिए । इसलिए अब सम्यग् दर्शन के आधार भूत एवं प्राणभूत नवकार जैसे महामंत्र को पाकर भी श्रद्धा न रखना या सही उपासना न करना बड़ा मिथ्यात्व कहलाएगा । कहीं ऐसा न हो जाय कि अपने पास के दीर्घकालीन असली रत्न को किसी ठग, लुटेरे के कहने से उसे नकली कांच का टुकड़ा मानकर फैंक दें । फिर पछताना पड़ता है । ठीक उसी तरह आज मिले ऐसे सम्यग् मंत्र को हाथ में से गंवा दें और फिर संसार चक्र की 84 लक्ष जीव योनियों में भटकते ही रहना पड़े । यह बहुत बड़ा अनर्थ होगा । अत: पहले से ही सचेत, सावधान होकर नवकार महामंत्र की श्रद्धा में अंश मात्र भी कमी न आने दें ।

नवकार की परम्परा का चालक—"नमस्कार"

पिता के पीछे पुत्र, पौत्र जैसे उसकी परम्परा चलाने वाले हैं ठीक उसी तरह पंच परमेष्ठी भगवन्तों के पीछे उनकी परम्परा "नमस्कार" से चलती रहती है । जो भी अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करता जाएगा, कालान्तर में वह भी इन परमेष्ठी पदों पर आरुढ होता जाएगा । इस तरह नवकार की परम्परा शाश्वत रूप से चलती ही रहेगी । इस तरह पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने वाले कभी कम नहीं हुए हैं, कभी बन्द भी नहीं हुए है और पंच परमेष्ठीयों का बनना भी कभी बन्द नहीं हुआ है । अत: पंच परमेष्ठी भगवन्त तथा उनको नमस्कार करने वाले दोनों पक्ष शाश्वत है । इसीलिए नवकार सदा काल शाश्वत रूप से चलता ही रहता है । अनन्त भूतकाल में इसका न तो कभी अन्त

आया है और न ही अनन्त भविष्य काल में अन्त आएगा । न भूतो न भविष्यति । इसी कारण नवकार की त्रैकालिक शाश्वतता सदाकाल बनी ही रहती है । अब हमें यह देखना है कि...हम सच्चे नमस्कर्ता सही स्वरूप में है कि नहीं ? यदि हमें भविष्य में पंच परमेष्ठी के पदों पर आरुढ होना है, यदि हमारी अन्तरंग भावना सही हो तो आज वर्तमान में मिले इन्हीं पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करना एक दिन भी न भूलें ।

आज हम इन पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करते रहेंगे तो हमारे पीछे हमारी परम्परा के शिष्यादि या पुत्र, पौत्रादि भी करते ही रहेंगे । इस तरह अखण्ड रूप से परम्परा चलती रहेगी । मध्य समुद्र में पड़ी नौंका को पतवार लगाना हमारा भी कर्तव्य होता है । वरना नौका तो क्या डूबेगी ? हम भी डूब जाएंगे । हमारा जीवन पानी में चला जाएगा । हम आज इस संसार के चौरासी के चक्र में फंसे हुए हैं । और इस भंवर में से बाहर निकलना ही है । अत: नमस्कार की इस नौका को बचाने के लिए पतवार चलाने रूप नमस्कार हमें सदा करते ही रहना पड़ेगा । हम नमस्कार करेंगे तो हम ही भविष्य में नमस्करणीय परमेष्ठी बनेंगे । नमस्कारकर्ता नमस्करणीय का पद प्राप्त करे इसमें कोई बड़ा आश्चर्य है ही नहीं । और सच तो यह है कि नमस्करणीय जैसा बनने की भावना से ही नमस्कार करना चाहिए । यही साधना, उपासना सम्यग् साधना है ।

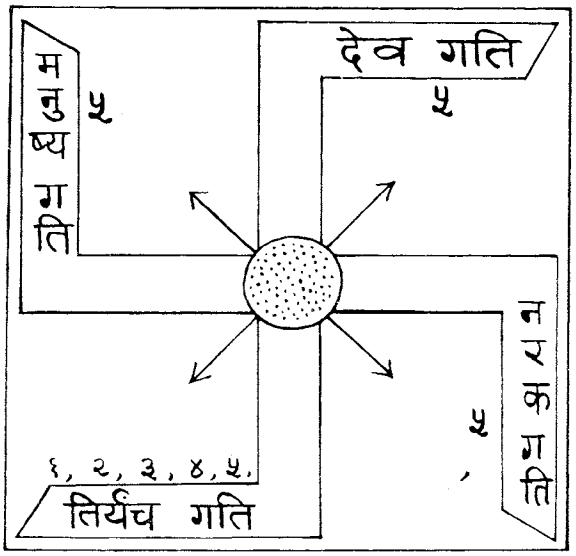

3 लोक में 4 गति के जीव—

लोक की दृष्टि से यह लोक 3 लोकात्मक है अत: इसे त्रिभूवन कहते हैं । ऊर्ध्व, अधो और तिर्छा लोक ये तीन लोक है । स्वर्ग, पाताल और मृत्यु लोक ये अपर नाम भी इनके ही है । भौगोलिक दृष्टि से यह संसार 3 लोक स्वरूपात्मक गिना जाता है । जबकि जन्म, मरण की दृष्टि से यही संसार 84 लाख जीव योनियों का है । तथा गति की दृष्टि से यही संसार 4 गतियों का है । 1. देव, 2. मनुष्य, 3 नरक और 4. तिर्यंच इन 4 गतियों में जीवों के परिभ्रमण को संसार कहते हैं । इसी का सूचक स्वस्तिक (साखिया) है । ऊर्ध्व लोक के स्वर्ग में देव गति के देवी-देवता रहते हैं । यह ऊर्ध्व लोक देवलोक के जीवों के लिए है । अधो लोक यह नरक गति के नारकी जीवों के लिए निश्चित रूप से आरक्षित है । जबकि अवशिष्ट 1 लोक तिर्छा लोक है । यह असंख्य द्वीप- समुद्रात्मक है । इन असंख्यों के केन्द्र में जो ढाई द्वीप समुद्र है वे ही मात्र मनुष्य गति के मनुष्यों के लिए हैं । बस, इन ढाई द्वीपों के बाहर के सभी असंख्य द्वीप समुद्र मात्र तिर्यंच गति के पशु-पक्षियों के लिए ही निश्चित रूप से है । यद्यपि मनुष्य लोक के ढाई द्वीप समुदों में तिर्यंच गति के पशु-पक्षी भी साथ अवश्य रहते हैं लेकिन ढाई द्वीप-समुद्रों के बाहर के असंख्य द्वीप-समुद्रों में कहीं भी मनुष्य का नाम मात्र भी देखने को नहीं मिलता है । वहां सिर्फ तिर्यंच गति के पशु पक्षी ही रहते हैं । अन्य कोइ भी मनुष्य नहीं । ऐसी है इस जगत् की व्यवस्था । इस तरह तीनों लोकों में चारों गतियों के जीव रहते हैं ।

अब तीनों लोक में रहने वाले चारों गतियों के जीवों का संख्या की दृष्टि से विचार करने पर सर्वज्ञ भगवन्त प्ररुपित एक और नया तथ्य सामने उजागर होगा । असंख्य द्वीप-समुद्रों में रहने वाले तिर्यंच गति में अनन्त जीवों की संख्या सबसे बड़ी संख्या है । इस गति में एकेन्द्रियों से पंचेन्द्रिय तक की पांचों जाति के सभी जीवों की गणना होती है । क्योंकि देव गति में सभी देवता पंचेन्द्रिय ही है । नरक गति में सभी नारकी जीव एक मात्र पंचेन्द्रिय ही है । और मनुष्य गति में सभी मनुष्य एक मात्र पंचेन्द्रिय ही है । अब रही बात इन तीन गति के सिवाय के समस्त जीवों की । उनकी गणना किसमें होगी ? अत: इसके उत्तर में स्पष्ट कहा गया है कि शेष समस्त जीवों की गणना एक मात्र तिर्यंच गति में ही होती है ।

एक इन्द्रिय वाले पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पतिकाय के जीव होते हैं । वनस्पतिकाय में साधारण वनस्पतिकाय का एक विभाग होता है । जिसमें आलू, प्याज, लहसून, गाजर, मूला, शकरकंद आदि का समावेश होता है । इन सबमें एक शरीर में अनन्त जीव एक साथ में रहते हैं । इसीलिए अनन्त काय कहते हैं । तथा फूग-फंगस (फूलण) जो पंचवर्णी होती है उसमें भी अनन्त जीव एक साथ रहते हैं । जन्म-मरण धारण करते हैं, 2 इन्द्रिय वाले जीवों में शंख, कौडी, जलो, अलसीए, कृमि तथा सब प्रकार के बेक्टेरिया आदि का समावेश होता है । ये भी समस्त लोक में अनन्त की संख्या में मौजूद है । 3 इन्द्रिय वाले चींटी, मकोडे, खटमल, जू, उधई, लीक, अनाज के कीडे आदि का समावेश होता है । ये भी समस्त संसार में अनन्त की संख्या में है । 4 इन्द्रियों वाले चउरिन्द्रिय जीवों में मक्खी, मच्छर, भौंरे, तीड, पतंगिये, तितली आदि अनेक प्रकार के जीवों की गणना होती है तथा पंचेन्द्रिय जाति में जलचर-खेचर और स्थलचर के तीनों विभाग में मछली, मगरमच्छ आदि जलीय प्राणियों का समावेश होता है । आकाश में उडने वाले सभी पक्षियों को खेचर संज्ञा दी है और भूमि पर चलने वाले चार पैर वाले चतुष्पद पशुओं में गाय, भैंस, घोड़ा, ऊंट, बन्दर, चूहा, भेड़, बकरियां, हाथी, जीराफ, गधा, शेर, चित्ता, सिह, हिरन, कुत्ता आदि सैंकड़ों किस्म के जीव है । ये पंचेन्द्रिय जीव है । समस्त तिर्छा लोक के असंख्य द्वीप-समुदों में इनकी संख्या भी अनन्त की हो जाती है । पूरी तिर्यंच गति में उपरोक्त सभी मिलाने पर अनन्त जीवों की संख्या हो जाती है ।

देव गति में सब प्रकार के देवी-देवताओं की संख्या मात्र असंख्य ही होगी । जबकि क्षेत्र की दृष्टि से उनके लिए 7 राज लोक का क्षेत्र है । जो 14 राज लोक का आधा क्षेत्र है । इसी तरह 7 राज लोक का अधो लोक का क्षेत्र नरक के नारकी जीवों के लिए है । सातों नरक पृथ्वियों में असंख्य नारकी जीव रहते हैं । अब अन्तिम बात रही मनुष्य गति की । इसमें मनुष्य की संख्या न तो अनन्त है, और न ही असंख्य लेकिन मात्र संख्यात है । सीमित-मर्यादित ही है । यह कितनी संख्यात है इसको यदि स्पष्ट रूप से समझना हो तो एक अंक की संख्या में इस प्रकार कह सकते हैं— 2 (96) अर्थात् 2 की संख्या का 96 बार वर्ग करने पर जो संख्या आए उतनी ही संख्या समस्त मानव जाति के मनुष्यों की है । याद रखिए कि यह संख्या किसी देश या दुनिया की नहीं है । यह सम्पूर्ण ढाई द्वीप-समुद्रों के सम्पूर्ण नर लोक में रहने वाली समस्त मानव जाति के मनुष्यों की है । 2 की संख्या का 96वें बार वर्ग करने पर प्राय: 29 अंकों वाली संख्या आएगी । जबकि 150 अंकों वाली संख्या तक की संख्याएँ भी संख्यात के विभाग में गिनी जाती है । तो उसकी तुलना में सिर्फ 29 अंक वाली संख्या तो बिल्कुल छोटी सी दिखाई देती है । जो गणना योग्य है । इस तरह समस्त लोक के तीनों लोक में अर्थात् तीनों भुवनों में 1. अनन्त, 2. असंख्य और 3. संख्यात विभाग में 3 प्रकार की संख्या में 4 गति के 84 लक्ष जीव योनियों में जन्म मरण धारण करने वाले जीवों का यह संसार है ।

नवकार की साधना किस गति-जाति के जीव करते हैं ?

याद रखिए ! एकेन्द्रिय से लेकर चउरिन्द्रिय तक के जीव तो नवकार गिनने आदि के पात्र बन ही नहीं सकते हैं । इनके पास इन्द्रियां अधूरी है । अपूर्ण है । अत: ये विकलेन्द्रिय कहलाते हैं । इनका ही विकास अभी तक पूर्ण नहीं हुआ है अत: ये नवकार गिनने आदि की भूमिका में ही नहीं आते हैं । नवकार गिनने योग्य संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव ही पात्र है । असंज्ञी जीवों के पास मन न होने से संज्ञा ही नहीं होती है । अत: वे सोच विचार ही नहीं सकते हैं । दूसरी तरफ संमूर्च्छिम असंज्ञी जीवों के पास आयुष्य का काल ही अन्तर्मुहूर्त मात्र रहता है । अत: सब दृष्टि से नवकार उनके उपयोग में आए यह संभव ही नहीं है ।

अब रही बात एक मात्र संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों की । लेकिन ऐसे संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव चारों गतियों में है । देव-नारकी भी संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव है । और दूसरी तरफ तिर्यंच गति में एवं मनुष्य गति में भी संज्ञी की कक्षा के पंचेन्द्रिय जीव हैं । अत: चारों गतियों के संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव नवकार जपने-साधने के लिए योग्य पात्र हैं इसमें ना नहीं ।

लेकिन क्षेत्र की दृष्टि से नवकार की प्राप्ति अप्राप्ति की सुलभता का विचार करने पर एक मात्र मनुष्यों को जितनी सुलभता की संभावना प्राप्त है उतनी संसार के किसी अन्य प्राणियों को नहीं है । नवकार प्रदान करने वाले दाताओं की सुलभता मात्र 15 कर्म भूमियों में ही है । 5 भरत क्षेत्र, 5 ऐरावत क्षेत्र और 5 महाविदेह क्षेत्र इस तरह तीनों मिलाकर कुल 15 कर्मभूमियां होती है । इनमें ही अरिहंतादि होते हैं । साधु आदि भी इसी 15 कर्मभूमियों में होते हैं । तथा धर्म भी इतने क्षेत्र में ही उपलब्ध होता है । यद्यपि इससे दुगूनी संख्या में 30 अकर्मभूमियां है लेकिन वहां न तो अरिहंत भगवान या साधु आदि होते हैं और न ही धर्म का नाम निशान होता है । कुछ भी नहीं । इसलिए संभावना ही नहीं रहती है । फिर भी यदि कोई चारण मुनि या आकाशगामिनी विद्यावाले मुनि या विद्याधर आदि के आवागमन के निमित्त शायद कोई जीव नवकारादि कुछ पा जाय तो संभावना बनती है । एकेन्द्रिय से चउरिन्द्रिय तक के जीवों को जब मन मिलता ही नहीं है, अत: वे पात्र ही नहीं बनते है । पंचेन्द्रिय से ही मन मिलने बनने की शुरुआत होती है । तिर्यंच गति के संज्ञी पंचेन्द्रिय पशु-पक्षियों को भी सत्संग आदि के निमित्त नवकार की प्राप्ति संभव होती है ।

पशु-पक्षियों को नवकार की प्राप्ति—

शास्त्रों में जैन प्राणी कथाओं में ऐसे अनेक कथा प्रसंग है । जिनमें पशु-पक्षियों को नवकार मंत्र की धर्म रूप प्राप्ति सुलभ हुई है ऐसा उल्लेख है । कल्पसूत्र में जिनदास सेठ से दो गाय के बछड़ों को नवकार की प्राप्ति बताई है । बाल्यावस्था से उन दोनों बछड़ों ने सेठ से नवकार सुना, वैसे संस्कार ही बना लिये । तथा व्रतादि भी करने लगे । अन्त में नवकार श्रवण पूर्वक ही मृत्यु हुई । वे मरकर कंबल-शंबल दो देव बने । दूसरा दृष्टान्त है चील का (समडी का) । पारधि के तीर लगने पर गिरी हुई चील को मुनियों ने मार्ग में नवकार सुनाया और वह मरकर सिंहल द्वीप की राजकुमारी सुदर्शना बनी । वहां भी भरुच के सेठ से छिंक के निमित्त नवकार सुनकर जाति स्मरण ज्ञान के साथ नवकार पाई ।

एक अश्व के लिए श्री मुनिसुव्रत स्वामी भगवान 60 योजन का विहार करके पधारे और उसे बोधित किया । चंडकौशिक जैसा सांप भी श्री वीर परमात्मा से 'बुझ-बुझ' के शब्दों से प्रतिबोधित होकर शान्त हुआ । अन्त में 15 दिन में धर्म ध्यान में आयुष्य पूर्ण किया । तीर्थंकर भगवन्तों के समवसरण में तिर्यंच गति के सैंकड़ों पशु-पक्षी देशना श्रवण करने आते हैं । समवसरण के दूसरे गढ में परस्पर विरोधी जीव भी बैठकर देशना सुनते हैं । धर्म पाते हैं । दिगंबर सम्प्रदाय की मान्यता ही ऐसी है कि भगवान महावीर के जीव ने सर्वप्रथम सिंह के भव में दिगम्बर मुनि से नवकार धर्म पाया है और अन्तिम जन्म में वे भगवान महावीर बनकर मोक्ष में गए हैं । भगवान पार्श्व कुमार के आदेश से सेवक ने काष्ठ में जलते हुए सांप को नवकार सुनाया जिससे वह धरणेन्द्र देव बना ऐसे तिर्यंच गति के पशु-पक्षियों ने नवकार पाया, नवकार सुना, स्मरण किया आदि के अनेक दृष्टान्त उपलब्ध है ।

देव गति के देवताओं में नवकार स्मरण—

भूत, प्रेत, व्यंतर, वाणव्यंतर, तिर्यग् जृंभक लोकान्तिक, सामानिक, किल्बीषिक, इन्द्र, अधिपति आदि अनेक प्रकार के देवता देव गति में है। जिनकी मुख्य 4 निकाय है। 1. भवनपति, 2. व्यंतर, 3. ज्योतिषी और 4. वैमानिक की इन चारों निकायों में असंख्य देवी-देवता है। ऐसे करोड़ों देवता तीर्थंकर भगवान के समवसरण में देशना श्रवण करने आते हैं। वैमानिक देव निकाय में कल्पोपपन्न के तथा कल्पातीत विमानों के ऊंचे देवता निरन्तर धर्म ध्यान में ही मस्त रहते हैं। वहां शाश्वत ग्रन्थों की व्यवस्था काफी अच्छी है जिसमें नवकार आदि अनेक शाश्वत सिद्धान्त की बातों का शास्त्र के रूप में संग्रह काफी अच्छा रहता है। आहार, निद्रा, भय, मैथूनादि की संज्ञाओं से उपर उठकर ऐसे कई देवता इस शास्त्र ग्रन्थों का स्वाध्याय करने में अधिकांश समय व्यतीत करते हैं। सौधर्मेन्द्र, ईशानेन्द्रादि 64 इन्द्र जो नियमा सम्यक्त्वी ही होते हैं उनके लिए तो एक मात्र आधार ही नवकार महामंत्र का बचता है और तीर्थंकरों की भक्ति, कल्याणकों महोत्सव मनाते रहते हैं।

एक देव ने पर्वत की गुफा में जाकर मुनि से अपनी आगामी गति और आयुष्य आदि पूछा। मुनि ने अपने ज्ञान योग से तिर्यंच गति में बन्दर बनने की बात कही और साथ ही उसमें से छूटने के लिए नवकार के जाप का लेखन, जाप, आदि का उपाय बताया। परिणाम स्वरूप देव ने गुर्वाज्ञानुसार करके पुनः देव गति प्राप्त की। प्रभु के जन्म कल्याणकादि अनेक प्रसंगों पर जाकर देवता शाश्वत जिन चैत्यों आदि में भक्ति भी काफी सुंदर करते हैं। इस तरह अनेक निमित्तों से धर्म पाने वाले तथा जीवन में करने वाले अनेक निमित्त देव गति में देवताओं आदि के लिए हैं।

नरक गति में अनेक नारकीय के लिए नवकार का सहारा—

7 राज लोक के विशाल क्षेत्र में 7 नरक पृथ्वियों में 7 नरकें हैं। इनमें असंख्य नारकी जीव रहते हैं। नरक गति में आने वाले जीव मात्र मनुष्य और तिर्यंच पशु-पक्षी की इन दो गति वाले ही होते हैं। अपने पूर्व संस्कारों में धर्म के संस्कार, धर्म भावना आदि के निमित्त उन्हें पुनः स्मृति में उपस्थित होते हैं। भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान तो जन्म से ही होता है। इसी से पूर्व का, वर्तमान का सब कुछ जानकर वे वहां नवकारादि की साधना कर लेते हैं। श्रेणिक महाराजा का जीव हरिणी का शिकार करके नरक गति उपार्जन करते हैं। यद्यपि शेष जीवन में धर्म काफी किया फिर भी निकाचित कर्मवश आखिर नरक गति में गए। यद्यपि तीर्थंकर की आत्मा है और तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन करने के बावजूद भी नरक गति में पूर्व कर्मवश जाना पड़ा। आज वे 1 ली नरक में बैठे हैं। क्षायिक सम्यक्त्व के मालिक अब नरक में प्रतिदिन नवकार स्मरण के सिवाय वहां कर भी क्या सकते हैं ? इसी तरह तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन करने वाले श्री कृष्ण भी वर्तमान में तीसरी नरक में है। वे भी आज 3 री नरक में नवकार के स्मरणादि के सिवाय कर भी क्या सकते हैं ? वहां व्रतादि का कोई विकल्प है ही नहीं। इस तरह ऐसे अनेक जीव नरक गति में है। वहां नवकार स्मरण का ही धर्म उनके पास सबसे बड़ा है। असंख्य नारकी जीवों में से 1-2 प्रतिशत जीव भी नवकार स्मरण करे तो कितनी संख्या होगी ? भले ही संख्यात जीव भी हो तो भी वह संख्या छोटी नहीं है।

चारों गति में निरन्तर नवकार स्मरण—

इस तरह चारों गतियों में निरन्तर नवकार स्मरण आदि की साधना चल रही है। देवलोक और नरक में तो दिन-रात होने आदि का कोई प्रश्न ही खड़ा नहीं होता है। वहां यह व्यवस्था ही नहीं है। अतः वहां वे जीव निरन्तर नवकार स्मरणादि में काफी ज्यादा रहते हैं। दूसरी तरफ आहार, विहार, निद्रादि, की कोई प्रवृत्ति भी नहीं है। इसलिए वे काफी ज्यादा निश्चिंत है। तिर्यंच गति में अनेक पशु-पक्षी भी आज महामंत्र का स्मरण करते हैं। भले ही उनके पास उच्चारण आदि की सुविधा उपलब्ध नहीं भी है, फिर भी स्मरण आदि के लिए मन मौजूद है। तथा मनुष्य गति के मनुष्यों के विषय में तो पूछना ही क्या ? अनेक जीव सतत नवकार स्मरण में रहते हैं। श्रीपाल मयणा जैसे भी अनेक भाग्यशाली बैठे हैं जो खाते, पीते, उठते, बैठते, चलते, फिरते आदि अनेक क्रियाओं को करते हुए नवकार महामंत्र का स्मरण करते रहते हैं। कई मनुष्य नियमबद्ध रूप से प्रतिदिन की 10, 20, 50 माला का जाप भी करते रहते हैं। अपने जीवन काल में 9 करोड़ से भी ज्यादा जाप करने वाले भी आज मौजूद है।

अनेक पीढ़ी, पाट, परम्परा से गुरुओं से शिष्यों को यह महामंत्र मिलता है और उसका स्मरण जापादि की साधना चलती रहती है। कई पिता अपने पुत्रों को, कई माताएं अपनी संतानों को, कई सास अपनी बहुओं को यह महामंत्र देती है, सिखाती है जिससे परम्परा चलती ही रहती है। इस तरह यदि विचार करें तो अनन्त भूतकाल से अनन्तानन्त नवकार गिने जा चुके हैं। आज भी काल की दृष्टि से अखण्ड रूप से नवकार गिना जा रहा है, और भविष्य के अनन्त काल तक भी अखण्ड रूप से गिना जाता रहेगा। आज 5 महाविदेहों में शाश्वत व्यवस्था के रूप में 20 तीर्थंकर सदा काल रहते ही है। उनके गणधर, केवली भगवंत आदि साधु-साध्वी अरबों की संख्या में सदा काल रहते ही है। वहां 4 थे आरे का धर्म का काल ही शाश्वत रूप से सदा रहता है। अतः महाविदेहों में अखण्ड रूप से अनन्तकाल से नवकार मंत्र परम्परा में चला ही आ रहा है, तथा भविष्य में चलता ही रहेगा। नवकार का अन्त कदापि संभव नहीं है। अतः इस अनन्त की परम्परा के प्रवाह में हमें भी हाथ बंटाना ही चाहिए। नवकार की साधना करने में हमारा भला है नहीं कि नवकार का। अतः प्रत्येक साधक को नवकार की साधना द्वारा कल्याण करना चाहिए।

पाँच मंत्रों का समूहात्मक एक महामंत्र—"नवकार"

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

श्री नमस्कार महामंत्र किसी एक परमेष्ठी का मंत्र न होकर यह 5 परमेष्ठी भगवन्तों का समूहात्मक एक महामंत्र है । आमतौर पर मंत्र शास्त्रों में वर्णित सेंकड़ों मंत्रों में अधिकांश मंत्र एक-एक अधिष्ठाता के नाम के मंत्र है । कोई मंत्र एक मात्र शिव का है । तो किसी में मात्र दुर्गा-काली का ही नाम है । तथा सरस्वती के मंत्रों में शारदा-महालक्ष्मी का साथ में न मिलाकर स्वतंत्र मंत्र बनाया गया है । स्तुति-स्तवन-स्तोत्रों में श्लोक बद्ध रचनाओं में एक साथ अनेकों के नामों का निर्देश जरुर किया गया है परन्तु मंत्र रचना में सबके स्वतंत्र मंत्र ज्यादा उपलब्ध होते हैं । संतिकरं, बृहद् शान्ति आदि के स्तोत्रों में अनुष्टुप जाति आदि के छन्दों की रचना में एक साथ 24 तीर्थंकर भगवन्तों के अधिष्ठायक यक्ष तथा 24 अधिष्ठायिका यक्षिणीओं के नामादि एक साथ लेकर स्तुति की गई है । गद्य स्वरूप में 24 तीर्थंकर भगवन्तों के एक साथ सब नाम लेकर प्रार्थना की गई है ।

वैसे भक्तामर आदि स्तोत्र एक-एक तीर्थंकर भगवान के नाम की विशेष रचना है । यद्यपि श्री आदीश्वर भगवान के नाम का ही भक्तामर स्तोत्र विशेष रूप से प्रसिद्ध एवं प्रचलित है । लेकिन चौबीसों तीर्थंकरों के नाम के भिन्न-भिन्न अनेक स्तोत्र उपलब्ध है । प्रचलित न होने के कारण जनता उनसे अनभिज्ञ है । लेकिन मंत्र शास्त्रों में संयुक्त रूप से या समूहात्मक रूप से ऐसे मंत्र नहीं है कि जिनके अधिष्ठाता एक से ज्यादा 2-4 हो और उनके मंत्र एक साथ एक रूप में बने हुए मिले ऐसा दृष्टिगोचर नहीं होता हैं । अम्बिका देवी और चक्रेश्वरी देवी के संयुक्त मंत्र नहीं है । इसी तरह पद्मावती भगवती के भी अनेक मंत्र जो उपलब्ध है उनमें एक भी मंत्र अम्बिका या चक्रेश्वरी आदि के साथ के नहीं है । इसी तरह गायत्री मंत्र भी सूर्य के लिए अकेला एक ही अधिष्ठाता का मंत्र है । उसमें प्रयुक्त 'सवितुः' नाम सूर्य के लिए है । इसलिए यह मंत्र एक का ही वाचक बनता है ।

नियम यह है कि जिस मंत्र में जिस देव-देवी आदि के नामों का उल्लेख हुआ हो वह मंत्र उन-उन देव-देवी का वाचक मंत्र कहलाता है । तथा वह मंत्र उनके नाम से ही पहचाना जाता है । जैसे प्रसिद्ध ही है कि "ॐ नमः शिवाय" । इस मंत्र में शिव का नाम है अतः यह मंत्र शिव का वाचक मंत्र कहलाएगा । "श्री शारदायै नमः" इस मंत्र की अधिष्ठाता शारदा देवी है अतः यह शारदा का ही वाचक मंत्र बनेगा । इस तरह सैकड़ों मंत्रों की यह व्यवस्था है ।

मंत्र रचना की पद्धति—

नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, वषट् आदि शब्दों के साथ इष्ट देव-देवी के नाम जोड़ने पर मंत्र रचना हो जाती है । नाम के शब्द में चतुर्थी विभक्ति संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार लगाई जाती है । तथा मन्त्र में प्रयुक्त नाम के साथ विशेषणादि जोड़कर मंत्र का विस्तार जरुर किया जाता है । आवश्यकतानुसार यह है 'नमः' शब्द प्रायः मंत्रों के अन्त में उपलब्ध होते हैं । एक नवकार ही ऐसा मंत्र है जिसमें 'नमः' शब्द पहले प्रयुक्त है ।

संसार के सैंकड़ों मंत्रों में प्रायः देव-देवीयों के ही वाचक मंत्र उपलब्ध है । तथा प्रायः करके देव वाचक मंत्रों में देवीयों के भी नाम साथ में हो, या देवीयों के वाचक मंत्र में देवों के नाम साथ में हो ऐसे मंत्र शायद ही क्वाचित कदाचित ही होंगे । हां जिन देव-देवीयों में पति-पत्नी भाव का संबंध हो उनके मंत्रों में दोनों नाम साथ में जरुर मिलते है, उदाहरणार्थ "धरणेन्द्र-पद्मावती" का नाम मंत्र में संयुक्त रूप से साथ में मिलते है । तथा तीर्थंकरों के वाचक मंत्रों में उनके अधिष्ठायक देव-देवीयों के नाम यक्ष-यक्षिणीयों के नाम जरुर मिलते हैं । लेकिन वे गौण अर्थ में है । तीर्थंकरों की प्राधान्यता रहती है । देव-देवीयों के नाम तो मात्र विशेषणार्थ में जोड़े हुए रहते हैं । उदाहरणार्थ "धरणेन्द्र पद्मावती पूजित श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः" में धरणेन्द्र या पद्मावती दोनों को नमस्कार नहीं है । इन दोनों से पूजित ऐसे पार्श्वनाथ भगवान की प्राधान्यता है । उनको ही नमस्कार है । अन्य किसी को नहीं । अतः धरणेन्द्र-पद्मावती पूजित यह पार्श्वनाथ का विशेषण बना हुआ है । ऐसे पार्श्वनाथ को

नमस्कार किया गया है । यह इस मंत्र की विशेषता है । इसी तरह "मातंग-सिद्धायिका पूजिताय श्री महावीर स्वामिने नमः" यह भगवान महावीर स्वामी का मंत्र बना । इसमें भगवान महावीर स्वामी के शासन के जो अधिष्ठायक यक्ष-यक्षिणी थे उनके द्वारा पूजित भगवान महावीर स्वामी को नमस्कार किया गया है । याद रखिए ! ऐसे मंत्रों में देव देवियों को नमस्कार नहीं है । परन्तु परमात्मा को ही नमस्कार किया गया है ।

देव-गुरु का वाचक संयुक्त मंत्र "नवकार"—

देव-देवियों के वाचक संयुक्त मंत्र सैंकड़ों मिल जाएंगे । लेकिन सर्वथा बिना देव-देवियों के मात्र भगवान और गुरु का मंत्र तो एक मात्र नवकार ही उपलब्ध है । यहां जो देव शब्द नवकार के साथ प्रयोग किया जाता है उसका तात्पर्य किसी स्वर्ग के देवी-देवता से नहीं है । लेकिन सम्यग् दर्शन के केन्द्रीभूत जो देव, गुरु, धर्म तत्त्व की तत्त्वत्रयी है, उसमें देवतत्त्व से जो देवाधिदेव अरिहंत परमात्मा है वे अभिप्रेत है । अतः देवाधिदेव शब्द का संक्षिप्त रूप देव शब्द यहां लिया गया है । अतः अरिहंत और सिद्ध परमात्मा दोनों की गणना देव तत्त्व में की गई है । तथा आचार्य, उपाध्याय और साधु इन तीनों की गणना गुरुतत्त्व में की गई है । नवकार जैसे महामंत्र में देव और गुरु तत्त्व दोनों की एक साथ उपासना की गई है अर्थात् इसमें देव, गुरु दोनों को एक साथ नमस्कार किया गया है । सभी धर्मों के मुख्य-मुख्य प्रसिद्ध मंत्रों को देखने पर नवकार जैसा देव और गुरु तत्त्व को संयुक्त रूप से नमस्कार किया गया हो ऐसा एक भी मंत्र दृष्टिगोचर नहीं होता है । अधिकांश रूप से अपने-अपने धर्म के भगवान का वाचक मंत्र जरुर मिलता है । लेकिन बिल्कुल नवकार के समकक्ष बिना नाम वाला और देव गुरु को नमस्कार किया जाता हो ऐसा मंत्र देखने में नहीं आया । या तो अकेले भगवान के वाचक मंत्र मिलते हैं । या गुरु के अलग स्वतंत्र मंत्र मिलते हैं । परन्तु नवकार में दोनों देव और गुरु के संयुक्त रूप से मिलते हैं । अरिहंत और सिद्ध ये दोनों परमेष्ठी जिनकी गणना देव तत्त्व के अन्तर्गत होती है वे सर्वज्ञ अनन्तज्ञानी है । सिद्ध परमात्मा विदेह मुक्त-अशरीरी है । जबकि अरिहंत भगवान सर्वज्ञ सशरीरी अवनितल पर विचरमान है । बाद में देह छोड़ देने पर वे भी अशरीरी सिद्ध भगवान बन जाते हैं ।

इसी तरह गुरु तत्त्व के तीनों गुरुओं का विचार करना ही चाहिए । भूतकाल में आचार्य, उपाध्याय और साधु पद पर रहकर जो भी मुक्ति पा चुके हैं वे सभी सर्वज्ञ, केवली होकर मुक्त बने हैं । और 'नमो आयरियाणं' आदि तीनों गुरु वाचक पदों से वर्तमान कालीन गुरुओं को नमस्कार करते हैं तब उनमें छद्मस्थ गुरू भी काफी है । आचार्य भी छद्मस्थ, उपाध्यायजी भी छद्मस्थ और साधु मुनिराज भी छद्मस्थ की कक्षा के काफी हैं । एक तरफ नवकार जैसे महामंत्र में देवतत्त्व के दोनों परमेष्ठी भगवन्त सर्वज्ञ और वीतराग है, उनको नमस्कार किया गया है, वहीं छद्मस्थ गुरु तत्त्व के तीनों गुरुओं को भी नमस्कार किया गया है । यही नवकार की आश्चर्यजनक विशेषता है । ऐसा नहीं है कि...देव तत्त्व के अरिहंत सिद्ध परमेष्ठी जिस कक्षा के ऊंच्च स्तर के सर्वज्ञ वीतरागी है उसी कक्षा के यदि गुरु होंगे तो ही उनको नमस्कार करेंगे अन्यथा नहीं । देवतत्त्व में सर्वज्ञ परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करके छद्मस्थ गुरुओं को भी नमस्कार किया है ।

नवकार में स्वर्ग के देव-देवियों को नमस्कार नहीं है—

याद रखिए ! नवकार मात्र इष्ट सिद्धि दायक मंत्र नहीं है । मात्र दुःख नाशक, सुख दायक ही नहीं है । यह पाप कर्म नाशक, मुक्ति दायक आध्यात्मिक महामंत्र है । अतः सुख सम्पत्ति दायक, दुःख नाशक, कष्ट, विघ्न, संकट निवारक मंत्रों की अपेक्षा अनन्त गुना ऊंचा सर्वोपरि सर्वश्रेष्ठ कक्षा का मंत्र होने के कारण भी इसे महामंत्र कहना ही सही है । "पढमं" शब्द जो नवकार में प्रयुक्त किया गया है वह नवकार की प्राथमिकता सर्वोपरि श्रेष्ठता का सूचक है । नवकार के प्रथम पांच पदों में पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार किया गया है, अतः पांचों परमेष्ठी वाचक शब्दों के आगे 'नमो' शब्द का प्रयोग किया है । शेष 4 पदों में नमस्कार नहीं है । छट्ठे पद में प्रयुक्त "नमुक्कारो" यह नमस्कार की क्रिया का नहीं है । परन्तु ऊपर जिन 5 परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार किया गया है, उन पांचों को किया गया नमस्कार कैसा है ? क्या फल प्रदान करता है ? नमस्कारकर्ता को क्या लाभ मिलता है ? इत्यादि अर्थ सूचित किया गया है । फिर इसका उत्तर 7वें पद में दिया गया है ।

अतः देव तत्त्व के 2 अरिहन्त और सिद्ध भगवान तथा गुरु तत्त्व के आचार्य, उपाध्याय और साधु इन तीनों गुरु भगवन्तों को 'नमो' द्वारा नमस्कार किया गया है । बस 2 देव + और 3 गुरु ऐसे पांच परमेष्ठी भगवन्तों को ही नमस्कार किया गया है इनके अतिरिक्त अन्य किसी को भी नवकार में स्थान ही नहीं दिया गया है । अतः अन्य किसी भी देव-देवियों को नमस्कार करने का सवाल ही नहीं उठता है । कारण भी स्पष्ट ही है कि...देव-देवियां स्वयं भी संसार में है । 4 गतियों में से 1 देव गति में है वे भी संसारी ही कहलाते हैं । अनन्त भूतकाल में अनन्त देव-देवियों में से कोई एक भी केवलज्ञान पाकर सर्वज्ञ बन ही नहीं सके हैं । कोई वीतरागी भी नहीं बन पाए हैं । और एक भी देव-देवी, देव गति, देव भव से मोक्ष में जा ही नहीं सके हैं । अतः नवकार जैसे महामंत्र में देव-देवियों का कोई स्थान ही नहीं है ।

दूसरी तरफ देव-देवी जो स्वयं पाप-कर्म से मुक्त नहीं है तो फिर उनको नमस्कार करने से नमस्कारकर्ता साधक के पाप कर्मों का नाश-क्षय कैसे संभव है ? सर्वथा असंभव है । जब नवकार महामंत्र की साधना का स्पष्ट लाभ ही "सव्व पावप्पणासणो" का है । अर्थात् सब पाप कर्मों का संपूर्ण नाश-क्षय करने का है तब वैसा फल तो उनको ही नमस्कार करने से संभव है । जिनके सब पाप कर्मों का क्षय-नाश हो चुका है । इसी कारण स्वर्ग की देव गति के लाखों करोड़ों देवी-देवता वे स्वयं भी नवकार महामंत्र की आराधना अपने जीवन में प्रतिदिन करते ही है । विशेषकर जो सम्यग् दृष्टि देवी-देवता है वे तो अवश्य ही नवकार की साधना नियमित रूप से करते हैं । क्योंकि सम्यग् दर्शन नवकार के साथ जुड़ा हुआ संलग्न है । जैसे सभी सामान्य जीव आहार-पानी के बिना नहीं रह सकते हैं, वैसे ही सम्यग् दृष्टि जीव नवकार के बिना नहीं रह सकता है । अत: ऐसे सम्यग् दृष्टि साधकों का नवकार प्राणमंत्र बन जाता है । भाव प्राण बन जाता है । आहार पानी की तरह भाव कक्षा का आधार भूत नवकार बताया गया है । इसीलिए मनुष्य गति के मानवों को समझना चाहिए कि जब देवी-देवता भी नवकार महामंत्र गिनते हैं, जपते हैं, तो फिर हमें क्यों मात्र देव-देवियों का ही जाप या साधना करनी चाहिए ? क्यों न हम नवकार महामंत्र की साधना उपासना करके सब पाप कर्मों का क्षय करें ।

मनोरथ पूर्ति, संकट-विघ्न नाश, दु:ख नाश एवं सुख प्राप्ति आदि सब कुछ भौतिक लक्षी है । दुन्यवी पदार्थों के निमित्त वाले हैं तथा इनकी प्राप्ति आदि भी क्षणिक नाशवन्त है । अत: साधक को समझकर भी ऐसे भौतिक लाभ को छोड़कर ही आध्यात्मिक महामंत्र नवकार को अपनाना चाहिए । और नवकार से सब पाप कर्मों का सर्वथा क्षय करके सिद्ध स्वरूपी बनना ही चाहिए ।

संयुक्त रूप से या व्यक्तिगत रूप से पापनाशक ?—

नवकार में प्रयुक्त पांचों परमेष्ठी भगवन्त संयुक्त रूप से सब पाप कर्मों के नाशक है ? या उनको किया गया नमस्कार सब पाप कर्मों का नाशक हो सकते हैं ? या फिर किसी एक परमेष्ठी भगवन्त को किया हुआ नमस्कार भी सब पाप कर्मों का नाशक हो सकता है या नहीं ?

उपरोक्त कक्षा की जिज्ञासा के विषय में कहना है कि... एक बात सुनिश्चित है कि नवकार पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को संयुक्त रूप से नमस्कार का महामंत्र है । फिर भी 1-1 पद में एक-एक परमेष्ठी भगवन्त के वाचक पद के आगे "नमो" पद जोड़कर स्वतंत्र रूप से भी नमस्कार किया गया है । और मंत्र पद बनाए गए हैं । तथा छट्ठे पद में सम्मिलित स्वरूप से "एसो पंच" अर्थात् इन पांचों को किया गया नमस्कार ऐसी अर्थ ध्वनि में लगता है कि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को संयुक्त रूप से नमस्कार किया गया है । लेकिन वास्तव में ऐसी अर्थ ध्वनि की अपेक्षा छट्ठा पद ऐसा अर्थ सूचित करता है कि...इन पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को किया गया नमस्कार । आगे 7वें पद के अर्थ को जोड़कर अर्थ वाक्य की पूर्णता की जाती है । सब पाप कर्मों का नाशक हो । अत: छट्ठे पद की अर्थ ध्वनि में पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को संयुक्त रूप से एक ही नमस्कार की ध्वनि नहीं है । यदि एक ही नमस्कार की अर्थ ध्वनि होती तो एक बार ही नमो पद का प्रयोग करते । परन्तु वैसा तो एक मात्र "नमोऽर्हत्" सूत्र में हैं । यह संस्कृत भाषा में बनाया हुआ सूत्र है । इसमें चूलिका साथ न रखकर मात्र मंत्रात्मक 5 मंत्र सूत्रों को एक साथ जोड़कर, नमो शब्द की पुनरावृत्ति हटाकर, एक ही बार नमो पद आगे रखकर पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के वाचक मुख्य पदवाची नाम जोड़कर मंत्र रचना की गई है । परन्तु संक्षिप्तीकरण के विचारानुसार बना हुआ "नमोऽर्हत्" सूत्र भी साधकों के मंत्र जपादि के व्यवहार में नहीं आया । हजारों वर्ष बीत गए लेकिन अभी तक जपादि में किसी ने इसका उपयोग प्रारम्भ नहीं किया है । अत: मंत्र स्वरूप में इसका प्रयोग नहीं हुआ सूत्र विधि क्रम में व्यवहार में जरुर आया ।

नौ पदों का विस्तृत पूर्ण नवकार—

नमो अरिहंताणं ।।1 ।। नमो सिद्धाणं ।।2 ।।
नमो आयरियाणं ।।3 ।। नमो उवज्झायाणं ।।4 ।।
नमो लोए सव्व साहूणं ।।5 ।।
एसो पंच नमुक्कारो ।।6 ।। सव्व पावप्पणासणो ।।7 ।।
मंगलाणं च सव्वेसिं ।।8 ।। पढमं हवइ मंगलं ।।9 ।।

नौ पदों का यह पूर्ण नवकार महामंत्र है । इसमें पांच पद मंत्रपद के रूप में स्वतंत्र है । चूलिका के 4 पद पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को किये गए नमस्कार का फल सूचित करके नवकार की मांगलिकता कैसे सर्वश्रेष्ठ है यह सिद्ध करते हैं । अब यह भी देखना है कि—पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को किया गया संयुक्त नमस्कार ही सब पाप कर्मों का नाशक है या फिर एक परमेष्ठी को किया गया नमस्कार भी सब पाप कर्मों का नाशक है । यदि एक स्वतंत्र तिल में तेल है तो तद् जातीय समान सभी तिलों में संयुक्त रूप से भी तेल होगा ही । यदि एक में ही नहीं होता तो

तद्जातीय समान सब में भी कहां से होता ? जैसे 1 रेती के कण में तेल या जल कुछ भी नहीं है तो समष्टिगत रूप से रेती के अनन्त कण इकट्ठे करके पीलने पर भी तेल निकलने की कोई गुंजाइश कभी भी नहीं रह सकती है । जबकि तिल के या राई के एक छोटे से दाने में तेल है अत: सभी तिल या राई इकट्ठी करके पीलने से तेल अवश्य निकलेगा । ठीक इसी नियमानुसार पांच में से किसी 1 परमेष्ठी भगवन्त को नमस्कार करने से भी जब सब पाप कर्मों का नाश होता हो तो निश्चित रूप से पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को संयुक्त रूप से नमस्कार करने पर भी अवश्य ही सब पाप कर्मों का नाश होगा ही । यह निर्विवाद सत्य है । ठीक इससे विपरीत भी इसी बात को घुमाकर कही जा सकती है । वह इस प्रकार कि...यदि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को संयुक्त रूप से नमस्कार करने पर सब पाप कर्मों का नाश हो सकता है तो निश्चित रूप से किसी एक परमेष्ठी भगवन्त को नमस्कार करने पर भी सब पापों का नाश अवश्य हो सकता है । क्योंकि एक परमेष्ठी भी पांच के ही घटक रूप में एक है ।

एक परमेष्ठी का नवकार—

प्रसिद्ध एवं प्रचलित नवकार महामंत्र पंच परमेष्ठी भगवन्तों को संयुक्त रूप से किये नमस्कारों का द्योतक महामंत्र है । यही सही है । सर्वश्रेष्ठ है । लेकिन एक परमेष्ठी का संक्षिप्त नवकार भी इस प्रकार हो सकता है—

1. नमो अरिहंताणं; सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम् ।।1 ।।

—अरिहन्त परमात्मा को किया हुआ नमस्कार, सब पाप कर्मों का नाश करने वाला है, और सभी मंगलों में प्रथम कक्षा का मंगल है ।।1 ।।

2. नमो सिद्धाणं; सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम् ।।2 ।।

—सिद्ध परमेष्ठी भगवन्त को किया हुआ नमस्कार सब पाप कर्मों का क्षय करता है, और यह सब मंगलों में श्रेष्ठ मंगल है ।।2 ।।

3. नमो आयरियाणं; सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम् ।।3 ।।

— आचार्य भगवन्तों को किया गया नमस्कार, सब पाप कर्मों का नाश-क्षय करता है, और सब मंगलों में यह सर्वश्रेष्ठ मंगल है ।।3 ।।

4. नमो उवज्झायाणं; सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम् ।।4 ।।

— उपाध्यायजी महाराजों को किया गया नमस्कार सब पाप कर्मों का नाश करने वाला है और सब मंगलों में प्रथम कक्षा का श्रेष्ठ मंगल है ।

5. नमो लोए सव्व साहूणं; सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम् ।।5 ।।

— लोक में रहे हुए समस्त साधु भगवन्तों को नमस्कार करने से सब पाप कर्मों का क्षय होता है और यह सब मंगलों में सर्वश्रेष्ठ कक्षा का प्रथम मंगल है ।

इस तरह पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार के एक-एक स्वतंत्र नवकार इस तरह बनेंगे । मुख्य नवकार का जो छट्ठा पद "एसो पंच नमुक्कारो" का है उसमें पांचों को किये गए नमस्कार के स्थान पर एक-एक को नमस्कार करने पर एक-एक परमेष्ठी का स्वतंत्र अलग नवकार मंत्र बनता है । इससे छट्ठे पद में 'एसो पंच' के स्थान पर एसो 'इक्क नमुक्कारो' की चूलिका की स्वतंत्र रचना करने पर इस प्रकार का स्वरूप होगा—

एसो इक्क नमुक्कारो; सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम् ।।

इस चूलिका में सम्पूर्ण बात कही है मात्र संख्यावाची शब्द पंच "5" के स्थान पर "इक्क" शब्द का 1 के अर्थ में प्रयोग किया गया है । जिसकी स्पष्ट अर्थ ध्वनि निकलती है कि...ऐसे एक परमेष्ठी भगवन्त को किया गया नमस्कार सब पाप कर्मों का नाश करता है । और यह नमस्कार मंत्र सब मंगलों में सर्वोपरि श्रेष्ठ कक्षा का मंगल है ।

इस तरह जो दर्जा पंच परमेष्ठी भगवन्तों को संयुक्त रूप से मिलता है वही दर्जा 1 परमेष्ठी भगवन्त को भी उतना ही ऊंचा मिलता है। यह निर्विवाद है। लेकिन लोक व्यवहार में यदि हम एक परमेष्ठी नमस्कार का प्रचलन करें तो जरुर दोष लगता है। मूल नवकार का उत्थापक कहकर उत्सूत्र प्ररुपक कह देंगे। परन्तु नवपद की ओली में तथा वीशस्थानक की ओली में एक-एक दिन एक-एक ओली में एक-एक स्वतंत्र पद का जाप आदि से आराधना होती ही है। उदाहरणार्थ आचार्य पद के तीसरे दिन ओली में एक मात्र 'नमो आयरियाणं' पद का ही स्वतंत्र जाप की 20 माला करते हैं। इसी तरह अन्य-अन्य पदों का स्वतंत्र रूप से जाप किया जाता है तथा हजारों लोग आज भी स्वतंत्र रूप से मात्र 1 पद "नमो अरिहंताणं" का जाप करते ही है। एक पद का जाप करने वाले चूलिका का साथ स्मरण नहीं करते हैं। कुछ अन्य संप्रदायों में पांच पदों का भी संयुक्त नवकार का जापादि साधना करते समय चूलिका के शेष 4 पदों का उच्चारण नहीं करते हैं। अर्थात् छोड ही देते हैं। मात्र 5 पदों के 35 अक्षरों का ही जाप करते हैं। इस तरह स्वतंत्र रूप से 1 पद का भी जाप खूब होता है। परन्तु वहां वे चूलिका साथ जोड़कर नहीं करते हैं। भले न करें लेकिन अभिप्रेत अर्थ ध्वनि यही रहती है।

पांचो परमेष्ठियों का संयुक्त मंत्र-नवकार—

इस तरह नवकार महामंत्र पांचों परमेष्ठी भगवन्तों का वाचक संयुक्त महामंत्र है। इस तरह एक परमेष्ठी के बजाय पांच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार का यह वाचक मंत्र बनने पर महामंत्र का दर्जा बनता है यह बिल्कुल सही ही है। जब एक परमेष्ठी भगवन्त को नमस्कार करने से भी सब पाप कर्मो का नाश होता है तो फिर पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने पर पाप कर्मो का क्षय करने की क्षमता कितनी गुनी ज्यादा बढ़ी ? इसका भी विचार साधक को करना ही चाहिए। जैसे 1 सेल की बैट्री का प्रकाश और 5 सेल की संख्या बढाने पर प्रकाश का प्रमाण कितना बढ़ेगा ? इसी तरह पाप नाशक शक्ति में कितना गुना प्रमाण बढता है ? हमारे जैसे सामान्य कक्षा के जीवों के सिर पर कालान्तर के अनन्त पाप कर्म है। उन सबका क्षय कब होगा ? कैसे होगा ? कितने प्रमाण में होगा ? इत्यादि विचारणा करने की दृष्टि से पंच परमेष्ठियों को नमस्कार का संयुक्त पूर्ण नवकार महामंत्र की साधना ही ज्यादा सुसंगत सिद्ध होती है।

1 परमेष्ठी के 5 पद—

नवकार महामंत्र में 1 अरिहंत, 2. सिद्ध, 3. आचार्य, 4. उपाध्याय और 5. साधु ये 5 परमेष्ठी भगवन्त है। इनके 5 पद है। इनमें से 1. अरिहन्त ऐसे सर्वश्रेष्ठ परमेष्ठी है जिनमें शेष सभी परमेष्ठी पदों का समावेश हो जाता है। अरिहन्त भगवन्त दीक्षा लेकर साधु बनते हैं। वे ही उपदेशक के रूप में उपाध्याय स्वरूप, और तीर्थ-संघ संचालक के स्वरूप में आचार्य के रूप में तथा केवलज्ञान पाकर समवसरण में बिराजमान होने पर वीतराग अरिहन्त पद पर... तथा अन्त में सर्वकर्म रहित होने पर... सिद्ध परमात्मा बन जाते हैं। इस तरह एक अरिहंत परमात्मा पांचों परमेष्ठी स्वरूप हैं। इसलिए पांचों परमेष्ठी भगवन्तों का एक संयुक्त स्वरूप अरिहंत परमात्मा है। अत: कई बार लोग पूरे नवकार की माला का जाप करने के स्थान पर संक्षिप्त स्वरूप में सिर्फ 1 पहले "नमो अरिहंताणं" पद का जप करके संतोष मानते हैं। यह भी प्रचलित है। जब प्रथम पद "नमो अरिहंताणं" का स्वतंत्र रूप से जप हो सकता है तो शेष दूसरे पद का भी स्वतंत्र रूप से जप हो सकता है इसमें ना नहीं है। लेकिन दूसरा कोई भी पद पांचों परमेष्ठी रूप में नहीं समा सकता है। साधु बनकर उपाध्याय, आचार्य और अन्त में सिद्ध बनने वाला 4 पदों पर आरुढ हो सकता है लेकिन अरिहन्त पद छूट जाता है। इसी तरह उपाध्याय और आचार्य पद का भी समझना चाहिए। ये भी 4 पद पर आरुढ हो सकते हैं। अत: 1-1 पद का स्वतंत्र स्मरण का प्रचलन होने के बावजूद भी पांचों परमेष्ठी को नमस्कार रूप पूर्ण नौं पद का 68 अक्षरों वाले नवकार का स्मरण करना ज्यादा श्रेयस्कर है साधक ऐसे महामंत्र को पाकर...श्रद्धा भाव से ज्ञान योग पूर्वक स्मरण करके सब पाप कर्मो का क्षय करके परम परमेष्ठी पद की प्राप्ति करें। यही शुभ भावना...।

1 नवकार से 500 सागरोपम नरक का दुःख—पाप टलता है

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

— क्या नवकार महामंत्र की साधना में 1 नवकार गिनना भी निष्फल जा सकता है ? जी नहीं । 1 नवकार गिनने का फल भी इतना ज्यादा है... इतना बड़ा है कि जिसकी कल्पना हम शायद कर भी नहीं सकते हैं । क्योंकि मनुष्य की कल्पनाएं सीमित है, मर्यादित है । अकल्पनीय नहीं है । अतः शास्त्रकार महर्षि ने जो 1 नवकार गिनने का फल बताया है वह इस प्रकार है —

नवकार इक्क अक्खर, पावं फेडेइ सत्त सयराइं ।
पन्नासं च पएणं, पणसं च समग्गेणं ।।

— नवकार महामंत्र में कुल 9 पद है, 8 संपदा है, 68 अक्षर है । 61 लघु और 7 गुरु अक्षर है । ऐसे महामंत्र का यह बाह्य कवच है । ऐसे 68 अक्षर वाले महामंत्र की आराधना करने वाले आराधक आत्मा को जाप स्मरण करने से जो लाभ होता है वह इस श्लोक में 3 तरीके से बताया है—

1. नवकार महामंत्र के मात्र 1 अक्षर के स्मरण से 7 सागरोपम का नरक गति का दुःख जीव निवारण करता है ।
2. एक पूरे पद के स्मरण-जाप से 50 सागरोपम का नरक गति का दुःख जीव निवारण करता है तथा
3. समग्र 68 अक्षर का संपूर्ण नवकार महामंत्र का जाप स्मरण करने से 500 सागरोपम तक का नरक गति का दुःख निवारण करता है ।

इस तरह एक श्लोक में 3 तरीकों के गणित की संख्या दर्शाते हुए पाप कर्म निवारण करने का विधान किया है । इसके गणित को समझने के पहले इतना जरूर ध्यान में रखें कि..... असंख्य वर्षों का 1 सागरोपम होता है । यह सागर की उपमा के अनुरूप बनाया गया शब्द है जिसे सागरोपम कहा गया है । काल की संज्ञा विशेष है जो असंख्य वर्षों के समकक्ष होता है । जीव ऐसे सागरोपमो के अगणित काल तक के लम्बे काल की दीर्घावधि की भारी कर्म की स्थिति बांधता है । उदाहरण के लिए कर्मग्रन्थकार इस तरह स्पष्ट करते हैं—

1. ज्ञानावरणीय कर्म की उत्कृष्ट बंध स्थिति-30 कोड़ा कोड़ी सागरोपम वर्ष ।
2. दर्शनावरणीय कर्म की उत्कृष्ट बंध स्थिति-30 कोड़ा कोड़ी सागरोपम वर्ष ।
3. मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट बंध स्थिति-70 कोड़ा कोड़ी सागरोपम वर्ष की है ।
4. अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट बंध स्थिति-30 कोड़ा कोड़ी सागरोपम वर्ष की है ।
5. नाम कर्म की उत्कृष्ट बंध स्थिति-20 कोड़ा कोड़ी सागरोपम वर्ष की है ।
6. गोत्र कर्म की उत्कृष्ट बंध स्थिति-20 कोड़ा कोड़ी सागरोपम वर्ष की है ।
7. वेदनीय कर्म की उत्कृष्ट बंध स्थिति-30 कोड़ा कोड़ी सागरोपम वर्ष की है ।
8. आयुष्य कर्म की उत्कृष्ट बंध स्थिति-33 सागरोपम वर्ष प्रमाण है ।

करोड़ों का करोड़ों के साथ गुणाकार करने पर कोड़ा कोड़ी कहा जाता है । इस तरह 8 में से 7 कर्मों की उत्कृष्टा अधिक से अधिक बंध स्थिति उपरोक्त तालिका में दर्शायी गयी है । आयुष्य कर्म की स्थिति कोड़ा कोड़ी न होकर सिर्फ 33 सागरोपम वर्ष की ही होती है । सातों नरक में क्रमशः पहली में 1, दूसरी में 3, तीसरी में 7, चौथी में 10, पाँचवीं में 16, छट्ठी में 22, और सातवीं नरक में - 33 सागरोपम का आयुष्य होता है । ज्ञानावरणीयादि भारी कर्म जिनकी बंध स्थिति उत्कृष्ट रूप से कोड़ा कोड़ी सागरोपम की है । इतने लम्बे आयुष्य काल तक जीव नरक में कीये हुए पापकर्मों की सजा के रूप में काफी-ज्यादा दुःख-वेदना भुगतता ही रहेगा । इस नरक गति के लम्बे काल से बचने के लिए नवकार महामंत्र का जाप-स्मरण उपयोगी सहयोगी होता है ।

जैसे नवकार के 1 अक्षर के स्मरण से 7 सागरोपम तक जीव जितनी वेदना नरक में भुगतता है वह कम होती है । नवकार महामंत्र के कुल अक्षर 68 है । 1 अक्षर से 7 सा. हो 68 अक्षर के प्रमाण में 68 के साथ 7 का गुणाकार करने पर 68 x 7 = 476 । इस 476 की संख्या के साथ लघु अक्षर 7 के 7 सा. + 8 संपदा के 8, + तथा 9 पदों के + 9 सा. = 24 होता है । 476 + 24 = 500 । इस तरह 500 सागरोपम के काल तक नरक में जीव जितनी वेदना-दुःख भुगतता वह 1 नवकार के स्मरण से टल जाता है । इस तरह यदि 9 लाख नवकार, 99 लाख, सवा करोड़ नवकार आदि अपने जीवन काल में नवकार का जाप स्मरण करने वाले साधक को नरक गति में जाना ही नहीं पड़ता है । नरक की गति का निवारण हो जाता है ।

दूसरी एक और अन्य रीत है जिससे 500 सागरोपम का उत्तर आता है । जैसे— 1 पद के स्मरण से 50 सागरोपम का नारकी का दुःख टलता है । ऐसे 9 पद है अतः 50 के साथ x 9 पदों का गुणाकार करने पर 50x9 = 450 होता है । नवकार के नौ पदों में 27 मात्राएं है, + 13 अनुस्वार है + तथा 7 संयुक्ताक्षर है तथा नवकार में देव + गुरु और धर्म ये 3 तत्त्वत्रयी के 3 तत्त्व है इस तरह 450 + 27 + 13 + 7 + 3 = 500 सागरोपम का योग आता है ।

इस दूसरे तरीके से भी एक नवकार महामंत्र के स्मरण से 500 सागरोपम के लम्बे काल तक नरक गति में रहकर जितने पाप कर्मों की सजा का दुःख भुगतता, उतने प्रमाण के पाप कर्मों का नाश 1 नवकार के स्मरण-जाप से जीव खपाता है । क्षय कर देता है । फिर उस जीव के लिए नरक गति में जाने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी । उपरोक्त गणित के नियमों के आधार पर शास्त्रकार महर्षी द्वारा दिये श्लोक की समीक्षा सार्थक की गई है । इस श्लोक के अर्थ के अनुसार श्रद्धा भक्ति का मानस-भावना बनाकर साधक को साधना करनी चाहिए । तथा साध्य को साधना द्वारा सिद्ध करना चाहिए ।

नियम डायरी [हिन्दी और गुजराती दोनों भाषा में उपलब्ध]

"नियम" जीवन को नियमित बनाता है । नियमित जीवन ही निश्चिन्त जीवन है । जी हां ..... इस बात का अनुभव करके देखिए..... अनेक पापों से बचने के लिए उनका पच्चक्खाण ही कर लेना एक प्रकार के सुरक्षा कवच समान है । आप कैसे कैस पापों का पच्चक्खाण कैसे करेंगे ?

ऐसे १०८ छोटे-छोटे नियम, २०८ छोटे-छोटे नियमों का संग्रह करके पोकेट डायरी जैसी छोटी सी **नियम डायरी** बनाइ है जिसे जेब में साथ रखकर याद रखने में सुविधा रहती है ।

जी .... हां ..... बिल्कुल निःशुल्क मंगाइये ..... और नियम लेकर पालन करीए ..... ।

यह दुनिया किसने बनाई है ? कब और क्यों बनाई ? बनाई है या बताई है ? सही अर्थ में परमेश्वर कैसे हैं ? दुनिया बनाने वाले को ही ईश्वर कहने में कितने दोष आते हैं ? भगवान का स्वरूप कितना विकृत हो जाता है ? आपकी जिज्ञासा को संतोषने के लिए न्याय-दर्शनाचार्य .....

पू. पंन्यास प्रवर श्री अरुणविजयजी महाराज द्वारा . . .

महामंत्र नवकार के ..... आद्य पद — "नमो अरिहंताणं" पर डेमी साइज में करीब ४५६ पृष्ठों की सरल हिन्दी में लिखी हुई पुस्तक —

"नमस्कार महामंत्र का अनुप्रेक्षात्मक विज्ञान"

जरूर से पढीए..... पढकर चिन्तन-मनन करते हुए अपनी श्रृद्धा बढाइए । दूसरों को भेंट दीजिए ।

आत्मिक एवं आध्यात्मिक कक्षा का महामंत्र—"नवकार"

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

संसार में लाखों करोड़ों मंत्र है । मंत्रों का भी महोदधि है । मंत्र शास्त्रों में, 'मंत्र महोदधि' में लाखों-करोड़ों प्रकार के मंत्र है । सब मंत्रों का अपना-अपना कार्य क्षेत्र भिन्न-भिन्न है । आयुर्वेद शास्त्र ने औषधि विभाग में भी मंत्रों को महत्ता दी है । जंगल में जाना, वनस्पति लाना, तोड़ना आदि के मंत्र अलग है । औषधि निर्माण के समय घूटना, भावना देना आदि अवसर पर अलग कक्षा के मंत्रोच्चार बताए हैं । तथा औषधि लेते समय के भी कुछ मंत्र है । तंत्र शास्त्र ने भी मंत्र बताए हैं । काम शास्त्र ने भी भिन्न-भिन्न मंत्रों का उल्लेख किया है । कुछ मंत्र भूत-प्रेत के विषय के हैं । भूत बुलाना, निकालना आदि कई प्रकार के मंत्र है । कुछ मेली विद्या के विषय के भी मंत्र है । मूठ डालकर किसी को मारने आदि के विषय में भी मंत्रों का उपयोग बताते है । वशीकरण आदि विद्याओं के भी मंत्र है । दु:ख, कष्टदायी कामण, टुमण प्रयोग कारक मंत्र भी अनेक हैं । जिससे दूसरों को रोग में, दु:ख में संकट में डाला जा सकता है । शत्रु नाशक, मारक मंत्र भी अनेक है । युद्ध के मैदानों में मांत्रिक शस्त्रों का प्रयोग भी होता था कि जिसमें बाण में से अग्नि वर्षा, जल वर्षा, धूंआ निर्माण आदि कार्य मंत्र शक्ति द्वारा किये गए हैं ऐसा वर्णन महाभारतादि ग्रन्थों में मिलता है ।

इसी तरह दु:ख, संकट नाशक मंत्र, विघ्न, आपत्ति निवारक, सुख शान्ति दायक मंत्र, ऋद्धि सिद्धि के मंत्र, सुख-समृद्धि प्राप्ति के मंत्र, लक्ष्मी प्राप्ति मंत्र, शक्ति प्राप्ति हेतु मंत्र, और विद्या, बुद्धि, ज्ञान वर्धक सरस्वती के मंत्र, रक्षा, सुरक्षा कारक मंत्र आदि लाखों विषयों के करोड़ों मंत्र हैं । प्राचीन समय में एक काल था कि जिसे मंत्र युग ही कहते थे । मंत्रों की प्रचुरता प्रधानता थी । इसके पश्चात् तंत्र युग भी आया जिसमें तांत्रिक प्रयोगों के द्वारा सैंकड़ों कार्य किये जाते थे । आज वर्तमान काल में यंत्र युग आया है । आज मंत्रों-तंत्रों की शक्ति क्षमता न्यूनतम हो गई । जबकि यंत्रों के जरिए मानव निर्धारित सब काम यथा शीघ्र होते जा रहे हैं । पवित्रता, विशुद्धि आदि गुणों का ह्रास एवं दोषों के प्रादुर्भाव से मांत्रिक शक्तियां लुप्तप्राय होती जा रही है । यंत्र युग में यंत्रों से काम लेने के लिए न तो गुणों की, न पवित्रता की एवं न सात्विकता की किसी की भी आवश्यकता महसूस ही नहीं की जाती है । चाहे सैंकड़ों दोष दुर्गुण हो या बढ़ते हो...यंत्रों से काम ले सकते हो । सब कुछ पा सकते हो ।

मंत्र देवाधिष्ठित होते हैं । देवताओं के वाचक नामादि स्वरूप होते हैं । अत: व्यक्ति स्वयं सात्विकता, पवित्रता के अभाव में मंत्रों से डरता था । परिणाम स्वरूप सात्विकता, पवित्रता आदि अनेक गुण जीवन में बढाता था । जीवन गुणों से सुवासित बनता था । यदि मंत्र सही शुद्ध सच्चे और ऊंचे है तो तदनुरूप लोगों का जीवन भी काफी ऊंचा आदर्श बनता था । कई श्रेष्ठ मंत्र आध्यात्मिक विकास की दिशा में भी जीव को अग्रसर करते थे । यंत्र युग में सब कुछ चलता है । आचार-विचारों की भ्रष्टता, दुराचार व्यभिचार के बाद भी यंत्र तो कार्य करने वाले ही है । आखिर ये जड़ साधन है । लोहे की मशीने है और इलेक्ट्री सीटी की शक्ति है । कई चक्र एक दूसरे के साथ घूमते रहते हैं ।

वस्तुएं निर्माण होती ही रहती है । उत्पादन बढता ही रहता है । इसी में कार्य सिद्धि का समावेश हो गया । बस, अपने जीवन से कुछ भी मतलब नहीं है । जबकि मंत्र ऐसे नहीं थे । वे उभय लक्षी थे । व्यक्ति जो साधक बनता था उसके जीवन का ढांचा ही बदल देते थे । इस तरह मंत्र-तंत्र और यंत्र तीनों युगों में तीनों की शक्तियों का अनुभव मानव जाति कर चुकी है । आज के वर्तमान काल में यंत्र युग में यंत्रों की भरमार और उनसे उत्पादन में भी व्यापक भरमार उत्पत्ति होने के बावजूद भी मानव जाति सुख-शांति से वंचित ही दिखाई दे रही है । ऐसी स्थिति मानव जाति की मंत्र युग में नहीं थी । आध्यात्मिक विकास एवं आत्मिक गुणों जितना ह्रास आज हो चुका है उतना कभी भी नहीं हुआ था । आज भौतिक जीवन अर्थ प्रधान हो चुका है अत: सबकी दौड़ अर्थ प्राप्ति के पीछे है । अत: गुणों का दारिद्रय बढेगा ही, इसमें कोई आश्चर्य नहीं रहेगा । लेकिन सुख शान्ति आदि के लिए मानव सदा तरसता ही रहेगा ।

आवश्यकता है आध्यात्मिक मंत्र की—

उपरोक्त भूमिका समझने के पश्चात् अब आध्यात्मिक मंत्र की उपयोगिता एवं श्रेष्ठता समझ में आएगी । आइये... अब नवकार महामंत्र में प्रवेश करें और इसका सही परिचय करें कि यह कैसा, किस कक्षा का मंत्र है ? इसकी गहराई में जाएं...इसके पदों को, शब्दों को, विषयों को, अरे ! अक्षरों को भी अच्छी तरह से देखें, चिन्तन, मनन करके गहराई को छूने की कोशिश करें...आप कहीं पर भी किसी भी प्रकार की त्रुटि नहीं पाएंगे । विकृति नहीं पाएंगे । गलत उद्देश्य या लक्ष्य नहीं पाएंगे । अत: नवकार भौतिक सिद्धिदायक मंत्र नहीं है । हां...लोग अपनी स्वार्थवृत्ति से इसका गलत दुरुपयोग कर लेते हैं यह उनकी भूल है । कोई अपनी इच्छानुसार सन्तान प्राप्ति के लिए मान्यता मानकर दुरुपयोग कर ले और

योगानुयोग "कौए का बैठना और डाल का गिरना" जैसा आकस्मिक निमित्त की तरह पुण्योदय से नवकार की आराधना के साथ-साथ संतानोत्पत्ति हो जाय और फिर प्रचार-प्रसार में इस बात को कार्य कारण भाव से जोड़कर बढा-चढाकर नवकार से संतान प्राप्ति की बात फैला दे । तो समाज में दुनिया में नि:संतान लाखों लोग होते हैं । फिर तो पूछना ही क्या ? सामान्य रूप से जनता अज्ञानी और अंध श्रद्धालु होती है । कहा ही है कि— **"गतानुगतिको लोकः न लोकः पारमार्थिकः"** । सही लगता है । अज्ञानता और अन्धश्रद्धा ये दोनों मिलकर मनुष्यों को मिथ्यात्व के गहरे गर्त ले जाकर डाल देते हैं । जिससे वर्षों तक मनुष्य उसमें से बाहर ही न आ सकें । अरे ! वर्षों तो क्या जन्मों-जन्मों तक जीव इस मिथ्यात्व के गर्त में से बाहर नहीं निकल सकता है । यह नवकार की अवहेलना हुई । प्रचार नहीं हुआ, यह नवकार की उल्टी मानहानि हुई । आप सोचेंगे शायद किसी भी बहाने, किसी भी तरीके से नवकार की साधना-आराधना बढी तो सही । जी नहीं । बिना गुणवत्ता की मात्र संख्या में ही बढी आराधना को देखकर राजी होना यह भ्रान्ति रहती है । भ्रमणा रहती है । मृग मरीचिका की तरह भ्रांति रहेगी, अत: धर्म के क्षेत्र में गुणवत्ता सर्वथा समाप्त करके मात्र संख्या की दिशा में वृद्धि देखकर संतोष मानने या राजी होने का न रखें । संख्या कम भी होगी और गुणवत्ता में यदि गुणाकार होता ही जाय तब जरुर समाधान करिए । संख्या धर्म को नहीं टिकाती न ही स्थिरता प्रदान करती है । लेकिन गुणवत्ता जरुर स्थिरता, निश्चितता प्रदान करके निरंतरता प्रदान करेगी ।

मानव जाति सदियों, सहस्त्राब्दियों से भौतिक सुख, साधनों और सम्पत्ति की प्राप्ति हेतु भौतिक मंत्रों की साधना करती रही है । अनेकों ने भौतिक सिद्धियां पाई भी सही । लेकिन आध्यात्मिकता का दारिद्र यह पुन: उन्हें दर-दर भटकाता रहा । इसलिए अब आध्यात्मिकता की दिशा में मुड़ना ही चाहिए । आत्मिक, आध्यात्मिक ऐसे मंत्रों की तलाश करनी चाहिए और उनकी साधना पुन: उसी अर्थ में करनी चाहिए । आध्यात्मिक विकास साधक, आत्मिक गुणों का प्रादुर्भाव प्राप्ति जिससे हो वही मंत्र आध्यात्मिक मंत्र कहलाएगा । जैसे निकष पर उतरने वाला सुवर्ण ही खरा सिद्ध होता है ठीक उसी तरह आत्म गुणों के विकास की निकष पर खरा उतरने वाला मंत्र ही सच्चा आध्यात्मिक मंत्र होगा ।

नवकार की आध्यात्मिकता—

नवकार महामंत्र की महानता का आधार इसकी आध्यात्मिकता है । भौतिकता कभी भी महानता सिद्ध नहीं कर सकती, क्योंकि भौतिकता की सिद्धियों में सदा अधुरापन लगता ही रहेगा । पूर्णता का किनारा ही नहीं आता है । जबकि नवकार में ये दोष नहीं है । इसकी साधना का साध्य भी पूर्णता की तरफ ही अग्रसर करता है । किनारा बिल्कुल सामने दिखाई देता है । स्पष्ट ही है कि भौतिक सिद्धियां प्रदान करने वाले भौतिक मंत्र दु:ख, संकट निवृत्ति एवं सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति तक ही सीमित रहते हैं । एक सीमित दायरा ही इनका कार्यक्षेत्र है । इतने से साध्य को ही लेकर बैठा हुआ जीव इनकी प्राप्ति में सन्तोष मानकर जीता है । दूसरी तरफ सर्वथा सम्पूर्ण रूप से सब दु:खों की निवृत्ति होती ही नहीं है, सभी विघ्न-संकट टल नहीं पाते हैं । क्योंकि इनकी भी श्रृंखला रहती है । हारमाला बनी हुई है । अत: एक दु:ख टला कि कल दूसरा सामने तैयार ही खड़ा है । दूसरा थोड़ा हटा कि तीसरा दु:ख सामने तैयार ही है । इसी तरह एक संकट टला कि सामने दूसरा तैयार ही है । इस तरह यह श्रृंखला एक के बाद एक की चलती रहती है ।

नवकार आध्यात्मिकता की भूमिका में सर्वप्रथम शुद्धिकरण की प्रक्रिया करता है । इस शुद्धिकरण में... बाह्य या शारीरिक शुद्धि की बात नहीं है । आत्मिक मंत्र का कार्य क्षेत्र आत्मा की अंतस्थ गहराई पर होता है । पाप नाश की प्रक्रिया से आत्मिक कक्षा की शुद्धि होती है । आत्मिक शुद्धि की प्रक्रिया का एक ही सिद्धान्त है कर्म क्षय करो और आत्म शुद्धि साधो । जैसे कपड़े पर मैल लगता है वैसे ही आत्मा पर कर्म लगते हैं । कर्मों का आवरण हटते ही आत्मा शुद्ध स्वरूप में प्रगट होती है । अत: कर्मावरण को हटाना, नाश करना यही एक प्रक्रिया है । इसी को साधना की प्रक्रिया कहते हैं । इस पाप कर्म को नाश करने का एक मात्र उपाय पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने का बताया है । अन्य किसी प्रकार के भौतिक बाह्य निमित्त या प्रक्रिया से आप पाप कर्मों का आवरण नहीं हटा सकेंगे । नाश नहीं कर सकेंगे । हां...दु:ख हटाने का, संकट, विघ्नों को हटाने का आभास बाह्य परिबल या भौतिक मंत्रादि करने में कामयाब हो सकेंगे । लेकिन वह भी आंशिक होगा । आभासात्मक होगा । दीर्घकालीन नहीं होगा । क्योंकि दु:खादि का कारण रूप कर्म उपस्थित ही है । अत: समूल कर्म क्षय न हो वहां तक सम्पूर्ण रूप से दु:ख-संकट का नाश कैसे संभव होगा ?

सातवें पद में "सव्व पावप्पणासणो" का उद्देश्य साधक को दे दिया है । बस, यही कार्य साधना है नवकार के उपासक को, और साधने के लिए प्रक्रिया का छट्ठा पद "एसो पंच नमुक्कारो" का दिया है । अरिहंतादि इन 5 परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करो और सब पाप कर्मों का क्षय करो । यह सारी साधना आत्मिक साधना है । बाह्य भौतिक का नाम निशान भी नहीं है । क्योंकि बाह्य भौतिक किसी भी परिबल से कर्मनाश संभव नहीं है ।

प्रथम पद "नमो अरिहंताणं" में ऐसा पाप कर्म नाश का साध्य जिसने साध लिया है उसका स्वरूप बताकर उसे नमस्कार किया गया है । अरिहंत कौन है ? अरि रूप आत्मा के आन्तरिक शत्रु जो क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह आदि अनेक है उनका हनन् अर्थात् क्षय जिसने किया है वे अरिहंत है । उनको 'नमो' पद से नमस्कार किया है ।

तथा अरियो को हनन करने का फल क्या ? अन्त में पद कैसा प्राप्त होता है उसके लिए दूसरे "नमो सिद्धाणं" के पद में स्पष्टीकरण दिया गया है कि— सर्वथा समस्त आत्मा के आन्तर अरियो-कर्मों का हनन् कर लेने के बाद जीव सिद्ध बनता है । सिद्ध स्वरूप धारण कर लेता है ।

सिद्ध शब्द "सिधु साधने" धातु से बना है । अत: निर्धारित कार्य सिद्ध कर लेने की प्रक्रिया का सूचक है । क्या साधना है ? संसार में जीव का सबसे बड़ा कर्तव्य-करने योग्य कार्य क्या है ? एक मात्र "सव्व पावप्पणासणो" का ही कार्य बड़ा है । संसार के अनन्त कार्य करने आसान खेल है । लेकिन 7वें पद में बताया हुआ सब पाप कर्मों का सर्वथा समूल सम्पूर्ण क्षय करना ही अत्यन्त दुष्कर है । ऐसी पाप कर्मों के क्षय की प्रक्रिया जिसने चालू रखी है वे साधक कक्षा के अधिकारी गुरु पद पर आरुढ पू. आचार्य, उपाध्याय और साधु भगवन्त है । जिनको क्रमश: तीसरे, चौथे और पांचवें पद से नमस्कार किया गया है । ये तीनों साधक की कक्षा में रहकर निरन्तर "सव्व पावप्पणासणो" सब पाप कर्मों को क्षय करने का एक ही काम कर रहे हैं । और जो अपना कार्य सिद्ध कर चुके हैं वे इन पदों पर से मुक्त होकर मोक्ष में जाकर सिद्ध बन चुके हैं । अत: सिद्धावस्था के साथ-साथ उनकी साधना समय की पूर्वावस्था के पद पर उनमें से कोई आचार्य थे, कोई उपाध्याय थे और कोई साधु-साध्वी थे । अत: उनके वाचक ये पद है । इनको भी नमस्कार करने से उनका स्वरूप, निष्पाप जीवन अपने दृष्टि पथ में लाकर साधक साधना के क्षेत्र में आगे बढकर सिद्धि प्राप्त कर सकता है ।

त्रिकरण योग से नमस्कार—

नवकार महामंत्र की यह विशेषता है कि इसमें "नमो" शब्द 5 बार पांच पदों में सबसे पहले आगे प्रयुक्त हुआ है । बाह्य अर्थ में 'नमो' नमस्कार अर्थ में है । लौकिक रूप से नमस्कार क्रियात्मक है । अत: क्रिया काया से होने वाली है । आत्मा अन्दर अदृष्ट अरूपी तत्त्व है । अत: दिखाई नहीं देती है । बाह्य शरीर जड पौद्गलिक पिण्ड है । यह दृष्टिगोचर होता है । अत: काया के प्रमुख अंगादि को संकुचित करके नमाना, झुकाना आदि की प्रक्रिया से पंचांग प्रणिपात स्वरूप क्रियात्मक नमस्कार होता है । यह कायिक क्रियात्मक होने से देखा जाता है ।

वचन योग का वाचिक नमस्कार भाषाकीय-शब्दात्मक है । शब्दों की रचना के पद ऐसे हो जो नमस्कार अर्थ भाव को शब्दों में प्रगट करता हो । परमेष्ठी भगवन्तों के गुणों को दर्शाने वाली और अपने दोषों को दर्शाने वाली शाब्दिक रचना में वाचिक नमस्कार होगा । इसी तरह वंदनीय नमस्करणीय की सर्वोच्चता और नमस्कर्ता की हीनता दर्शक शब्द प्रयोग या साधक स्वयं अपनी तुच्छता एवं अणु परमाणु रूप लघुता को दिखाए, और परमात्मा की प्रभुता, विभुता का वर्णन करता हुआ उन्हें नमस्कार करता जाय यह वाचिक नमस्कार है । इसी तरह अरिहन्तादि पांचो परमेष्ठी भगवन्तों के पूजनीय, गुणपरिपूर्ण स्वरूप का स्मरण करते हुए स्वयं उनकी गरिमा समझ कर उनके चरणों में समर्पित भाव से शरण स्वीकारता हुआ दासानुदास की स्वीकृति स्वयं के लिए व्यक्त करता हो इसे वचन योग का नमस्कार कहते हैं । पंचांग प्रणिपात स्वरूप अंग नमन के क्रियात्मक कायिक नमस्कार से वाचिक नमस्कार की गुणवत्ता लाख गुनी बढ गई ।

अन्तिम तीसरा योग है मनोयोग । मनोयोग का मानसिक नमस्कार सर्वोत्कृष्ट नमस्कार होता है । यह भावात्मक नमस्कार होता है । उपर वचन योग के शब्दों में जो कुछ प्रगट हुआ है, वह मन के विचारों को ही शब्दों में प्रगट किया गया है । याद रखिए— वचन योग शब्द भाषा प्रधान है । भाषाकीय शब्द भाषा वर्गणा के पुद्गल परमाणु स्वरूप जड़ है । काया भी जड़ है । और मन भी जड़ है । यह भी मनोवर्गणा के पुद्गल परमाणुओं का बना हुआ पिण्ड स्वरूप है । आत्मा ने विचार करने के लिए इस पिण्ड का निर्माण किया है । अत: यह भी जड़ है । इन तीनों योगों में ज्ञान कहां से आएगा ? ज्ञान गुण जड़-अजीव पदार्थ का नहीं है । ज्ञान गुण एक मात्र चेतनात्मा का ही है । अत: चेतनात्मा ज्ञानमय है । चेतनात्म द्रव्य अपने अन्दर स्पंदन की प्रक्रिया में ज्ञान प्रवाहित करता है । उसे मनो वर्गणा के बने हुए मन पिण्ड के द्वारा विचारों के रूप में ग्रहण प्रवाहण किया जाता है । विचार यह भावात्मक रूप से ज्ञान ही है और यह ज्ञान विचार रूप में मन के जरिए प्रवाहित किया जाता है । इसे मन बुद्धि स्मृति के साथ संलग्न होकर विचारों के प्रवाह में आगे पीछे की इत्यादि अनेक बातों को वचन योग के भाषाकीय शब्दों के माध्यम से प्रगट किया जाता है । इस तरह जीवात्मा अपना ज्ञान इन योगों के माध्यम से प्रवाहित करती है । प्रगट करती है । अत: भाषा के शब्द जड़ पौद्गलिक होने के बावजूद भी ज्ञान वाहक बन जाते हैं । शब्द तो लाखों हैं ऐसे ही उटपटांग शब्दों का प्रयोग अंटसण्ट होना ही नहीं चाहिए । यद्यपि स्वर मंजूषा काया की अंगभूत है । फिर भी इन कायिक अंगों में से प्रगट होने वाले भाषाकीय वर्गणा के पुद्गल परमाणु आत्मा के ज्ञान योग को मन के माध्यम से प्रवाहित विचारों को शब्दों के रूप में प्रगट करने की प्रक्रिया में ज्ञान प्रगट होता है । अत: वचन योग मात्र माध्यम है । वैसे आत्मा के लिए तीनों योग माध्यम रूप ही है ।

मनोयोग का मुख्य कार्य एक ही है कि...आत्मा के ज्ञान को विचारों के रूप में प्रगट करना । इसलिए मनोयोग के इस मानसिक नमस्कार में परमेष्ठी भगवन्तों के प्रति पूज्यभाव, अहोभाव प्रगट किया जाता है । पूज्यभाव में परमेष्ठी भगवन्तों की ऊंचाई, लोकोत्तरता, सर्वश्रेष्ठता, दिव्यता, गरिमा आदि काफी ऊंची कक्षा की है । इस ऊंचाई को भावों के माध्यम से स्पर्श किया जाता है । इस तरह मनोयोग का नमस्कार पूज्यभावमय बन जाता है ।

भाव कक्षा का नमस्कार आत्मिक बनता है । जो ज्ञानयोगमय बनता है । नमस्कार आत्मज्ञानात्मक बन जाता है । आत्मा के ज्ञान में नमस्कार के परिणाम बनते हैं और उससे पनपे भाव मनोयोग के माध्यम से प्रवाहित करके वचन योग के माध्यम से व्यक्त किये जाते हैं । तब जाकर किसी श्रोता के कर्ण पटल पर पड़ेंगे । उसके श्रवणेन्द्रिय का विषय बनेगा, और वह अपने ज्ञान में परिणत करेगा । इस प्रकार ज्ञान का आदान प्रदान होता है । ज्ञान सक्रिय एवं संक्रमित बनता है । स्व पर उभय उपकारक बनता है । पंच परमेष्ठी भगवन्तों के स्वरूप का हमारी आत्मा में क्षयोपशम भाव से जितना भी ज्ञान बढा हो, उसे विनय गुण से नम्रता के 'नमो' भाव से त्रिकरण योगों के माध्यम से प्रगट किया जाता है । आत्मा के विषय में भाव ज्ञान रूप ही है । मन के क्षेत्र में आकर अध्यवसाय परिणाम विचार की कक्षा को धारण करते हैं और आगे वचन योग में आकर भाषा का रूप धारण करके अभिव्यक्त होते हैं । जो अन्यों के लिए ज्ञान का निमित्त विषय बनता है । इस तरह त्रिकरण योगों का नमस्कार हुआ और आत्मिक ज्ञानात्मक नमस्कार हुआ ।

आत्म गुण "नमो भाव" का आध्यात्मिक कार्य—

नमो भाव यह और कुछ नहीं परन्तु पंचपरमेष्ठी भगवन्तों के प्रति आत्मा के ज्ञान को पूज्य भाव से, आदर भाव से अभिव्यक्त करना है । नमस्कार पर पक्षे गुण दर्शक है और स्व पक्ष में दोष दर्शक है । पर पक्ष में अरिहंतादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के गुणों का दर्शक है । सच ही है कि... द्रव्य का परिचय गुण पर्यायों से ही होता है । परमेष्ठी भगवन्तों का गुणात्मक परिचय जो हमारे ज्ञान में बढा है उनके पूज्य स्वरूप को, उच्च कक्षा के विशुद्ध स्वरूप को देखकर समझकर तथा दूसरी तरफ मेरी आत्मा उनके जैसी ही समान सजातीय होने के बावजूद भी वैसा...अर्थात् उनके जैसा गुणात्मक ऊंचा विशुद्ध स्वरूप नहीं होने से ऊपर से विपरीत दोषात्मक स्वरूप होने का आभास होता है । भान होता है । अत: नमो स्व पक्षे दोष दर्शक है ।

जिन महान् आत्माओं ने राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, काम आदि को जीत लिया है और परम की कक्षा को प्राप्त हो चुके है, उनकी तरफ देखने पर यह कार्य मुझे मेरे विषय में करना बड़ा कठिन लगता है । असंभवसा लगता है । इस स्वदोष दर्शन से पर गुणों के प्रति पूज्यभाव आदर भाव स्वाभाविक रूप से बढ जाता है । बन जाता है । इसे आत्मिक कक्षा का नमो भाव कहते हैं । अब मुझे भी मेरे दोषों का निष्कासन करने के लिए उनके प्रति पूज्यभाव, अहोभाव बनाकर क्रियात्मक स्वरूप में जो भी किया जाता है उसे नमस्कार कहते हैं । क्रियात्मक नमस्कार की निपज आत्मा में पड़े विनय गुण से हुई है । और विनय गुण का आविर्भाव नमस्कार की भावना से हुआ है । उन परमेष्ठी भगवन्तों ने जिस रीति से, जिस पद्धति से और मार्ग से अपने राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कामादि का हनन नाश या निष्कासन किया उसी मार्ग को धर्म कहते हैं । उसी का अनुसरण मैं करुं यह मेरे लिए धर्म है । ऐसा असंभव जैसा कार्य उन्होंने किया और सिद्धि प्राप्त की इसके लिए पूज्यभाव निरन्तर बढाता ही रहूं यह नमो भाव है, और इस नमो भाव को क्रियान्वित करने का स्वरूप ही नमस्कार है ।

आर्हत् दर्शन में यह विशेषता है कि... मात्र उन पंच परमेष्ठी भगवन्तों की निर्दुष्ट गुणपूर्ण अवस्था को मात्र दूर से देखते ही रहकर अपने कार्य की समाप्ति मानकर बैठ नहीं जाना है, अपितु आगे बढते हुए उनका आलंबन लेकर स्वयं अपनी भी कक्षा उनके जैसी ही बनाकर उनकी ही पंक्ति में समान आसन पर समकक्ष होकर बैठने में अपनी इतिश्री मानना । और वैसी कक्षा प्राप्त करने में सतत् प्रयत्नशील रहकर पुरुषार्थ करने वाला ही सच्चा साधक है ।

ऐसा नहीं कि...बस, वे भगवान बन चुके हैं । मैं तो बन ही नहीं सकता हूं । कदापि मेरे विषय में भगवान बनना सर्वथा संभव ही नहीं है ऐसी निराशा के विचार को लाकर स्वयं निष्क्रिय हो जाना यह आर्हत्-धर्म का मार्ग नहीं है । क्योंकि इसमें अवतारवाद की और मोक्ष से पुनरागमन की प्रक्रिया को नहीं स्वीकारा गया है । यह वैदिक संस्कृति की हिन्दु धर्म की विचारधारा है । बस, एक ही जो भगवान है वह है । यह सब उसका ही अधिकार है । वही बार-बार जन्म लेकर आता रहेगा और अपनी लीला करके, दिखाके जाता रहेगा । मुक्ति का धाम है, जाएगा और वापिस आएगा । जीव कुछ है ही नहीं यह उसी विभु सर्व व्यापी ईश्वर का ही अंश है । उसके हाथ में कुछ भी नहीं है । वह तो कठपुतली मात्र है । उसे तो मात्र ईश्वरेच्छा के इशारे पर ही कार्यरत होना है । भले सभी मुक्त हो जाय लेकिन उस उपर वाले की जब इच्छा होगी तब उन सब जीवों को वापिस धरती पर भेज देगा तब जाना पड़ेगा ।

सोचिए ! इन विचारों में... ऐसी मान्यता में कहां परमेष्ठी का अन्तिम स्वरूप रहा और कहां मोक्ष स्वरूप रहा ? कहां स्थिरता रही । क्रिकेट के मैदान में गेंद जैसी हालत जीव की अनन्तकाल तक रही । जो चलती ही रहेगी । जी नहीं, वैदिक विचारधारा का मत बिल्कुल सही नहीं है । सर्वज्ञों के सिद्धान्त का स्वरूप सर्वथा निर्दोष है । अनन्त आत्माएं अरिहंत, सिद्धादि बन चुकी है । आखिर तो उन्होंने भी सर्व कर्मों का क्षय किया, और महान बने हैं । तथा एक बार अरिहंत, सिद्ध बनने के बाद पुन: ऐसे कोई कर्म बांधते ही नहीं है कि जिसके कारण पुन: संसार में आना पड़े । जहां जाकर पुन: कभी कर्म बांधना ही न पड़े और जहां से पुन: कभी संसार के चक्र में वापिस आना ही न पड़े उसे ही सर्वज्ञों ने मोक्ष कहा है ।

वैदिक संस्कृति ईश्वर प्रधान है । वहां ईश्वर की प्रधानता के कारण ईश्वर को केन्द्र में रखकर ईश्वर के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं । अत: जो भी कोई बात करोगे वह सब ईश्वर से मूलभूत संबंधित होगी । चाहे वह संसार की हो, या जीव की हो या मोक्ष की हो या जो भी कोई हो उसका आधार एक मात्र ईश्वर ही होगा । संसार के विषय में भी उत्पत्ति... पालन, विलय, प्रलय और चलाने करने की व्यवस्था को करने वाला नियन्ता आदि सब कुछ सर्वे सर्वा ईश्वर ही माना गया है । जीव के बारे में तो यहां तक कह दिया है कि "जीवो ममैवांशो नाऽपर:" जीव तो मेरा ही अंश है अन्य कुछ भी नहीं है । थाली में सूर्य के प्रतिबिम्ब की तरह माना गया है । अलग कुछ भी नहीं है । तब मोक्ष तो उनके हाथ में है । ईश्वर की इच्छा पर है कि जीव को मुक्ति देनी या न देनी ? कब देनी ? कितने काल तक देनी ? और इच्छा होगी तब ईश्वर जीवों को वापिस संसार में भेज भी देगा । इस तरह ईश्वर केन्द्रित, ईश्वराश्रित, ईश्वराधीन संस्कृति एवं दर्शन है ।

जबकि आर्हत् मत में सर्वज्ञ वीतरागी भगवन्तों ने उपरोक्त ईश्वर प्रधान विचारधारा को अवास्तविक सर्वथा अयथार्थ बताया है । वास्तव में वैसा स्वरूप ही नहीं हैं जैसा कि वे वर्णन करते हैं । समस्त संसार में अनन्त जीव है । सभी स्वतंत्र है । समान जातीय है परन्तु एक ही नहीं है । एक रूप भी नहीं है । सभी संसारी अवस्था में कर्माधीन है । अत: सर्वज्ञों ने ईश्वर प्रधान सृष्टि न बताकर कर्म प्रधान संसार बताया है । यहां आत्मा के धरातल पर कर्म को केन्द्र में रखकर सारी विचारधारा कर्म केन्द्रित, कर्माश्रित एवं कर्माधीन बताई है । कर्म करना, बांधना, छोड़ना, मुक्त होना या बन्ध होना यह सब कुछ स्वतंत्र रूप से जीव के ही हाथ में है । वह स्वतंत्र रूप से स्वकर्मों का कर्ता भोक्ता है । ईश्वर मात्र सर्व कर्म मुक्त विशुद्ध आत्मा ही है । उसे भी चेतनात्म स्वरूप ही माना है । न कि अन्य कुछ विशेष ? वह जीवों की सर्व कर्म रहितावस्था को कहा है । कर्म क्षय भी स्वयं जीवों को ही करना है । साधक जीव साधना के विषय में उस कर्म रहित ईश्वर का आलंबन जरुर ले सकता है । ऐसा आलंबन लेकर ध्यानादि साधना करने पर सालंबन ध्यानादि की साधना होगा । उसने जैसे सर्व कर्म क्षय किये वैसा ही, उसी मार्ग पर या अनुसरण करते हुए उनके पीछे-पीछे चलते-चलते उनके आलंबन में से प्रेरणा मार्ग दर्शन लेकर जीव स्वयं अपनी कर्म निर्जरा करके स्वयं भी संसार से मुक्त बनकर मोक्ष में चला जाता है । अत: मोक्ष प्राप्ति जीव के अपने स्वकृत पुरुषार्थ के बल पर ही है । आलंबन, उपदेशक, मार्गदर्शक आदि रूप में जैन धर्म में ईश्वर को मात्र दृष्टा कहा गया है । वैदिक संस्कृति की तरह सृष्टा नहीं कर्ता हर्ता भी नहीं । अत: मोक्ष में गया हुआ जीव पुन: कर्म बांधकर संसार में आता ही नहीं है । कभी भी नहीं, कदापि नहीं । इस तरह वैदिक और आर्हत् -सर्वज्ञ की संस्कृति और दर्शन की मौलिकता समझकर आत्मोपयोगी कर्मक्षय में जो सहायक हो उसका आलंबन-अनुसरण बुद्धिमान को बुद्धिमता के बल पर करना है ।

संबंध सूचक नमस्कार—

संबंध हमेशा दो के बीच में ही होता है । अकेले एक के ही अस्तित्व में संबंध नहीं होता है । एक हाथ भी दूसरे हाथ के साथ संयोग में आता है तब संबंध बनता है । इसे संयोग संबंध कहते हैं । ठीक इसी तरह नमस्कार है । नमस्कार के विषय में दो व्यक्ति आमने-सामने है । एक नमस्कार करने वाला नमस्कारकर्ता और दूसरा जिसको नमस्कार किया जा रहा है ऐसा नमस्करणीय, नमस्कार योग्य । नमस्करणीय यहां पर अरिहंतादि पांच परमेष्ठी भगवन्तों के साथ मेरे अकेले का संबंध नमस्कार भाव से हुआ है । साधक नमस्कार की वृत्ति-नमो भाव से नमस्करणीय के साथ जुड़ा है । इतना ही मात्र संबंध है । नमस्करणीय परमेष्ठी की उच्चतम उत्कृष्टावस्था का बोध एवं दर्शन कराता है, उसी समय स्व पक्ष में अपनी अधम निकृष्टतमावस्था का भी बोध कराता है । इस ऊंचाई-निचाई दोनों धरातलों को एक साथ दिखाने वाला संबंध है । ऊपर आकाश को देखो तो विशालता- व्यापकता विराट विभूता दिखाई देती है यह परमेष्ठी संबंधी है । जबकि नीचे धरती को देखने पर आकाश की तुलना में... मात्र संकुचितता, न्यूनता, अल्पता, दिखाई देती है, यह साधक की अपनी है ।

याद रखिए "नमो भाव" पर पक्ष में भी परमेष्ठी भगवन्तों के, परमात्मा के आत्मा के गुणों का ही दर्शन कराता है । और स्व पक्ष में अपनी आत्मा के दोषों का दर्शन कराता है । साथ ही समान की सत्ता का भाव भी कराता ही है । अर्थात् जो और जैसे गुण अरिहंत सिद्ध परमात्मा के हैं वे ही और वैसे ही गुण हमारे अपने भी है । समस्त जीवों के हैं । हम समस्त जीव परमात्मा के जैसे समान जातीय ही हैं । अर्थात् परमात्मा-परमेष्ठीयों की और हमारे जैसे अनन्त जीवों की आत्मत्व जाती एक ही है । अत: समान जातीय है हम दोनों अब आत्मत्व जाति की दृष्टि से जब समान एक रूप हैं तब गुण भी समान होने ही चाहिए । अत: द्रव्यगत आत्म स्वरूप की समानता के आधार पर ज्ञानादि गुणों की समानता एक जैसी ही है । सिर्फ हमारे दोनों में इतना ही अन्तर है कि... परमात्मा के गुण निरावरण रूप से पूर्ण रूप से प्रगट हो चुके हैं । और हमारे जैसे पामर जीवों के गुण कर्मों के आवरण से अभी भी आच्छादित है । अत: वे दोष रूप में भाषमान होते हैं । लेकिन मूलभूत सत्ता में वे भी गुणरूप ही है । मात्र कर्मावरण जो आच्छादक बनकर आवरक के रूप में बैठा है उसे ही हटाना है । जिस तरह सिंह की गर्जना सुनकर और उसे देखकर छोटा सिंह शावक उसे घूर-घूर कर देखते हुए अपने आपको उसका समान जातीय पहचान लेता है । और उसमें भी शौर्य प्रगट होता है, वह भी गर्जना शुरु करता है । ठीक इसी तरह परमेष्ठी परमात्मा का शुद्ध स्वरूप नमो भाव से देखकर, अच्छी तरह समझकर साधक

जीव भी समान जातीयता को पहचान लेता है । और उनकी तरह स्वयं भी "सव्व पावप्पणासणो" सब पाप कर्मों का प्रकृष्ट नाश करने की प्रक्रिया प्रारम्भ करके दिखाता है । और एक दिन वास्तव में सब पाप कर्मों का सर्वथा संपूर्ण क्षय करके सर्वथा कर्म मुक्त बनकर "नमो सिद्धाणं" के दूसरे पद पर जाकर सिद्धों के समान आसन पर सिद्ध बनकर बैठ जाता है । अब जीव स्वयं तद्-रूप तदाकार बन गया है । जब स्वयं ही सिद्ध बन गया तो वह दूसरों को नमस्कार नहीं करेगा । लेकिन संसार के अनन्त जीव उनको नमस्कार करेंगे ।

नमस्कार कहां तक करते रहें ?

हम अरिहंतादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को कहां तक नमस्कार करते रहें ? सीधा साफ उत्तर है कि... जहां तक हम नमस्कार जिसको करते थे उनके जैसे न बन जाय वहां तक नमस्कार करते ही रहना है । नमस्कार संबंध है । यह कायिक नहीं आत्मिक संबंध है । कायिक संबंध माता-पुत्र आदि में विशेष रहता है । माता के शरीर से पुत्र का शरीर निर्माण हुआ है । माता ने गर्भकाल में रहे गर्भस्थ शिशु का अपने रक्त मांस से पोषण करके उसकी देह रचना में सहायक भूमिका अदा की है । और साडे नौ महीनों का काल व्यतीत किया है । अपने उदर में देहरचना पूर्ण सम्पूर्ण हो जाने पर अवनितल पर जन्म देकर भेजती है । ऐसी जननी जन्मदाता माता का पुत्र के प्रति सदा स्नेह वात्सल्य बना रहता है । जो संसार का पवित्र संबंध है । इसीलिए आप देखेंगे कि माता की पुत्र के प्रति देह चिन्ता सदा बनी रहती है । खाया-पिया, सोया कि नहीं, नहलाना, धोलाना, वस्त्रादि भी सब कुछ देह चिन्ता को केन्द्र में रखकर व्यवहार चलता है । लेकिन यह देह चिन्ता आत्म चिन्ता नहीं बन जाती । इसी तरह दूसरे अर्थ में पति-पत्नी का भी कायिक संबंध है । संसार के मोह भाव से कामराग से एक दूसरे के शरीर से सुख भोग की इच्छा से शारीरिक संबंध करते हैं । आखिर संबंध है ।

यहां हमारे जैसे जीवों का परमात्मा परमेष्ठी भगवन्तों के साथ ऐसा कायिक संबंध नहीं है । अपितु आत्मिक संबंध है । कायिक संबंध में काया की चिन्ता प्रधान रहती है । आत्मिक संबंध में आत्मा संबंधी चिन्ता प्रधान रहती है । आत्मा की चिन्ता के अनरूप प्रवृत्ति को आध्यात्मिक कहते हैं । हम जिनसे संबंधित है ऐसी आत्माएं उच्च कक्षा की विशुद्ध परम आत्मा है, और उनके साथ संबंध में जुड़े हुए हम पामरात्मा है । अत: हमारे दोनों के बीच का संबंध एक पक्षी रहेगा । वे परमात्मा अपनी तरफ से कुछ भी नहीं करेंगे, जो करना है वह हमें अकेले को ही करना है । अत: उनके साथ संबंध बनाए रखने में, टिकाए रखने में हमें ही सब कुछ करना है । तभी संबंध टिकेगा । बना रहेगा । जी हां... बिल्कुल सही बात है । तो क्या करना चाहिए ? "नमस्कार" एक ही शब्द में उत्तर है । याद रखिए ! नमस्कार करते-करते...ही यह संबंध बनता है । जुड़ता है और टिकता है । अत: आपको जहां तक परमात्मा के साथ परम पवित्र आत्मिक संबंध टिकाना हो वहां तक आप नमस्कार करने की प्रक्रिया को सतत चालू रखिए । कहां तक... ? यह भी याद रखिए... यह अनादि अनन्त कालीन दीर्घावधि का नहीं है । यह सादि सान्त की कक्षा का है । उत्पन्न होता है और एक दिन समाप्त-पूर्ण भी होने वाला ही है । लेकिन आप बीच में ही मत तोड़ देना या छोड़ देना । यदि बीच में ही आप तोड़ देंगे या छोड़ देंगे तो बड़ी भारी भूल हो जाएगी । फिर 4 गति के 84 लक्ष जीवयोनियों वाले अनन्त जन्म मरण के संसार चक्र में जीव फंस जाएगा । महासागर में गोता लगाते-लगाते खो जाएंगे । अनन्त का गर्त है । पत्ता भी नहीं लगेगा । जी हां, परमेष्ठी कुछ भी नहीं कर पाएंगे । जैसे एक बन्दरी जब छलांग लगाती है तथा उसका छोटा सा बच्चा बन्दर वह अपनी मां के पेट पर चिपक जाता है । बड़ी मजबूत पक्कड़ उसी को पकड़नी है । मां बिल्कुल नहीं पकड़ेगी । मां तो सारा ध्यान और ताकत छलांग लगाने में रखेगी । नहीं तो दोनों की "जान खतरे" में रहती है । ठीक बन्दर के बच्चे की तरह हमें भी एक पक्षी संबंध रखकर पंच परमेष्ठी भगवन्तों को काफी अच्छी तरह मजबूती से पकड़कर रखने पड़ेंगे । बस, तेरा ही आसरा है । प्रभु तेरी ही शरण है । अत: पकड़कर रखे हुए संबंध का निभाव एक मात्र नमस्कार भाव के आधार पर रहेगा ।

सुदीर्घकालीन नमस्कार का आधार-सम्यग् दर्शन—

आजीवनभर हमने नमस्कार महामंत्र का सहारा ले रखा है । तथा "सव्व पावप्पणासणो" सब पाप कर्मों का नाश करने का परिणाम अभी तक आया भी नहीं है फिर भी जीवन के 80-100 वर्षों तक नवकार महामंत्र को पकड़कर रखना, उसे ही समर्पित रहना यह एक मात्र श्रद्धा के बल पर ही संभव है । इसी तरह आगामी जन्मों में भी पुन: नवकार की प्राप्ति करनी ही है । यदि वर्तमान जन्म में अन्तजीवन भर इस महामंत्र की उपासना काफी अच्छी की है और मृत्यु के समय भी पूरा मन नवकार में लगा रखा हो, तथा पुन: प्राप्ति की निरन्तर प्रार्थना भावना रखी हो तो आगामी जन्म में अवश्य पुन: नवकार प्राप्त होता है । यह नि:सन्देह है । और सद्गति होने पर आगामी जन्म यदि देव, मनुष्य का हो जाय तो...वह नवकार निश्चित ही प्राप्त होगा । तथा अगले मिले हुए जन्म में पुन: यदि यही साधना की प्रक्रिया अपनाइ जाये, फिर आजीवन भर साधना करके मृत्यु की अन्तिम क्षण तक नवकार की साधना करके प्रार्थना भावना में स्थिर हो जाये तो निश्चित रूप से तीसरे जन्म में पुन: नवकार की उपलब्धि संभव होगी ।

सम्यग् दर्शन की सच्ची श्रद्धा जन्म जन्मान्तर में साथ आती है । ज्ञान भले ही आगामी जन्म में फिर से नया-नया सम्पादन करते-करते प्राप्त करेंगे और इसी तरह सम्यग् चारित्र भी आचरण-क्रिया द्वारा प्राप्त होगा । लेकिन श्रद्धा जो अटल और अटूट हो वह जन्म जन्मान्तर में साथ चलती है । अत: ऐसा सुन्दर सम्यग् दर्शन निर्मल पवित्र और स्थायीभाव का बनाना अत्यन्त जरुरी है । इस तरह यदि नवकार महामंत्र की उपलब्धि 7-8-9 जन्मों तक निरन्तर हो जाय तो निश्चित ही जीव के सब पाप कर्मों की सम्पूण निर्जरा का परिणाम आ जाएगा और एक दिन जीव इस संसार से छुटकारा पाकर मोक्ष प्राप्त करके सिद्ध बन जाएगा ।

अत: नवकार महामंत्र की साधना उपासना हमें कहां तक करनी है ? ऐसा मत समझिए कि मात्र इस जन्म तक या मृत्यु तक ही करनी है ऐसा नहीं है— जब तक चरम लक्ष्य सिद्ध न हो जाय तब तक तो निश्चित रूप से करनी ही करनी है । चरम लक्ष्य जो "सव्व पावप्पणासणो" समस्त पाप कर्मों का सम्पूर्ण समूल सर्वथा नाश करने का है । अत: जहां तक यह सिद्ध नहीं होता है, वहां तक तो नवकार महामंत्र की साधना करनी ही है । जहां तक इस जन्म मरण के चक्रवाले संसार चक्र से सर्वथा छुटकारा पाकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त नहीं हो जाते हैं वहां तक तो अवश्य ही करनी है । तो ही मुक्ति की प्रगति संभव एवं सुलभ बनेगी । जो साधक बीच में ही साधना छोड़कर इस मार्ग से निकल जाते हैं, हट जाते हैं वे मोक्ष मार्ग से भी हट जाते हैं, और फिर तो मात्र संसार का मार्ग हाथ में रहता है । बस, चौराशी के चक्र में परिभ्रमण करते ही रहो । बिना नवकार की साधना के न किसी की मुक्ति कभी हुई है और न ही भविष्य में किसी की होगी । यह भी निश्चित ही है । मुक्ति को प्राप्त हुए ये ही अरिहंतादि पांच परमेष्ठी भगवन्त है । इनके व्यतिरिक्त कोई नहीं है । और इनके व्यतिरिक्त जो भी हैं वे स्वयं राग-द्वेष और पाप कर्म ग्रस्त है, वे स्वयं ही मुक्त नहीं है अत: ऐसो का आलंबन लेकर हम कहां उन्हें नमस्कार करते रहेंगे ? फिर हमारा भी जन्म मरण का चक्र चलता ही रहेगा । हम भी उनकी तरह रागी-द्वेषी बनकर जन्मों जन्मों संसार में परिभ्रमण करते ही रह जायेंगे । अत: हमें किसी भी स्वरूप में इस महामंत्र की साधना करके चरम साध्य साधना ही चाहिए ।

वारिज्जइ जइ वि नियाण बंधणं वीयराय ! तुह समये ।
तहवि मम हुज्ज सेवा, भवे-भवे तुम्ह चलणाणं ।।

प्रणिधान (प्रार्थना) सूत्र जय वीयराय में प्रार्थना के रूप में स्पष्ट कहा गया है कि हे वीतराग भगवन् ! यद्यपि आपके मार्ग में— धर्म में याचना करने का नियाणा वर्ज्य गिना गया है, निषेध किया गया है फिर भी मैं एक याचना अवश्य ही करता हूं कि... जनम-जनम तक... आपके चरण कमल की सेवा मुझे मिले, आपके चरणों में मुझे सेवा करने का मौका अवश्य प्राप्त हो । यहां आपके चरणारविन्द की अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति और उनकी सेवा भक्ति आदि की प्रार्थना सम्यग् दर्शन की सच्ची श्रद्धा, भावना ने भावित होकर की गई है । आगामी जन्मों में पुन: नवकार की उपलब्धि करने का यह अनोखा अद्‌भुत मार्ग है ।

अपने आपको नमस्कार—

"नमो मुज, नमो मुज, नमो मुज रे" आनन्दघनजी जैसे अवधूत योगी म: ने निश्चय नय की कक्षा में पहुंच कर ये शब्द कह दिये— हे भगवान् ! नमो तूझ से कई जन्मों तक तूझे नमस्कार किया है । अब थोड़ा मैं मुझे अपने आपको ही नमस्कार कर लूं तो क्या फरक पड़ता है ? जैसा आपका आत्म स्वरूप है वैसा ही मेरा भी है । कोई अन्तर नहीं है । द्रव्य स्वरूप से आत्म द्रव्य गुण की सत्ता से कोई अन्तर नहीं है । सिर्फ मेरी वर्तमान पर्याय भिन्न है । यह और ऐसा ज्ञान अरिहंत की साधना से प्राप्त हो चुका था अत: योगी महात्मा उस ऊंची कक्षा की बात कर सकते हैं । उनकी आंखों के सामने तत्त्व स्पष्ट प्रतीत होते हैं ।

इस तरह यह महामंत्र भौतिक नहीं अपितु आध्यात्मिक कक्षा का ऊंचा महामंत्र है । आध्यात्मिक स्तर की ऊंचाई काफी ज्यादा होती है । हमें अपने निजी स्वार्थों के लिए इतनी ऊंचाई से इस महामंत्र को भौतिक स्तर पर नीचे उतारने का अपराध नहीं करना चाहिए । परन्तु हमें आध्यात्मिक स्तर तक ऊपर चढ कर महानता की उस ऊंचाई को छूने का प्रयत्न करना चाहिए । तब आनन्द की अनुभूति भी अनोखी होगी । पूज्यभाव को बढाने का यह श्रेष्ठ उपाय है ।

नवकार महामंत्र में प्रयुक्त शब्दों के विषय

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

महामंत्र की महानता का आधार अनेक बातों पर आधारित है । जिसमें एक आधार स्तम्भ शब्दों के विषयों का भी लगता है । सामान्य तौर से भी मंत्रों का मुख्य विषय इष्ट देव को नमस्कार का रहता है । जिस अधिष्ठाता विशेष का वाचक मंत्र होता है उनको नमस्कार वाची नमः, नमो आदि पदों से नमस्कार किया जाता है । परन्तु संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया में न्यूनतम शब्दों की रचना से बने हुए मंत्रों में अन्य अनेक शब्दों का और विषयों का कहां स्थान रहता है ? सामान्य जन मानस के लिए जितना छोटा मंत्र रहेगा उतनी ही जपादि में सुविधा रहेगी । तब उतनी ज्यादा संख्या में साधना होगी, और तब जाकर प्रसिद्धि बढती जाएगी ।

नवकार एक ऐसा महामंत्र है जिसमें संक्षिप्तीकरण प्रमाण में कम होते हुए विषयों की पूर्णता का प्रमाण प्रचुर होने के कारण उपादेयता बढती ही गई । 68 अक्षरों, 2 गाथाओं, 8 संपदाओं, 9 पदों का विस्तार होने से दीर्घकाय मंत्र नवकार है । फिर भी प्राकृत भाषा में रचना होने के कारण उच्चारण में सरलता अवश्य है । संस्कृत भाषा में संयुक्ताक्षरों एवं दीर्घ समासादि के कारण उच्चार करने में कठिनाइयां रहती है । अधिकांश रूप से संस्कृत भाषा से सर्वथा अनभिज्ञ सर्व सामान्य जनता को यह कठिनाई ज्यादा महसूस होती रहती है । फिर भी अभ्यास प्रयत्न से साध्य है । जबकि प्राकृत पाली भाषा की यह विशेषता है कि सजातीय सवर्गी अक्षर ही संयुक्ताक्षर के रूप में जुड़ते हैं । संस्कृत भाषा की तरह नहीं है कि कोई भी अक्षर किसी के भी साथ जुड़ सकता हो, और कितने भी अक्षर जुड़कर शब्द रचना बन सकती हो । मंत्रादि शास्त्रों में 5 से 6 आधे अक्षर जुड़कर भी शब्द रचना हुई है । ऐसे बने हुए शब्दों का उच्चारण करना यह प्रायः सर्व सामान्य व्यक्ति के वश की बात नहीं है । मंत्रों में शुद्धि का महत्व अनेक गुना है । अशुद्धोच्चारण नुकशान कारक है । शुद्धतम उच्चारण मंत्र फलित होने में काफी ज्यादा सहायक है । नवकार मंत्र की रचना प्राकृत अर्धमागधी भाषा में है । दीर्घ समास नहीं है । अतः समासो की भरमार से मुक्त यह मंत्र है । संयुक्ताक्षरों में भी मात्र 7 ही शब्द ऐसे हैं जिनमें संयुक्ताक्षर हैं । वे सजातीय सवर्गी ही अक्षर संयुक्त है । अतः नवकार के उच्चारण आदि में सरलता सुगमता काफी अच्छी रहती है । परिणाम स्वरूप 9 पदों का विस्तार होने पर भी साधकों को अखरता नहीं है । सरलता और सरसता के कारण विस्तार का दुःख लोग भूल गए हैं । और चारों तरफ करोड़ों की संख्या में जपादि साधना चल रही है ।

नवकार में प्रयुक्त शब्दों की संख्या—

नवकार महामंत्र में अक्षरों की संख्या 68 है । प्रथम 5 पदों की मात्र प्रथम गाथा में 35 अक्षर है (7 + 5 + 7 + 7 + 9 = 35) । दूसरी गाथा 4 पदों की चूलिका है । जिसके कुल अक्षर 33 है । अनुष्टुप छन्द 32 अक्षरों का ही होता है । उसमें भी श्लोक के चारों चरणों में 8-8 अक्षरों की समान संख्या रहती है । परन्तु नवकार की चूलिका वाली दूसरी गाथा में 8 + 8 + 8 + 9 = 33 अक्षरों की बात है । नौवे पद में जो 9 अक्षरों की गणना है उसमें 'हवइ' शब्द में 1 अक्षर अधिक है । ऐसा दिगम्बर सम्प्रदायवादियों का कहना है । इसलिए वे 'हवइ' के स्थान पर 'होइ' शब्द का प्रयोग करते हैं । अर्ध मागधी व्याकरण में 'भू' धातु के रूपों में 'हवइ' और 'होइ' दोनों प्रकार के प्रयोग चलते हैं । इसलिए दिगम्बर सम्प्रदाय मतावलम्बियों ने हवइ के स्थान पर होइ का प्रयोग बदल दिया है । और 68 के स्थान पर 67 अक्षर रूप ही व्यवहार करते है । शाश्वत महामंत्र के साथ खिलवाड़ करना श्वेताम्बर मतावलम्बियों ने कभी भी मुनासिफ नहीं माना । अतः 68 अक्षर का महामंत्र प्रचलित रखा है । इस तरह एक ही धर्म विशेष के भिन्न-भिन्न संप्रदाय एक महामंत्र जैसे के विषय में भी एक नहीं है । और बात तो दूर रही ।

अक्षरों के संयोजन से शब्दों की रचना होती है । अतः शब्दों को अक्षरों का समूह कहते हैं । और शब्दों के समूह से वाक्य की रचना होती है । तब जाकर अर्थ बोध स्पष्ट होता है । ऐसे 68 अक्षरों के संयोजन से नवकार के शब्दों की रचना हुई है । जो 24 की संख्या में प्रयुक्त है । इन शब्दों के समूहात्मक वाक्य पद के रूप में प्रयुक्त है । अतः पदों में शब्द और अक्षर की संख्या निम्न प्रकार है—

पद क्रम	अक्षर संख्या	शब्द संख्या
1 ला पद —	7	2
2 रा पद —	5	2
3 रा पद —	7	2
4 था पद —	7	2
5 वा पद —	9	4
6 ट्ठा पद —	8	3
7 वां पद —	8	3
8 वां पद —	8	3
9 वां पद —	9	3
9 पद	कुल 68 अक्षर	कुल 24 शब्द

अक्षरों और शब्दों की सार्थकता—

एकाक्षरी कोष के आधार पर एक अक्षर का भी शब्द कहलाता है जो अपना स्वतंत्र पूरा अर्थ रखता है । पूरे नवकार में ऐसा एक ही शब्द है "च" । 8वें पद में प्रयुक्त यह "च" मंगलाणं और "सव्वेसिं" इन दो शब्दों के बीच प्रयुक्त हुआ है । लेकिन "च" का अर्थ इन दोनों के बीच में नहीं बैठता है । नवकार का फल और स्वरूप बताने का कार्य चूलिका ने किया है । छट्ठे पद में जो अर्थ स्पष्ट किया है कि... इन 5 परमेष्ठी भगवन्तों को किया हुआ नमस्कार, 7वें पद में फल बताते हुए कह रहे हैं कि... सब पाप कर्मों का क्षय (नाश) हो । चूलिका को यह स्पष्ट करना है कि नवकार मात्र सर्व पाप कर्म नाशक ही नहीं अपितु सब मंगलों में सर्वश्रेष्ठ कक्षा का पहला मंगल भी है ।

इस तरह नवकार की पाप नाशकता और मांगलिकता इन दो बातों को जोड़ने के लिए 'च' अक्षर प्रयुक्त हुआ है । 7वें और 8वें पद के बीच में 'च' रखकर अर्थ संकलना करनी पड़ती है । 8वें और 9वें पद को मिलाने से एक अर्थपूर्ण संपदा बनती है । अर्थ पूर्ण वाक्य को ही सम्पदा कहते हैं । इस तरह पूरे नवकार महामंत्र की कुल 8 संपदाएं बताई गई है । पद 9 है और संपदा 8 है । अन्तिम 8वें + और 9वें पद की मिलकर एक सम्पदा होती है । क्योंकि 8वां पद अपने आप में पूर्ण अर्थ वाला नहीं है । अधूरा है । अत: नौवे पद के साथ मिलकर अर्थ पूरा करता हैं । "सव्व पावप्पणासणो" इस 7वें पद का अर्थ अपने आप में पूरा है । अत: 7वीं सम्पदा और 8वीं सम्पदा के बीच 'च' का अर्थ करके अर्थ बैठाना पड़ता है । वह इस प्रकार होगा । इन पांच परमेष्ठी भगवन्तों को किया गया नमस्कार सब पाप कर्मों का नाश करता है और यह सब मंगलों में प्रथम कक्षा का श्रेष्ठ मंगल है ।

प्रथम पद के विषय—

'नमो' शब्द क्रिया परक है । यह अपना कार्य सूचित करता है । क्रिया कार्य की जननी है । कार्य क्रिया से पैदा होगा । अत: क्रिया करनी आवश्यक है । नमस्कार की क्रिया का सूचक शब्द यहां पर "नमो" है । अत: नमो शब्द का विषय नमस्कार है । यह क्रिया के कर्ता साधक के पक्ष में है । आगे दूसरे शब्द का विषय अरिहन्त भगवान है । जिन्होंने अपने राग-द्वेषादि आन्तर शत्रुओं का हनन् करके विजय पा ली है ऐसे अरिहंत शब्द से वाच्य परमात्मा को वन्दन-नमस्कार हो । अत: "अरिहन्त" इस संयुक्त एक शब्द का विषय वीतराग भगवान है । परन्तु अरिहन्त शब्द को तोड़कर इसका विश्लेषण करने पर 'अरि' और 'हन्त' दो शब्द अलग होते हैं । 'अरि' शब्द से गाह्य विषय राग-द्वेष-काम-क्रोधादि आत्मा के आन्तर शत्रु है । इनका विषय मूलरूप से एक नाम के आधार पर कर्म है । हन् क्रिया हनन नाश करने के अर्थ में है । अत: कर्मों का नाश-क्षय करने वाला कौन ? इसके उत्तर में एक मात्र आत्मा ही आएगी । क्योंकि कर्म आत्मा को ही लगते है । या कर्म जिसको लगे वह आत्मा और कर्मों का हनन् नाश करने की क्रिया का कर्ता जो हो वह आत्मा है । इस तरह मुख्य अर्थ अरिहन्त परमात्मा है । और गौण रूप से अर्थ की ध्वनि के रूप में अजीव कर्म और आत्म तत्त्व के विषयों की तरफ शब्दों का संकेत है ।

सिद्ध पद से वाच्य मुक्तात्माएं—

'नमो' सिद्धाणं के दूसरे पद में 'नमो' नमस्कार वाचक है ही । 'सिद्ध' शब्द से अभिप्रेत विषय है संसार से जो मुक्त हो चुके हैं ऐसे सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार हो । सिद्ध शब्द अपने आप में बहुत बड़ा लम्बा चौड़ा अर्थ लेकर बैठा है । 'सिधु-साधने' क्रिया से बना क्रियावाचक पद सिद्ध है । यह भी सिद्ध करता है कि... जिसने अपना संसार से मुक्त होने का हेतु या कर्म के बंधन से सर्वथा मुक्त होने का हेतु सिद्ध कर लिया है, साध लिया है वे हैं सिद्ध । और वे सिद्ध होकर जहां जाकर स्थिर होकर बैठे है उसको कहते हैं—मोक्ष । "मोक्ष" शब्द स्थान विशेष

का वाच्य है । मुक्त, सिद्ध शब्द कर्म बंधन से मुक्त होकर मोक्ष रूपी लोकान्त के स्थान में जाकर जो बैठी है उस सिद्ध आत्मा को 'नमो' शब्द से मेरा नमस्कार हो ।

तीसरे, चौथे और पाँचवें पद के विषय—

मात्र एक ही वाक्य में यदि कहना हो तो कहा जा सकता है कि 3 रे, 4थे और 5वें इन तीनों पदों का विषय एक है—गुरु । गुरु भगवन्तों को नमस्कार हो । गुरु के 3 पद पर तीन गुरु भगवन्तों का समावेश किया गया है । 1. आचार्य, 2. उपाध्याय और 3 साधु । तीसरे पद में आचार्य पद पर आरुढ गुरु भगवन्त को नमस्कार किया गया है । अत: विषय आचार्य गुरु भगवन्त को नमस्कार का है । 4थे पद में उपाध्यायजी, जो जैन शासन के वाचनादाता वाचक और पाठ दाता-पाठक स्वरूप है, ऐसे उपाध्याय गुरु भगवन्त को नमस्कार किया गया है । 5वें पद में प्रथमावस्था के गुरु साधु मुनिराजों को नमस्कार करने का विषय है । इस तरह तीनों पद के संयुक्त रूप से अर्थ करने पर 'गुरु' को नमस्कार किया गया है । और यदि तीनों पदों को अलग-अलग स्वतंत्र रूप से विषय निर्देश करें तो आचार्य, उपाध्याय और साधु ये तीनों है । इन तीनों को नमस्कार भी स्वतंत्र रूप से किया गया है ।

'लोए' शब्द का विषय लोक—

'लोए' शब्द का विषय भौगोलिक लोक है । इस एक शब्द से 3 अर्थ अभिप्रेत होंगे । 1. सम्पूर्ण 14 राज लोक, 2. लोकान्त (या लोकाग्र) और 3. ढाई द्वीप-समुद्र रूप मनुष्य लोक (नरलोक) । 'लोए' शब्द के इन तीनों अर्थ को परमेष्ठी भगवन्तों के वाचक किस पद के साथ जोड़कर अर्थ करते हैं उस पर आधार रखता है । उदाहरण के लिए पहले पद के अर्थ में 'लोए' शब्द जोड़कर अर्थ करने पर समस्त 14 राज लोक में, या तीनों लोक में रहे हुए द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूप में अरिहंत भगवानों को नमस्कार करना है । 14 राज लोक कहें या 3 लोक त्रिभुवन कहें बात एक ही है । 14 शब्द माप-प्रमाण सूचक संख्या मात्र है । तीनों लोक मिलकर भी 14 राजलोक प्रमाण ही होते है । और 14 राज लोक भी 3 लोक -त्रिभुवन प्रमाण ही है । सिद्ध परमात्मा मात्र लोकान्त क्षेत्र में ही है । लेकिन सिद्ध होते कहां से हैं ? मोक्ष में जाते कहां से है ? इसके लिए गुरुओं का जो ढाई द्वीप स्वरूप लोक है वही नरलोक है । आचार्य, उपाध्याय और साधु इन तीनों गुरुओं का क्षेत्र मनुष्य लोक है । जो ढाई द्वीप स्वरूप है । इस तरह 'लोए' शब्द का विषय लोक होते हुए भी अवान्तर अर्थ के रूप में लोक विषयक 3 अर्थ बताता है ।

'सव्व' शब्द का विषय संख्या बताना है । अत: संख्यावाची, संख्या सूचक शब्द है । यह भी पांचों परमेष्ठियों के वाचक पांचों पदों में जिसके साथ जोड़ेंगे उसके साथ उतनी संख्या को दर्शाते हुए अर्थ बैठेगा ।

छट्ठे पद के विषय—

छट्ठे "एसो पंच नमुक्कारो" पद में इन पांच परमेष्ठी भगवन्तों को संयुक्त रूप से नमस्कार किया गया है । "एसो" शब्द बहुत ही महत्व का है । यह नमस्कारकर्ता को नमस्कार करने की क्रिया में इन 5 परमेष्ठी भगवन्तों से इधर-उधर हटने नहीं देता है । टस से मस भी नहीं होने देता है । इन 5 परमेष्ठियों को ही नमस्कार करने को कहता है । तदतिरिक्त को नहीं । क्यों नहीं ? का उत्तर स्पष्ट है कि.. 1. अन्य परमेष्ठी का स्वरूप इन 5 जैसा नहीं है । 2. उनको नमस्कार करने से सर्व पाप कर्मों का क्षय सर्वथा नाश संभव ही नहीं होगा । 3. चरम फल स्वरूप मोक्ष की प्राप्ति उनको नमस्कार करने से संभव ही नहीं होगी । 4. या वे स्वयं मुक्ति पद को प्राप्त किये हुए नहीं होगें । या मुक्ति प्राप्त किये हुए सिद्धों की ही परम्परा के मार्ग पे या अनुगामी रूप में वे नहीं होगे ? 6. या पंच परमेष्ठी जैसे और जितने गुणों के धारक है वैसे वे नहीं होंगे ? इत्यादि अनेक कारणों के कारण "एसो पंच" शब्द छट्ठे पद में एक निश्चित सीमा की मर्यादा बांध देता है कि इन 5 परमेष्ठी भगवन्तों को ही किया गया नमस्कार सर्व पाप कर्मों का नाशक है । इन 5 से अतिरिक्तों को किया गया नमस्कार सर्व पाप कर्मों का सर्वथा क्षय-नाश करने वाला संभव नही है । इस तरह यह छट्ठा पद सम्यग् दर्शन सच्ची श्रद्धा का विषय संकेत करता है । बहुत कुछ इससे सीखने को मिलता है । इन्हीं परमेष्ठियों का निर्देश "एसो" शब्द करता है । पांचों अरिहंतादि परमेष्ठी भगवन्तों का निर्देश "पंच" शब्द करता है, और इन्हीं पांचों को किया गया नमस्कार या नमस्कार करने का विषय "नमुक्कारो" शब्द से सूचित होता है । "नमुक्कारो" से नमस्कार की क्रिया द्योतित होती है । क्रिया जो करने योग्य होती है ।

सब पापों के नाश का विषय 7 वें पद में—

"सव्व पावप्पणासणो" के 7वें पद में— 3 शब्दों का संयोजन है । 1. सव्व, 2. पाव और 3. प्पणासणो । 1. 'सव्व' शब्द संख्या वाची है । अत: सबकी बात करता है । 'सव्व' की संख्या में अशेष-नि:शेष का भाव प्रतिबिम्बित होता है । अर्थात् एक बार "सव्व" कह देने के बाद पीछे कोई शेष बचता नही है । उदाहरणार्थ 1000 व्यक्ति यदि पंक्ति में खड़े हैं और उन सब को आवाज देकर यदि बुला रहे हो, और उस

वाक्य रचना में हमने 'सब आ जाओ' इतने शब्दों का प्रयोग कर दिया हो तो फिर आने में पीछे कौन बचा रहेगा ? कौन नहीं आएगा ? क्या पीछे रहे हुए लोग ऐसा कहेंगे कि हमको तो नहीं बुलाया ? हमारा तो नाम ही नहीं लिया है ? अत: हम क्यों आएं ? कैसे आएं ? उनके लिए उत्तर तैयार ही है कि जब सब को आने के लिए आमंत्रण दे दिया है तब तुम्हारे लिए कोई अलग से स्वतंत्र रूप से विशेष आमंत्रण देने की आवश्यकता है क्या ? यहां व्यक्ति विशेष के नामादि पूर्वक आमंत्रण देने की आवश्यकता ही नहीं है । "सब" की संख्या में सबका समावेश हो जाता है । फिर सवाल ही कहां उठता है ? ठीक इसी तरह सातवें पद में संख्यावाची शब्द "सव्व" रख दिया है । लेकिन यह 'सव्व' शब्द किसकी संख्या बताएगा ? विषय सामने कुछ होना तो चाहिए ? इसके उत्तर में कहते हैं कि "पाव" शब्द है । इसका विषय पाप कर्मों का है ।

अब पाप कर्मों के साथ संख्यावाची "सव्व" शब्द जुड़कर सब पाप कर्मों की संख्या सूचित करता है । अशेष भाव से जब सब पापों का निर्देश कर दिया है तब कोई पाप पीछे शेष बचता ही नहीं है । पापों की संख्या की दृष्टि से कोई भी पाप कर्म पीछे शेष न बचते हुए सबका समावेश हो जाता है । इतना ही नहीं दूसरी अर्थ ध्वनि में 'सव्व' शब्द की संख्या को दूसरे अर्थ में ले तो पाप कर्मों की सब जातियों का भी समावेश हो जाता है, अर्थात् सब प्रकार के पाप कर्मों का नाश है । दूसरी तरफ सब प्रकार के, सब जाति के सब पाप कर्मों का नाश करना है । इसलिए 18 पाप जो पहले प्राणातिपात आदि के बताए हैं उनमें मात्र 18 ही पाप होते हैं ऐसा नहीं कहा है । परन्तु पाप कर्मों की जातियां 18 प्रकार की बताई है सर्वज्ञ भगवन्तों ने । उदाहरणार्थ दूसरे मृषावाद अर्थात् झूठ बोलने का पाप बताया है । लेकिन संख्या की दृष्टि से मात्र 1 झूठ ही थोड़ा गिना जाएगा ? जी नहीं । झूठ तो लाखों प्रकार के होते हैं । कभी झूठ, पैसों के विषय में, कभी संपत्ति के विषय में, कभी पत्नी, पुत्रादि के विषय में, कभी अन्य किसी वस्तु के विषय में इस तरह लाखों प्रकार के झूठ बोले जाते हैं । अब इसमें देखा भी जाये तो झूठ की जातियां (प्रकार) कितने हुए ? और संख्या गिनने जाएं तो एक-एक जाति के या प्रकार के झूठ आज दिन तक के 50, 60 या 80 वर्षों के आयुष्य काल में कितनी बार लोग बोल चुके हैं ? जैसे पैसों के विषय में एक व्यक्ति कितनी बार झूठ बोल चुका है ? वही व्यक्ति अपने बाल बच्चों के बारे में कितनी बार झूठ बोल चुका है ? वही एक व्यक्ति हंसी-मजाक में कितनी बार झूठ बोल चुका है ? प्रत्येक प्रकार की संख्या कितनी होगी ? और ऐसे पापों की जातियां कितनी है ? तथा सब प्रकार के पाप कर्मों को करने की संख्या कितनी है ? उन सबका ग्रहण "सव्व" शब्द से किया गया है ।

अब सातवें पद का तीसरा शब्द है "प्पणासणो" । इसका सीधा अर्थ है प्रकृष्ट रूप से नाश करना । यह क्रिया सूचित करता है । जैसे— पक्वान आदि की रसोई सामने लाई हो या आई हो अब उसका क्या करना ? अत: आदेश देने के अर्थ में कोई क्रिया तो अवश्य होगी । वही निर्देश करेगी या तो खाओ या देखो ? या सूंघ लो या और कुछ करो । क्रिया आदेश करेगी कि क्या करना है ? इसका आधार ही क्रिया पर रहता है । ठीक इसी तरह सातवें पद के आधे भाग ने सब पाप कर्मों की तरफ निर्देश करके पापों की पहचान करा दी । अब उनका क्या करना ? इसका उत्तर आगे का शब्द "प्पणासणो" दे रहा है । इसका कहना है कि इन सब पाप कर्मों का सम्पूर्ण सर्वथा नाश करो । अब ऐसे पंच परमेष्ठी भगवन्त मिले हैं तो कोई पाप शेष मत रखना । बाकी रखना ही क्यों ? जब घंटी मिली है तो फिर सभी गेहूं पीसने में क्यों कमी रखनी ? ठीक इसी तरह अरिहन्तादि पांचों परमेष्ठी भगवन्त मिले हैं तो फिर क्यों कोई पाप धोने का शेष रखें ? अरे ! जब गंगा नदी स्वयं बहती हुई घर पर आई है तो फिर क्यों प्यासे रहें । अरे ! जितना पानी पीना है उतना पी लो, कुछ पानी भर कर रखो, कुछ कपड़े धो लो, स्नान भी कर लो । कुछ भी बाकी मत रखो । ठीक वैसे ही पाप कर्मों को धोने का अवसर आया है । अरिहन्तादि पांचो परमेष्ठी भगवन्त बड़ी मुश्किल से मिले हैं । अनन्त काल तक 84 लक्ष जीव योनियों में परिभ्रमण करते करते जीव ने अनन्तानन्त जन्म धारण किये है । इनमें अनन्तगुने जन्मों में सब पाप कर्मों को धोने-नष्ट करने के साधन भूत, पंच परमेष्ठी भगवन्त और उनको नमस्कार करने का मार्ग मिला ही नहीं था । मिथ्यात्व की तीव्रावस्था में भटकते ही रहे । अनन्त जन्मों में न तो कभी पंच परमेष्ठी भगवन्तों के बारे में पूछा । न ही जाना । न ही कोई ऐसी जिज्ञासा या रुचि आदि कभी कुछ बनाई । इत्यादि कभी भी कोई प्रयत्न-पुरुषार्थ ही नहीं किया ।

एक मात्र संसार के राग-द्वेष में उलझे रहे । अपने पत्नी, पुत्र, परिवार और शरीर की मोह जाल में ही फंसे रहे । मोह माया में इतने ज्यादा डूबे रहे कि... पंच परमेष्ठी भगवन्त बिल्कुल पास में होते हुए भी कभी नहीं पहचाना । इस तरह अनन्त गुने जन्म यूं ही गंवाए । मुश्किल से उनके अनन्तवें भाग के ही जन्म में ऐसे सम्यग् पांचों परमेष्ठी प्राप्त हुए तो उनको नमस्कार ही नहीं किया । अरे ! कभी नमस्कार किया भी तो मात्र संसार के दु:ख, संकट, विघ्न, आपत्ति आदि को टालने के लिए ही किया । सब पाप कर्मों का क्षय करने का लक्ष्य भी नहीं बनाया था । बस "दु:ख कैसे टले और सुख कैसे मिले" इतने एक मात्र लक्ष्य को लेकर ही मोह राजा की बजार रूप संसार के चक्र में परिभ्रमण करता ही रहा । "सव्व पावप्पणासणो" का सच्चा लक्ष्य ही नहीं आया । ऐसे पांचो परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने से सब पाप कर्मों का नाश हो सकता है इतना विचार मात्र भी नहीं आया । इतनी ज्यादा मिथ्यात्व की तीव्रता थी । प्रचुर मात्रा में मिथ्यात्व का जोर था । जैसे कोई शराबी-शराब के नशे की मस्ती में झूमता रहता है ठीक वैसे ही मिथ्यात्व के नशे में मैं भी झूमता रहा । पाप करने के बावजूद भी पापों को पाप ही नहीं मानने की वृत्ति में डूबा रहा । अज्ञानता और अंध श्रद्धा का केफ इतना ज्यादा रहा की सच्चा कोहिनूर रत्न या चिन्तामणि रत्न हाथ में आ जाने पर भी

शंका, कुशंका की दुर्बुद्धि में उसे कांच का टुकड़ा समझकर फेंक दिया । पंच परमेष्ठी भगवन्तों के बारे में भी ऐसा ही किया है । अब आज इस जन्म में अरिहंतादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों की जब प्राप्ति हुई है तब इनको नमस्कार करके सब पापों का क्षय करने में कमी क्यों रखनी चाहिए ?

"प्र" उपसर्ग प्रयोग के हेतु—

इन पांच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने से सब पाप कर्मों का नाश होता है यही श्रद्धा होनी बहुत कठिन है । इसमें विषय के तीन अंग है । पहले पांचों परमेष्ठियों को मानना, फिर उनको नमस्कार करना, और अन्त में सब पाप कर्मों का प्रकृष्ट नाश करना । वैसे "नश्-नाशने" की धातु नाश करने के अर्थ में है । लेकिन धातु के रूप में आगे "प्र" उपसर्ग लगाकर "प्पणासणो" शब्द बनाया और उसका प्रयोग किया है । संस्कृत भाषा में "प्र + नाश" "प्रनाशनं" रूप बनता है । उसी का प्राकृत (अर्ध मागधी) भाषा में "प्पणासणो" रूप बना है । उपसर्ग धातु के अर्थ में परिवर्तन भी करते हैं । वह परिवर्तन कभी विपरीत अर्थ में ही हो जाता है । कभी भिन्न अर्थ में, कभी क्रिया की और भी ज्यादा विशेषता बता देता है । कभी कुछ, कभी कुछ अर्थ उपसर्ग पर निर्भर रहता है । जैसे आहार, विहार, संहार, प्रहार, निहार इत्यादि एक ही धातु से भिन्न भिन्न उपसर्गों ने भिन्न-भिन्न रूप बनाकर बिल्कुल ही अलग-अलग अर्थ बना दिये है ।

इसमें धातु का मूल अर्थ गौण हो गया । यहां नवकार में नश् धातु के साथ "प्र" उपसर्ग लगने पर बने हुए रूप 'प्पणासणो' में उपसर्ग ने धातु के नाश करने के सही अर्थ की गुणवत्ता में अभिवृद्धि की है । नाश तो करना ही है परन्तु नाश सामान्य कक्षा, घटिया कक्षा का न हो जाये यह ध्यान रखने के लिए "प्र" उपसर्ग पूरा ध्यान खींच रहा है । जैसे गेहूं पीसने के समय घंटी में आटा पूरा न हो और उसमें गेहूं आखे-अखण्ड रह जाये तो वह पीसने की क्रिया सही नहीं हुई । ऐसे आखे गेहूं खाने में आएंगे तो सारा मजा किरकिरा हो जाएगा । मेहमान के सामने शायद अपमान हो जाएगा । इस तरह पीसने की क्रिया की गुणवत्ता का पूरा ध्यान रखना ही चाहिए ।

प्रस्तुत अधिकरण में "प्पणासणो" की क्रिया में नश् क्रिया के आगे लगा हुआ "प्र" उपसर्ग नाश करने की क्रिया की गुणवत्ता सर्वोच्च कक्षा की रखने का निर्देश कर रहा है । क्रिया को "कौन" प्रश्न करने पर कर्ता का उत्तर आता है, और क्रिया को ही "क्या" प्रश्न पूछने पर "कर्म" का उत्तर आता है । व्याकरण के इस सामान्य नियम के अनुसार यह नश् धातु की नाश अर्थ में नाश करने की क्रिया को हम "क्या" प्रश्न करें ? नाश करना है ? क्या नाश करना है ? किसका नाश करना है ? अत: उत्तर में कर्म स्पष्ट हो जाएगा । "पावप्पणासणो" । पाप कर्मों का नाश करना है ? क्यों करना है ? छुटकारा पाने के लिए । मोक्ष सिद्धत्व की प्राप्ति के लिए । कैसे करोगे सब पाप कर्मों का नाश ? अरिहन्तादि पांच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने से होगा सब पापों का नाश ? अरे ! तुम्हारे पाप कर्म तो इतने ज्यादा है कि जिनका कोई हिसाब ही नहीं है । कोई गणना ही नहीं है । और परमेष्ठी तो सिर्फ 5 ही है । फिर तुम्हारे सब पापों का नाश कैसे होगा ? देखो ! नवकार में संख्यावाची दोनों शब्दों को स्पष्ट देखो । उनके साथ विषय सूचक कौन से शब्द लगे हुए हैं ? "एसो" के आगे पंच शब्द का प्रयोग ऊपर के अरिहन्तादि 5 परमेष्ठी भगवन्तों का ही निर्णय करता है ।

इसी नमुक्कारो के आगे पंच शब्द भी नमस्कारो की संख्या सूचित करता है । इन पंच परमेष्ठी भगवन्तों को किये हुए पांच नमस्कार सब पाप कर्मों का नाश करने में सक्षम है । समर्थ है । एक परमेष्ठी को भी किया गया नमस्कार सब पाप कर्मों का सर्वथा क्षय करने में सक्षम है, तो पांच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने पर सक्षमता, समर्थता कितनी गुनी बढी ? इसी तरह परमेष्ठी भगवन्तों को किये गए नमस्कारों की संख्या भी कम ज्यादा अर्थात् 1 हो या 5 हो तो वे भी सब पाप कर्मों का सम्पूर्ण क्षय करने में पूरी तरह समर्थ है । नमस्कार से पापों का नाश कैसे होता है ? आखिर प्रक्रिया क्या है ? किस तरह होता है नाश ? यह समझना अपने आप में एक गहन संशोधन का विषय है । धर्म शास्त्रों में यह प्रक्रिया बराबर स्पष्ट रूप से दर्शायी गई है । इस प्रक्रिया को खूब अच्छी तरह देखने-जानने और समझने पर भाव और श्रद्धा में अनेक गुनी वृद्धि होती है । सद्भाव जागृत होते हैं । नमस्कार की गुणवत्ता भावों के बल पर अपने आप बढती है । बस, और करना भी क्या है ? जितनी पंच परमेष्ठी भगवन्तों पर श्रद्धा बढती जाएगी, सद्भाव बढते जाएंगे उतने प्रमाण में नमस्कार की गुणवत्ता अपने आप सुधरती जाएगी । अत: नमस्कार करने वाले साधकों के नमस्कार की कक्षा गुणवत्ता का आधार श्रद्धा पर केन्द्रित है । और सच्ची श्रद्धा रूप सम्यग् दर्शन का आधार सम्यग् ज्ञान पर है । अर्थात् अरिहन्तादि पांचो परमेष्ठी भगवन्त एवं नवकार महामंत्र के समस्त विषयों एवं परस्पर के कार्य कारण भाव आदि का सही सम्यग् ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ।

यदि ज्ञान सम्यग् न होकर मिथ्या हो, तो उसके आधार पर श्रद्धा भी मिथ्या ही होगी । अत: इसे मिथ्या दर्शन कहा है । अज्ञानता ही प्राय: अन्ध श्रद्धा की जननी है । वर्तमान काल में भी स्पष्ट देख रहे हैं कि... आम जनता में अज्ञानता काफी ज्यादा है । शायद आप कहेंगे कि समाज काफी ज्यादा सुशिक्षित हो चुका है । लेकिन वह शिक्षा कैसी है ? आधुनिक कालीन शिक्षा मात्र उदरपूर्ति लक्षी है । इसलिए इतने मात्र से तत्त्वों का सही ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता है कि जिससे कोई आत्मा-परमात्मा को पहचान सकें या मोक्ष का स्वरूप समझ सकें ऐसी कोई संभावना

नहीं है । इसलिए सम्यग् दर्शन रूप सच्ची श्रद्धा का आधार वर्तमान उदरपूर्ति लक्षी ज्ञान कभी भी काम नहीं आ सकता है । अत: ऐसे ज्ञान को सम्यग् ज्ञान कहना ही सबसे बड़ी भूल है और फिर ऐसे मिथ्या ज्ञान पर सम्यग् दर्शन का आधार मानना इससे भी बड़ी भयंकर भूल है । और फिर आगे मिथ्या श्रद्धा या अन्ध श्रद्धा पर सम्यग् चारित्र या मोक्ष के अनुरूप आचरण मानना यह और भी गंभीर भूल है । इस तरह मिथ्या ज्ञान अर्थात् सही सत्य सम्यग् तत्त्वों के ज्ञान से विपरीत और विकृत प्रकार के ज्ञान के आधार पर श्रद्धा कदापि सम्यग् हो ही नहीं सकती है, तथा सम्यग् दर्शन के अभाव में जीव मोक्ष लक्षी या मोक्षाभिमुख बन ही नहीं सकता है । और मोक्ष लक्षी बने बिना उसका आचरण या क्रियात्मक प्रवृत्ति आदि सम्यग् चारित्र रूप हो ही नहीं सकती है । ऐसे सम्यग् चारित्र का आचरण न होने पर "सव्व पावप्पणासणो" सब पाप कर्मो की सम्पूर्ण निर्जरा (क्षय) कदापि नहीं कर सकता है । तथा अन्ततोगत्वा निर्वाण रूप मोक्ष फल की प्राप्ति दिवा स्वप्न तुल्य ही रहेगी । और परिणाम स्वरूप संसार चक्र की चारों गति के 84 लक्ष जीव योनियों में परिभ्रमण चलता ही रहेगा । यह कदापि समाप्त हो ही नहीं सकता है ।

मोक्ष लक्षी जीव ही मुमुक्षु कहलाता है । वही आत्मार्थी जीव है । नवकार में देव, गुरु और धर्म तीनों तत्त्व साधक को सम्यग् दृष्टि बनाते हैं । दूसरे "नमो सिद्धाणं" पद के जाप से साधक सिद्धों को पहचानता है । प्रत्येक पद का स्मरण उन उन पदों के अधिष्ठाता देव गुरुओं के परिचायक पद है । उनकी पहचान से तत्त्वों की पहचान सम्यग् होती है । क्योंकि इन पदों में व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है । यदि मात्र नाम के ही पद होते तो वे व्यक्ति की ही पहचान कराते । मात्र व्यक्ति की पहचान नामादि परक रहती है । इसकी अपेक्षा गुण स्वरूप की पहचान ही यथार्थ वास्तविक बोधदायक पहचान होती है । इसलिए "नमो सिद्धाणं" पद से सिद्ध स्वरूप की पहचान सही होगी । सिद्ध किसी का नाम विशेष नहीं है । यह आत्मा की कर्म रहित शुद्ध अवस्था विशेष है । आत्मा की शुद्ध स्थिर स्थायी अपरिवर्तनशील पर्याय है । मैं एक संसारी कर्म सहित पर्याय हूं और सिद्ध कर्म रहित पर्याय है । अत: देखा जाय तो दोनों एक ही आत्म द्रव्य की पर्याय है । दोनों में आत्मत्व जाति एक ही है । वे अगर सिद्ध बन चुके हैं तो एक दिन मैं भी बन सकता हूं । वैसा बनने की प्रक्रिया नवकार के सातवें पद में स्पष्ट कर दी है कि... सब पाप कर्मो का सम्पूर्ण रूप से आप सर्वथा नाश कर दो, बस, आप भी एक दिन सिद्ध बन जाओगे । और सब पाप कर्मो का नाश करने के लिए सबसे आसान तरीका है—ऐसे समस्त पाप कर्मो का जो सर्वथा नाश कर चुके हैं उन अरिहंतादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को सर्व पाप कर्मो को नाश करने की भावना से ही नमस्कार करते जाएं । परन्तु अज्ञानता और अंध श्रद्धा पाप नाश का लक्ष्य ही बनाने नहीं देती है । ये मात्र दु:ख निवृत्ति और सुख प्राप्ति के फल तक ही सीमित रहती है । ऐसे लक्ष्य वाले अंध श्रद्धालु अज्ञानी जीव को न ही आत्मा या न ही मोक्ष का किसी भी तत्त्व का भाव, श्रद्धा, बोध या उसकी प्राप्ति आदि किसी का भी लक्ष्य नहीं रहता है ।

आठवें + नौवें पद का विषय बोध–

नवकार के 8वें पद का विषय एक मात्र संसार के समस्त मंगलों का है । दुनिया भर के जितने भी मंगल रूप गिने जाते पदार्थ है उनका संग्रह यह 8वां पद करता है । द्रव्य मंगल की प्राधान्यता वाले या भाव मंगल के भी निमित्त हो, परन्तु उन सब में सर्वोपरि, सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम कक्षा का प्रथम मंगल कौन सा है ? उसकी बात नौवा पद करता है । "पढमं" शब्द 8वें पद द्वारा एकत्रित सभी मंगलों में प्रथम कक्षा का श्रेष्ठ मंगल कौन सा है इसका सूचन करता है । "हवइ" यह अस्तित्व सूचक क्रिया है । "है" के अर्थ में यह प्रयुक्त है । प्रथम मंगल है । मंगल का विषय भी अनूठा है । शब्द के प्रयोग मात्र से लोग ऐसा समझते हैं कि बस हो गया हमारा काम । सब विघ्नों का नाश हो जाएगा, आपत्ति, संकट, दु:ख, दर्द दूर हो जाएंगे । लेकिन नवकार मात्र सांसारिक भौतिक दु:ख, दर्द नाशक नहीं है । या सुख प्राप्ति और भोग के बीच आने वाले विघ्न संकटों को टालने वाला ही नहीं है । जी हां, यह भाव कक्षा का आध्यात्मिक मोक्ष साधक महामंत्र जरुर है । अत: आत्मा के मोक्ष मार्ग पर अग्रसर होने में, आत्मा के विकास पथ में बाधक बनने वाले अवरोधों को यह जरूर दूर करेगा । उनमें बाधक या विघ्न रूप संकटों की निवृत्ति नवकार से अवश्य होगी और मोक्षार्थी साधक का आत्म विकास का मार्ग प्रशस्त होगा । इसलिए भाव मंगल अर्थ में नवकार सही अर्थ में प्रथम कक्षा का सर्वश्रेष्ठ मंगल है । इस बात को आठवीं संपदा ने बिल्कुल सही अर्थ में प्रस्तुत की है । आवश्यक निर्युक्ति आदि में मंगल की व्याख्या करते हुए पू. पूर्वधर भद्रबाहुस्वामी जैसे महापुरुषों ने ममकार रूप, ममत्व बुद्धि रूप, पाप को गालने वाला, शुद्ध आत्म धर्म को लाने वाला ऐसा उभयार्थक मंगल बताया है । जो भाव अर्थ में बिल्कुल सही सार्थक सिद्ध होता है ।

ऐसे नमस्कार महामंत्र के नमो से लेकर मंगल तक के समस्त विषयों का बोध सम्यग् सही अर्थ में प्राप्त करके, यथार्थ समझकर, वैसी यथार्थ सम्यग् श्रद्धा की भावना बनाकर सम्यग् चारित्र के रूप में 'नमो' का सही आचरण करके साधक सिद्ध बनने का लक्ष्य सिद्ध करें । नवकार के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करें । ऐसी शुभकामना रखता हूँ ।

॥"सर्वेऽपि सिद्धाः भवन्तु"॥

नौं तत्त्वों के तत्त्व ज्ञान से परिपूर्ण—"श्री नवकार महामंत्र"

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

जीवाइ नव पयत्थे जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं ।
भावेण सद्दहंतो अयाणमाणेऽवि सम्मत्तं ।।

— श्री नव तत्त्व प्रकरण के उपरोक्त श्लोक में नौ तत्त्वों का वर्णन करने के पश्चात् सम्यग् दर्शन का वर्णन करते हुए कहते हैं कि... "जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष" इन नौं तत्त्वों को जो भी कोई अच्छी तरह जान लेता है, भावना से उन पर श्रद्धा बना लेता है, या अन्जानपने में भी यदि भावना से उन पर श्रद्धा रखता है तो वह सम्यक्त्वी कहलाता है । याद रखिए ! सम्पूर्ण जैन धर्म या सर्वज्ञ कथित धर्म और दर्शन का सम्पूर्ण स्वरूप नवतत्त्वात्मक है, और सम्पूर्ण नौं तत्त्व जैन धर्मात्मक, दर्शनात्मक है । अर्थात् नौ तत्त्वों से बाहर जैन धर्म की कोई बात ही नहीं है और जैन धर्म-दर्शन से बाहर नौ तत्त्व की कोई बात ही नहीं है । इस अर्थ में दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची अपर नाम बनते हैं । या एक ही सिक्के की दो बाजू की तरह इनका अस्तित्व है । यदि नौ तत्त्वों का पूर्ण ज्ञान पा लिया है उसने सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान को या जैन धर्म को पूर्ण रूप से, अच्छी तरह जान लिया है । समझ लिया है । बस, इसके बाहर कुछ भी नहीं है ।

तत्त्वज्ञान की महत्ता—

सामान्य ज्ञान और विशेष ज्ञान इस तरह के दो भेद यदि हम ज्ञान के करें तो भी ज्ञान का आधार एक ही श्रेय पदार्थ पर आश्रित रहता है । सिर्फ दोनों में अन्तर इतना ही है कि... सामान्य ज्ञान अल्प होता है । ऊपर-ऊपर का नामादि का परिचयात्मक होता है । जबकि विशेष ज्ञान पदार्थ की गहराई का स्पष्ट बोध कराता है । उदाहरणार्थ नाम मात्र से आत्मा को मानना यह सामान्य ज्ञान कहलाता है । परन्तु आत्म प्रदेशों का स्वरूप, गुणों के अभेद भाव का स्वरूप, अनुत्पन्न अविनाशी द्रव्य का स्वरूप, ज्ञानमय अखण्ड असंख्य प्रदेशी द्रव्य का स्वरुपादि विशेष ज्ञान है । इसलिए दोनों प्रकार के ज्ञान का आधार भूत आश्रय एक ही द्रव्य आत्मा पर आश्रित है । इसलिए श्लोक कार ने दोनों बात रखी है—1. **"अयाणमाणेऽवि भावेण सद्दहंतो"** अर्थात् पूर्ण रूप से न जानते हुए अत: सामान्य बोध होने पर भी भावपूर्वक की पूर्ण श्रद्धा भी सम्यग् दर्शन है । तथा विशेष ज्ञान पूर्वक भाव पूर्ण श्रद्धा रखने पर भी सम्यग् श्रद्धा है । याद रखिए ! यह सम्यग् दर्शन मोक्ष की प्राप्ति का मूलभूत बीज है । आधार भूत बीज है । और सम्यग् दर्शन का आधार भूत बीज तत्त्वज्ञान का सही स्वरूप है । बिना सही तत्त्वज्ञान के सम्यग् दर्शन नहीं, और बिना सम्यग् दर्शन के मोक्ष प्राप्ति कदापि संभव ही नहीं है ।

हमने संसार में दुनिया भर का सब कुछ जान लिया परन्तु आत्मादि मूलभूत तत्त्वों को नहीं जाना तो वह दुनिया भर का सारा ज्ञान निरर्थक है । निष्फल है । और यदि हमने आत्मादि तत्त्वों का सही तत्त्वज्ञान प्राप्त कियां है लेकिन दुनिया भर का सब ज्ञान प्राप्त नहीं भी किया है तो भी हमारा मोक्ष नहीं रुकेगा । लेकिन पहले प्रकार में मोक्ष की प्राप्ति कदापि नहीं होगी । और दूसरे प्रकार में मोक्ष की प्राप्ति निश्चित ही होगी । श्री आचारांग सूत्र आगम में कहा है कि... **"जो एगं जाणइ सो सव्वं जाणइ"** अरे ! जो एक को जान लेता है वह सब कुछ जानता है । इस सिद्धान्त के आधार पर एक तत्त्व ऐसा कौन सा हो सकता है ? इसके उत्तर में आत्म तत्त्व का निर्देश किया है । बस, एक मात्र आत्म तत्त्व को भावात्मक स्वरूप में जो पूर्ण स्वरूप में जान लेता है वह सब कुछ जान लेता है । बात भी सही है कि—आत्मेतर पदार्थों का जिनका आत्म तत्त्व में अभाव होगा उन सबका ज्ञान होने से दुनिया भर के पदार्थों का ज्ञान हो जाएगा । और भावात्मक स्वरूप से आत्म द्रव्य स्वयं अपने आप में कैसा है ? इस तरह भावात्मक और अभावात्मक उभयात्मक ज्ञान प्राप्त होने पर पदार्थ का यथार्थ सही पूर्ण ज्ञान हो जाता है । इस तरह एक पदार्थ के पूर्ण ज्ञान से संसार के समस्त पदार्थों का ज्ञान हो जाता है । यह रहस्यात्मक विशेषता आचारांग सूत्र में स्पष्ट की है । अत: इस तरह सही अर्थ समझना चाहिए ।

सप्त तत्त्व व्यवस्था—

किसी भी धर्म-दर्शन का मूल आधार उसके मूलभूत तत्त्वज्ञान पर रहता है । जैन धर्म-दर्शन का आधार नौ तत्त्वों पर है । सर्वज्ञ प्रणीत इन जीवादि नौं तत्त्वों को अन्तर्गत समावेशादि भाव से तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में पूर्वधर महापुरुष वाचक मुख्य श्री उमास्वातिजी म. ने नौं के बजाय सात तत्त्वों में वर्णित किया है । **"जीवाऽजीवाश्रव संवर-निर्जराबंध मोक्षास्तत्त्वम्"** । पुण्य और पाप इन दोनों तत्त्वों का आश्रव तत्त्व में समावेश करके 7 तत्त्वों की विवक्षा की है । क्योंकि पुण्य को ही शुभ आश्रव और पाप को अशुभ आश्रव कहा गया है । दोनों की स्वतंत्र विवक्षा करके अलग-अलग करके नौं तत्त्वों की प्ररुपणा की है । परन्तु संख्या की दृष्टि से कोई बड़ा भेद नहीं है ।

नवकार महामंत्र में नवतत्त्वों का निर्देश—

सर्व सामान्य रूप से किसी भी मंत्र में तत्त्वज्ञान भरा हो यह नामुमकिन जैसी बात है । क्योंकि मंत्र इष्ट देवता के नमस्कारात्मक प्राधान्यता वाले होते हैं । तत्त्वज्ञान का उपदेश देना यह प्राय: मंत्रों का कार्य क्षेत्र नहीं है । क्योंकि इससे मंत्र का निरर्थक विस्तार बढ जाता है । फिर जापादि में सर्व सामान्य जीवों को सुखकर सरल प्रतीत नहीं होता है । इसलिए मंत्र प्राय: अत्यन्त संक्षिप्त होते हैं । संक्षिप्तीकरण प्राय: मंत्रों की बड़ी अच्छी विशेषता है ।

मंत्र शास्त्र के लाखों मंत्रों में नवकार एक ऐसा अपवाद है जिसे महोदधि कहा जाता है । यद्यपि अपने आप में नवकार थोड़ा विस्तार वाला जरुर है । 9 पदों में 68 अक्षरों का विस्तार है । फिर भी सदियों और सहस्राब्दीयों से यह ज्ञानी-अज्ञानी सर्व जीवों के जीभ पर चढा हुआ है । रुढिगत परम्परा के कारण लाखों वर्षों से जप साधना के प्रयोग में प्रचलितता इतनी ज्यादा है कि आज दिन तक किसी ने इसके विस्तार का भय महसूस ही नहीं किया और किसी ने ऐसा भय महसूस करके यदि किसी ने संक्षिप्तीकरण की रचना या व्यवस्था करने का प्रयत्न किया हो तो भी वह प्रचलित नहीं हुआ । विस्तृत नवकार का अस्तित्व नष्ट नहीं हुआ । और संक्षिप्तीकरण का अस्तित्व व्यवहार के प्रचलन में नहीं आया । अत: परिणाम स्वरूप यह प्रचलित विस्तृत महामंत्र के अस्तित्व एवं प्रचलन की परम्परा आज दिन तक भी अखण्ड रूप से चल रही है । यद्यपि नए निकले संप्रदायों ने समाज के लोगों में शीघ्र प्रिय और प्रसिद्ध होने के लिए चूलिका हटाकर संक्षिप्तीकरण करके नवकार को आधा करके दिया । अन्जान प्रजा को तथा कथित ज्ञानी गुरुओं ने आधा नवकार के जपादि की प्रसिद्धि बढाई । प्रचलन बढाया । लेकिन इतने मात्र से भी नौ पदों की पूर्ण नवकार की परम्परा आज दिन तक भी नष्ट नहीं हुई । पूर्ण नवकार का प्रचलन काफी आनन्द पूर्वक भी है । आप सोच सकते हैं कि बिना शिखर के मन्दिर का स्वरूप कैसा दिखाई देता है ? ठीक उसी तरह बिना चूलिका के नवकार की स्थिति का स्वरूप ख्याल में आएगा । मान लो कि बोतल में दवाई हो और उस पर नामादि का विवरण या किस रोगादि पर की उपयोगिता कुछ भी निर्देश न हो तो उस औषधि का क्या होगा ? उसे कोई कैसे सेवन करेंगे ? लेंगे ? ठीक इसी तरह बिना चूलिका के नवकार की स्थिति भी ऐसी हो जाएगी । अत: नवकार जैसे त्रैकालिक शाश्वत महामंत्र के साथ खिलवाड़ कभी भी नहीं करनी चाहिए । यह सबसे बड़ी उत्सूत्र प्ररुपणा होगी । जो महापाप है ।

नवकार महामंत्र में नौं तत्त्वों का तात्त्विक निर्देश—

महामंत्र श्री नवकार की शब्द रचना में प्रयुक्त कुछ शब्द अपने गर्भित अर्थों में जीवादि नौं तत्त्वों का स्पष्ट निर्देश करते हैं । जिससे नवकार नौं तत्त्वमय है यह स्पष्ट ख्याल आता है । तथा तत्त्वों के आधार पर तात्त्विक उपदेश या आदेश का भी ख्याल आता है । उसकी संक्षिप्त विचारणा इस प्रकार है—नवकार के प्रथम पद में प्रयुक्त शब्द अरिहंताणं है । इसमें 2 शब्द प्रत्यय के साथ जुड़कर पद बने हैं । 1. अरि + 2. हंत । अरि शब्द का अर्थ शत्रु है । साधक आत्मा के लिए अरि रूप कोई बाहरी शत्रु नहीं है । बाहरी शत्रु व्यक्ति रूप होते हैं । कोई किस व्यक्ति को अपना दुश्मन मान ले । और किसी जाति विशेष के व्यक्ति को अन्य विरुद्ध जाति वाली व्यक्ति अपना शत्रु मान ले । इस तरह जातीय वैमनस्य भी काफी बढ जाता है । इस प्रकार की शत्रुतादि मानने पर राग-द्वेष की परम्परा की वृद्धि होती है । अत: सूक्ष्म अहिंसा के उपदेशक सर्वज्ञ परमात्मा कभी भी बाहरी शत्रुओं के हनन करने का संकेत भी नहीं करेंगे ।

आत्मा के लिए आन्तर शत्रु यदि कोई है तो वे एक मात्र आत्मा पर लगे हुए कर्म है । आत्मा के शत्रु राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कामादि अनेक है । कर्म ही मुख्य राजा है । और शेष उसकी सारी सेना है । सभी कर्म जन्य ही है । जो आत्मा के ज्ञानादि गुणों के सर्वथा विपरीत भाव स्वरूप है । आत्मा का अहित करने वाले होने के कारण ये राग, द्वेष, क्रोधादि आत्मा के शत्रु है । अत: 'अरि' शब्द से कर्म रूपी आंतर शत्रु अर्थ ही अभिप्रेत है शास्त्रकार भगवन्तों को ।

ये कर्म अजीव तत्त्व का निर्देश करते हैं । अजीव तत्त्व में जड़ पुद्गल पदार्थ की गणना की गई है । पुद्गल द्रव्य स्कंध, देश, प्रदेश और परमाणु स्वरूप 4 भेद वाला है । समस्त लोक में 8 प्रकार के पुद्गलों के परमाणु सर्वत्र प्रसरे हुए है । जिन्हें शास्त्रों में अष्ट महावर्गणां के नाम से संबोधित किया है । इनमें अंतिम आठवी सूक्ष्मतम महावर्गणा को कार्मण वर्गणा कहते हैं । ये एकं मात्र आत्मा को कर्म बांधने के उपयोग में ही आती है । इसके सिवाय अन्य किसी में नहीं । सब प्रकार की आठों महावर्गणाओं में ये इतनी सूक्ष्मतम कक्षा की है कि... एक आत्मा के असंख्य प्रदेशों पर अनन्तानन्त की संख्या में चिपक कर रह जाती है । बस, आत्मा जब राग-द्वेष करती है तब इनका ग्रहण होता है । आश्रव प्रक्रिया से आत्म प्रदेशों पर अन्दर आती है, और अध्यवसाय - कषायादि के रस के आधार पर रस बंध की प्रक्रिया से आत्मप्रदेशों के साथ घुल मिलकर एक मेक बनकर बंध के रूप में रह जाती है । आत्म प्रदेशों के साथ एक रस बनकर कार्मण वर्गणा के रहने के बाद वह कर्म संज्ञा प्राप्त करता है । ऐसे ये कर्म आत्मा के ज्ञानादि गुणों के आच्छादक आवरक होते हैं । जो ज्ञानादि गुणों को ढककर बाहर विपरीत भाव प्रगट करते हैं ।

चेतन जीव तत्त्व से एवं उसके गुणों से सर्वथा विपरीत भाव वाले थे कर्म जड़ तत्त्व के घर के अजीव है । पुद्गल के पौद्गलिक परमाणु स्वरूप है । इस तरह नवकार में प्रयुक्त "अरि" शब्द से कर्मों के स्वरूप में अजीव तत्त्व का बोध होता है ।

चेतन-आत्म तत्त्व का बोध—

"नमो अरिहंताणं" पद के अरिहंत शब्द में अरि के आगे जो "हन्त" शब्द जुड़ा हुआ है । वह "हन्" धातु से हनन करने, नष्ट करने के अर्थ में बनकर जुड़ा है । अत: अरियों, कर्मरूपी शत्रुओं का हन्ता कौन हो सकता है ? इसके उत्तर में एक मात्र आत्मा का ही सूचन होता है । याद रखिए ! समस्त ब्रह्माण्ड- स्वरूप लोक में मूलभूत अस्तित्व रखने वाले दो ही द्रव्य है । एक चेतन-जीव द्रव्य और दूसरा अजीव द्रव्य । जीव को ही आत्मा कहते हैं । शेष सभी अजीव है । बस, इन दो मूलभूत द्रव्यों के सिवाय अन्य किसी भी द्रव्य का अस्तित्व ही नहीं है जगत् में । याद रखिए—तत्त्व जरुर नौ है परन्तु इनमें द्रव्य तो सिर्फ दो ही है । पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्षादि ये सब द्रव्य नहीं है । परन्तु तत्त्व जरूर है । प्रदेश समूहात्मक पिण्ड स्वरूप गुण पर्यायात्मक पदार्थ विशेष को ही द्रव्य कहते हैं । अत: प्रदेश समूहात्मक पिण्ड स्वरूप के अर्थ में अस्तिकाय शब्द नाम के साथ जुड़कर जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय ये पंचास्तिकाय है । ये गुण पर्याय वाले त्रैकालिक अस्तित्व वाले शाश्वत द्रव्य है । अपने-अपने विशिष्ट गुण पर्याय की विशेषता के कारण एक दूसरे से भिन्न स्वतंत्र स्वरूप में अस्तित्व रखते हैं । उदाहरणार्थ चेतनात्मा द्रव्य में ज्ञान, दर्शन, सुख, दु:ख की संवेदना आदि के जो विशिष्ट गुण है वैसे शेष किसी भी द्रव्य में नहीं है । इसी तरह पुद्गल में जो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शादि के विशिष्ट गुण है वे अन्य किसी में भी नहीं है । और न ही संभव है । इसलिए इन पांचों का अपना अपना स्वतंत्र अस्तित्व है । इन पांचों का विभाजन 1. जीव और 2. अजीव इन 2 विभागों में करने से एक चेतन जीव द्रव्य और शेष चारों की गणना अजीव द्रव्य में की है । काल को अस्तिकायात्मक नहीं होने के कारण पंचास्तिकाय की गणना में साथ में नहीं गिना परन्तु षड् द्रव्य के रूप में साथ में गिनकर 6 द्रव्य कहे हैं ।

जिसमें कर्मों को बांधने की बनाने की शक्ति है उसी में ही कर्मों का क्षय करने की खपाने की भी शक्ति है । इसी को 'हन्ता' शब्द से नवकार में निर्दिष्ट की है । "हन्" धातु हनन करने, नष्ट करने के अर्थ में होती है । उस क्रिया के कर्ता को "हन्ता" शब्द से कहा है । यह नियम भी निश्चित ही है कि क्रिया होगी तो कर्ता निश्चित ही होगा और ठीक इसी तरह कर्ता होगा तो क्रिया भी निश्चित ही होगी । क्रिया को किये बिना कोई कर्ता कैसे संभव हो सकता है ? और किसी कर्ता के बिना क्रिया का संभव भी कैसे हो सकता है । कर्म की क्रिया विशेष से ही बना है । इसलिए कर्मग्रन्थकार ने कर्म शास्त्र के प्रारम्भ में व्याख्या ही इस प्रकार दी है कि— **"किरइ जीएण हेउहिं जेणं तो भन्नए कम्मं"**— अर्थात् "जीव के द्वारा हेतु पूर्वक जो क्रिया की जाती है उसे कर्म कहते हैं । यहां क्रिया का निर्देश स्पष्ट है, और हेतु पूर्वक यह क्रिया का विशेषण है । तथा कर्ता के रूप में जीव का स्पष्ट उल्लेख किया गया है । अत: जीव कर्ता के द्वारा ही कर्म की क्रिया संभव है । शास्त्र वार्ता समुच्चय ग्रन्थ में तार्किक शिरोमणी पू. हरिभद्र सूरि म. कहते हैं कि...

य: कर्ता कर्म भेदानां, भोक्तां कर्म फलस्य च ।
संसर्ता-परिनिर्वाता, सह्यात्मा नान्य लक्षणः ।।

— जो कर्मभेद अर्थात् समस्त सब प्रकार के कर्मों का कर्ता हो, तथा कृत कर्मों के फलों को भोगने वाला हो, संसार में परिभ्रमण करने वाला हो वही आत्मा है । अन्य और क्या लक्षण हो सकता है आत्मा का ? इस श्लोक में भी देखिए, आत्म द्रव्य का लक्षण बताने में भी उसे कर्मों का करने वाला कर्ता कहा है । क्रिया को करने के कारण ही कर्ता कहा जाता है । कर्मों को बांधने या करने के समय आश्रव बंध की क्रिया होती है और रोकने के समय संवर की क्रिया होती है तथा उनका क्षय नष्ट करने के समय निर्जरा की क्रिया होती है । इसे "हनन्" शब्द से कहा है । ऐसी

हनन् क्रिया को करने वाला कर्ता "हन्ता" कहलाता है। अत: हन्ता शब्द के प्रयोग से कर्ता के रूप में चेतनात्मा तत्त्व लिया गया है। यही अभिप्रेत है।

"सव्व पाव-प्पणासणो" में आत्म तत्त्व—

उपरोक्त यही बात नवकार के सातवें पद में है। सब पाप कर्मों का प्रकृष्ट रूप से नाश करने वाला कौन हो सकता है ? सब पापों का नाश कौन कर सकता है ? पाप नाश की क्रिया करने वाला कर्ता कौन हो सकता है ? जो होगा वह एक मात्र चेतनात्मा ही होगा। उससे भिन्न कोइ नहीं। इस तरह "पणासणो" की क्रिया का कर्ता चेतनात्मा ही होगा। यदि 7वें पद में "पाव" शब्द का प्रयोग नहीं होता और मात्र "सव्व पणासणो" इतना ही होता तो सर्व-नाश यह अर्थ निकलता। सर्वनाश तो एक अणुबॉम्ब-परमाणु बॉम्ब से ही होता है। अत: अतिव्याप्ति परमाणु बॉम्ब में चली जाती। इससे बॉम्ब कर्ता बन जाता। एक परमाणु बॉम्ब वर्तमान समस्त विश्व का नाश करने के सामर्थ्य वाला है। उसे ही कर्ता कहना पड़ता। लेकिन "पाव" शब्द के प्रयोग से यह अति व्याप्ति दोष हट गया। अत: "सव्व पावप्पणासणो" से सब पाप कर्मों का नाश करने की क्रिया का कर्ता एक मात्र चेतनात्मा ही सिद्ध होता है। चेतनात्मा के अतिरिक्त समस्त जगत् में पाप कर्मों का प्रकृष्ट नाश अन्य कोई कर ही नहीं सकता है, क्योंकि जगत् में 2 के सिवाय तीसरे किसी द्रव्य का अस्तित्व ही नहीं है । पाप कर्म अजीव तत्त्व के जड़ पुद्गल परमाणु स्वरूप है, और उनको नष्ट करने वाला कर्ता चेतन आत्म तत्त्व है। बस, जीव और अजीव जड़ या चेतन इन दो द्रव्यों के अस्तित्व के सिवाय जगत् में किसी अन्य द्रव्य का अस्तित्व ही नहीं है। दूसरी तरफ जड़ स्वयं कर्ता बन नहीं सकता है। अत: कर्ता अर्थात् क्रिया का करने वाला एक मात्र चेतन जीवात्मा ही बन सकता है। इस तरह "पणासणो" और "हन्ता" नवकार के ये दोनों शब्द चेतन-जीवात्मा तत्त्व के द्योतक है।

"नमो सिद्धाणं" में—सिद्ध-जीव तत्त्व है—

आचार्य, उपाध्याय, साधु और अरिहन्त ये चारों पद है। जबकि सिद्ध यह पद न होकर आत्मा की शुद्ध अवस्था विशेष है। अत: साधु आचार्य, उपाध्यायादि पद प्राप्त होने के पश्चात् बदल जाते हैं। अर्थात् साधु के बाद जब उपाध्याय बनते हैं तब साधु पद गौण हो जाता है, और उपाध्याय पद के रूप में ही प्रधान रूप से व्यवहार होता है। आगे जाकर जब आचार्य पद पर आरूढ हो जाते है तब पीछे के दोनों पद गौण हो जाते हैं। इसी तरह अरिहंत तीर्थंकर पद भी समाप्त हो जाता है। तीर्थंकर जब निर्वाण पाकर मोक्ष में चले जाते हैं तब वे तीर्थंकर स्वरूप में नहीं रहते हैं। अब सारा व्यवहार सिद्ध के नाम से होता है। याद रखिए ! कर्म शास्त्र ने स्पष्ट रूप से नाम कर्म की 103 प्रकृतियों में तीर्थंकर नाम कर्म की भी कर्म प्रकृति के रूप में गणना की है। अत: यह उत्कृष्ट कक्षा की पुण्य प्रकृति है। किसी भी कर्म प्रकृति को आत्मा को बांधनी पड़ती है, फिर उसके उदय काल में वह जो फल दे उसे भुगतना पड़ता है और अन्त में उस प्रकृति की निर्जरा करके अन्त लाना पड़ता है। भले जीव स्वयं यदि निर्जरा न करें तो कर्म की समय मर्यादा समाप्त होने पर वह कर्म प्रकृति अपने आप आत्म प्रदेशों से बिखर कर नष्ट हो जाती है।

इसी प्रकार की तीर्थंकर नाम कर्म की प्रकृति को भी यह नियम लागू होता है। भले ही पुण्य की उत्कृष्ट प्रकृति है इसमें दो मत नहीं है। लेकिन आखिर है तो कर्म प्रकृति ही। सर्व कर्म मुक्त सिद्ध जब बनना है तब यह एक कर्म पुण्य होने से साथ थोड़ी ही रहेगा। अन्त में इसका भी क्षय हो जाता है। आत्मा शरीरादि सब छोड़कर मोक्ष में जाकर सिद्ध बन जाती है। अब न तो वह पुण्य प्रकृति है और न ही तद्जन्य तीर्थंकरपना है। न ही समवसरण की रचना या देशना आदि कुछ भी नहीं है।

याद रखिए ! सिद्धत्व की प्राप्ति किसी भी कर्म प्रकृति या पुण्य प्रकृति से जन्य नहीं है। सिद्ध स्वरूप की प्राप्ति यह एक मात्र सर्व कर्म क्षय से ही उपलब्ध होती है। अन्य कोई विकल्प ही नहीं है। अत: सिद्ध स्वरूप यह पद नहीं है। यह आत्मा की कर्म रहित विशुद्धावस्था है। अत: सिद्ध पद पुण्योदय से नहीं मिलता है। और एक बार इस सिद्धावस्था की प्राप्ति हो जाने के बाद यह अवस्था कदापि नष्ट नहीं होती है। चली नहीं जाती है। और इसके बाद अनन्त काल में कभी भी अन्य कोई नई अवस्था आती नहीं है। यह सिद्धावस्था सादि अनन्त कक्षा की है। जबकि शेष चारों पद सादि सान्त की कक्षा के हैं। सिद्धावस्था सर्वथा अपरिवर्तनशील स्थिर स्थायी है। अचल है। जबकि शेष 4 अरिहन्त (तीर्थंकर) आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि के पद अस्थिर, अस्थायी चल एवं परिवर्तनशील है। अत: ध्रुव पद एक मात्र सिद्धावस्था ही है।

सिद्ध कौन बन सकता है ? जीव तत्त्व ही सिद्ध बन सकता है। अन्य द्रव्य अजीव के सिद्ध होने का सवाल ही नहीं उठता है। क्योंकि "सिद्ध" होना अर्थात् मुक्त होना है। मुक्त का अर्थ है छुटकारा पाना, बंधन होगा तब तो मुक्त होगा छुटकारा मिलेगा। अजीव जड़ द्रव्य तो किसी के बंधन से बंधा हुआ ही नहीं है अत: उसके मुक्त होने का प्रश्न कभी उठता ही नहीं है। फिर सिद्ध होने की बात ही कहां रही ? चेतन जीव द्रव्य अजीव के बंधन में अनादि काल से है। न कि अजीव द्रव्य जीव से बंधा गया है। अत: चेतन आत्मा जो अजीव के पुद्गल द्रव्य के परमाणु रूप कर्मों से अनादि काल से जो बंधा हुआ है उसकी कर्म बंध से मुक्ति होगी। छुटकारा मिलेगा—पाएगा तब सिद्धत्व की प्राप्ति होगी।

अन्य किसी को नहीं । अत: **"जीवा मुत्ता संसारिणो य"** जीव मुक्त और संसारी दो ही प्रकार का है । इस तरह "नमो सिद्धाणं" पद में "सिद्ध" शब्द के प्रयोग से जीव चेतन आत्म द्रव्य की सिद्धि होती है । इस तरह जीव तत्त्व की सिद्धि नवकार के 1. हन्ता, 2. प्पणासणो और 3. सिद्ध ऐसे 3 शब्दों से होती है ।

पुण्य पाप तत्त्वों की सिद्धि—

नौं तत्त्वों के क्रम में जीव अजीव के बाद पुण्य और पाप तत्त्वों का अस्तित्व आता है । पुण्य तत्त्व शुभाश्रव स्वरूप है । है तो कर्म ही... । लेकिन सुख रूप शुभ फल देने वाला होने से इसे शुभ कर्म कहा है । महामंत्र में सर्वप्रथम प्रयुक्त "नमो" शब्द पुण्य का भी द्योतक है । नौ तत्त्वों के शास्त्र में नौ प्रकार से पुण्योपार्जन के तरीके बताए हैं उनमें नौंवा प्रकार नमस्कार का भी बताया है । जहां निर्जरा के भावादि न हो फिर भी नमनादि कायिक क्रिया कुशलानुबंधी की कक्षा की है । अत: वह भी शुभ पुण्य उपार्जन कराती है । दूसरी तरह "नमो अरिहंताणं" के प्रथम पद में प्रयुक्त अरिहंत शब्द तीर्थंकर का भी वाचक है । अरिहंत को ही तीर्थंकर और तीर्थंकर को ही अरिहंत भी कहते हैं । किसी भी शब्द का प्रयोग करो आखिर उससे वाचक व्यक्ति एक ही है । अत: दो नहीं सैंकड़ों शब्द इनके वाचक बन सकते हैं । ऐसे पर्यायवाची हजारों नाम शब्द है ।

अत: तीर्थंकर पद नाम कर्म की कुल 103 प्रकृतियों में उत्कृष्ट कक्षा की पुण्य प्रकृति तीर्थंकर नाम कर्म की है । इसके उदय से ही कोई तीर्थंकर बन सकता है । अत: अरिहंत पद यह पुण्य का द्योतक पद है । ऐसे महान पंच परमेष्ठियों की प्राप्ति, इनको नमस्कार करने की हमारी वृत्ति यह साधक के अपने पुण्य का उदय सूचित करता है । इस प्रकार पुण्य तत्त्व का स्वरूप नवकार में है ।

"सव्व पाव" सातवें पद के इन शब्दों से सब पाप कर्मों का सूचन किया गया है । "पाव" शब्द से पाप तत्त्व और "सव्व" शब्द से समस्त प्रकार के, सब पापों की बात स्पष्ट प्रतीत होती है । अत: संख्या की दृष्टि जगत् में जितने भी पाप है उन सबका ग्रहण इस "सव्व" शब्द से किया गया है । अत: इससे एक भी पाप छूटता नहीं है ।

आश्रव तत्त्व—

आत्मा में शुभाशुभ कर्मों के आगमन को आश्रव कहते हैं । अत: आश्रव क्रियापरक तत्त्व है । "नमो अरिहन्ताणं" में "अरि" शब्द आत्मा के आन्तर शत्रु कर्मों का सूचन करता है । अत: कर्म अरि बने कब ? जब कार्मण वर्गणा के पुद्गल परमाणुओं का आत्मा में आगमन हुआ तब वे कर्म कहलाए और आत्मा में आने के बाद ही कर्म नामकरण हुआ । अन्यथा वे बाहर मात्र परमाणु ही कहलाते हैं । आत्म प्रदेशों पर आकर एकरस बनकर वे कर्म कहलाए है । और ऐसे कर्म आत्मा के "अरि" आन्तर शत्रु कहलाए है । अत: "अरिहन्ताणं" का अरि शब्द आश्रव की क्रिया से ही बना है उसका द्योतक है ।

दूसरी प्रक्रिया में "नमो" यह क्रिया है । कोई भी जीव मन, वचन, काया से नमस्कार करता है । तब भाव की विशुद्धि के आधार पर नमस्कार से पुण्य का आश्रवण होता है । इस आश्रव की क्रिया में जो कार्मण वर्गणा आत्मा में प्रविष्ट होकर आत्म प्रदेशों पर लगेगी वह शुभाश्रव का कर्म होगा । उसका व्यवहार पुण्य के नाम से होगा । जिसका उदय सुखदायक होगा । इन्हीं पांचों परमेष्ठी भगवन्तों की विराधना या आशातना होगी, नमस्कारादि सही न करके विपरीत वृत्ति से करने या मिथ्यात्व से अश्रद्धा या कषायादि भाव से विपरीताचरण करने पर अशुभाश्रव पापात्मक होगा । जिसका उदय दु:खदायक होगा । इस तरह शुभाशुभ दोनों प्रकार के आश्रवों का नवकार महामंत्र के शब्दों में स्पष्ट मिलता है ।

"सव्व पावप्पणासणो" के सातवें पद में... सव्व पाव से जिन सब पाप कर्मों का निर्देश किया है वे सब आश्रवोपार्जित है । आश्रव की प्रक्रिया से ही जन्य है ।

संवर तत्त्व का निरुपण नवकार में—

"आश्रव निरोधो संवर:" की व्याख्यानुसार संवर आश्रव का निरोधात्मक है । आत्मा में आने वाले सब प्रकार के आश्रव हेतु रूप जितने भी अशुभ पाप कर्म है उन सबको रोकने वाला संवर तत्त्व नवकार में "नमो" पद से सूचित किया है । राग, द्वेष, क्लेश, कषाय, क्रोध, मान, माया, लोभादि सब प्रकार के आश्रवात्मक पाप कर्म प्रधान रूप से नमो के अभाव में ही ज्यादा होते हैं । आत्मा में आते हैं । अत: ऐसे आश्रवों को रोकने के लिए पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के नाम, उनका स्वरूप तथा उनको किया गया नमस्कार ही पर्याप्त है । इसलिए नवकार के 5 पदों में पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को अलग-अलग स्वतंत्र नमो शब्द के प्रयोग से नमस्कार किया गया है । याद रखिए ! जब तक हमारी चेतना ऐसे नमस्कार में भावपूर्वक मन लगाकर क्रिया करते रहेंगे वहां तक नए आने वाले कर्मों का निरोध रुप संवर होता ही जाएगा । इस तरह चिन्तन करके नवकार महामंत्र में संवर का स्वरूप आप समझ सकते हो ।

चूलिका में निर्जरा तत्त्व का उपदेश—

छट्ठी और 7वीं चूलिका के ये दोनों पद मिलकर कार्य कारण भाव के आधार पर निर्जरा का स्वरूप स्पष्ट कर रहे हैं। इन पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने से समस्त पाप कर्मों का नाश होता है। निर्जरा का अर्थ है कर्म क्षय। आत्मा के प्रदेशों पर लगे हुए सब प्रकार के कर्मों की रज जो कार्मण वर्गणा के रूप में बंधी हुई थी उसे तपादि साधना विशेष से हटाकर दूर करना निर्जरा है। जिससे पुनः आत्मा अपने मूलभूत असली शुद्ध स्वरूप में आ जाय। इसलिए मोक्ष साधक होने से निर्जरा को मोक्ष का बीज कहा है। जैसे बीज होने पर उसमें से पूरा वृक्ष बनता है। फल-फूल लगते हैं। ठीक उसी तरह निर्जरा रूपी बीज होने पर उसके फलित होने से मोक्ष रूपी फल प्राप्त होता है। आगम शास्त्रों, तत्त्वार्थ सूत्रादि में— मोक्ष का लक्षण बताते हुए यही कहा है कि— कृत्स्न कर्म क्षयो मोक्षः। सर्वथा सब कर्मों का सम्पूर्ण क्षय ही मोक्ष है। सम्पूर्ण नवकार जैसे महामंत्र की साधना जो कर रहे हैं उसका फल क्या होगा? ऐसा कोई यदि पूछे तो सातवां पद उसके उत्तर में स्पष्ट करता है कि— सब पाप कर्मों का क्षय करो और मोक्ष पद प्राप्त करो। चाहे आप "कृत्स्न कर्म क्षयो मोक्ष"; कहो या चाहे "सव्व पावप्पणासणो" कहो दोनों बात एक ही है। संस्कृत भाषा में कृत्स्न जिसको कहा है उसी के अर्थ में प्राकृत भाषा में "सव्व" कहा है। यद्यपि अल्प निर्जरा भी होती है। लेकिन उससे मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है। इसलिए मोक्ष साधक सव्व शब्द सातवें पद में जो जोड़ा गया है। वह अपनी सार्थकता स्पष्ट निर्देश करता है। अर्थात् सब पाप कर्मों की निर्जरा (क्षय) होने पर मोक्ष की प्राप्ति हो जाएगी।

बंध तत्त्व का स्वरूप नवकार में—

"प्पणासणो" शब्द को एक तरफ हटा दो उसके बाद "सव्व पाव" शब्द शेष बचते हैं ये बंध तत्त्व का भी निर्देश करते हैं। आश्रव के बाद बंध होता है। बिना आश्रव के बंध संभव नहीं है। दूध में शक्कर डालना यह आश्रव है। और चम्मच से हिलाकर शक्कर को पिघला देना जिससे वह घूल जाय और पूरा दूध मीठा हो जाय। ऐसी प्रक्रिया को बंध कहते हैं। ठीक इसी तरह कर्म की कार्मण वर्गणा के परमाणु आश्रव की प्रक्रिया में आत्मा में प्रविष्ट हो जाते हैं। फिर वे आत्मा के राग द्वेषादि क्लेश, कषायादि के अध्यवसाय और आर्त-रौद्रादि ध्यान पूर्वक वही आश्रवित कार्मण वर्गणा आत्म प्रदेशों के साथ घूल मिलकर एक रूप बन जाती है उसे बंध कहते हैं। तभी जाकर किसी को पाप कर्म और किसी को पुण्य कर्म कहते हैं। यह बंध तत्त्व का निर्देश स्पष्ट रूप से नवकार में किया है।

नवकार में नौंवे मोक्ष तत्त्व का स्वरूप—

नवकार का दूसरा और सातवां ये दोनों पद मोक्ष तत्त्व का निर्देश स्पष्ट कर रहे हैं। सातवां पद मोक्ष प्राप्त करने की प्रक्रिया बता रहा है। संसार में से यदि किसी संसारी जीव को मोक्ष में जाना हो तो उसे समस्त पाप कर्मों का सर्वथा समूल क्षय (नाश) करना चाहिए। तभी मुक्ति होगी। अतः यह प्रक्रिया है। साधना की प्रक्रिया का निरुपण किया है। जब सातवें पद की यह प्रक्रिया हो जाय तब मोक्ष में पहुंच कर आत्मा का क्या और कैसा स्वरूप बनता है वह आगे की बात दूसरे पद से की है। सिद्ध स्वरूप मोक्ष का पद है। मोक्ष में आत्मा सिद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप होती है। सिद्ध यह आत्मा की शुद्ध पर्याय है अर्थात् अवस्था विशेष है। आत्मा की दो पर्यायें ही प्रधान रूप से होती है। प्रथम संसारी पर्याय होती है। और चरम पर्याय सिद्धावस्था की होती है। बस, इसके बाद और कोई पर्याय कभी बदलती नहीं है। इन दो पर्यायों में संसारी पर्याय सतत् परिवर्तनशील अस्थिर अस्थायी पर्याय होती है। अतः गौण रूप से संसारी पर्याय के अन्तर्गत अनन्त पर्यायें बदलती रहती है जीव की। जबकि सिद्ध पर्याय को स्थिर-स्थायी कहा है। यह अपरिवर्तनशील अन्तिम पर्याय है। अतः सिद्ध शब्द अपने आप में आत्मा की अन्तिम अवस्था विशेष का सूचन करता है। अतः मोक्ष का लक्षण या व्याख्या भी इस प्रकार बन सकती है। अनादि अनन्त काल से जो अस्थिर अस्थायी परिवर्तनशील पर्याय जो जीव की संसार में थी, और सतत् होती ही रही अब उसमें शुद्धतम अन्तिम कक्षा की स्थिर स्थायी अपरिवर्तनशील चरम पर्याय को प्राप्त करना ही मोक्ष है। इस 2-3 लाइन के पूरे विस्तृत लक्षण का मात्र 1 शब्द में उत्तर देकर सिद्ध पद बना दिया है। दूसरे पद में नमो शब्द जोड़कर नमस्कार करते हुए ऐसी सिद्धावस्था की चरम पर्याय को प्राप्त कर चुके अनन्तानन्त सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार किया गया है।

अजीव तत्त्व का प्रतीक "लोए" शब्द—

नवकार के पांचवें पद में "लोए" शब्द रखा है। यह भूगोल का निर्देशक भौगोलिक शब्द है। मात्र हमारी ही भू अर्थात् पृथ्वी का ही नहीं अपितु समस्त ब्रह्माण्ड की समस्त पृथ्वियों का निर्देश करता है। समस्त ब्रह्माण्ड का स्पष्ट निर्देश करता है। जैन धर्म में ब्रह्माण्ड शब्द प्रचलित नहीं है। परन्तु लोक शब्द ही प्रसिद्ध है। क्योंकि ब्रह्माण्ड शब्द वैदिक संस्कृति का है जिसमें ईश्वर निर्मितीकरण की प्रक्रिया में ब्रह्माण्ड की रचना की बात आती है। जबकि जैन धर्म में सृष्टि निर्माण-वाद नहीं है। अतः समस्त लोक अनादि अनन्तकालीन अस्तित्व रखता है। यह किसी

के द्वारा निर्मित नहीं है । यह 14 रज्वात्मक लोक अजीव तत्त्वात्मक है । जिसके घटक द्रव्य धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल इन पांचों अजीव तत्त्वों-द्रव्यों का है । इसमें रहने वाले जीव अनन्त की संख्या में है । अत: पंचास्तिकायात्मक और षड्द्रव्यात्मक यह समस्त लोक है । जो नवकार में 'लोए' शब्द से नाम निर्देश कर संकेत किया गया है । यह भी जीव अजीव तत्त्वों का द्योतक है ।

इस तरह नवकार जैसे महामंत्र में नौं तत्त्वों का निर्देश स्पष्ट है । इसी से नवकार को तत्त्वज्ञान से परिपूर्ण महामंत्र कहा जाता है । इसी कारण मंत्र शास्त्रों के सैंकड़ों मंत्रों में तत्त्वज्ञानपूर्ण मंत्र का दर्जा एक मात्र नवकार महामंत्र को मिला है । "ए छे चौद पूरव नो सार" नवकार महिमा की प्रस्तुत पंक्ति भी उपरोक्त नौं तत्त्वों के वर्णन से सार्थक सिद्ध होती है । "पूर्व" यह शास्त्रों को दी गई संज्ञा विशेष है । ऐसे ज्ञानमहोदधि स्वरूप 14 पूर्वो का सार नवकार को कहना बिल्कुल युक्ति संगत और सार्थक सिद्ध होता है । नवकार का साधक चिन्तन मनन और ध्यान साधना की गहराई में जाकर तत्त्वों का खजाना नवकार रूप समुद्र में से बाहर निकाले यही इच्छनीय अभिप्रेत है । वाचक वर्ग मेरी चिन्तन प्रसादी का रसास्वाद प्रस्तुत लेख से प्राप्त करके स्वयं भी नवकार में तत्त्वों की गहराई को खोजें और खजाना प्राप्त करें यही शुभ मनोकामना ।

श्री महावीर विद्यार्थी कल्याण केन्द्र - मुम्बई * श्री महावीर रिसर्च फाउण्डेशन - वीरालयम् - पुना

दोनों संस्थाओं द्वारा प्रकाशित — **पू. पंन्यास प्रवर श्री अरुणविजयजी म.सा. का साहित्य**

प्राप्ति स्थान

* १. श्री महावीर विद्यार्थी कल्याण केन्द्र — मुम्बई
अमृत निवास, २रा माला, १६५ लुहार चाल, मुम्बई — ४०००० २
* २. महेन्द्र ज्वेलर्स — २४/२, पिल्लप्पा लेन
नगरथ पेठ क्रोस, बैंगलोर ५६००५३
फोन नं. २२१५२९३ (कर्नाटक)

* श्री महावीर रिचर्स फाउण्डेशन — वीरालयम् — पुना
बोराण स्टोर्स तिलक रोड़ — पुना ४११०३० (महाराष्ट्र)
* **वीरालयम्**
मुम्बई — पुणे एन.एच. ४ देहु रोड़ — कात्रज
बाय पास, जांभुलवाडी, आंबेगांव खुर्द
ता. हवेली पुना ४११०४६

* **सरस्वती पुस्तक भण्डार**
११२, रतन पोल, हाथी खाना, रिलीफ रोड़, अमदाबाद ३८०००२
* श्री महावीर जैन साधर्मिक कल्याण केन्द्र १५ व १६ वेपेरी चर्च रोड, पोलीस स्टे. पीछे, वेपेरी, चेन्नाई ६०००० ७ (तमीलनाडू)
* **पार्श्व प्रकाशन** — निशापोल नाके, जुनी प्रगति
को.ओ. बैंक उपर, रिलीफ रोड़, अमदाबाद — ३८०००२
* संजीव डी. शाह, ८० वेपेरी हाई रोड, वेपेरी चैन्नई ६०००० ७

* श्री हथूण्डी राता महावीर स्वामी तीर्थ — पेढी
पो. बीजापुर — वाया बाली, जिला पाली,
स्टे. फालना राज. ३०६७०७
* श्री १०८ पार्श्वनाथ भक्ति विहार — पेढी हाइवे पो. शंखेश्वर
वाया हारीज, जिला मेहसाणा (उत्तर गुजरात)
* G.J. Jain, B-1 मातृ आशीष, तीसरा माला, ३९ नेपियन्सी रोड़,
मुम्बई — ४०००३६

बारह व्रत का स्वरूप [हिन्दी और गुजराती दोनों भाषा में उपलब्ध]

ऋषिमण्डल स्तोत्र सार्थ, * नवपद आराधना विधि, * श्री. वीशस्थानक आराधना विधि, * चोवीश जिन स्तुति स्तुति स्तवनादि संग्रह, * रत्नाकर पच्चीशी, * भक्तामर स्तोत्र सार्थ, * कल्याण मंदिर स्तोत्र सार्थ ।

"शाश्वत महामंत्र का—शाश्वतकालीन अखण्ड जाप"

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

"नवकार" को महामंत्र कहने की एवं महामंत्र को शाश्वत कहने के कारणों की खोज करनी आवश्यक है । यद्यपि यह बौद्धिक खोज भी शाश्वत सिद्धान्तों के आधार पर ही होगी । अत: यह तथ्य भी तत्त्वपूर्ण एवं तर्क पूर्ण ही रहेगा । संभव है कि इस खोज से नवकार पर श्रद्धा और भी अनेक गुनी बढ जाय । एवं न हो तो हो जाय । श्रद्धाजीवी वर्ग के लिए जितनी आसान बात है शायद बुद्धिजीवी वर्ग को भी श्रद्धालु मानस वाला बनाने में ऐसे खोजपूर्ण तथ्य भी उतने ही उपयोगी, सहयोगी सिद्ध होंगे । नवकार है ही शाश्वत मंत्र, अत: शाश्वतकालीन इसका अस्तित्व हो तथा शाश्वतकालीन इसका स्मरण जापादि होता रहे यह परस्पराश्रित बात है ।

शाश्वत किसे कहें ? क्यों कहें ?

त्रिकाल नित्य पदार्थ को शाश्वत कहते हैं । ऐसे ध्रुव पदार्थ काल की असर से मुक्त रहते हैं । काल व्यवस्थापक एवं माध्यम रूप साधन है । यह प्रदेश समूहात्मक पिण्डरूप द्रव्य नहीं है । अत: पंचास्तिकाय के पांचों द्रव्यों में इसकी गणना नहीं की गई है । लेकिन षड् द्रव्यों में काल की गणना की गई है । "कालश्चै" के नामक तत्त्वार्थाधिगम के सूत्र में काल को द्रव्य मानने वालों का भी एक पक्ष बताया गया है । द्रव्य का नया पूरानापन, छोटे-बड़े के क्रम का तथा दिन रातादि की व्यवस्था का साधनभूत एवं आधारभूत काल तत्त्व है । समस्त लोकालोक के पंचास्तिकाय पदार्थों में से 1. धर्मास्तिकाय, 2. अधर्मास्तिकाय, 3. आकाशास्तिकाय और सिद्ध परमात्मा सभी काल की व्यवस्था के बाहर है । अत: काल का पंजा इन पर कोई असर नहीं कर पाता है । इसलिए इन्हें कालातीत या अकाल पदार्थ कहते हैं । यही अर्थ है शाश्वत होने का । जो पदार्थ न ही बनते हैं और न ही बिगड़ते हैं, या जो उत्पत्तिशील भी नहीं है और विनाशधर्मी भी नहीं है वे अनुत्पन्न अविनाशी द्रव्य होने से शाश्वत कहलाते हैं । अत: आत्मा तथा आकाश एवं धर्मास्तिकायादि ऐसी कक्षा के द्रव्य है । इसीलिए त्रिकाल शाश्वत इन्हें कहते हैं या भूत, वर्तमान और भविष्य के तीनों काल में जो एक समान रहे, सदा एक रुप रहे जिसकी ऊंचाइयों को काल छू नहीं सकता है । उन्हें शाश्वत कहते हैं ।

आत्मा नामक द्रव्य के गुणधर्मों में कर्म जनित अनेक परिवर्तन आए । यहां तक कि गुणधर्मों के विपरीतिकरण की स्थिति भी कर्मों ने कर दी । उदाहरणार्थ ज्ञान को अज्ञान में बदल दिया, अनन्त दर्शन को चक्षु-अचक्षु आदि दर्शनों में लाकर सीमित कर दिया । क्षमा, समता, नम्रता, संतोष, दया, करुणा, आदि अनेक गुणों को सर्वथा विपरीत कर दिये कर्म ने । द्वेष, वैमनस्य, ममता, अहंकार, लोभ, क्रोध, मद, मान, निर्दयता, क्रूरता, कठोरता, निष्ठूरता आदि जैसे सैंकड़ों दोषों का सर्वथा आत्म गुणों से विपरितीकरण करने के बावजूद भी कर्म आत्म तत्त्व का अस्तित्व सर्वथा मिटा नहीं पाए । सदा काल आत्म द्रव्य का अस्तित्व आज भी बना रहा है, और भविष्य के अनन्त काल तक भी संसार की अनन्तानन्त आत्माओं में से किसी एक भी आत्मा का अस्तित्व नष्ट नहीं होगा । यह आत्म द्रव्य की विशेषता है ।

ठीक इसी तरह सम्पूर्ण लोक स्वरूप का अस्तित्व भी अनन्तकाल में कदापि नष्ट नहीं होगा । न ही धर्मास्तिकाय का अस्तित्व मिटेगा या न ही अधर्मास्तिकाय का अस्तित्व मिटेगा और आकाश का अस्तित्व कितने भी महाप्रलय में ऐसा ही बना रहेगा । अरे ! संसार के एक परमाणु की हस्ति भी कदापि लुप्त होने वाली नहीं है । ये सभी लोक के घटक द्रव्य हैं । जब इनका अस्तित्व ही नष्ट होने वाला नहीं है । तो फिर सम्पूर्ण लोक के अस्तित्व का नष्ट होने का प्रश्न अनन्त काल में भी खड़ा नहीं हो सकता । यहां तक कि सिद्धशिला पर जाकर आज के वैज्ञानिक एक साथ अरबों-खरबों अणुबम्बों का विस्फोट भी कर दें तो भी एक सिद्ध को नष्ट तो क्या चलायमान भी नहीं कर सकते हैं । फिर सवाल ही कहां खड़ा होता है नष्ट करने का, या होने का ?

हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म और ईसाई धर्म जो कि ईश्वर कर्तृत्ववादी धर्म दर्शन है, उनमें जहां ईश्वर, अल्ला, खुदा आदि ही जगत् के कर्ता है, वहीं वे उनको हर्ता भी साथ ही मानते हैं । सर्जनहार भी उनको ही कहा है विसर्जनहार-विनाश कर्ता के रूप में भी उनको ही माना है । अत: शिवजी के सिर पर महाप्रलय करने की जिम्मेदारी सौंपी है । यह तो उन धर्मों की मिथ्या मान्यताएं है । वास्तविकता से कोई संबंध ही नहीं है

इन बातों का । ऐसी मिथ्या बातें, असत् कल्पना की सैंकड़ों मन घड़न्त बातें उपजाई गई है । जिनकी सत्यता और वास्तविकता की दृष्टि से कोई महत्ता नहीं है । लेकिन ऐसी कपोल कल्पित बातों से ये धर्म अपना अलग स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखने में और स्वतंत्र दुकानदारी चलाने के लिए अज्ञानी लोगों के बीच में सफलता जरुर प्राप्त कर लेता है । अत: मिथ्या अहं पुष्टि के सिवाय अन्य कोई लाभ नहीं होता है । नुकशान लोगों का है, वे बिचारे अज्ञान के वमल में, मिथ्यात्व के भंवर में फंसे रहेंगे । न तो उन्हें सर्वज्ञभाषित यथार्थ वास्तविकता का दर्शन होगा और न ही वे मिथ्या मान्यताओं को क्रियान्वित रूप से पूरी होते देख पाएंगे । जो सर्वथा असत्य है उसे असत्य के रूप में देखना या समझना भी उनके लिए संभव नहीं होगा, न ही सत्य स्वरूप को भी समझ पाएंगे । क्योंकि सामान्य मिथ्यात्वी जीवों के पास सत्य शोधक दृष्टि ही नहीं है, अत: मात्र फुटबाल की तरह इधर-उधर भटकते ही रह जाएंगे । चारों गतियों की 84 लाख योनियों में परिभ्रमण करते रहने के सिवाय अन्य कोई विकल्प नहीं बचेगा । बस, इसी का नाम संसार है, यह भी अपने आप में नित्य शाश्वत है । अनन्त कालीन अस्तित्व वाला है ।

संसार का शाश्वत स्वरूप—

याद रखिए ! शाश्वत का अर्थ है त्रैकालिक अस्तित्व । लोप या नाश न होना । आदि अन्तरहित । अत: अनादि अनन्त को शाश्वत कहते हैं । इसी तरह उत्पत्ति विनाश रहित को अनुत्पन्न अविनाशी कहते हैं । इस प्रकार की शाश्वत की व्याख्या में जो भी आकर बैठ जाय वह शाश्वत कहलाएगा । इसमें अनेक वस्तुओं की बहुत बड़ी सूची बन जाएगी । विशेषकर द्वंद्वात्मक स्थिति वाले परस्पर विरोधी लगते हुए भी दोनों ही स्वरूप शाश्वत है । उदाहरणार्थ संसार भी शाश्वत है, तो याद रखिए मोक्ष भी शाश्वत है । जब से संसार है तब से ही मोक्ष भी है ही । अत: संसार की कोई आदि नहीं बता सकते हैं क्योंकि वह आदि रहित अनादिकालीन है । ठीक इसी तरह मोक्ष की आदि कोई सर्वज्ञ भी नहीं बता सकते हैं । अत: वह भी आदि रहति अनादिकालीन ही है । सर्वज्ञ के पास भी उत्तर में सबसे बड़ा अन्तिम शब्द है— "अनन्त" । संसार कब से है ? इसका अस्तित्व कितने काल से है ? इसके उत्तर में सर्वज्ञ भी "अनन्त" शब्द का प्रयोग करके स्पष्ट कहेंगे— अनन्त काल से है संसार का अस्तित्व और अनन्तकाल से ही है मोक्ष का भी अस्तित्व ।

इसी तरह सुख और दु:ख भी संसार में शाश्वतकालीन है । अनन्तकाल के पहले भी संसार में कभी ऐसा दिन नहीं था कि संसार तो था लेकिन सुख-दु:ख का नामो-निशान ही नहीं था । ऐसी बात ही नहीं हो सकती । सुख-दु:ख बिना के संसार की कल्पना करना अर्थात् प्रकाश रहित सूर्य की कल्पना करने जैसा है, या पीलेपन रहित सोने की कल्पना करने जैसा है । जब सुख-दु:ख संसार के मुख्य घटक रहे हैं तो इसके कारण रूप में पुण्य पाप भी शाश्वतकालीन ही मानने पड़ेंगे । बिना कारण के कार्य का अस्तित्व संभव ही नहीं है । इसीलिए सुख-दु:ख रूपी कार्य के लिए पुण्य पाप का कारण भी समकालीन मानना ही पड़ेगा ।

जब पुण्य-पाप का अस्तित्व नित्यरूप से मानते हो तो कर्मों को भी शाश्वत ही मानने पड़ेंगे । क्योंकि पुण्य पाप तो हमारी भाषा के नाम है । जबकि कर्म शास्त्र तो इन्हें शुभ और अशुभ कर्म के रूप में ही कहता है । जब कर्म को मानना है तो फिर कर्मों के कर्ता के रूप में कारक आत्मा को भी मानना अनिवार्य हो जाएगा । क्योंकि आत्मा के किये बिना कर्म का अस्तित्व ही नहीं होता है । फिर तो एक मात्र कार्मण वर्गणा के पुद्गल परमाणु मात्र ही रह जाएंगे । अत: कार्मण वर्गणा के अनन्तानन्त परमाणुओं का अस्तित्व भी अनन्तकालीन शाश्वत ही मानना पड़ेगा । अत: अनादि अनन्त काल से बिना कर्म की आत्मा नहीं थी और बिना आत्मा के कर्म नहीं थे । दोनों शाश्वत रूप से ध्रुव नित्य ही हैं । बस, इनके संयोग का नाम ही संसार है । अब जब कर्म संयोग शाश्वतकालीन मान रहे हैं तब कर्म बंध के हेतु (कारण) रूप में मिथ्यात्व, राग, द्वेष, कषाय, पापादि भी शाश्वतकालीन अस्तित्व वाले ही मानने पड़ेंगे । ये सब मोहनीय कर्म की प्रकृतियां है । इनके द्वारा जीव प्रवृत्ति करता है ।

धर्म का शाश्वत अस्तित्व—

आत्मा का और कर्मों का अस्तित्व जब अनादि अनन्तकालीन शाश्वत सिद्ध होता है तब आत्मा के रहने का साधन माध्यम रूप शरीर भी शाश्वत ही मानना पड़ेगा । बिना शरीर के तो आत्मा संसार में रहेगी नहीं । शरीर मानते हैं तो उसके पीछे शरीर की उत्पत्ति का कारण योनि भी माननी ही पड़ेगी । हमारे एक के शरीर का ही सवाल नहीं है संसार के समस्त जीवों के शरीरों की उत्पत्ति निर्मिति के लिए 84 लाख जीव योनियां माननी पड़ेगी । बस, तो इन 84 लाख जीव योनियों में चारों गति में कर्मवश जन्म मरण धारण करते हुए भटकते रहने का नाम ही संसार है ।

अब जब संसार के साथ द्वंद्व रूप से प्रतिद्वन्दी मोक्ष भी अनादिकालीन शाश्वत है तो जैसे संसार का बीज कारण कर्म शाश्वत माना है वैसे ही मोक्ष का बीज कारण धर्म भी शाश्वत ही मानना पड़ेगा । इससे धर्म की व्याख्या और स्वरूप स्पष्ट होता है कि... जो मोक्ष की प्राप्ति करा सके बस, उसीका नाम धर्म है । अत: इससे विपरीत का नाम धर्म कहना अनुचित होगा । यह मोक्ष साधक धर्म निश्चित रूप से कर्मक्षय कारक ही

होना चाहिए। क्योंकि कर्मों का क्षय होगा तभी आत्मा इन कर्मों के बंधन से मुक्त हो सकेगी। छुटकारा पा सकेगी। अन्यथा संभव ही नहीं हो सकता है।

बस, यही बात नवकार महामंत्र के—सातवें पद में "सव्व पाव" शब्द रखकर चेतन जीव को यह भान करा दिया है कि... हे जीव ! तेरे उपर सब पाप कर्मों का अस्तित्व है। अत: सिद्ध बनना हो, कर्म बंधन से मुक्त होना हो तो "प्पणासणो" उन सब पाप कर्मों का प्रकृष्ट नाश करो अर्थात् ऐसा नाश करो कि वे कभी भी वापिस न आ जाए। इस प्रकृष्ट नाश से ही मोक्ष प्राप्त होगा। हमारा आज दिन तक मोक्ष नहीं हुआ है अत: यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि... हमने कर्मों का प्रकृष्ट नाश नहीं किया है। जी हां, थोड़ा-थोड़ा नाश तो बहुत बार किया है लेकिन हम प्रकृष्ट कक्षा का नाश नहीं कर पाए हैं। थोड़े-थोड़े पाप कर्मों का नाश करने के कारण ही हम नवकार को पाने की भूमिका में आ चुके हैं। लेकिन आगे का अधूरा लक्ष्य अब नवकार पाने के पश्चात् पूरा करना जरूरी है। और वह है— "सव्व पावप्पणासणो" का। सब पापों का प्रकृष्ट नाश करने से ही मोक्ष की प्राप्ति सम्भव होगी। या दूसरे अर्थ में प्रकृष्ट नाश के अर्थ में कर्मों का नाश कब होगा ? या प्रकृष्ट नाश कब होगा ? जब "सव्व पाव" सब पापों का, सब प्रकार के पाप कर्मों का नाश होगा तब प्रकृष्ट नाश का अर्थ सही होगा। अब प्पणासणो का आधार "सव्व पाव" शब्द पर है। सव्व अर्थात् संख्या में सब, और गुणबत्ता की दृष्टि से सर्वथा, समूल और सम्पूर्ण ऐसे 3 शब्दों में सही अर्थ बैठेगा। अत: सब प्रकार के सब पाप कर्मों का नाश कैसा करना है ? उत्तर में सर्वथा नाश होना चाहिए, समूल अर्थात् जड़ सहित नाश होना चाहिए, ताकि अंश मात्र भी कर्म रह न जाय। ऐसा न हो जाय कि वापिस कर्मों का उदय हो जाय। या वापिस पाप हो जाय, नहीं। ऐसा कदापि होना ही नहीं चाहिए इसलिए समूल पाप नाश करने है। समूल के अर्थ में तो नष्ट करने के बाद भी पाप कर्मों का अंश रह जाय और वह कालान्तर में वापिस उगे तो वे पाप कर्म सामने आएंगे। लेकिन सव्व शब्द से अभिप्रेत 'सम्पूर्ण' अर्थ लेने पर... सब पाप कर्मों का नाश करते समय सम्पूर्ण नाश ही कर दें, ताकि अंश मात्र भी शेष बचेगा ही नहीं। "न रहे बांस और न बजे बांसूरी" वाली कहावत के अनुसार सम्पूर्ण क्षय की प्रक्रिया में अंश मात्र भी पाप कर्म शेष रहेगा ही नहीं तो पुन: उद्‌भव का कोई प्रश्न ही नहीं उठेगा।

इसी अर्थ में तत्त्वार्थाधिगम सूत्रकार ने "कृत्स्न कर्म क्षयो मोक्ष:" इस सूत्र में "कृत्स्न" शब्द का प्रयोग किया है। कृत्स्न का अर्थ है "अशेष"। जिसमें रत्तिभर भी पाप कर्म का अंश शेष न रह जाय ऐसा कर्म क्षय करना है। इस सूत्र के साथ नवकार महामंत्र के सातवें पद की तुलना करें तो दोनों समानार्थक सिद्ध होते हैं।

1. कृत्स्न कर्म क्षयो मोक्ष: 2. सव्व पावप्पणासणो (मोक्ष)

कृत्स्न शब्द का अर्थ ही सव्व शब्द का अर्थ है। अत: कृत्स्न कहो या सव्व कहो बात एक ही है। "कर्म क्षयो" कहो या "पावप्पणासणो" कहो— अर्थ एक ही है। 'कृत्स्न' या 'सव्व' शब्द से प्रमाण बताया है और "पाव" और "कर्म" शब्द से विषय निर्देश करके प्रक्रिया 'क्षयो' या 'पणासणो' शब्द से व्यक्त की गई है। आगे फल प्राप्ति स्वरूप "मोक्ष:" शब्द सूत्रकार ने परिणाम स्वरूप में स्पष्ट किया है। नवकार सूत्र नहीं मंत्र है। अत: इसमें मोक्ष शब्द का प्रयोग न करके दूसरे पद में "नमो सिद्धाणं" में सिद्ध स्वरूप की प्राप्ति का संकेत दिया है। इसलिए नवकार जैसे महामंत्र को पाने वाले हमारे जैसे साधकों को क्या करना चाहिए ? या हमारा नवकार के साधकों का सही कर्त्तव्य क्या है ? यह साफ-साफ स्पष्ट आदेश कहो या उपदेश कहो यह नवकार ने ही, नवकार में ही हमें स्पष्ट दे दिया है।

मोक्ष के कारण नवकार शाश्वत है—

अजरामर पद मोक्ष सदाकाल शाश्वत है। त्रिकाल नित्य है। ध्रुव पद है। आखिर मोक्ष है किसका ? जीवों का कर्म बंध से छुटकारा पाने का नाम ही है— "मोक्ष" जीव की कर्मरहित अवस्था का नाम ही है "मोक्ष" अत: इसे ऐसी भाषा में भी स्पष्ट कह सकते हैं कि—जीवात्मा की कर्म रहित अवस्था विशेष (पर्याय) ही मोक्ष है। और ठीक कर्म सहित पर्याय संसार है। दोनों पर्यायों में जीव द्रव्य अनुगत रूप से समान है। जैसे कंगन और हार रूपी दो आभूषणों की पर्यायों में अनुगत रूप से सुवर्ण द्रव्य समान रूप से है। वैसे ही संसारी और मुक्त दोनों पर्यायों में चेतनात्म द्रव्य अनुगत रूप से समान है। सिर्फ अन्तर इतना ही है कि...संसारी पर्याय कर्मों के कारण अशुद्ध है और सिद्ध पर्याय सर्वथा कर्म रहित होने के कारण सम्पूर्ण शुद्ध है।

जब तक संसार रहेगा तब तक मोक्ष भी अनिवार्य रूप से रहेगा ही रहेगा। क्योंकि संसार में जो सब कर्मों का सर्वथा सम्पूर्ण क्षय हो जाने के पश्चात् कर्म बंधन से मुक्त चेतनात्मा जाएगी कहां ? वह जहां जाएगी उसी स्थान विशेष का नाम है मोक्ष। और चेतनात्मा की उस मुक्त पर्याय विशेष का नाम है—सिद्ध। ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि संसार में से जीव मुक्त होते ही जाय लेकिन मोक्ष नामक कोई स्थान विशेष हो ही नहीं। इसलिए संसार को मोक्ष की खान (खदान) कहा गया है। संसार में से मुक्त होकर जीव मोक्ष में जाते ही जाते हैं।

इसलिए जब मोक्ष और संसार दोनों प्रतिद्वंद्वी पदार्थ त्रैकालिक शाश्वत है तब किसी एक को ही अनित्य या अशाश्वत मान लेना सबसे बड़ी भूल होगी। यदि संसार को अनित्य अशाश्वत कह दें, और उसको विनाशशील मान लें तो बहुत बड़ा अनर्थ यह होगा कि... संसार का विनाश हो जाएगा। महाप्रलय हो जाएगा और अस्तित्व ही नष्ट हो जाएगा तो मोक्ष में कोई जाएगा ही कहां से ? या दूसरी तरफ मोक्ष को अनित्य-अशाश्वत विनाशी मानकर उसका अस्तित्व सर्वथा नष्ट कर दें तो संसार में से सदा कर्म बन्धन से छुटकारा पाने वाले जीव जाएंगे कहां ? सिद्धावस्था में रहेंगे कैसे ?

कल कोई यदि ऐसी असत् कल्पना भी कर दे कि... मोक्ष अनन्त काल से है, और अनन्त जीव मोक्ष में जा चुके हैं। सम्पूर्ण जगह भर गई है। अत: अब एक भी जीव ज्यादा आ सके उतनी जगह भी खाली नहीं है। अब यदि कोई भी आएगा तो उसे वापिस संसार में भेज देंगे। तो क्या वह वापिस संसार में चला आएगा ? कैसे आएगा ? जबकि उसने "सव्व पावप्पणासणो" के सिद्धान्त के आधार पर सब कर्मों का सर्वथा सम्पूर्ण नाश कर दिया है। अत: पुन: संसार में आने के लिए कारण-भूत कोई कर्म शेष है ही नहीं तो वह वापिस संसार में आएगा कहां से ? दूसरी तरफ मुक्ति के धाम के द्वार पर ऐसा कौन द्वारपाल बैठा है ? या ब्रह्मा बैठा है ? जो मुक्तिपुरी में झांककर कहेगा कि... हां भाई ! वापिस चले जाओ मुक्ति का धाम पूरा छलोछल भर गया है। अब तिल मात्र या तसु भर भी जगह खाली है ही नहीं। क्या मुक्तिपुरी कोई नगरी विशेष है ? जी नहीं। न तो कोई पुरी है और न ही कोई नगरी। तो फिर प्रवेश द्वार-दरवाजे आदि की कोई कल्पना ही नहीं की जा सकती है। यह असत् कल्पना है। तो फिर मुक्ति पुरी भर गई है ऐसा कैसे कह दिया ? किसने कह दिया ? अरे ! जब पुरी-नगरी नहीं है, और कोई प्रवेश द्वार का नाम निशान भी नहीं है, फिर द्वारपाल के खड़े रहने का सवाल ही कहां से उठा ?

दूसरी तरफ यदि द्वारपाल है तो उसने देखा कैसे ? आखिर तो चर्म चक्षु से ही देखा होगा ? क्योंकि वह मात्र द्वारपाल विशेष है। सर्वज्ञ तो कोई द्वारपाल बन ही नहीं सकते। और चर्म चक्षु से देखने वाले द्वारपाल को सिद्धात्माएं दिखाई कैसे दी ? जबकि आत्मा स्वभावत: ही अदृश्य अरूपी है। क्या अरूपी निरंजन निराकार पदार्थ भी किसी को मात्र चक्षु से दिखाई दे सकते हैं ? क्या यह बात संभव भी है ? नहीं। कदापि नहीं। कर्म सहित संसारी आत्मा भी बिना शरीर के देखी नहीं जाती है, तो फिर कर्म रहित मुक्तात्मा को चर्म चक्षु से देखना यह गर्दभ-ज्वर जैसी निरर्थक बात है।

ऐसे अरूपी पदार्थ अनेक है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशादि पदार्थ पूर्ण रूप से अरूपी अवर्णी अदृश्य है। अनन्त काल में हुए अनन्तज्ञानी अनन्त सर्वज्ञ परमात्मा भी आकाशादि को सर्वथा देख ही नहीं पाए हैं। ये आंखों से दिखने वाले पदार्थ ही नहीं है। आखें पौद्गलिक शरीर का अंग मात्र है। पुद्गल के वर्ण, रूप रंगादि को ही आंखे ग्रहण कर सकती है। अरूपी को रूप रंग होता ही नहीं है। आत्मा नामक पदार्थ सर्वथा रूप रंग रहित अरूपी ही है। अत: यह चक्षु से ग्रहण करने का विषय ही नहीं है। मात्र ज्ञानियों के लिए ज्ञानगम्य ही है।

सिद्धात्मा या मुक्तात्मा भी मूलभूत रूप से आत्मा ही है। सिर्फ सर्व पौद्गलिक कर्मों का सम्पूर्ण क्षय करके सर्वथा कर्म बंधन से मुक्त हुई शुद्ध अवस्था विशेष है। आत्मा की शुद्ध स्थायी स्थिर पर्याय विशेष है। अब सिद्ध बन जाने के पश्चात् कर्म या शरीरादि किसी भी पौद्गलिक पदार्थ का संग नहीं होगा। अत: सिद्ध भगवान असंगी अकर्मी है।

अनन्त सिद्धों का समावेश—

आत्मा का संकोच विकासशील मूलभूत स्वभाव है। चाहे जितना सूक्ष्मतम रूप भी धारण कर सकती है, और सम्पूर्ण 14 राजलोक में फैलकर भी रह सकती है। लेकिन यह सब सिद्ध बनने के पहले ही संभव है। सिद्ध बनने के पहले अपने अन्तिम शरीर में से छूटने के पूर्व ही शरीर के रिक्त स्थान की पूर्ति करके, घनस्वरूप बनाकर शरीर छोड़ देती है। और आत्म प्रदेशों को उसी देहाकार स्थिति में स्थिर करके सिद्धशिला के ऊपरी लोकान्त प्रदेश पर स्थिर हो जाती है। आत्मा का अव्याबाध गुण बड़ा ही महत्वपूर्ण है। अत: एक जगह पर चाहे अनन्त आत्माएं भी आ जाय तो भी सबका समावेश हो जाता है। मात्र आत्म प्रदेश ही है सबके। अत: जैसे पानी पानी में मिल जाता है और रत्तिभर भी भेद दिखाई नहीं देता है। एक रूप ही लगते हैं। ठीक उसी तरह अरूपी अशरीरी ये अनन्त सिद्धात्माएं एक दूसरे के साथ घूल मिल जाने के पश्चात् भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखती है। एक आत्मा के प्रदेश दूसरी आत्मा के प्रदेशों के साथ मिल जाते हैं। जैसे एक दीपक की ज्योति दूसरे दीपक की ज्योति में मिल जाती है। ऐसे 10-12

दीपकों की ज्योति भी मिल सकती है । या जैसे एक कमरे में एक लाइट का प्रकाश फैला हुआ हो और उसी कमरे में यदि अन्य 100 बल्ब और भी लगा दिये जाय तो उनका सबका प्रकाश भी उसी कमरे में रहता है । दिवाल की सतह भी एक ही होती है । और उसी पर 100 बल्बों का प्रकाश रहा । फिर भी दिवाल की सतह पर 1 इंच या 1 से.मी. की प्रतर भी नहीं बनी है ।

इसी तरह सिर्फ 45 लाख योजन की सिद्धशिला के ऊपरी लोकान्त भाग में अनन्त सिद्ध आत्माओं का समावेश हो जाता है । वे एक स्थान विशेष पर अनन्त आत्माएँ आ जाती है । अनन्त भूतकाल से जो अनन्त सिद्धात्माएँ एक स्थान विशेष पर रही हुई थी उस पर, या उसी स्थान विशेष पर रोज नई-नई आत्माएँ आती भी जाय तो भी समावेश होता ही जाता है । और इसी तरह भविष्य के अनन्त काल तक भी आती ही जाएगी तो भी अनन्त आत्माओं का समावेश होता ही जाएगा । इस तरह मोक्ष कभी भरेगा ही नहीं और संसार कभी खाली होगा ही नहीं । अत: दोनों तरफ का उत्तर "अनन्त" शब्द में ही आएगा । अन्य विकल्प ही नहीं है । संसार में अनन्तानन्त आत्माएं अनन्तकाल से है ही... और मोक्ष में भी अनन्त सिद्धात्माएं है । भविष्य के अनन्त काल तक भी संसार में से अनन्त आत्माएं मोक्ष में जाती ही रहेगी । फिर भी संसार का स्वरूप कदापि समाप्त होने वाला ही नहीं है । अनन्त काल के बाद, फिर अनन्त आत्माएं मोक्ष में जाने के पश्चात् भी आप यदि पूछेंगे कि... अब संसार में कितनी आत्माएँ अवशिष्ट है ? उस अनन्त के पश्चात् भी यही उत्तर दिया जाएगा कि अभी भी संसार में अनन्तानन्त आत्माएं है ।

याद रखिए ! संसार में जहां एक निगोद के गोले में भी अनन्तात्माएं है, तो फिर सम्पूर्ण संसार में ऐसे निगोद के गोले कितने ? असंख्य प्रत्येक में अनन्त-अनन्त आत्माएं है तो कितनी हुई ? अनन्त का असंख्य बार गुणाकार करने पर भी अनन्तानन्त उत्तर ही आएगा । इस तरह संसार अनन्त काल में भी खाली होगा ही नहीं और मोक्ष कभी अनन्तकाल में भरेगा ही नहीं । इसलिए दोनों की शाश्वतता ध्रुव नित्यता सदा काल बनी ही रहेगी । शास्त्रकार भगवन्त इसे सर्वज्ञों के शब्दों में स्पष्ट करते हैं कि.....

जइ आइ होइ पुच्छा — जिणाणमग्गंमि उत्तरं तइआ ।
इक्कस्स निगोयस्स अणंतमो भाग़ो वि सिद्धि गओ ॥

—जब भी कभी यह प्रश्न (उपरोक्त) उपस्थित होगा, चाहे अनन्त काल के बाद भी हो तब जिनेश्वर के मार्ग में अर्थात् आगम शास्त्र में एक ही उत्तर सदा मिलेगा कि— एक निगोद का भी अनन्तवां भाग ही मोक्ष में गया है । अर्थात् निगोद के जीव अनन्तानन्त है और सिद्धात्माएं मात्र उनके अनन्तवें भाग प्रमाण ही है । ऐसे सर्वज्ञ वचन से संसार और मोक्ष दोनों की ही शाश्वतता बराबर सिद्ध होती है ।

मोक्ष का मार्ग एवं प्राप्ति का उपाय भी शाश्वत है—

जब संसार भी शाश्वत है, मोक्ष भी शाश्वत है, और अनन्तानन्त आत्माएं भी शाश्वत है तब मोक्ष को प्राप्त करने का उपाय शाश्वत नहीं होगा तो मोक्ष की प्राप्ति निरन्तर कैसे होगी ? यदि मोक्ष का उपाय या मोक्ष मार्ग ही शाश्वत न हो तो मोक्ष की शाश्वतता कैसे संभवित होगी ? आखिर तो संसार में से निरन्तर जीव मोक्ष में जाते रहेंगे तब तो मोक्ष शाश्वत रहेगा । जैसे मनुष्य का अस्तित्व तीनों काल में शाश्वत है तो मनुष्य का खाना-पीना आदि भी तो शाश्वतकालीन ही मानना पड़ेगा । क्योंकि बिना खाए पीए मनुष्य अपना अस्तित्व कैसे टिका पाएगा । चाहे वह जो भी खाए या कम ज्यादा जितना भी खाए, उसे अपना अस्तित्व टिकाना है । अत: मनुष्य और आहार अन्योन्याश्रयी है । मनुष्य के आधार पर आहार शाश्वत रहेगा और आहार के आधार पर मनुष्य शाश्वत रहेगा । यह निर्विवाद सत्य है । दूसरे उदाहरण में जैसे सूर्य सदा काल से है तो उसका प्रकाश देने का गुण भी सदाकालीन है कि नहीं ? और सूर्य का उदय-अस्त होना भी सदाकालीन शाश्वत है कि नहीं ? याद रखिए ! सर्वज्ञ वचनरूप आगम शास्त्रीय सिद्धान्त यह है कि... ढाई द्वीप समुद्र रूप नरलोक में चर ज्योतिष्क मण्डल के सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा ये पंचांग (पांचों अंग) शाश्वत है । यह त्रैकालिक शाश्वत व्यवस्था है । घूमते रहने आदि के लिए कोई ईश्वर की या किसी भी शक्ति विशेष की कोई आवश्यकता ही नहीं है । जब चर स्वभावी ही है अत: अपनी-अपनी मण्डलाकार स्थिति में सदाकाल परिभ्रमणशील गतिशील ही रहेंगे । इसीलिए अनन्त भूतकाल में कभी ऐसा एक दिन भी नहीं आया कि जिस दिन सूर्य, चन्द्रादि का उदय न हुआ हो या अस्त न हुआ हो । न प्रकाश फैला हो या न ही रात पड़ी हो । जी नहीं । अनन्त भूतकाल में भी कभी नहीं हुआ है, अत: भविष्य के अनन्तकाल में भी ऐसा होने की कोई गुंजाइश ही नहीं है । अत: निरर्थक ऐसे विचार भी करना अज्ञानता प्रदर्शित करने जैसा है ।

इसीलिए जब मोक्ष शाश्वत है तब मोक्ष प्राप्ति का मार्ग और उपाय भी शाश्वत ही है । इसमें संदेह को कोई अवकाश ही नहीं है । जी हां... अब मोक्ष का मार्ग कैसा है ? उसकी प्राप्ति का उपाय क्या और कैसा है ? इसका विस्तृत विचार अवश्य ही करना चाहिए ।

मोक्षमार्ग का स्वरूप—

तत्त्वार्थाधिगम सूत्रकार पूर्वधर महापुरुष पू. उमास्वातिजी महाराज निचोड़ रूप से सारभूत बात पहले सूत्र में ही कहते हुए मोक्ष मार्ग का स्वरूप स्पष्ट रूप से बता रहे है कि—**सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि मोक्षमार्गः ॥** अर्थात् सम्यग् सच्चा सही यथार्थ दर्शन, वैसा ही सम्यग् ज्ञान और चारित्रादि मिलकर संयुक्त रूप से मोक्ष का मार्ग है । इस मार्ग के 3 सोपान मुख्य है । उपरोक्त चित्र में देखिए— 1 ला सोपान है—सम्यग् दर्शन, शुद्ध श्रद्धा का । दूसरा सोपान शुद्ध-सम्यग् सच्चे ज्ञान का है तथा तीसरा सोपान विशुद्ध कक्षा के सम्यग् आचरण का है । उसे ही अपर शब्द में सम्यग् चारित्र कहा है । याद रखिए ! ये तीनों संयुक्त रूप से मिलने पर ही मोक्ष का मार्ग बनता है । अन्यथा विपरीत रूप से एक-एक स्वतंत्र अलग रूप से निरपेक्ष भाव से मोक्ष का मार्ग नहीं बनते है । अर्थात् अकेला ज्ञान भी कभी मोक्ष दाता नहीं बना । और अकेली श्रद्धा ने भी किसी को मोक्ष नहीं दिलाया ।

इसी तरह बिना ज्ञान, श्रद्धा के अकेले चारित्र ने भी किसी को मोक्ष की प्राप्ति नहीं कराई । सापेक्ष भाव रहित निरपेक्ष भाव से एकान्त रूप में ये कभी भी मोक्ष साधक नहीं बनें । ऊपर से संसार वृद्धि के कारण अवश्य बने हैं । इसलिए सापेक्ष भाव से तीनों संयुक्त रूप से ही उपास्य बनने पर मोक्ष की प्राप्ति संभव है । **"चारित्राणि"** शब्द में **"आणि"** बहुवचन का प्रत्यय है । अत: चारित्र के साथ तपादि भावों की भी विवक्षा अन्तर्गत है । अत: अनन्त भूतकाल में जितनी भी आत्माएं जिस मार्ग पर अग्रसर होकर मोक्ष में गई है वे सब इसी सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र के सम्मिलित स्वरूप वाले मोक्ष मार्ग पर चलकर ही मोक्ष में गई है । और अनन्त भविष्य काल में जो भी, और जितनी भी आत्माएं मोक्ष में जाएगी वे सब एक मात्र इसी मोक्ष मार्ग पर चलकर और चढ़कर ही मोक्ष में जाएगी । अन्यथा नहीं । अत: मोक्ष मार्ग-दर्शन-ज्ञानादि भी शाश्वत है ।

मोक्ष प्राप्ति का उपाय रूप धर्म—

अब जब मोक्ष शाश्वत है और उसकी प्राप्ति हेतु मार्ग भी शाश्वत है तब धर्म का स्वरूप भी शाश्वत ही होना चाहिए । याद रखिए ! धर्म और मार्ग अलग-अलग नहीं है । अपर पर्यायवाची नाम अर्थ के संदर्भ में सही है । जो मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है उसे ही धर्म कहते हैं और जो धर्म हो वह अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग है उसे ही धर्म कहते हैं और जो धर्म हो वह अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति करावे वैसा ही होना चाहिए । तद्भिन्न नहीं । जिस धर्म से मोक्ष की प्राप्ति हो ही न सके उसे कदापि धर्म कहना या मानना ही नहीं चाहिए । यदि कहते मानते हैं तो पुन: मिथ्यात्व का चक्र चालू होगा जो संसार में परिभ्रमण कराएगा । अत: निश्चित रूप से धर्म मोक्ष के साथ ही जुड़ा हुआ है । मोक्ष के अनुरूप जो मार्ग हो उसे ही धर्म कहा जाएगा । तदतिरिक्त को नहीं ।

धर्म-धर्म है । शुद्ध विशुद्ध स्वरूप वाला है । मोक्ष साधक है । तो ऐसे धर्म के सम्यग् मिथ्या आदि के भेद होने ही नहीं चाहिए । शुद्ध धर्म और अशुद्ध धर्म का या ऊंचा-नीचा इसका कोई भेदभाव होना ही नहीं चाहिए । हो ही नहीं सकता है । मोक्ष साधक उपाय रूप धर्म का तीनों काल में एक रूप शाश्वत स्वरूप ही होता है । यदि धर्म का स्वरूप या धर्म का अस्तित्व ही नष्ट हो जाय तो फिर जीव मोक्ष में जाएंगे कैसे ? बिना उपाय के तो साध्य सिद्ध हो ही नहीं सकता है । सवाल ही नहीं उठ सकता है । अत: जिससे मोक्ष प्राप्त किया जा सके उसे ही धर्म कहा गया है । और वह सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्रात्मक है ।

मोक्ष मार्गात्मक नवकार—

अनन्त भूतकाल में जितने अनन्त जीवों ने मोक्ष प्राप्त किया है उतने सब ने सम्यग् दर्शन, ज्ञान चारित्रादि द्वारा ही किया है । अत: मोक्ष प्राप्त करने वाली जीवात्माएं, मोक्ष और मोक्ष प्राप्ति का साधन रूप या माध्यम रूप सम्यग् दर्शनादि का मार्ग या धर्म ये सभी त्रैकालिक शाश्वत है । थोड़ा सा दर्शनादि को भी समझ लें । देव गुरु और जिनोक्त तत्त्वस्वरूप धर्म को जो सम्यग् स्वरूप माने, स्वीकारें उसे सम्यग् दर्शन कहते हैं । तथा इन्हीं के यथार्थ स्वरूप को सही जानने को सम्यग् ज्ञान कहते हैं तथा ऐसा सम्यग् आचरण करे कि जिससे साध्य की प्राप्ति हो उसे सम्यग् चारित्र कहते हैं । तीनों के सम्मिलित स्वरूप की सच्ची साधना रूप धर्म ही मोक्ष की प्राप्ति सुलभ करता है ।

अब इसी व्याख्या को नवकार में बैठाकर हमें यह देखना है कि... क्या नवकार सम्यग् दर्शनादि रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गात्मक है कि नहीं ? संसार के सर्वोत्कृष्ट कक्षा के अरिहंत और सिद्ध परमात्मा देव तत्त्व के दोनों महारथी नवकार में सबसे पहले है । प्रथम पद में अरिहंत देव और दूसरे पद में सिद्ध परमेष्ठी दोनों का दो पदों में स्थान निश्चित रूप से है । देव के बाद गुरु तत्त्व का स्वरूप आता है । अत: आचार्य, उपाध्याय और साधु इन तीनों का गुरु तत्त्व में समावेश करके नवकार महामंत्र में तीसरे, चौथे और पांचवें क्रम पर स्थानापन्न है । इसलिए तीसरे पद पर आचार्य भगवन्त, चौथे पद पर उपाध्याय भगवन्त और पांचवें पद में साधु भगवन्तों को स्वीकार किया गया है ।

देव और गुरु दो तत्त्वों के बाद धर्म तत्त्व का स्वरूप आता है । धर्म भी कैसा होना चाहिए ? सर्वज्ञोक्त-जिनोक्त तत्त्व ही धर्म कहलाने योग्य है । इससे विपरीत कदापि नहीं । सर्वज्ञ का ही क्यों ? इसके उत्तर में यही कहना है कि... अनन्त ज्ञान, केवल ज्ञान प्राप्त कर लेने वाले सर्वज्ञ

जिन ही अपने अनन्त ज्ञान से मोक्ष का आत्मा का, कर्म का, संसार का यथार्थ त्रिकालाबाधित शाश्वत शुद्ध स्वरूप जान सकते हैं । अत: जानकर, देखकर जैसा मोक्ष का यथार्थ स्वरूप है वैसा ही वे वीतराग भाव से हमारे जैसे जीवों को बताएंगे तथा ऐसे यथार्थ मोक्ष को प्राप्त करने के लिए सही धर्म क्या हो सकता है ? कैसा हो सकता है ? यह भी वे सर्वज्ञ जिन ही बता पाएंगे ? उनके सिवाय किसी के वश की बात ही नहीं है । क्योंकि कितने भूतकाल में मोक्ष में गए हैं ? कैसे गए वे सब ? क्या करके गए है ? कैसा धर्म उन्होंने आराधा था । इत्यादि सब कुछ भूतकालीन वर्तमानकालीन एवं भविष्यकालीन तीनों काल का सब स्वरूप वे सर्वज्ञ ही जान सकते हैं । क्योंकि केवल ज्ञान त्रिकाला बाधित त्रैकालिक ज्ञान हैं । ऐसे ज्ञान को द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव की सीमा में कदापि बांध ही नहीं सकते है । इसीलिए ऐसे सर्वज्ञ के वचन को ही धर्म माना गया है । उन्होंने जो तत्त्व बताया है वही धर्म है । और उसी तत्त्व या धर्म पर पूर्ण समर्पित भाव की सच्ची श्रद्धा रखनी ही सम्यग् दर्शन है । उसी तत्त्वों का यथार्थ सत्य स्वरूप जानना ही सम्यग् ज्ञान कहलाता है । तथा तदनुरूप आचरण करके चरम साध्य को सिद्ध करना ही सम्यग् चारित्र है । इस तरह सभी सर्वज्ञाश्रित है । सर्वज्ञ ही सबके केन्द्र में आधार भूत है ।

अब नवकार जैसे महामंत्र में देव गुरू दोनों तत्त्वों के स्वरूप में पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को रखकर उनको नमस्कार करने को ही बहुत बड़ा धर्म बता दिया है । इस बात को स्पष्ट शब्दों में साफ-साफ कह दी है कि— "एसो पंच नमुक्कारो" इन पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को किया गया नमस्कार— "सव्व पावप्पणासणो" सब पाप कर्मों का समूल नाश करने वाला होता है । और गौर से ध्यान दीजिए कि... जब सब पाप कर्मों का समूल सम्पूर्ण रूप से सर्वथा नाश हो जाएगा तब मोक्ष की प्राप्ति कैसे रूकेगी ? इसलिए मोक्ष प्राप्त कराने वाला, मोक्ष साधने में सहायक ऐसा मोक्ष साधक "नमस्कार" मोक्ष के अनुरूप धर्म नहीं होगा तो अन्य कौन सा होगा ? इसलिए पंच परमेष्ठी भगवन्त रूप देव गुरुओं को किया गया नमस्कार अवश्य ही मोक्ष साधक धर्म है । यह भी याद रखिए कि... ऐसे पांचों परमेष्ठी स्वरूप देव गुरु तत्त्व को नमस्कार करने की आज्ञा रूप धर्म भी सर्वज्ञ कथित ही है । अत: "आणाए धम्मो" के सिद्धान्त के आधार पर "आज्ञा ही धर्म है" के नियमानुसार पंच परमेष्ठी भगवन्त स्वरूप देव, गुरु तत्त्व को नमस्कार करने की आज्ञा का पालन करना ही धर्म है । और इस आज्ञा धर्मपालन का चरम फल ही मोक्ष की प्राप्ति है । ऐसी सर्वज्ञ की आज्ञा का पालन करते हुए धर्ममय जीवन बनाना ही सम्यग् चारित्र है । इस तरह एक नवकार महामंत्र में सबका समावेश हो जाने के कारण नवकार सर्वमय है ।

रत्नत्रयात्मक नवकार

यही नवकार सम्यग् दर्शनात्मक, ज्ञानात्मक और चारित्रात्मक - त्रयात्मक होने से निश्चित रूप से मोक्षमार्गात्मक है । नवकार में प्रयुक्त देव-गुरु पर श्रद्धा रखना तथा उनको नमस्कार करने से सब पाप कर्मों का क्षय होता है, और सब पाप कर्मों के क्षय से मोक्ष प्राप्ति होती है अत: यही नवकार सर्वश्रेष्ठ कक्षा का प्रथम श्रेणी का मंगल है । ये और ऐसे भाव एवं अटल श्रद्धा को ही सम्यग् दर्शन कहते हैं । ऐसा नमस्कार इन पंच परमेष्ठी भगवन्तों को कैसा करना, कि जिससे सब पाप कर्मों का समूल सर्वथा क्षय हो । किन-किन पाप कर्मों का कैसे-कैसे, कितने प्रमाण में क्षय होता जाता है ? तथा मोक्ष क्या और कैसा है ? पंच परमेष्ठी भगवन्तों का स्वरूप कैसा है ? नमस्कार का स्वरूप कैसा है ? इत्यादि सबका ज्ञान करना सम्यग् ज्ञान है । इस तरह सम्पूर्ण नवकार रत्न त्रयात्मक है । अत: मोक्ष मार्गात्मक मोक्ष साधक यह मंत्र है । इसी कारण इसे महामंत्र भी कहा जा सकता है ।

नवकार की शाश्वतता—

नवकार मोक्षमार्गात्मक- रत्नत्रयात्मक होने के कारण निश्चित रूप से शाश्वत ही है । चूंकि मोक्ष शाश्वत है, मोक्ष प्राप्ति का मार्ग भी शाश्वत है, अत: उपाय भूत नवकार भी शाश्वत है । इस तरह जब नवकार शाश्वत है तब इसी मंत्र की जपादि साधना भी शाश्वत ही है । क्योंकि आज दिन तक के अनन्त भूतकाल में अनन्तात्माएं पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करके, सर्व पाप कर्मों का समूल संपूर्ण क्षय करके, मोक्ष में गई है । तथा यही मार्ग अनन्त भविष्य में भी प्रशस्त रहेगा ही । अत: नवकार निश्चित रूप से शाश्वत महामंत्र सिद्ध होता है । इसकी साधना, उपासना किसी भी काल में बन्द नहीं हो सकती । नवकार के लोपक को कदापि मोक्ष प्राप्ति संभव नहीं होगी, और नवकार के सच्चे उपासक को मोक्ष न मिले ऐसा कदापि हो ही नहीं सकता है । 5 महाविदेहो में सदाकाल शाश्वत रूप से 4 था आरा ही वर्तता है । सदाकाल तीर्थंकर, गणधर, सर्वज्ञ भगवन्तं, साधु, साध्वी आदि रहते ही हैं । तथा चतुर्विध संघ में श्रावक-श्राविका वर्ग भी सदा रहते ही है और जो नवकार में पंच परमेष्ठी भगवन्त है, वे ही वहां भी है । अत: वहां भी नित्य नवकार स्मरण साधनादि चलती ही रहती है । इसी कारण पांचों महाविदेह क्षेत्रों में से मोक्ष भी सदाकाल मिलता ही रहता है । इस तरह अनेक दृष्टिकोणों से नवकार की शाश्वतता सिद्ध होती है । शाश्वत मोक्ष की प्राप्ति के उपाय रूप शाश्वत महामंत्र नवकार की प्राप्ति हमारे जैसे जीवों को भी प्रबल पुण्योदय से हो चुकी है... अत: अब हमें भी हमारा मोक्ष समीप लाने की दृष्टि से भी सतत अखण्ड रूप से नवकार की साधना करनी चाहिए । सभी साधक मोक्ष प्राप्त करें यही शुभेच्छा ।

नवकार के आधार पर—सम्यक्त्वी-मिथ्यात्वी की पहचान

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

सर्वज्ञ प्रणीत आर्हत् धर्म की साधना का चरम लक्ष्य परम पद-मोक्ष की प्राप्ति का है, क्योंकि संसार के परिभ्रमण का अन्त वहीं आता है। आत्मा का स्थिर स्थायी स्थान एक मात्र मोक्ष ही है। इसीलिए जैन धर्म की समस्त साधना एक मात्र मोक्षैकलक्षी ही है। साधना के क्षेत्र में प्रथम क्रम नवकार महामंत्र का आता है। इस सम्पूर्ण महामंत्र नवकार का संक्षिप्त सारांश इतना ही है कि... अरिहंतादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करके अपने सब पाप कर्मों का प्रकृष्ट नाश करो और मोक्ष में जाकर सिद्ध बनो। आबाल-गोपाल सर्व जीवों के लिए यह नवकार महामंत्र ही साध्य मंत्र है। यही साधना का एक मात्र महामंत्र है। इसलिए छोटे बालक से लेकर बड़े से बड़े प्रत्येक साधक को मोक्षलक्षी ही बनना है। जो मोक्ष मानता है। जिसका मोक्ष में पूर्ण विश्वास है, जिसे यथाशीघ्र मोक्ष प्राप्त करने की तमन्ना है उसी के लिए यह नवकार महामंत्र साधन रूप है। वही नवकार महामंत्र का अधिकारी है। उसी के लिए यह मात्र काम का है। ठीक इससे विपरीत जो मोक्ष रुचि जीव नहीं है, जिनको सांसारिक भौतिक सुखों की कामना है, पौद्गलिक सुखों की प्राप्ति की प्रबल अभिलाषा है उनको प्रत्यक्ष रूप से यह महामंत्र निरुपयोगी लगेगा। अज्ञान जन्य अंधश्रद्धा के, मिथ्यात्व के घर में रहने वाले सामान्य जीव जिनका मात्र एक ही लक्ष्य है कि... "दुःख टले और सर्व सुख मिले," सुख प्राप्ति के मार्ग के बीच में अवरोधक बनने वाले सभी संकट-विघ्नों को दूर करें ताकि इष्ट सिद्धि यथा शीघ्र हो, ऐसी सांसारिक अर्थ काम की कामना करने वालों को नवकार की साधना के पश्चात् न मिलने पर पछताना पड़ता है।

नवकार को जब महामंत्र का पद दिया है तब कम से कम साधक को भी नवकार की कक्षा के योग्य पात्र बनने की अपनी पात्रता भी निर्माण करनी ही चाहिए। और वह एक मात्र मोक्षैकलक्षी बनने पर आ जाती है। इसके लिए साधक को दून्यवी भौतिक सुखों की लालसा त्याज्य लगनी चाहिए। दुःख टले या न टले, सुख मिले या न मिले, विघ्न संकट रहे या हटे... मुझे नवकार की साधना में कुछ भी फरक नहीं पड़ता है। ऐसे समझने वाला और तदनुरूप प्रवृत्तिशील साधक नवकार योग्य पात्र बन जाता है। अज्ञान जन्य अंधश्रद्धा में डूबा हुआ जो मात्र दुःख टले और सुख मिले का रटण कर रहा हो वह नवकार महामंत्र का साधक बनने के विषय में अधम पात्र है। वह खुद डूबेगा और नवकार को भी डूबा देगा। वह नवकार की अपकीर्ति-अप्रतिष्ठा कराएगा। इसलिए जब तक दुःख टालने की और सुख प्राप्त करने की वृत्ति नहीं बदलती है तब तक योग्यता-पात्रता लाने की दिशा में एक कदम भी आगे नहीं बढा जा सकता है। मिथ्यात्व बड़ा भयंकर है। मिथ्यात्व जन्य विकृत और विपरीत ज्ञान के कारण जो अन्धश्रद्धा बनी है, उसके लक्ष्य में दुःख भले टले या न टले, सुख भले मिले या न मिले, विघ्न-संकट हटे या न भी हटे...परन्तु उसकी आशा और आस्था पूरी बनी हुई रहती है। क्योंकि उसका उद्गम श्रोतरूप मूल स्थान मिथ्यात्व घनीभूत होकर बैठा है। इसलिए कारणरूप मिथ्यात्व जब तक नहीं हटेगा तब तक कार्य रूप अंध श्रद्धा भी डटकर जमकर बैठी ही रहेगी। एक नास्तिक भी हो और वह भगवान, गुरू, धर्म और मोक्षादि किसी भी विषय में श्रद्धा रखता ही न हो, कुछ भी माने या न माने लेकिन दुःख दर्द को मिटाना, विघ्न हटाना, और सुख-सम्पत्ति को प्राप्त करना वह भी चाहता है। चाहे जिस किसी भी रास्ते से मिले वह उसके लिए तैयार है। यदि आप उसको देव-देवीयों के जाप-अर्चना, पूजा, दर्शन, माला आदि जो भी कुछ कहेंगे वह करता ही रहेगा। भले माने या न माने। नास्तिक है अतः मानने का सवाल ही नहीं रहता है, और मिथ्यात्वग्रस्त है अतः सत्य यथार्थ तत्त्व से उसका कोई तालुकात ही नहीं है। अतः मानते हुए भी एक मात्र इष्ट सिद्धि और इच्छा पूर्ति की मानसिक शर्त से वह सब कुछ करता ही जाएगा।

कर्मों के अनादि संस्कारों से विपरीत चलना ही "धर्म" है—

आत्मा पर अनादि अनन्तकाल से कर्मों का ढेर लगा हुआ है। कर्मों के संस्कारों की जड़े काफी गहरी गई हुई है। परिणाम स्वरूप अनन्त जन्मों में जीव सुख प्रिय और दुःख अप्रिय मानकर ही बैठा है। सुखैषणा ने सुख की लालसा जगाई है। जिसके कारण सुख प्राप्त करना अपना जन्म सिद्ध अधिकार मानकर जीव संसार में जी रहा है। ठीक इसके विपरीत किसी भी परिस्थिति में दुःख चाहिए ही नहीं। मोहनीय कर्म ने यह मंत्र सीखा दिया है। अतः "सुख मिले, दुःख टले" इस मंत्र का अजपाजप अनन्त जन्मों से जीव करता ही आ रहा है। सुख का राग और दुःख

का द्वेष जीव कभी छोड़ ही नहीं पाया । परिणाम स्वरूप राग उसे पाने की दिशा में भटकाता रहा, तथा द्वेष दु:ख से जान छुड़ाने की दिशा में दूर भगाता ही रहा । ऐसे कर्म जन्य गाढ मिथ्यात्व की इस वृत्ति में यदि नवकार जैसा महामंत्र भी सौभाग्यवश मिथ्यात्वी के हाथ में आ जाए तो जैसे बन्दर कोहिनूर रत्न भी दांतों तले चबाकर फेंक देता है कि... छी... यह खाने जैसी चीज नहीं है । इससे पेट नहीं भरेगा अत: वह फेंक देता है । ठीक उसी तरह नास्तिक अंध श्रद्धालु मिथ्यात्वी भी नवकार जैसे महामंत्र की दु:ख टालने और सुख पाने के लिए अजमाइश करके फिर फेंक देगा । निरर्थक समझकर विस्मृति के गर्त में डाल देगा ।

अनादि अनन्त काल से साथ में रहे हुए कर्मो ने ऐसे तो अनेक घूंट जीवात्मा को पिलाकर रखे हैं । सच देखा जाय तो अब चेतनात्मा सम्यग् ज्ञान का बल पाकर इन कर्मों के मीठे जहर को समझ ले और यह मन में अच्छी तरह ठान ले कि... हर हालत में मैं अब कर्म की बात को विपरीत उल्टी करके ही चलूंगा । बस, कर्मों के सीखाए गए संस्कारों से बिल्कुल विपरीत ही चलूंगा तो निश्चित ही श्रेष्ठ कक्षा का धर्म आ जाएगा । उदाहरणार्थ अनादि काल से कर्मों ने जो सीखा रखा है कि... दु:ख टले और सुख मिले । इसके बजाय अब आज से 'सुख टले और दु:ख मिले" का मंत्र जपने लग जाएं । यद्यपि ये शब्द और ऐसी भाषा की वाक्य रचना सुनते ही मन आग बबूला हो उठेगा । अपने लिए वह इसे स्वीकार ही नहीं करेगा । जप करना तो दूर रहा लेकिन जीव एक बार अपने विषय में उच्चार करने के लिए भी तैयार नहीं होगा । मन अन्दर से सिंह गर्जना करेगा— क्या कहा ? मुझे दु:ख मिले, और सुख टल जाये यह मैं हरगिज बर्दाश्त नहीं करूंगा । दूसरी तरफ देखें तो पिछले कर्म के दरवाजे से यही नाटक रोज हो रहा है ।

कर्मों के उदय से जीवों को दु:ख मिलता ही जा रहा है, और अन्तराय कर्म के उदय से सामने दिखाई देता हुआ, तथा पास में रहा हुआ सुख भी हाथ ताली देकर जा ही रहा है । टिकने रहने के लिए तैयार ही नहीं है । संसार में 80% से 90% लोगों के जीवन में यह स्थिति प्रत्यक्ष देखी जा रही है फिर भी कर्म की सच्चाई को जीव स्वीकारने के लिए तैयार ही नहीं है । यह मिथ्यात्व के उदय का प्रत्यक्ष प्रमाण है । कर्म जनित ऐसी स्थिति होने के बावजूद भी जीव अपने मन से "दु:ख मिले-सुख टले" की 1 माला जपने के लिए भी मानसिक रूप से तैयार ही नहीं है ।

जी हां ! मोहनीय कर्म के राग-द्वेष के आधीन होकर यदि दूसरों-परायों के लिए इसी कर्म मंत्र का जप करना हो तो लाखों करोड़ों की संख्या में जप करने के लिए जीव तैयार है । डटकर समाधि लगाने और रात दिन इस मंत्र का जप अखण्ड रूप से भी करने के लिए मन तैयार है कि दूसरों को... परायों को दु:ख मिले और उनका सुख टल जाए...तो बहुत अच्छा है । लेकिन मेरे विषय में... मुझे तो मात्र सुख ही मिले और दु:ख टल जाये । देखिए ! कर्म जन्य स्वार्थ कितना प्रबल है कि... एक ही मंत्र का अपने पराए की भेदवृत्ति से कैसी विचारधारा पूर्वक जप करने के लिए मन तैयार है ?

अब यदि नवकार जैसे महामंत्र में प्रवेश करना हो, या महामंत्र की महानता के अनुरूप पात्रता निर्माण भी करनी हो तो कर्म के इस मंत्र को विपरीत उल्टा करके "दु:ख मिले...सुख टले" का जप करना शुरु कर दो । यही धर्म मंत्र हो जाएगा । जीव मोक्ष की दिशा में आगे के सोपान चढ़ने लग जाएगा । संसार का त्याग करके महाभिनिष्क्रमण करने वाला साधु इसी धर्म मंत्र का उपासक है । मोक्षार्थी साधु ने अपने समीकरण बदलकर रखे हैं । वह दु:ख मिले इसमें तैयार है, और सुख सर्वथा न मिले इसमें भी राजी है । सुख-दु:ख दोनों के कर्मकृत औदयिक भाव को समझकर दोनों में समभाव रखने वाला समता का सच्चा साधक ही साधु कहलाता है । ऐसे साधु को दु:ख में भी कर्मबंध से बचकर, समता में जीना आता है और इसी तरह सुख के उदयकाल में भी नए कर्मों से बचकर सुखों का त्याग करते हुए जीना आता है । मोक्षार्थी स्पष्ट समझता है कि...ये भौतिक पौद्गलिक सुख मेरे किसी काम के नहीं है । ये मोक्ष में साथ आने वाले नहीं है । अरे ! मुझे मोक्ष के प्रवेश द्वार तक भी पहुंचाने वाले नहीं है । तथा मैं आत्मार्थी-आत्मलक्षी साधक हूं अत: ये भौतिक पौद्गलिक साधन-सामग्रियों का अभावात्मक या विपरीत भावात्मक दु:ख भी मुझे व्याकुल करने वाला नहीं है । उपर से कर्म निर्जरा कराने वाला मेरा अच्छा मित्र है । भले ही दु:ख मेरे पास रहे, साथ रहे...अच्छा ही है । मुझे लाभ ही है । कर्मों की निर्जरा में आत्मा को लाभ है जबकि बंध में नुकशान है । आखिर सुख-दु:ख दोनों कर्मजन्य है । कर्मकृत है । कर्मों के उदय में आने के कारण है और मोक्षार्थी साधक "सव्व पावप्पणासणो" नवकार के इस लक्ष्य पर चल रहा है, अत: वह समस्त कर्मों को जड़मूल में से समूल सम्पूर्ण नाश करने की ही साधना कर रहा है । इसलिए वह कर्मों से डरता ही नहीं है । कर्म चाहे दु:ख रूप, दुखात्मक हो या भले ही सुख रूप सुखात्मक हो...आखिर कर्म तो कर्म ही है । आत्मा के आन्तर शत्रु का क्षय करके आत्मा का पूर्ण विशुद्ध स्वरूप प्राप्त करने का ही एक मात्र लक्ष्य है । फिर सवाल ही कहां है । आत्मा का पूर्ण विशुद्ध स्वरूप कर्म दे नहीं सकता है ।

मोक्षार्थी और मिथ्यात्वी के मंत्र में अन्तर—

मोक्षार्थी सम्यग् दृष्टि ही होता है और सम्यग् दृष्टि जीव ही मोक्षार्थी होता है । यह निर्विवाद सत्य है । ठीक इसके विपरीत मिथ्यात्वी जीव होता है । सम्यक्त्वी मोक्षलक्षी होता है और मिथ्यात्वी मोक्ष के विपरीत संसारलक्षी होता है । मिथ्यात्वी को दीर्घकाल तक संसार में रहना है

इसलिए ऐसे जीवों को सुख चाहिए और दुःख नहीं चाहिए। जो चाहिए उसका राग रखकर पाने के लिए प्रयत्न करना और जो नहीं चाहिए उसका द्वेष रखकर उसे टालने-हटाने के लिए प्रयत्न करना यह मोहनीय कर्म का सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्त पर दोनों के मंत्र और लक्ष्य भी भिन्न भिन्न है। सम्यक्त्वी मोक्षार्थी जीव के लिए बिल्कुल सही मंत्र है— नवकार। जिसमें सम्यक्त्वी का लक्ष्य "सव्व पावप्पणासणो" सब पाप कर्मों का प्रकृष्ट नाश हो। यही सही है।

जबकि मिथ्यात्वी जीव को "सव्व दुःख प्पणासणो" का मंत्र ही सही लगता है। पापों का नाश हो या न हो ? कौन देखने गया है ? प्रत्यक्ष रूप से सब दुःखों का नाश अवश्य ही हो ऐसा संसार के रागी मिथ्यात्वी जीव का लक्ष्य रहता है। बस, उसका मंत्र ऐसा होना चाहिए। इसलिए जिन मंत्रों में, जिन भगवानों के पास या देव-देवीयों के पास उसकी धारणा पूर्ण होती दिखाई देगी कि— "दुःख टले और सुख मिले" उसे यह मिथ्यात्वी अपनाएगा, पसंद करेगा, चाहेगा। तथा उसी का जपादि सब कुछ करेगा। लेकिन सच्चा मोक्षार्थी सम्यग् दृष्टि साधक जो सुख-दुःख का विचार ही नहीं करता है वह तो एक मात्र पाप कर्मों को जड़मूल में से नाश करने का ही मंत्र लेकर उसी दिशा में आगे बढ़ता हुआ भगीरथ पुरुषार्थ करता हुआ मोक्ष की तरफ एक-एक सोपान आगे चढ़ता ही जाएगा और अन्त में मोक्ष पाकर ही दम लेगा। इसलिए मोक्षार्थी सम्यक्त्वी के लिए "सव्व पावप्पणासणो" के लक्ष्य वाला नवकार महामंत्र ही सच्चा मंत्र है। यथार्थ मंत्र है। यही आदेय-उपादेय है।

लेकिन मिथ्यात्वी जीव इस नवकार महामंत्र को पकड़कर नहीं रखेगा। क्योंकि उसके दुःख नाश और सुख लाभ की मन की बात नवकार में उसे दिखाई नहीं दे रही है। दूसरी तरफ उसका ज्ञान भी सही सम्यग् नहीं है अतः वह दुःखों का कारण पाप कर्मों को मानने के लिए तैयार ही नहीं है। क्योंकि पाप कर्म गत जन्मों के हैं, भूतकालीन है उससे उत्पन्न अदृष्ट कर्म आत्मा पर लगे हुए हैं। तथा उन कर्मों के उदय के कारण दुःख सामने आया है। ऐसा भी अज्ञान के कारण अन्ध बना हुआ मिथ्यात्वी मानने के लिए ही तैयार नहीं है। अदृष्ट तत्त्व को दृष्ट कैसे बनाया जाय ? कालान्तर एवं जन्मान्तर की बात उसकी आंखों के सामने लाकर दृष्टिगोचर कैसे कराई जाय ? संभव ही नहीं है। परन्तु कार्य-कारण भाव के संबंध से मानना चाहिए। जैसे आग भले ही न दिखाई दे लेकिन उपर उठा हुआ धुंआ तो दूर से भी दिखाई देता ही है। दूसरी तरफ धूएं और आग का अनादिकालीन कार्य कारण भाव संबंध पूरा है। अनन्त काल में जब भी धूआं निकला है तब आग लगने के कारण ही निकला है। बिना आग के धूआं उत्पन्न ही नहीं होता है, तथा जो बिना आग के उत्पन्न होता हो उसे धूआं कहा ही नहीं जा सकता है। इसलिए आग भले ही धुएं के बिना रह जाये परन्तु धूआं कभी भी आग के बिना नहीं रहेगा। इसीलिए धूएं को देखने के कारण आग भले ही न दिखाई दे फिर भी आग का अस्तित्व सत्यरूप में स्वीकार करते हैं। इतना ही नहीं— "अग्नि शामक दल" को फोन करते समय "आग लगी है" यही भाषा का व्यवहार सामान्य अनपढ गंवार आदमी भी करता है।

धूएं और आग की तरह ही दुःख और पाप कर्म का तथा सुख और पुण्य कर्म का अनादिकालीन गाढ कार्य कारण भाव संबंध है। ये ही साथ रहता है। दुःख दर्द प्रत्यक्ष सिद्ध है दिखाई देते हैं। यह दुःखी है यह दर्दी है। लेकिन पाप कर्म प्रत्यक्ष स्पष्ट दिखाई नहीं देते हैं। फिर भी दुःख दर्दादि जन्मान्तरीय या कालान्तरीय पाप कर्मों के कारण ही है। आज उसका उदय हुआ है। अतः अनुभव में आ रहे हैं। जबकि कारण रूप पाप कर्म आज दिखाई नहीं दे रहे हैं। उस पर काल का परदा गिर चुका है। इसलिए दुःख आदि के कारण पीछे पाप कर्मों की कारणरूप सत्ता मान ही लेनी पड़ती है। जब तक पाप कर्म सत्ता में पड़े रहेंगे तब तक तो दुःख पीछा छोड़ने वाला नहीं है। इसी तरह सुख और पुण्य कर्म का भी कार्य-कारण समझ लेना चाहिए।

अब इसका भलीभांति सम्यग् यथार्थ ज्ञान धारण करने वाला सम्यग् ज्ञानी जीव ज्ञानाश्रित सच्ची श्रद्धा धारण करके समस्त पाप कर्मों को ही जड़ मूल से सम्पूर्ण नाश करने रूप "सव्व पावप्पणासणो" की ही साधना करेगा। क्यों वह दुःख नाश करने की भूल करेगा ? क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है कि पाप कर्मों की सत्ता के रहते दुःखों का सर्वथा क्षय होगा ही नहीं। यह तो आग को छोड़कर धूएं पर पानी डालकर बूझाने की मूर्ख व्यक्ति जैसी कोशिश जैसी बात हो जाएगी। जबकि मिथ्यात्वी जीव के पास सच्चे सम्यग् ज्ञान की ही मूलभूत कमी है। अतः अज्ञान के कारण सच्ची सम्यग् श्रद्धा नहीं बन पाई। अतः बिचारा दुःखों का नाश करने के लिए "सव्व दुःख प्पणासणो" वाले मंत्र को ही ढूंढता रहा। अन्ध श्रद्धा में जिन्दगी भर यही करता रहा। लेकिन अफसोस कि.. पूरी जिन्दगी में न तो सर्वथा सम्पूर्ण दुःख टले और न ही सम्पूर्ण सुख मिले। आखिर हाथ मलते ही जीवन से विदाय लेकर मौत के दरवाजे में से 84 लक्ष जीव योनियों में परिभ्रमण करते ही रहना पड़ता है। अनन्त जन्मों तक हम यही करते आए। लेकिन संसार के इस चक्र से छूटकर मुक्त हो नहीं पाए।

जबकि अनन्त जीव "सव्व पावप्पणासणो" की सही साधना करके मोक्ष में जा चुके हैं। अनन्त सुखी बन चुके हैं। फिर भी यह बेचारा मिथ्यामति जीव अपनी अज्ञानता और अन्ध श्रद्धा के आधीन होकर दुःख टले सुख मिले की माला जपता हुआ आज दिन तक भी संसार के चक्र में भटक ही रहा है। न तो सर्वथा दुःख टले, और न ही सम्पूर्ण सुख मिल पाया। त्रिशंकु की तरह बेचारा मिथ्यात्वी बीच में ही लटकता

रहा । सचमुच, बहुत बड़ी भारी दयनीय एवं शोचनीय दशा है ऐसे मिथ्यात्वी जीवों की । फिर भी वह अपनी दृष्टि, बुद्धि-मति बदलने के लिए तैयार ही नहीं है । अब भी मति दृष्टि बदलकर इस अज्ञानता और विपरीत-विकृत ज्ञान की अन्ध श्रद्धा में से बाहर निकलना ही श्रेयस्कर है । अब भी सुख दु:ख की चिन्ता छोड़कर "सव्व दु:ख प्पणासणो" का विचार छोड़कर "सव्व पावप्पणासणो" के सच्चे लक्ष्य बिन्दु पर केन्द्रित होकर नवकार महामंत्र की सच्ची साधना करनी चाहिए ।

अब लेने के बजाय देने के संस्कार बनाएं—

अनादिकालीन मोहनीय कर्म के कारण जीवों का लेने का स्वभाव है । चाहे कुछ भी वस्तु हो...लेकिन लेने की बुद्धि प्रबल रहती है । यह सर्व सामान्य जीवों की आम मनोवृत्ति है । लेकिन साधक जीवात्मा को... जिसे मोक्ष मार्ग पर आगे प्रयाण करना है उसे कर्म के इस संस्कार को सर्वथा बदलकर लेने के बजाय जगत् को देने के संस्कार डालने चाहिए । धर्म तो देने का सीखाता है । कर्म लेने का सीखाता है । लेकिन ले-लेकर आप कितना लेंगे ? कितना इकट्ठा करेंगे । आखिर मृत्यु के समय सब कुछ यहीं रह जाता है । कुछ भी साथ नहीं आता है । अत: अब भी समझकर जीव को लोभदशा कम करनी ही चाहिए । इस उक्ति को सार्थक समझना चाहिए कि... अनादि काल के कर्मों के संस्कार से ठीक विपरीत चलना ही धर्म है ।

"नमो भाव" यह अनादिकालीन कर्म संस्कार से विपरीत है—

जैसे लेने के विषय में लोभ मोहनीय कर्म कारण रूप है । ठीक उसी तरह न नमने के विषय में मान-अभिमान मोहनीय कर्म कारण रूप है । यह कर्म भी जीवों के साथ अनादि अनन्त काल से लगा हुआ है । अत: इसके भी संस्कारों की जड़ें काफी गहरी पहुंची हुई है । इस कर्म ने कभी जीवों को नमने ही नहीं दिया । परिणाम स्वरूप जीव अभिमान में अक्कड़ बनकर घूमता ही रहा । मान अभिमान का नशा शराब के नशे से भी हजारों गुना ज्यादा खतरनाक रहा । इसने जीव का काफी नुकशान किया है । अरिहंतादि परमेष्ठी भगवन्त सामने होते हुए भी नमने ही नहीं दिया । जीव नम्र बन ही नहीं सका । नम्रता का गुण अंश मात्र भी नहीं आया, और बिना नमस्कार के नवकार महामंत्र में प्रवेश ही नहीं हो पाया । अत: सदा नवकार महामंत्र के बाहर ही भटकते रहे । बाहरी दुनिया में फिर सैंकड़ों किस्म के मंत्र मिलते रहे । रागी-द्वेषी ऐसे सैंकड़ों देव-देवियां भगवान और गुरु भी मिलते ही रहे । आखिर वे भी सर्व पापकर्मों का नाश-क्षय कराने में कामयाब नहीं रहे । अब समझकर भी कर्मों के नाश की दिशा पकड़नी चाहिए । जिससे अनादिकालीन मान मोहनीय, माया मोहनीय आदि कर्मों का क्षय हो सके । उनकी ताकत न चलने दें । और नम्र तथा सरल बनें । तब सही अर्थ में नवकार महामंत्र में प्रवेश होगा । "नमो" के प्रवेश द्वार से नवकार में प्रवेश करके, परमेष्ठी भगवन्तों का स्वरूप समझकर नमस्कार की गुणवत्ता बढ़ानी चाहिए तथा ऐसे पंच परमेष्ठी भगवन्तों को ऐसे नमस्कार करें कि... जो नमस्कार हमारे सर्व पाप कर्मों का सम्पूर्ण समूल नाश करने वाले बनें ।

राष्ट्र भाषा-रत्न, साहित्य रत्न (एम.ए), न्याय-दर्शनाचार्य (एम.ए), पी.एच.डी. कर रहे, ...
अनेक विद्वद् परिषदों में विद्वत्तापूर्ण दार्शनिक प्रस्तुतिकरण करने वाले विद्वान .....
अनेक पुस्तकों के सिद्ध हस्त लेखक, सचित्र शैली के प्रसिद्ध प्रवचनकार, शिबिरों के संचालक —

पू. पंन्यास प्रवर श्री अरुणविजयजी गणिवर्य महाराज

द्वारा .... स्वहस्ते लिखि हुई ..... संस्कृत भाषा में सरल शैली की सचित्र लघु पुस्तक —

— अस्तित्ववाद्यास्तिकमार्हत्दर्शनम् —

समस्त विद्वानों — पू. साधु — साध्वीजी महाराजाओं को सप्रेम भेंट दी जाती है ।
संस्कृत पण्डित परिषद् में दिये हुए सचित्र संस्कृतभाषी प्रवचन की संक्षिप्त पुस्तिका पू. श्रमण-श्रमणीवृंद एवं ज्ञान भण्डारों, विद्वानों को सिर्फ १० रुपए की स्टाम्प टिकिट भेजकर मंगाने पर सप्रेम भेंट भेजी जाएगी ।
वीरालयम् — कार्यालय - १०५६ शुक्रवार पेठ, तिलक रोड़, पुना ४११००२,
फोन नं. ४४७७९१७

मृत्यु के समय नवकार का महत्व

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

जीवन की सबसे बड़ी दु:खदाई अवस्था जन्म और मरण की होती है । यह दु:ख अवर्णनीय होता है । जो अनुभव करता है वही जानता है । परन्तु मृत्यु के समय मौत के दु:ख का अनुभव करने वाला अपना अनुभव कह नहीं पाता है । दूसरों के सामने वर्णन करके सुना नहीं पाता है । सिर दर्द, पैर दर्द, पेट दर्द आदि के दर्द सामान्य कक्षा के हैं । ये वर्णन योग्य है । औषधि आदि से निवारण किया जा सकता है । परन्तु मृत्यु अनिवार्य है, अत: अनिवारण योग्य है ।

शरीर और आत्मा के वियोग का नाम मृत्यु है, तथा इस देह के साथ आत्मा के संयोग का नाम जन्म है । संयोग-वियोग कालिक है । काल सीमित मर्यादित है । अत: आयुष्य कर्म काल की अवधि प्रदान करता है । जितना आयुष्य प्रबल रहेगा उतने काल तक आत्मा एक देह में स्थित रहेगी, और ज्योंहि आयुष्य की काल अवधि पूरी हो जाएगी आत्मा देह को छोड़कर चली जाएगी । बस, आत्मा (जीव) का देह छोड़कर चले जाना ही मृत्यु है । अत: इस संसार को जन्म-मरण रूप कहा है । संयोग-वियोगात्मक स्थिति का नाम ही संसार है ।

मृत्यु के समय का दु:ख किस बात का रहता है ? क्यों इतना ज्यादा दु:ख होता है ? मृत्यु के समय का दु:ख मात्र एक ही नहीं है । अनेक प्रकार के दु:ख इकट्ठे हो जाते हैं और जीव उनसे घिर जाता है । उनका निवारण कर नहीं पाता है । परिणाम स्वरूप स्वयं अशक्त कमजोर और पराधीन हो जाता है । अत: दु:ख का प्रमाण ज्यादा लगता है । प्रमाण भले ही कम हो या ज्यादा हो उस पर आधार नहीं है । आधार है सहनशीलता पर । कितना सह्य है, और कितना सह्य नहीं है ? यदि दु:ख ज्यादा भी हो लेकिन वह सह्य है तो ज्यादा होते हुए भी कम लगेगा, और यदि दु:ख का प्रमाण कम है परन्तु वह सह्य नहीं है तो उसका प्रमाण कम होते हुए भी हजार गुना ज्यादा लगेगा । अत: दु:ख को ज्यादा मानना कि कम ? यह जीव की अपनी परिणति पर आधार रखता है ।

मृत्यु के समय किसी भी शारीरिक बिमारी का दु:ख हो सकता है । वह दर्द भी असह्य बन जाता है । किसी को केन्सर की गांठ की वेदना है, तो किसी को हदय रोग की पीड़ा हो रही है । किसी को सिर में पीड़ा हो रही हो तो किसी को चीरफाडादि शल्य क्रिया की पीड़ा होती हो । इस तरह कुछ दु:ख दर्द शारीरिक रोग जन्य रहते हैं । कुछ मानसिक रहते हैं । पहली बात यह है कि हमने मृत्यु का स्वीकार ही नहीं किया है । हां, यह भी अवश्यंभावी निश्चित ही है । अवस्था विशेष है । आएगी ही आएगी । यदि पहले से ही ज्ञान योग से मृत्यु को समझ ली होती, अपने मानस में इसे यदि स्वीकार ली होती तो आने पर विव्हल या विचलित होने का सवाल ही खड़ा नहीं होता । मौत के नाम से ही डरने वाला प्रत्यक्ष मृत्यु सामने आ जाने पर होंश खोश सब खो बैठता है । हताश-बेसहाय बन जाता है । इसलिए वास्तव में मृत्यु जितनी दु:खदायी नहीं होती है उससे भी अनेक गुनी ज्यादा उसकी भय संज्ञा दु:खदायी होती है । मौत का भय भी हमारी मानसिक हिम्मत खत्म कर देता है ।

तीसरी तरफ मृत्यु शय्या पर पड़े जीव को सबसे ज्यादा उसकी मोहदशा दु:खी करती है । अरे ! मैंने गत 60, 70 वर्षों तक परिश्रम करके यह बंगला बनाया है । अरे ! 1 करोड़ का बंगला है । 25 लाख का फर्नीचर है । यह सब सजावट है । और इसे छोड़कर मुझे जाना पड़ रहा है । इसकी तो मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी । और ये मेरी पत्नी प्रियतमा जिसे मैं प्राण वल्लभा मान रहा हूं इसको भी छोड़कर जाता हूं अरे...रे ! क्या होगा ? और ये मेरे पुत्र-पौत्रादि सब है, पूरा परिवार है । परन्तु सब मिलकर भी बचा नहीं सकते हैं । मौत के मुंह में से वापिस खींचकर ले नही सकते हैं । इस प्रकार का मानसिक दु:ख अत्यन्त ज्यादा बढ़ता ही जाता है ।

शायद अकस्मात हुआ हो, और शरीर के एक से ज्यादा अंग कुचल गए हो, या अंग कट गए हो, तूट गए हो, या दब गए हो, या जल गए हो इत्यादि स्थिति में शारीरिक त्रास असह्य हो जाता है । पूरे जीवन भर 60-70 वर्षों के काल तक कभी मानसिक रूप से मौत को स्वीकार नहीं किया । उसका भयंकर स्वरूप समझकर मन को हल्का नहीं किया और एका-एक न चाहते हुए भी मौत आ गई है अब क्या करें ? ऐसे में दु:ख ज्यादा लगता है ।

दुःखदायी मोह दशा—

जीवन भर मोहदशा को सुखरूप मानने वाला जीव अब मोहभंग या मोह वियोग को सहन नहीं कर पाता है । इसलिए मौत का दुःख दस गुना ज्यादा ही लगता है । हाय, मेरी लाखों की सम्पत्ति पड़ी है । करोड़ों की मिल्कत का क्या होगा ? अरे ! अरे ! मैंने कैसे इकट्ठी की है ? मेरा मन ही जानता है । कितने घर, मकान, प्लोट, जमीन और कई जगह क्या-क्या पड़ा हुआ है ? इस सबका क्या होगा ? इस तरह अपने मोह माया के पदार्थो को याद कर के वह रोने लगता है । अनिच्छा होते हुए भी काश ! सब छोड़कर जाना पड़ेगा यह वह स्वीकार करने के लिए ही तैयार नहीं है । इसलिए अब जब एका-एक कम समय में स्वीकार करना पड़ रहा है तब मोह दशा टल नहीं सकती है, और अपनी ही आंखों के सामने अपनी ही सम्पत्ति, मिल्कत परिवार और सबको देखकर, स्मृति पटल पर मानसिक विचार करते-करते आर्तध्यान में दुःखी होता ही जाता है । दुनिया भर की चिन्ता बहुत होती है लेकिन अपनी खुद की आत्म चिन्ता नहीं होती है । पत्नी, पुत्रादि परिवार का क्या होगा ? मिल्कत का क्या होगा ? इत्यादि पराई चिन्ता बहुत होती है परन्तु मेरा क्या होगा ? इसकी चिन्ता नाम मात्र भी नहीं होती है । कितनी गाढ मोह दशा बन्धी हुई है ? अतः आज अन्त में, वर्षों से बनाकर रखा हुआ मेरा ही मोह आज मेरा ही विश्वासघात कर रहा है । यह मुझे ही ठग रहा है । वर्षों तक मोह दशा को सुखदायी मानी और आज अन्त में दुःखदायी बन गई यह भी दुःख में और वृद्धि करता है ।

मृत्यु के समय दुःख कम कैसे करें ?—

अनचाही आई हुई मौत को भी स्वीकार करने पर आधा दुःख कम हो जाता है । मानसिक रूप से स्वीकृति देकर फिर वाचिक रूप से भाषा के माध्यम से अन्यों के समक्ष भी स्वीकृति सहर्ष स्वीकार करनी ही चाहिए । फिर मोहदशा में से बाहर निकलकर यही कर्म का स्वरूप है । यही जगत् का नियम है । मौत किसी को भी प्रिय नहीं है । सभी ज्यादा जीना ही चाहते हैं, कोई मरना नहीं चाहता है, फिर भी जीव मात्र संसार में मरणधर्म है । मरना अवश्य ही है । जी हां, थोड़ी देर के लिए कर्म की, संसार की शाश्वतता पर चिन्तन कर लीजिए । आत्मा के अजरामर त्रैकालिक शाश्वत स्वरूप का थोड़ी देर चिन्तन कर लीजिए फिर देखिए, आपका दुःख एक मिनट में कितना कम हो जाएगा ? शायद आप इसे चमत्कार मान बैठेंगे । लेकिन स्पष्ट सत्य यही है कि जैसे ही सच्चा सम्यग् ज्ञान आया, तत्त्व का ज्ञान बढा कि वैसे ही मोह का परदा आंखों के सामने से हटने लग जाएगा । मानों सूर्योदय के साथ ही अन्धेरा हट जाता है । वैसे ही सच्चे ज्ञान के सूर्योदय से मोह रूपी अन्धकार कम होते ही दुःख दर्द अदृश्य हो जाता है ।

यदि बचपन से धार्मिक शिक्षा पाई होती, और नौ तत्त्वों आदि का अभ्यास अच्छी तरह किया होता, तथा गुरू भगवन्तों के व्याख्यानों को अच्छी तरह श्रवण किया होता, चिन्तन, मनन करके तत्त्वों को अन्तर मन में सही जमाया होता और श्रद्धा के रस के साथ घूंटकर आत्मसात् किया होता तो हमारी इतनी गाढ मोहदशा नहीं होती । नियमित जीवन में धर्म का आचरण रखकर सामायिक आदि करके स्वाध्याय, जाप, ध्यानादि किया होता तो वह मृत्यु के समय उपयोग में आ सकता था । लेकिन मिथ्यात्व और नास्तिकता के अहंकार में जीवन बिताने के पश्चात् संसार की मोहदशा में आसक्त रहे जीवों की मृत्यु के समय ज्ञान दशा कहां से प्रगट हो ? अतः नास्तिक बने रहने में कोई बड़ी सिद्धि नहीं प्राप्त होती है । जीवन भर कुछ नहीं किया और अन्तिम समय में एका-एक नवकारादि सब कहां से उपस्थित हो जाएगा ? अरे ! कुएं में पानी तो होगा तब खींचने पर बाहर आएगा ? न होने पर क्या आएगा ?

मृत्यु के समय नवकार से शान्त्वना—

भगवान पार्श्वनाथ कुमारावस्था में घोड़े पर बैठकर गांव परिक्रमा में निकले थे । कमठ तापस जो पंचाग्नि तप करते हुए होम, हवन द्वारा लोगों की मनोकामना पूरी करने के आशीर्वाद दे रहा था । उस समय भीड़ काफी एकत्रित हुई थी । बीच में अग्नि प्रगटाई गई थी । लकड़े जल रहे थे । एक बांस की रिक्त जगह में प्रविष्ट हुआ सांप भी जल रहा था । तब 3 ज्ञान के स्वामी पार्श्वकुमार वहां पहुंचे और सेवक को हुकम करके वह जलता बांस बाहर निकाला । अग्नि बुझाकर सांप को शान्त्वना हेतु नवकार सुनाया । संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव था । वह भी नवकार सुनने में इतना तल्लीन बना कि... जलने की वेदना भूल गया । जलाने मारने वाले कमठ तापस के प्रति भी कोई द्वेष वैमनस्य कुछ भी याद किये बिना वह श्री नवकार में एवं सुनाने वाले में दत्त चित्त एकाग्र बनकर स्थिर हो गया । जलकर अर्धदग्धावस्था में तीव्र वेदना नवकार से तथा पार्श्वकुमार की करुणा भरी सौम्य मुद्रा के दर्शन से सांप स्थिरचित्त होकर शुभ भाव अध्यवसाय परिणाम विशुद्ध बनाकर पंचत्व को प्राप्त हुआ । अन्त में नवकार से जिस तिर्यंच गति के पशु की स्वर्ग में जाने की हैसियत भी नहीं थी फिर भी मरकर नागराज धरणेन्द्र बना ।

बाज पक्षी मरकर राजकुमारी सुदर्शना बनी—

पारधि के तीर से आकाश में उड़ता हुआ बाज पक्षी जमीन पर आ गिरा । साधु सन्त मुनिराज योगानुयोग विहार करते हुए पधारे... उन्होंने देखा... बहते खून की धारा को देखकर दयाद्र दिल से तीर निकालकर रक्त दबा दिया । और सबने कल्याण की भावना से नवकार महामंत्र सुनाया । भयंकर वेदना के बावजूद भी तारक मुनियों की सौम्य मुख मुद्रा एवं पवित्र ध्वनि नवकार की जो कर्ण पटल पर पड़ रही थी उसी तरह उसका आकर्षण बढ़ाती गई । जिज्ञासा ने एकाग्र स्थिर बना दिया और समता के समभाव में बाज शान्त बन गया । दुःख दर्द पीड़ा को भूलकर नवकार और मुनि के प्रभाव से उसके भाव और भावना पवित्र बन गई । आखिर प्राण तो छूट ही गए । लेकिन वह जीव सीधा सिंहल द्वीप (सिलोन-श्रीलंका) के राजा के घर राजघराने में जन्म लेकर राजकुमारी बनी ।

राजकुमारी सुदर्शना बड़ी हुई । योगानुयोग एक दिन भारत के भरुच शहर से एक सेठ व्यापारार्थ सिंहलद्वीप पहुंचे । राजदरबार में राजा के साथ बातचीत चल रही थी । राजकुमारी संयोगवश पास में खड़ी थी । अचानक छींक आते ही आदत के अनुसार सेठ "नमो अरिहंताणं" बोल गए । बस, इन शब्दों ने राजकुमारी की अन्तस्थ सुषुप्त चेतना को जागृत किया । बाज के जन्म में मृत्यु की अन्तिम क्षणों तक जो नवकार महामंत्र सुना था, वह जो उसकी स्मृति में संस्कार बनकर पड़ा था । मानों आज सेठ के बोलने से स्वीच ओन होते ही लाइट हो गई । और सुदर्शना को बाज का वह पूर्व जन्म याद आया । स्मृति ताजी होते ही मानों अपनी ही फिल्म आंखों के सामने दिखाई देने लगी हो । दुनिया की दृष्टि में वह बेशुद्ध होकर होंश खोकर जमीन पर पड़ी हो । लेकिन सुषुप्त मन में पुराने संस्कारों की फिल्म को आन्तर मन के परदे पर देख रही थी । इसके लिए इतनी देर तक बाहर की दुनिया से सम्पर्क तोड़ने के लिए बेशुद्ध बनकर अन्दर गहराई में चली गई थी । गहराई में से नवकार के मोती लेकर हंसती हुई प्रसन्न मुद्रा में जब राजकुमारी अंगडाई लेती हुई, मुस्कराती हुई उठी, और पूरा नवकार बोलकर व्यापारी सेठ के चरण छूकर मानों नवकार याद कराने के बहाने पधारे हैं । ऐसा उपकार माना । बस, अब जीवन बदल गया, नवकारमय बन गई । भरुच आई । यहां समडी विहार बनाया । गुजराती भाषा में बाज के लिए समडी शब्द है । यह घटना चमत्कार की नहीं साधना की है नवकार से मृत्यु के समय गति-मति कैसे सुधरती है ? देखिए ।

बैल मरकर नवकार के प्रभाव से देव बने—

कल्पसूत्र में आए हुए कथानक की प्रामाणिकता को समझने की कोशिश करनी चाहिए । जिनदास सेठ के पास ग्वालन ने रखे दो बछड़ों को सेठ रोज नवकार सुनाते थे । संस्कार से पशु भी प्रेमवश सुधर जाता है । बड़े होते बछड़े धार्मिक मनोवृत्ति के बन गए । रात को पानी भी नहीं पीना, और सुबह नवकारशी आदि के बाद जब सेठ नवकारादि सुनाने के पश्चात् दे तब ही खाना । सेठ के उपवास के दिन साथ में उपवासादि करना आदि करते हुए भाव से धर्मी बन चुके थे । सेठ भी अपने सहधर्मी साधर्मिक बन्धु मानकर उसी अर्थ में उनके साथ व्यवहार करते थे । बैल दौड़ के अन्दर अचानक बिना पूछे गांव के युवक ले गए और दौड़ में खूब दौड़ाया । फिर चुपचाप लाकर सेठ के घर छोड़कर चले गए । प्रथम बार की अति तेज दौड़ में अपने सन्धि स्थान की हड्डियां तूट गई । अन्तिम अवस्था समझकर जिनदास सेठ ने नवकार महामंत्र की खूब अच्छी साधना कराई । दत्तचित्त बैलों ने सेठ को अपना उपकारी मानकर शान्ति से नवकार श्रवण करते रहे । यद्यपि पशु है वे बोल तो नहीं सकते परन्तु समझ सब सकते हैं । सोच-विचार सकते हैं । नवकार श्रवण में मन लगते ही दुःख दर्द सब भूल गए और मौत को भी खुशी से हंसते-हंसते स्वीकार किया । मति और गति दोनों सुधर गई । परिणाम स्वरूप दोनों जीव देवगति में जाकर देव बने । जो कम्बल और शम्बल के रूप में भगवान महावीर स्वामी की नौका विहार में उपसर्ग के समय सेवा करने आए थे । देखिए ! तिर्यंच पशु पक्षियों के भव में भी जीवों ने नवकार से अपने जन्म सुधारे हैं तो मनुष्य गति के मानव क्यों नहीं सुधार सकते हैं ? शास्त्रकार महर्षी मृत्यु समय में नवकार के लाभ के बारे में लिखते हैं कि—

मृत्यु के समय नवकार से लाभ—

पञ्चतायाः क्षणे पञ्च रत्नानि परमेष्ठिनाम् ।
आस्ये ददाति यस्तस्य सद्गतिः स्याद् भवान्तरे ॥

— मृत्यु के समय पंच परमेष्ठी रूप पांच रत्नों का जो मुख में रटण करता हुआ धारण करता रहता है उसकी भवान्तर में जन्मान्तर में सद्गति होती है । जैसे मौत के समय सामान्य लोग अपनी धन सम्पत्ति लक्ष्मी पैसा आदि का स्मरण करते रहते हैं वैसे यहां पर अरिहन्तादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को शास्त्रकार महर्षी ने रत्नों की उपमा दी है । इनको रत्नों से भी अधिक समझकर... जो मुंह से रटण करता रहता है जपता रहता है उसकी मति शीघ्र ही सुधरती है । गति का आधार भी मति पर रहता है । स्पष्ट कहा है कि—**"यथा मति तथा गति"** अन्त में जैसे मति (बुद्धि)

होती है या बनती है तदनुसार गति होगी । अत: नवकार में रमण करते रहने पर मति शान्त बनती है, समता आती है । राग-द्वेष के उद्वेग शान्त हो जाते हैं । बस, ऐसे में गति का बन्ध हो जाय तो ऊंची देवगति मनुष्य गति प्राप्त होती है । इन दो को ही सद्गति कहते हैं ।

जेण मरंतेण इमो नवकारो पाविओ कयत्थेण ।
सो देवलोए गंतुं परमपयं तं पि पावेइ ॥

— शास्त्रकार महापुरुष फरमाते हैं कि... जिस कृतार्थ पुरुष ने मृत्यु की अन्तिम क्षणों में इस नवकार महामंत्र को प्राप्त किया है अर्थात् स्मृति पट पर लाया है । अर्थात् सतत रटण स्मरण कर रहा है । मृत्यु के अन्तिम क्षण तक बराबर स्मरण चालू रखा हो वह जीव देवगति में जाता है । शास्त्रकार ने श्लोक में स्पष्ट रूप से "देवलोए" शब्द का प्रयोग किया है । और यदि ध्यान की विशुद्धि बढ़ती ही जाये, अखण्ड ध्यान की धारा लग जाय, कर्मों की निर्जरा तीव्रतर होती ही जाय और उसके बल पर गुणस्थानों की श्रेणी जीव चढ़ता ही जाय तो संभव है कि जीव सर्व कर्म मुक्त बनकर मोक्ष पद को भी प्राप्त कर सकता है । क्योंकि मात्र 2 घड़ी के 48 मिनिट का समय ही पर्याप्त है । इतने समय में जीव 4थे, 8वें गुणस्थान से क्षपंक श्रेणी का प्रारम्भ कर अन्तकृत् केवली बनकर मोक्ष में जा सकता है । ऐसे मरुदेवा माता आदि अनेक अन्तकृत् केवली हुए हैं और मोक्ष में गए हैं । जिन के दृष्टान्तों से "अन्तगड़दशांग" आगम शास्त्र भरा पड़ा है । इसलिए नवकार से परमपद मोक्ष की प्राप्ति भी सुलभ है ।

मोक्ष और देव गति की प्राप्ति—

पंच नमुक्कार समं अंते, वच्चंति जस्स दस पाणा ।
सो जइ न जाइ मुक्खं, अवस्स वेमाणिओ होइ ॥

— कहते हैं कि अन्त समय में जिसके दशों प्राण नवकार के साथ निकलते हैं अर्थात् नवकार का जाप-ध्यानादि चालू हो और प्राण निकल जाय वैसे जीव यदि मोक्ष को मानो न भी प्राप्त कर सके तो अवश्य वैमानिक देवगति में जाते हैं । शास्त्रकार भगवन्त स्पष्ट कहते हैं कि... नवकार में लीन हुआ साधक जो ध्यान में स्थिर हो चुका है, साधना अधूरी है लेकिन आयुष्य का काल समाप्त होने आया है ऐसी स्थिति में यदि कर्मक्षय की मात्रा अनेक गुनी बढ जाय तो मोक्ष प्राप्त हो सकता है । परन्तु मानों कि सर्व कर्मों का क्षय होने के पहले ही आयुष्य समाप्त हो जाय तो मोक्ष से वंचित रहा हुआ नवकार का उपासक उत्कृष्ट वैमानिक देव गति अवश्य प्राप्त करता है ।

तिर्यंच भी देव गति पाते हैं—

जेण इमो संपन्नो तिरिएहिं हु विवेग रहिएहिं ।
ते वि अचिरेण पावंति सोग्गइं किमिह अच्छरियं ॥

— शास्त्रकार भगवन्त यहां तक कहते हैं कि... तिर्यंच गति के जो पशु-पक्षी है, उन्होंने भी मान लो कि... विवेक रहित होकर भी महामंत्र को प्राप्त कर लिया हो, या धारण कर लिया हो, भले ही शुद्ध-अशुद्ध जिस तरह भी स्मरण करते हो या श्रवणादि करते हो वे भी सद्गति को शीघ्र प्राप्त करते हैं । इसमें आश्चर्य कहां है ?

बन्दर देव बना—

— देव गति से देवता मृत्यु के बाद विन्ध्यगिरी पर्वतमाला की घाटियों में आकर तिर्यंच गति में जन्म धारण कर बन्दर बना । पूर्व जन्म में ही गुरु द्वारा उपदिष्ट उपायानुसार घाटियों की शीलाओं पर पेड़ के तनों पर आदि सर्वत्र चारों तरफ नवकार लिखकर नीचे देव गुरु और बन्दर के चित्र बना दिये थे । उसने आज बार-बार चारों तरफ देखते-देखते चित्रादि से विस्मय पाकर जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त किया । अब जागृत भाव में नवकार के जप में शेष जीवन बिताया । और मृत्यु पाकर पुन: देवगति में देवता बन गया । ऐसे अनेक दृष्टान्त है जो इस श्लोक के अर्थ-मर्म को सिद्ध करते हैं । अर्थात् ऐसा हुआ है, होता है । और भविष्य काल में भी होता ही रहेगा ।

नमस्कृतिं कृपाचित्तैः श्रोत्रयोः प्राभृती कृताः ।
स्वीकृत्य पुण्य सन्ध्यां च तिर्यंचोऽपि ययुर्दिवम् ॥

— उपकार, परोपकार या कल्याण की भावना वाले ऐसे कृपालु चित्त वाले ऐसे सज्जनों के द्वारा तिर्यंच पशु-पक्षियों को भी जीव विशेष ही समझकर उनका भी कल्याण करने की भावना से उनके कानों में नवकार की भेंट की हो अर्थात् नवकार महामंत्र रोज सुनाया हो जिससे उनके कानों की पवित्रता के साथ साथ भावों की पवित्रता भी पूर्णरूप से हुई हो और इसके कारण ऐसे पशु पक्षियों ने नवकार महामंत्र की रट लगाई हो, या उसी में एकाग्रता पूर्वक मन लगाया हो, ध्यान लगाया हो ऐसे तिर्यंच गति के पशु, पक्षी भी नमस्कार महामंत्र के आधार पर स्वर्ग में गए हैं । जाते हैं, और जाते रहेंगे ।

दुर्गति निरोधक नवकार—

जेणेस नमुक्कारो पत्तो, पुण्णाणुबंधि पुण्णेण ।
नारय तिरिय गईओ, तस्सावस्सं निरुद्धाओ ।।

— पुण्यानुबंधीपुण्य के योग वाले जिस किसी भी जीव ने इस नवकार महामंत्र को भावपूर्वक प्राप्त किया हो, उसे जीवन में चरितार्थ किया हो, नवकार को उपयोग में लाया हो ऐसे पुण्यात्मा जीवों की नरक और तिर्यंच की गतियां अवश्य ही रुक जाती है । 4 गतियों में 2 दुर्गतियां और 2 सद्गतियां है । नरक और तिर्यंच की ये 2 दुर्गतियां नवकार की साधना से रुक जाने पर, बंद हो जाने पर निश्चित रूप से सद्गति ही होगी । अर्थात् देव या मनुष्य की गति में ही जीव जाएगा । अत: इस श्लोक के आधार पर ठोस रूप से या निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि... नवकार का साधक दुर्गति में नहीं जा सकता ।

जन्म मरण उभय समये नवकार—

जाए वि जो पढिज्जइ, जेणय जायस्स होइ बहुरिद्धी ।
अवसाणे वि पढिज्जइ, जेण मओ सुग्गइं जाइ ।।

— शास्त्रकार भगवन्तों ने जन्म और मृत्यु दोनों समय में नवकार पढने का विधान उपरोक्त श्लोक में स्पष्ट किया है और फल निर्देश भी स्पष्ट किया है कि... जन्म के समय में यदि नवकार महामंत्र पढने में आए, सुनने-सुनाने में आए, कोई पढे और जातक को सुनाने में आए तो उस समय नवकार के प्रभाव से जातक खूब सम्पत्तिवान बनता है । काफी सम्पत्ति प्राप्त करता है । इस तरह मृत्यु के समय भी यदि नवकार स्वयं पढ़ता रहे, जपता रहे, स्मरण करता रहे, यदि यह संभव न भी हो सके तो एकाग्र चित्त से श्रवण भी करता रहे तो भी मृत्यु के पश्चात् सुगति-सद्गति को प्राप्त करता है । भावों की विशुद्धि नवकार के बल पर हो जाती है । नवकार सुनाते रहने से उस जीव के राग द्वेष के विचार रुक जाते हैं । उसे राग द्वेष के दूसरे विचारों से हटाया जा सकता है, मन बदला जा सकता है । उपयोग बदलकर मन नवकार में लाकर स्थिर किया जा सकता है । जिससे भावों की विशुद्धि काफी अच्छी हो सकती है और दुर्गति रुक जाती है और सद्गति अवश्य होती है ।

इसी तरह जन्म के समय जन्म लेने वाला जातक तो मात्र प्रसूति की पीड़ा का अनुभव करता है । प्रसव मार्ग में से जन्म लेते हुए बाहर क्या निकलना है मानों गन्ने का यंत्र में पीलन हो ऐसी असह्य वेदना का अनुभव करना पड़ता है । शायद जन्म का दु:ख नरक के दु:ख से भी अनेक गुना ज्यादा है । जन्म लेने वाला बालक उस समय नवकार गिनने की स्थिति में नहीं है । अब दूसरी रही प्रसूता माता । जो जन्म दे रही है वह माता शुद्धि में है, भावनाशील है, नवकार की उपासक साधक है वह भी यद्यपि प्रसव काल में प्रसव की पीड़ा से वेदनाग्रस्त हो जाती है । छटपटाने लग जाय और यह भी संभव है कि उसको उस समय यमराज आंखों के सामने दिखाई देने लग जाये...तब ऐसी परिस्थिति में वह नवकार याद कर पाएगी कि नहीं यह प्रश्न है । फिर भी निष्ठावाली बनी हुई, अभ्यास स्वभावी माता जन्मते ही बालक रोए, मुंह खोले अन्य कुछ भी सुने इसके पहले नवकार महामंत्र सुनावें...तो बालक की स्मृति पर पहले नवकार अंकित हो जाएगा । दूसरी तरफ माता भी सुनाने में तल्लीन होकर स्वयं दु:ख-पीड़ा से मुक्त बन सकती है । और मानों कि यह माता के लिए संभव ही न हो तो... पास में जो सहायक हो वे भी दोनों को नवकार सुनाने का कार्य कर सकते हैं । याद रखिए...शास्त्रकार भगवन्तों ने जन्म मरणादि समय में एक मात्र नवकार महामंत्र का ही उल्लेख किया है, आदेश दिया है । अन्य किसी मंत्र के लिए विधान नहीं किया है । जरुर जन्म समय में अशुची आदि की भरमार रहती है, और मृत्यु समय में फिर भी ऐसे समय में नवकार का विधान किया है ।

जन्म समय में नवकार से... पूरा जीवन नवकारमय बनने की संभावना रहती है । संस्कारमय धर्मिष्ठ जीवन बनने की संभावना रहती है तथा मृत्यु के समय का नवकार आगामी दूसरे जन्म को सुधारता है । आखिर मौत है क्या ? दूसरे जन्म में, दूसरी गति में जाने का प्रवेश द्वार है । अत: ऐसे प्रवेश द्वार में प्रवेश करते समय नवकार की साधनापूर्वक प्रवेश किया जाय तो आगामी गति और जन्म दोनों सुधरते हैं । दोनों अच्छे बनते हैं । इस दृष्टि से मृत्यु के समय नवकार को आवश्यक बताया है । आगामी गति सुधारकर ऊंची सद्गति में ले जाय, और भव-जन्म सुधारकर श्रेष्ठ कक्षा का जन्म प्रदान करें ।

इतना ही नहीं आगामी जन्म में भी नवकार की प्राप्ति का आधार इस जन्म की एवं विशेषकर अन्तिम समय की नवकार की साधना पर आधारित रहता है । अत: मृत्यु के समय सतत जिसका स्मरण जीव करता है उसे जीव जन्मान्तर में साथ में ले जाता है, अर्थात् अगले जन्म में जाकर शीघ्र ही नवकार को प्राप्त करता है । और नवकार की साधना के संस्कार आगामी जन्म में बिना किसी के सीखाएं भी संस्कारों के उदय से स्वयं ही आ जाएगा तथा पुन: साधना के संस्कार प्रबल बलवत्तर बनते जाएंगे । पुन: जीव को साधक बना सकेंगे । इस तरह अनेक जन्मों तक भी साधना चल सकेगी । अत: सभी न भूलते हुए भी सदा नवकार जपते रहें यही शुभकामना ।

अगले जन्म में नवकार कैसे पाएं ?

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

चेतनात्मा त्रैकालिक शाश्वत है । अनादि-अनन्तकालीन है । अजर-अमर है । ज्ञान-दर्शनादि गुणमय है । असंख्य प्रदेश समूहात्मक अस्तिकाय स्वरूप ध्रुव द्रव्य है । संसारी अवस्था में अनादि कर्म संसक्त है । संसार में शरीरधारी बनकर ही रहता है । कर्माधीन स्थिति में चारों गतियों में 84 लक्ष जीव योनियों में परिभ्रमण करता हुआ संसार चक्र में जन्म मरण धारण करता ही रहता है । मन वचन काया के योग से प्रवृत्तिशील रहकर निरन्तर कर्म बांधता ही रहता है । सतत कर्मों के उदय में सुखी-दुःखी होता हुआ जीवन जीता ही रहता है । संसार में सदा कर्मों का बंध, उदय, उदीरणा, सत्ता बनी रहती है । शुभा-शुभ कर्मों के पुण्य-पाप के उदय को भुगतता हुआ संसार में जन्मान्तर, गत्यंतर, भवान्तर करते हुए काल निर्गमन करता रहता है जीव ।

कर्मों के बिना पुनः जन्म नहीं, और पुनः जन्म के बिना नए कर्म नहीं । जीवों के कृत कर्मों का फल जन्मान्तरों में कालान्तर में मिलता है । चाहे वे शुभ पुण्यात्मक कर्म होंगे तो जन्मान्तर में सुख का फल प्रदान करेंगे । और यदि वे अशुभ पापात्मक कर्म होंगे तो वे जन्मान्तर में दुःख का फल देंगे । कर्मों की बंध स्थिति जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट तीनों प्रकार की होती है । जघन्य स्थिति वाले कर्म इसी जन्म में उदय में आ जाते हैं । यहां तक कि सुबह बांधे हुए शाम को उदय में आ सकते हैं । 8, 12, अंतर्मुहूर्त की स्थिति वाले आज के आज और कल भी उदय में आ सकते हैं । मध्यम अवधि के आगामी 1-2-4 भवों में उदय में आकर फल देते हैं । तथा उत्कृष्ट बंध स्थिति के कोड़ा-कोड़ी सागरोपमों तक के सुदीर्घकालीन कर्म सैंकड़ों हजारों जन्मों तक फल प्रदान करते रहते हैं ।

संसार में शुभ फलदाता पुण्य कर्म है । आज का उपार्जित पुण्य कालान्तर में एवं जन्मान्तर में सब कुछ सुख रूप फल देता हुआ सुखात्मक संसार बनाएगा । पुण्य द्रव्य एवं भाव उभय प्रकार का है । द्रव्य दान, धन-धान्य, अन्न-पान, वस्त्र-पात्रादि दीनदुःखी अनाथों को परोपकारार्थ देकर एवं यश-कीर्ति दानादि देकर उपार्जन किया हुआ पुण्य जन्मान्तर में फल देते समय भी धन, धान्य, अन्न, पान, वस्त्र, पात्र, जगह-जमीन, घर बार पद, प्रतिष्ठा, सत्ता आदि रूप फल प्रदान करेगा । परिणाम स्वरूप यश, कीर्ति, सुख, सौभाग्य विपुल साधन सामग्री आदि पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होगी । समाज के व्यवहार में जीव की अच्छे सुखी सम्पन्न के रूप में गणना होगी ।

दूसरा भाव कक्षा का पुण्य धर्म के माध्यम से उपार्जन किया जाता है । दर्शन, वंदन, पूजन, तीर्थयात्रा, देव, गुरु की भक्ति, सुपात्र दान, साधर्मिक भक्ति जिन मन्दिर, प्रतिमा उपाश्रय निर्माण करना-कराना, महोत्सव आयोजन, माला जप, अनुमोदना, शास्त्र, पुस्तक लिखना, लिखवाना, शासन प्रभावना आदि अनेक प्रकार की धर्माराधना भी शुभ पुण्य उपार्जन कराती है । यद्यपि निर्जरा अर्थात् "सव्व पावप्पणासणो" रूप कर्मों का क्षय भी इनसे काफी अच्छा होता है । आश्रव निरोध रूप संवर धर्म भी इनसे विपुल प्रमाण में होता है । अतः ये और ऐसे आयंबिल, उपवासादि तप, सामायिक व्रत, पौषधादि प्रबल निर्जरा कराने वाले संवर प्रधान होते हुए भी भावों की विशुद्धि पर पूरा आधार रखते हैं । यदि उत्कृष्ट कक्षा के वैसे भाव है तो निर्जरा कर्मक्षय अवश्य होता है । यह निःसंदेह है तथा उतने समय सामायिक आदि में विरति में रहने पर संवर भी अवश्य ही होता है । परन्तु भावों की सर्वोच्च कक्षा न हो, भाव-भावना ही निर्जरा की न होकर शुभ पुण्य की ही हो, या फिर फल प्राप्ति के संकल्प से ही साधनादि करता हो जीव विशेष तो निश्चित रूप से वह पुण्योत्पादक धर्माराधना होगी । जो भाव पुण्य उपार्जन कराएगी तथा परिणाम स्वरूप ये शुभ पुण्य कर्म जन्मान्तर में वापिस वैसे धर्म योग्य संयोग खड़े कर देंगे । मात्र सुखरूप फल ही नहीं अपितु धर्म की सारी अनुकूलता खड़ी कर देंगे । धर्म योग्य वातावरण, धर्म मार्ग में उपयोग कर सको वैसी सुख सम्पत्ति, वैसी शुभ लक्ष्मी आदि देने में वह पुण्य समर्थ रहेगा । वैसा सहयोगी परिवार, वैसे जिन मन्दिर मूर्ति, उपाश्रयादि धर्म स्थानों की सानिध्यता उपलब्धि आदि प्राप्त कराने का काम भाव पुण्य का रहेगा ।

नौं प्रकार से जो पुण्य उपार्जित किया जाता है ऐसा नव तत्त्वशास्त्रादि में स्पष्ट उल्लेख प्राप्त है । नौंवा प्रकार नमस्कार पुण्य का है । आप लौकिक-लोकोत्तर कक्षा के नमस्कार, नमन, वंदन जो करते हैं यह भी शुभतर क्रिया होने से पुण्योपार्जन कराती है तथा छट्ठे प्रकार के पुण्य की प्रवृत्ति में मन से भावना, अनुमोदना के श्रेष्ठ विचार करना है । सातवें प्रकार में वचन योग से ऊंचे अच्छे शब्दोच्चार वाली मधुर भाषा बोलना

है एवं आठवें प्रकार में काया योग की शुभ प्रवृत्ति में सेवा भी है, तथा उठना, बैठना, बैठाना, आसनादि लाना आदि अनेक प्रकार है । इस तरह करण-करावण और अनुमोदना जैसी प्रक्रिया से भी जीव शुभ पुण्य उपार्जन करता है ।

नवकार के ही विषय में समझें... कोई लाखों करोड़ों का जप करता है और हम यदि अच्छे विचारों द्वारा अपने मन में अनुमोदना करते हुए अहोभाव प्रगट करें तो भी हम भी पुण्योपार्जन करते हैं । वचन योग से अपनी भाषा में निर्दोष रूप से उनकी प्रशंसा करते हैं, व्याख्यानों भाषणों में बोलकर, पुस्तकों, अखबारों में अच्छे वर्णनात्मक लेख एवं समाचार लिखकर भी पुण्य बांधते हैं तथा काय योग से उनकी सेवा भक्ति, आसनादि लाना बिछाना, ले जाना, मालादि लाना, देना, धोना, सामने लेने जाना, पहुंचाने जाना, आहार-पानादि कराना इत्यादि अनेक रीत से पुण्य उपार्जन करते हैं । इस तरह मन, वचन, काया के तीनों योगों के माध्यमों द्वारा पुण्य उपार्जन किया जा सकता है तथा अन्तिम नौवें प्रकार में नमस्कारादि द्वारा भी उत्कृष्ट कक्षा का भाव पुण्य उपार्जित किया जाता है ।

कर्म शास्त्र का भी अपना नियम है कि... जिस जीव का मन विशेष रूप से निरन्तर जिस कार्य में लगा रहता है तथा जिस माध्यम से जो जीव जिस प्रकार की क्रिया प्रवृत्ति से पुण्योपार्जन करता है— कालान्तर में अगले जन्म में वे पुण्य कर्म जीवों को पुन: वैसे फल भी देता है । वैसे फलों में पुन: वैसे योगों की प्राप्ति कराता है । इस तरह पुन: नवकार की प्राप्ति अगले जन्म में भी होती है । नमस्कार और मन, वचन, काया के मिलकर कुल चारों प्रकार शुभ कक्षा के भाव पुण्य उपार्जन करने पर शुभ कर्म उपार्जन किया जाता है जो अगले जन्म में उदय में आकर पुन: नवकार आदि की उपलब्धि कराते हैं, और साथ द्रव्य पुण्य में उपरोक्त पांचों प्रकारों में नवकारवाली माला आदि देने संबंधी आदि पांचों प्रकार के द्रव्य पुण्य भी उपार्जन किये जा सकते हैं जो जन्मान्तर में पुन: वैसी प्राप्ति कराने में सफल हो सकें ।

धर्म संस्कार अगले जन्म में पुनः धर्म प्रदान करते हैं—

देवता ने गुफा में ध्यानस्थ ज्ञानी गुरु को अपनी आगामी गति और जन्म के बारे में पूछा । गुरु ने उत्तर में तिर्यंच की गति और बंदर का भव अपने ज्ञान योग से बताया । सुनकर हैरान हुए देवता ने उपाय पूछा । गुरु ने आज से ही नवकार महामंत्र का सतत जप करने के लिए कहा । जीवन भर नवकार की कोई साधना न करने एवं दुष्प्रवृत्तियों के कारण दुर्गति में जाना पड़ रहा है । नवकार की साधना प्रबल होती तो गति नहीं बिगड़ती । सद्गति मिलती । आखिर देवता ने अवशिष्ट आयुष्य में नवकार की बहूत साधना की । लेकिन पहले उपार्जित गति के आधार पर तिर्यंच गति में जाकर बन्दर बना । पहले चट्टानों, शिलाओं एवं तनों पर लिखे हुए नवकार को और अपने चित्रों को देखकर बन्दर ने जाति स्मरण ज्ञान से नवकार प्राप्त किया और बहूत आराधना की । परिणाम स्वरूप पुन: देवगति में गया ।

इस कथानक के संक्षिप्त सार से यह स्पष्ट होता है कि... नवकार महामंत्र की साधना के संस्कार प्रबल गाढ पड़ने पर वे कर्म में स्थिर हो जाते हैं । आजीवन सतत नवकार का स्मरणादि करके जीवों ने प्रबल जपादि करके संस्कारों को दृढ़ करके पुन: अगले जन्मों में जाकर उसे ही पुन: प्राप्त किया है । आज के वर्तमान जन्म में नियमित रूप से नवकार की साधना करते रहने पर लगाव लग जाता है, अत: पुन: नवकार की प्राप्ति की इच्छा प्रबल बन जाती है और ऐसी प्रबल इच्छा प्रार्थना भावना रूप में बन जाती है । अत: उसी की झंखना रहती है । जिसके बल पर पुन: नवकार की प्राप्ति आगामी जन्म में होती है ।

मृत्यु के समय तक प्रबल साधना—

आजीवन भर जिसने नवकार की प्रबल साधना की हो वह अपने उत्तरार्ध के अन्तिम वर्षों में मृत्यु को समीप समझकर साधना की और ज्यादा तेज बनाता है । जैसे-जैसे मृत्यु नजदीक आती जाती है वैसे-वैसे साधना की गुणवत्ता बढाते हुए और उत्कृष्ट करता है । साधना में लीन बन जाता है । नवकारमय ही बन जाता है । यहां तक कि... सागारी अनशन और संथारा भी ग्रहण करके स्वेच्छा से हंसते मुंह साधना में तल्लीन रहते हुए देह छोड़ता है ।

दूसरी तरफ कर्म शास्त्र भी इस सिद्धान्त को स्पष्ट करता है कि... जीवन के 3 भाग बीत जाने के पश्चात् शेष चौथे भाग में आयुष्य बंध की संभावना ज्यादा बढ़ती है । चौथे के पुन: 3 भाग, उसके पुन: 3 भाग इस तरह अन्त में गति आयुष्य आदि की संभावना प्रबल बनती है और ऐसे समय में नवकारादि की साधना प्रबल हो और उसमें गति आयुष्य का बंध पड़े तो निश्चित रूप से ऊंची सद्गति और ऊंचा अच्छा सुदीर्घ आयुष्य प्राप्त होता है । परिणाम स्वरूप अगले जन्म में सद्गति के रूप में देव मनुष्य की गति प्राप्त होती है और गति के अनुरूप शुभ आयुष्य भी प्राप्त होता है । अत: आगामी जन्म में पुन: साधना शुरु होती है । नवकार याद आता है । प्राप्ति होती है । पूर्व संस्कारवश नवकार गिनने का मन प्रबल बनता है ।

देव भव में प्राप्ति—

पुण्योदय से प्राप्त देव जन्म में जन्म लेते ही भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान होता है । जो जन्मजात होता है । देवशैय्या में से उठते ही देव 16 वर्ष के तरुणावस्था के राजकुमार जैसा ही होता है । अप्सराएं आकर प्रश्नोत्तरी करती है । हे स्वामिनाथ ! आपने ऐसा क्या किया कि... जिसके आधार पर यहां पधारे ? यह एक निमित्त है जिससे तुरन्त पूर्व स्मृति ताजी बनती है । उसे ख्याल आता है कि... ओ हो..हो.. ! मैंने गत जन्म में नवकार महामंत्रादि की उपासना काँफी अच्छी की है...जिसके आधार पर मैं यहां इस देवलोक में आया हूं । उत्पन्न हुआ हूं । देवियां स्वर्ग के उसके साम्राज्य, विमान आदि का परिचय कराती है तथा वहां शाश्वत शास्त्रादि उपलब्ध होते है । उसमें से स्वाध्यायादि द्वारा भी नवकारादि प्राप्त कर सकता है । वैक्रिय शक्ति लब्धि भी प्रबल होती है । मनुष्य लोक में देव गुरुओं के दर्शनार्थ वंदनार्थ देवता पल भर में जा सकते हैं । समवसरण में सर्वज्ञ की देशना श्रवणकर नवकारादि प्राप्त कर लेते हैं । जिनेश्वर भगवन्तों के कल्याणक प्रसंगों पर भी जाते हैं । अपने पूर्व उपकारी, गुरु, मित्रादि के पास जाकर भी प्रतिबोध पाकर आते हैं । इस तरह अनेक निमित्तों से पुनः नवकार एवं धर्मादि पाते हैं । दूसरी तरफ आयुष्य काफी लम्बा रहता है । श्रद्धा के बल पर दीर्घकाल तक सम्यग् साधना करके अपना संसारवास कम कर सकते हैं ।

प्राप्ति हेतु प्रार्थना—

प्रणिधान सूत्र "जय वियराय" में प्रार्थना करते हुए विनती करते हैं कि...

लोग विरुद्धच्चाओ, गुरुजण पूआ, परत्थकरणं च ।
सुह गुरु जोगो, तव्वयण-सेवणा, आभवमखण्डा ॥2 ॥
वारिज्जइ जइ वि नियाण-बंधणं, वीयराय ! तुह समये ।
तह वि मम हुज्ज सेवा, भवे भवे तुम्ह चलणाणं ॥3 ॥

भक्त भगवान के चरणारविंद में प्रार्थना करते हुए अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहता है कि... हे वीतराग ! आपके प्रभाव से मुझे लोक विरुद्धाचरण का त्याग, गुरु भगवन्तों का आदर भाव, परोपकार करने की तत्परता, सद्गुरुभगवंतो का योग तथा उनके वचन की सेवना अर्थात् उपदेश आज्ञानुसार आचरण करते हुए चलना, जहां तक इस भव परम्परा रूप संसार चक्र में परिभ्रमण करना पड़े वहां तक अखण्ड रूप से मुझे ये सब प्राप्त हो । हे प्रभु ! यद्यपि आपके शासन में फल याचना रूप नियाणा करने का निषेध किया है फिर भी मुझे प्रत्येक भव में आपके चरण कमल की सेवा प्राप्त हो ऐसी मैं इच्छा करता हूं । इस प्रकार की प्रार्थना में अनेक बातों में ये मुख्य भावना व्यक्त की है भक्त ने । इसमें सुगुरु का योग, उनके वचन की सेवा आचरणादि में पुनः नवकार की प्राप्ति सुलभ हो जाएगी ।

जिस तरह मयणा और श्रीपाल ने अपने जीवन काल में आजीवन पर्यन्त नवकार नवपद की अविरत रूप से अखण्ड रूप से आराधना की और परिणाम स्वरूप भव संसार ही 8-9 भवों की अल्पसंख्या में लाकर सीमित कर दिया तथा उत्कृष्ट रूप से बार-बार मनुष्य गति प्राप्त करके उत्कृष्ट साधना करके नौवें भव में मोक्ष में चले जाएंगे । देखिए ! एक भव में की हुई उत्कृष्ट नवपद की आराधना से 8-9 जन्मों में निरन्तर अखण्ड रूप से नवकार नवपद की प्राप्ति होती रहेगी और परिणाम स्वरूप शाश्वत सुख मोक्ष की प्राप्ति हो जाएगी । ऐसे दृष्टान्तों को आदर्श रूप में दृष्टि पथ में लक्ष्य में केन्द्री भूत बनाकर हम आज से ही नवकार की ऐसी साधना प्रारम्भ कर दें जो अगले जन्मों में भी साथ आए और भविष्य के जन्मों में भी नवकार की आराधना करते रहें ।

जी .... हां .... पाप करेंगे तो जरुर कर्म बंध होगा, और भुगतना भी पड़ेगा .....
अतः पाप करने से बचने पर ही ..... भविष्य में दुःख से बच पाएंगे ।.....
हां ..... पाप छोड़ने के लिए पापों को जानना, उसके फल को पहचानना चाहिए.....
सरल हिन्दी भाषा में विविध चित्रों के साथ लिखने वाले लेखक हैं —

पू. पंन्यास प्रवर श्री अरुणविजयजी गणिवर्य महाराज

"पाप की सजा भारी" – भाग १ और २
[हिन्दी और गुजराती दोनों भाषा में उपलब्ध]

सुंदर पक्की जिल्द के साथ छपी हुई प्रस्तुत पुस्तक आज ही खरीदिए अपने घर में बसाइए..... पढिए और पढाइए.....

श्री नवकार महामंत्र का भौगोलिक विस्तार

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

संसार के अन्य किसी भी मंत्र का इतना अगाध गंभीर अर्थ नहीं है, जितना महासागर जैसे गहन अर्थ एक मात्र नवकार महामंत्र का है । इस मंत्र में प्रयुक्त शब्द अपना-अपना स्वतंत्र विषय प्रदर्शित करते हैं । प्रस्तुत निबंध में महामंत्र के पांचवें पद में प्रयुक्त "लोए" से द्योतित लोक स्वरूप का विचार करेंगे । लोक संबंधी यह मीमांसा मनुष्यों की जनसंख्या अर्थ में न होकर भौगोलिक, खगौलिक एवं ब्रह्माण्ड विषयक है । Geographical, Astronomical & Cosmological है ।

"नमो लोए सव्व साहूणं" इस पांचवें पद में "लोए" शब्द रखकर ऐसा अर्थ किया है कि—लोक में रहे हुए सभी साधुओं को नमस्कार हो । लेकिन प्रश्न यह खड़ा होता है कि... किस लोक में ? कितने लोक क्षेत्र में ? ऐसे लोक कितने है ? उनमें से किस लोक में ? कहां है यह लोक ? इस तरह लोक की परिभाषा एवं विस्तार समझकर उसमें भी किस लोक में और कितने लोक क्षेत्र में कौन से परमेष्ठी भगवन्त का कहां स्थान विशेष है ? यह भी ख्याल आ सकें । आगमादि जैन वाङ्मयों में ब्रह्माण्ड विषयक जो ज्ञान प्राप्त होता है उसका संक्षिप्त सारांश इस प्रकार है ।

लोक का स्वरूप —

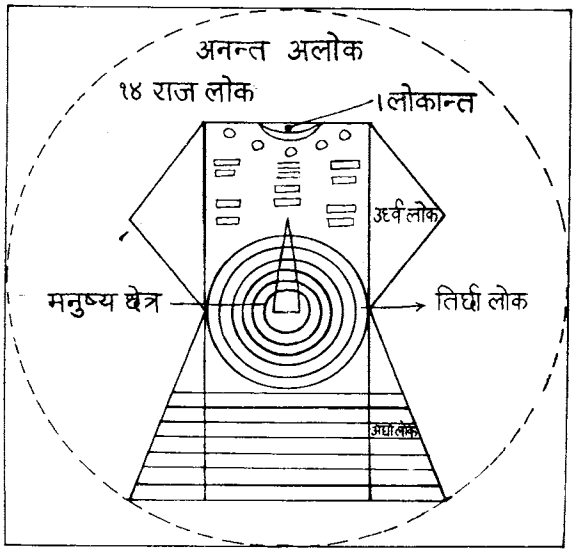

ब्रह्माण्ड शब्द वैदिक परम्परा में प्रयुक्त है । जबकि जैन परिभाषा में "लोक" शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त है । श्रमण संस्कृति के वाङ्मयों में ब्रह्माण्ड शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है । क्योंकि सैद्धान्तिक दृष्टि से अर्थ में बहुत बड़ा अन्तर है । वैदिक संस्कृति सृष्टि कर्तृत्ववादी है । जबकि जैन संस्कृति सृष्टि शाश्वतवादी है । आर्हत् सर्वज्ञ प्रणीत सृष्टि स्वरूप इस प्रकार है—

अनन्त अलोक है । इसमें आकाश द्रव्य व्याप्त है । अत: अनन्त अलोकाकाश कहा गया है । आकाश अवकाश दाता गुणवाला द्रव्य होने से सभी जीव-अजीव द्रव्यों को जगह प्रदान करता है । ऐसे अनन्त अलोक के अनन्तवें भाग जितना छोटा सा मध्यवर्ती लोक है । अत: लोक से अनन्तगुना बड़ा अलोक है । यह अन्तरहित होने से अनन्त कहा जाता है । सीमा रहित होने से असीम कहा गया है । लोक 14 रज्जु प्रमाण होने से 14 राज लोक कहा जाता है ।

चित्र में दर्शाए अनुसार लोक क्षेत्र के अन्तर्गत 3 विभागों की कल्पना मुख्य रूप से करके 3 लोक या त्रिभुवन संज्ञा दी गई है । ऊपर के 7 राज लोक को ऊर्ध्वलोक, देवलोक या स्वर्ग भी कहा है । मध्यवर्ती असंख्य द्वीप समुद्रात्मक लोक को तिर्च्छालोक मनुष्य लोक भी कहा है । इसी तरह नीचे के 7 राजलोकवर्ती क्षेत्र को अधो लोक, नरक लोक या पाताल भी कहा है । तथा लोक के अन्तिम भाग को "लोकान्त" सर्वोपरि क्षेत्र कहते हैं । लोकाग्र शब्द भी लोक के अग्रिम भाग को कहते हैं ।

मंत्र पदों में "लोए" शब्द की अनुवृत्ति—

यद्यिप "लोक" शब्द का प्रयोग नवकार के एक मात्र पांचवें "नमो लोए सव्व साहूणं" पद में ही किया गया है । बार-बार सभी पदों में प्रयोग करने से पुनरावृत्ति ज्यादा हो जाएगी इसी कारण बार-बार न रखकर एक ही बार रखकर अनुवृत्ति से सब मंत्र पदों में जोड़कर अर्थ करना सुसंगत रहेगा । जैसे कि—

1. नमो लोए सव्व अरिहंताणं—लोक में रहे हुए सब अरिहंतों को नमस्कार हो ।
2. नमो लोए सव्व सिद्धाणं—लोकान्त में रहे हुए समस्त सिद्धों को नमस्कार हो ।
3. नमो लोए सव्व आयरियाणं—लोक में रहे हुए समस्त आचार्यों को नमस्कार हो ।
4. नमो लोए सव्व उवज्झायाणं—लोक में रहे हुए समस्त उपाध्यायों को नमस्कार हो ।
5. नमो लोए सव्व साहूणं—लोक में रहे हुए समस्त साधुओं को नमस्कार हो ।

इस तरह पश्चानुपूर्वी के क्रम से 5वें पद में प्रयुक्त लोए और सव्व दोनों शब्दों को पहले के चारों पदों में निवेश करने पर इस प्रकार अर्थ बैठता है । यद्यपि "लोए" शब्द पांचों पदों में प्रयुक्त एक ही है । लेकिन अर्थ भिन्न-भिन्न है । एक एक पद में प्रयुक्त लोए शब्द उन उन परमेष्ठी का निवास स्थान तथा उनका विस्तार उनका क्षेत्र सूचित करता है । इसलिए लोए शब्द का अर्थ भिन्न भिन्न होगा ।

पंच परमेष्ठियों के क्षेत्र का सूचक "लोए" शब्द—

पंच परमेष्ठी भगवन्तों में 2 देव और 3 गुरु मिलाकर पांच बनते हैं । 1. अरिहंत और दूसरे सिद्ध ये 2 देव तत्त्व में है । 1. आचार्य, 2. उपाध्याय और 3. साधु ये तीनों गुरु पद स्वरूप है । प्रथम पद "नमो अरिहंताणं" में जोड़ा गया "लोए" शब्द अरिहंत का स्थान निर्देश करता है । अरिहन्त कहां है ? किस और कितने क्षेत्र में है ? नामादि निक्षेपों की दृष्टि से विचार करने पर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से विचार होगा । 1. नाम, 2. स्थापना, 3. द्रव्य, 4. क्षेत्र, 5. काल, 6. भाव । इस समस्त निक्षेपों से विचारणा की गई है । 1. नाम से अरिहंत नाम तीनों लोक में सुपरिचित एवं सुप्रसिद्ध है । देवलोक में देवता भी "नमो अरिहंताणं" पद का ही जाप करते हैं, और नरक लोक में नारकी जीव भी "नमो अरिहंताणं" पद का ही जाप करते हैं तथा मनुष्य लोक में आज भी इसी पद का जाप चल रहा है । स्थापना निक्षेप से अरिहंत की मूर्ति (प्रतिमा) की स्थापना स्वर्ग, पाताल तथा मृत्युलोक के तीनों लोक में है । द्रव्य रूप से अरिहंत की आत्मा (जीव द्रव्य) चरम भव में एक मात्र मनुष्य क्षेत्र में ही होती है । क्षेत्र की दृष्टि से अरिहन्त तीनों लोक क्षेत्र में अमर है । काल की दृष्टि से भूतकाल में अरिहंत थे, वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र में है, तथा भविष्य में भी होते ही रहेंगे । भाव निक्षेप में समवसरण में देशना देते हुए सर्वज्ञ केवली सीमंधर स्वामी आदि 20 तीर्थंकर भगवान आज भी महाविदेह क्षेत्र में विचरमान है ।

अरिहन्त भगवान एक मात्र मनुष्य लोक में ही होते हैं । अनन्त भूतकाल में अनन्त अरिहन्त मनुष्य क्षेत्र में ही हुए हैं । वर्तमान में बीसों विहरमान तीर्थंकर भगवान भी मनुष्य लोक के 5 महाविदेह क्षेत्रों में ही होते हैं, और उनमें ही विचरण कर रहे हैं । अनन्त काल में भी कोई भी भगवान स्वर्ग-नरक में हुए ही नहीं है और भविष्य में होंगे ही नहीं । देवताओं के वैक्रिय शरीर में या नारकों के वैक्रिय शरीर में कोई भगवान कभी भी नहीं हुए और कभी होंगे भी नहीं । इस तरह अरिहन्त परमात्मा के होने का क्षेत्र भी मनुष्य क्षेत्र ही परन्तु नाम स्थापनादि के निक्षेपानुसार लोक क्षेत्र 14 राज लोक का हो जाता है ।

सिद्ध भगवन्तों का लोकान्त क्षेत्र—

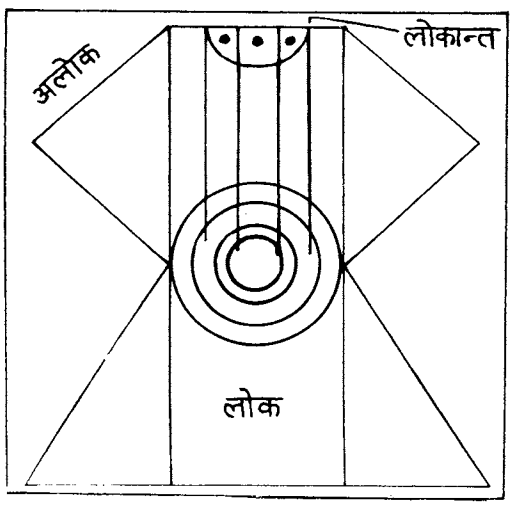

नवकार के दूसरे पद में "लोए" और "सव्व" शब्द की अनुवृत्ति लेने पर... "नमो लोए सव्व सिद्धाणं" पद बनता है । लोक में रहे हुए समस्त सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार हो । इसमें लोए शब्द स्पष्ट करता है कि... सिद्ध भगवन्तों का स्थान लोक में ही है । अलोक में नहीं है । "लोक" शब्द के साथ निषेधार्थक "अ" अक्षर जुड़ने से "अलोक" शब्द बना । अर्थात् लोक के क्षेत्र का, लोक जैसे स्वरूप का, या लोक गत पदार्थों का सर्वथा जहां निषेध हो, उसे अलोक कहते हैं । निषेध भी कैसा ? सामान्य अल्पकालिक नहीं त्रैकालिक शाश्वत निषेध है । अनन्त भूतकाल में भी लोक का एक परमाणु या एक भी जीव अलोक में अंश मात्र भी प्रविष्ट हुआ नहीं है । और वर्तमान में संभावना है ही नहीं । तथा अनन्त भविष्य में भी लोक की सीमा का एक तसु भर भी उल्लंघन करके कोई एक भी परमाणु या जीव अलोक में जाएगा नहीं । अत: चित्रानुसार देखिए लोक के सबसे ऊपरी भाग में जहां सीमा निश्चित है उसके उस पार अलोक है और अलोक में एक मात्र आकाश के सिवाय अन्य किसी भी पदार्थ का अस्तित्व है ही नहीं । और कदापि एक समय मात्र के लिए भी कभी किसी का प्रवेश मात्र भी संभव नहीं होगा ।

प्रश्न ऐसा उठता है कि... तो क्या लोक के चारों तरफ दशों दिशा में किसी प्रकार की सीमा या कोट जैसी दिवाल या परकोटा आदि बनाया गया है ? यदि हां ? तो किसने बनाया ? कब बनाया ? किस द्रव्य का बनाया ? आखिर बनाने वाले कौन था ? कितने काल में बनाया ? पत्थर या ईट आदि किस आधार पर लगे ? कहां रखे ? क्या कभी किसी के द्वारा बनाई वस्तु शाश्वत हो सकेगी ? ऐसे 14 राज लोक के चारों तरफ की दशों दिशाओं का क्षेत्र विस्तार कितना ? इतने लम्बे चौड़े विस्तार में सर्वत्र सीमा बांधना कहां संभव है ? अत: ये सब विचार निरर्थक है। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय जैसे 14 राजलोक व्यापी पदार्थ ही अपने आप में गति, स्थिति सहायक ऐसे गुणवाले पदार्थ है जिनके आधार पर ही लोक की सीमा आदि सब स्वयंभू है। तीनों काल में शाश्वत रूप से नित्य है जहां-जहां धर्मास्तिकाय पदार्थ होगा वहां गति होगी, और ठीक इससे विपरीत जहां इसकी सत्ता नहीं होगी वहां जीव और पुद्गल की गति भी नहीं होगी। इसी तरह जहां-जहां अधर्मास्तिकाय पदार्थ होगा वहां-वहां जीव और पुद्गल की स्थिति स्थिरता होगी, जहां इस पदार्थ का ही अस्तित्व नहीं होगा वहां किसी की भी स्थिति संभव ही नहीं होगी। दूसरी तरफ ये दोनों पदार्थ समानान्तर एक साथ रहे हुए हैं। और सम्पूर्ण 14 राजलोक में सर्वत्र फैले हुए है, समान रूप से हैं। ऐसी अंश मात्र भी कोई जगह नहीं है कि जहां धर्मास्तिकाय हो परन्तु अधर्मास्तिकाय सर्वथा न हो यह संभव ही नहीं है। अत: सारा लोक इन दोनों के आधार पर है और दोनों का आश्रय स्थान दाता आकाश पदार्थ है। आकाश भी गुणवान द्रव्य है। अवकाश-जगह देने का गुण इसका है।

सबका आधारभूत बना हुआ यह आकाश द्रव्य सबको अपने में समा लेता है। यद्यपि एक ही आकाश अखण्ड रूप से लोक और अलोक दोनों में समान रूप से है। सर्वत्र इसका गुण भी समान रूप से रहता है। फिर भी धर्मास्तिकाय जैसे गति सहायक और अधर्मास्तिकाय जैसे स्थिति सहायक द्रव्य के कारण लोक की स्थिति है। लोक का भौगोलिक स्वरूप इनको आभारी है। ऐसे लोक का क्षेत्र 14 रज्जु प्रमाण है जिसमें जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य अनन्तानन्त की संख्या में रहते हैं। जीव द्रव्य अपने आप में त्रैकालिक शाश्वत अविनाशी सक्रिय ज्ञानादि गुणवान द्रव्य है। प्रति शरीर में भिन्न-भिन्न और एक शरीर में एक साथ अनन्त जीव भी रहते हैं। इसी तरह पुद्गल द्रव्य के स्कंधादि 4 भेद हैं। परमाणु अनन्तानन्त संख्या में है। इन दोनों जीव और अजीव के पुद्गल द्रव्य का संयोग वियोग होता ही रहता है। अजीव के पुद्गल द्रव्य के 8 प्रकार के भिन्न-भिन्न परमाणुओं में अन्तिम आठवीं कार्मण वर्गणा के परमाणु इस लोक में अनन्तानन्त है। जिनका अपने राग-द्वेषादि वश जीव ग्रहण करके कर्म पिण्ड के रूप में अपने आत्म प्रदेशों पर बांधता है। इससे अपने ही आत्म गुणों का आवरण हो जाता है। ऐसे आच्छादक कर्मावरण युक्त जीव संसारी कहलाता है। जो चारों गति के 84 लक्ष योनियों में जन्म मरण धारण करते हुए संसार चक्र में परिभ्रमण करता रहता है।

जिस दिन इस कर्म बंध से सम्पूर्ण रूप से जीव और कर्म का सर्वथा वियोग हो जाय बस, उस समय कर्म मुक्त जीव सिद्धशिला पर 1 समय मात्र में पहुंचकर सिद्ध बुद्ध मुक्त बन जाता है। सिर्फ 15 कर्म भूमि क्षेत्र में से ही सिद्ध होते हैं। तिर्छालोक के असंख्य द्वीप समुद्रों के मध्यवर्ती केन्द्रस्थ सिर्फ ढाई द्वीप समुद्र ही मनुष्य क्षेत्र है। यह क्षेत्र असंख्य में से सिर्फ 45 लाख योजन का क्षेत्र ही मनुष्य क्षेत्र है। इसे ही नर लोक या मनुष्य लोक कहते हैं। इसमें तो 101 क्षेत्र हैं। लेकिन इनमें से मात्र 15 कर्म भूमि के क्षेत्र में से जीव मोक्ष में जाते हैं। इस नर लोक के क्षेत्र के ही माप प्रमाण का 7 राज लोक ऊपर (समस्त 14 राज लोक के ऊपर) 45 लाख योजन विस्तार का सिद्ध क्षेत्र है। यद्यपि द्वीप समुद्र का प्रमाण नर लोक में है। ऊपर लोकान्त भी 1 राज लोक चौड़ा जरुर है। जो असंख्य योजनों के विस्तार वाला है। वहां ऊपर किसी भी प्रकार के द्वीप समुद्र आदि की व्यवस्था नहीं है, अत: वैसी कोई सिद्धों की सीमा बनती नहीं है। फिर भी नरलोक के हिसाब से मुक्त होने वाली आत्मा बिल्कुल सीधी दिशा में 90^0 के कोन की दिशा में सीधी उपर ही जाती है। इस 90^0 के कोन में रत्तीभर भी फर्क पड़ता ही नहीं है।

अत: सिद्धात्मा सीधी जाकर जहां लोक का अर्थात् धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय पदार्थों के अस्तित्व का अन्त आ जाता है, और जहां से आगे अलोक शुरु होता है ऐसे लोकान्त भाग में स्थिर हो जाती है। नीचे से ऊपर की तरफ जाते हुए हम उस अन्तिम भाग को लोकान्त भाग कहते हैं, और ऊपर से नीचे की तरफ उतरने के समय "लोकाग्र" भाग कह सकते हैं। दोनों नमो से वाच्य प्रदेश वह एक ही है। वहीं अनन्त सिद्ध भगवान अशरीरी अवस्था में आत्म प्रदेशात्मक पिण्डस्वरूप ही बिराजमान है। जिनकी स्थिति सादि अनन्त है अत: अनन्तानन्त काल तक उन्हें सदा वहीं रहना है। उपरोक्त स्वरूप समझकर जब भी "नमो लोए" "सव्व सिद्धाणं" दूसरे पदरूपी मंत्र से सिद्धों को नमस्कार करने हो तब "लोए" शब्द से सिद्ध भगवन्तों का भौगोलिक क्षेत्र एवं विस्तारादि उपरोक्त समझना चाहिए। इस अर्थ में अर्थघटन करना चाहिए।

गुरु पद में प्रयुक्त "लोए" शब्द से अभिप्रेत "लोक"—

अरिहंत और सिद्ध इन दो देवतत्त्व के बाद गुरु पद का क्रम आता है। आचार्य, उपाध्याय और साधु ये तीन गुरु के स्थान पर हैं, गुरु पद पर है। नवकार महामंत्र में तीसरे पद "नमो आयरियाणं" में आचार्य भगवन्तों को नमस्कार किया गया है, चौथे "नमो उवज्झायाणं" पद में उपाध्याय जी महाराजों को नमस्कार किया गया है। और पांचवें पद "नमो लोए सव्व साहूणं" में लोक में रहे हुए सभी साधु महाराजों को नमस्कार किया गया है। अत: आचार्य, उपाध्याय और साधु तीनों की गणना गुरु के स्वरूप में है। सभी पदों में "लोए" और "सव्व" शब्दों को स्वतंत्र रूप से उल्लेख बार-बार न करते हुए मात्र एक ही बार पांचवें पद में सामूहिक रूप से प्रयोग किया गया है। फिर भी अनुवृत्ति से सभी

पदों में अर्थ घटन करते हुए "लोए" और "सव्व" शब्द लगाकर अर्थ करने पर उन-उन परमेष्ठी भगवन्तों का क्षेत्र-विस्तार का ख्याल आ सकता है ।

साधु महाराज, उपाध्यायजी और आचार्यों के शिष्य स्वरूप हैं । अत: पद पर बिराजे हुए गुरु के स्वरूप में आचार्य और उपाध्यायजी म. है । अत: आचार्य, उपाध्याय ये दोनों उपाधि पद स्वरूप है । आचार्य, उपाध्याय व्यवस्था के पद है । यह जैन शासन की व्यवस्था है । साधु मुख्य व्यक्ति है । ये भी गुरु पद पर है । तीनों साथ ही रहते हैं । इसलिए तीनों का रहने का, होने का भौगोलिक क्षेत्र भी एक ही है । याद रखिए ! स्वर्ग-देवलोक में और नरक क्षेत्र के अधो लोक में अनन्त काल में भी कभी कोई साधु, मुनि, उपाध्याय, आचार्य आदि हुए ही नहीं है, इसी तरह 15 कर्म भूमियों के व्यतिरिक्त अन्य अकर्मभूमि आदि ढाइ द्वीप के विशाल नरलोक में भी अनन्त काल में कोई एक भी साधु, उपाध्याय, आचार्यादि हुए नहीं है, और भविष्य में कभी होंगे भी नहीं । अत: आचार्यादि सभी गुरुओं के लिए त्रैकालिक शाश्वत रूप से नित्य रूप से एक मात्र क्षेत्र ढाइ द्वीपों की 15 कर्म भूमियां ही है । अत: "नमो लोए सव्व साहूणं" पद का अर्थ करते समय "लोए" पद का यही अर्थ करना पड़ेगा कि... ढाइ द्वीप की 15 कर्म भूमियों के क्षेत्र में रहे हुए सभी साधु महाराजों को नमस्कार हो । इसी तरह 4थे, और 3 रे पदों का अर्थ करते समय भी यही अर्थ करना पड़ेगा । मनुष्य लोक के ढाइ द्वीप के 15 कर्म भूमि क्षेत्र में रहे हुए एवं समस्त आचार्य, उपाध्याय भगवन्तों को नमस्कार हो ।

इस तरह नवकार में प्रयुक्त "लोए" शब्द से भौगोलिक क्षेत्र का, लोक का अर्थ लिया गया है । इसलिए जिन पदों के साथ लोए शब्द जोड़ा जाता है उन परमेष्ठी भगवन्तों का क्षेत्र, स्थानादि इस लोए शब्द से अर्थ घटन करके समझना चाहिए । इस तरह नवकार का भौगोलिक क्षेत्र लोक के रूप में काफी विस्तृत है ।

राजस्थान राज्य के पाली जिले में – गोडवाड प्रदेश की मरुस्थली पर विश्वप्रसिद्ध राणकपुर तीर्थ के समीप – अरावली पर्वत माला की उत्तरी तलहटी में – चारों बाजु पहाड़ियों के बीच नदी के किनारे प्रकृति की गोद में स्थित करीब १७०० वर्ष प्राचीन ऐतिहासिक तीर्थ – **हथूण्डी तीर्थ में** —

समग्र विश्व की एक मात्र रेती-चुना–वालु–के संमिश्रण से बनी हुई — राता (लाल) रंग के वज्रलेप से सुशोभित – ५३" की भव्य अत्यन्त चमत्कारिक महान प्रभाविक प्रतिमा – **श्री राता महावीरस्वामी भगवान**

तथा

समग्र विश्व में एक मात्र अद्वितीय गुलाबी पाषाण में बनी ५१" की भव्य विशाल मूर्ति – **श्री गुलाबी महावीरस्वामी भगवान**

जहां सुप्रतिष्ठित एवं सुपूजित है ..... ऐसे श्री हथूण्डी तीर्थ में —

पू. पंन्यास प्रवर श्री अरुणविजयजी गणिवर्य महाराज की .....

प्रेरक प्रेरणा, सुपदेश एवं मार्गदर्शनानुसार नव निर्मित —

"श्री महावीर वाणी समवसरण मंदिर"

जी .... हां ..... समग्र राजस्थान में सर्वप्रथम, संपूर्ण विश्व में अपने प्रकार का एक अनोखा ..... ३ गढ युक्त, १२ प्रवेश द्वारों एवं १२ चौकियों-सामरणदि से सुशोभित पाषाण में बना यह समवररण मंदिर वास्तव में दर्शनीय है । चारों तरफ ४ महेन्द्र-ध्वज-वापिकाओं एवं भूमिगृह (भोयरे) तथा अशोक वृक्ष से सुशोभित इस समवसरण मंदिर में चौमुखजी श्री महावीरस्वामी भगवान मुलनायक के रूप में सुप्रतिष्ठित है । तृतीय गढ में श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु चौमुखजी के रूप में बिराजमान है । श्री वीर प्रभु के गौतमादि ११ गणधर, श्री पार्श्व प्रभु के १० गणधर विराजमान है । ४५ आगमों का आगम मंदिर है ।

आइए..... पधारिए..... **श्री हथूण्डी तीर्थ** की यात्रार्थ पधारिए..... समवसरण के दर्शन करके पावन बनीए..... सब प्रकार की सुविधाएं इस तीर्थ में उपलब्ध है ।

पश्चिमी रेल्वे के "फालना" स्टे. से बाली से बीजापुर होते हुए सीधे **हथूण्डी तीर्थ** पधारिए ।

मोक्षदायक महामंत्र में—बीजरूप—"नमस्कार की महत्ता"

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

प्रकृति में सर्वत्र पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति की प्रचुरता है । ये पांचों एक दूसरे के साथ संलग्न है । पृथ्वी के साथ तथा पृथ्वी के गर्भ में सर्वत्र पानी है । शायद पृथ्वी की अपेक्षा भी पानी का प्रमाण काफी ज्यादा है । आकाश में वायु सर्वत्र प्रसृत है । अग्नि प्रगट होती है और पुन: विलीन हो जाती है । वनस्पति सर्वत्र प्रसरी हुई है । पृथ्वी तल पर एवं जल में वनस्पति ने अपना अस्तित्व सर्वत्र रखा है । याद रखिए ! प्रकृति के ये पांचों घटक जीव सृष्टि ही है । इसे कोई ईश्वर सृष्टि मानने की भूल न करें तथा न ही अजीव सृष्टि मानने की भूल करें । न ही इसे कुदरत या माया के शब्दों से नवाजें । जी नहीं ! यह अनन्त जीवों के स्वरूप में है । जीव सृष्टि है । स्वकृत कर्मानुसार एकेन्द्रिय की जाति में तिर्यंच की गति में सूक्ष्म बादर ऊभय प्रकार के शरीर धारण कर स्थावर के स्वरूप में जन्म मरण धारण करते हुए जीवन जी रहे हैं ।

न कोई नियन्ता और न ही कोई संचालक तथा न ही कोई अन्य व्यवस्थापक की आवश्यकता है । फिर भी वनस्पति आदि ने अपनी परम्परा अनन्त काल से चलाई है । याद रखिए ! किसी वैज्ञानिक ने नीम या वटवृक्ष बनाया नहीं है । उसमें औषधिय गुणधर्म भरे नहीं है । इसी तरह न किसी वैद्य, हकीम या धन्वन्तरी ने कोई पौधा बनाया है । जी नहीं ! एक वृक्ष के बीज से उसकी परम्परा चलती ही रही, और सर्वत्र फैलती ही गई । बताइए, नीम का, वटवृक्ष का, बबूल का अस्तित्व कब से हैं ? कितनी सदियों से हैं ? शायद जगत् की कोई भी व्यक्ति नहीं बता पाएगी । लेकिन सत्य यह है कि अनन्तकाल से है । अपने बीजों, पत्तों आदि से ये अपनी परम्परा अनन्तकाल तक चलाते रहते हैं ।

किसने कल्पना भी की होगी कि... एक छोटे से बीज में इतने विशाल वटवृक्ष का स्वरूप संक्षिप्त रूप से समाया हुआ है । आप देख चुके होंगे कि 40-50 फीट ऊंचे ताड वृक्ष एवं नारियल का बड़ा लम्बा वृक्ष उसके छोटे से एक बीज में समाया हुआ है । कालान्तर में उस बीज को बोया जाता है और भविष्य में उसमें से विशाल ताडवृक्ष बनता है । एक छोटे से लिंबोडी के बीज से इतने घेराव वाला नीम वृक्ष होता होगा ? अत: उसकी उत्पादक क्षमता वाला बीज है तो वृक्ष की उत्पत्ति होती है । और भविष्य काल में उसकी परम्परा चलती रहती है ।

मोक्ष के बीज का अस्तित्व—

जैसे वृक्ष है तो बीज निश्चित है और सही सक्षम बीज के वपन पर पुन: वृक्ष होगा । इस तरह परम्परा अनन्तकाल तक चलती ही रहती है । ठीक इसी तरह मोक्ष है तो उसे प्राप्त करने का बीज भी होना ही चाहिए । शास्त्रों में मोक्ष को फल के रूप में कहा गया है । चरम फल, चरम पद, परम पद, परम धाम आदि अनेक नामों से मोक्ष को संज्ञा दी गई है । सही और सार्थक है । यदि मोक्ष फल है तो उसका घटक भूत बीज कौन सा है ? इस प्रश्न के उत्तर में "नमस्कार" को बीज रूप में सूचित किया गया है । जैसे बीज को जमीन में बोने पर सहायक घटक खाद, पानी, प्रकाश, हवा आदि मिलने पर उसका विकास होता है तथा धीरे-धीरे आहार आदि लेकर अपने शरीर का विकास करता हुआ एक दिन विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेता है । ठीक इसी तरह साधक को मोक्ष रूपी फल प्राप्त करने के लिए नमस्कार के बीज को जीवन में बोना पड़ता है तथा भावों से उसका सींचन करना पड़ता है । तब जाकर अन्त में मुक्ति के फल की प्राप्ति संभव होती है ।

यद्यपि मोक्ष रूपी फल के घटक बीज दर्शन, ज्ञान और चारित्र है । यह रत्नत्रयी मोक्ष साधक है । लेकिन नमस्कार के अन्दर इन तीनों का समावेश बहुत ही अच्छी तरह हो जाता है । अत: मोक्षैकलक्षी साधक जब मोह हेतुक नमस्कार करेगा तब उसमें रत्नत्रयी के तीनों दर्शनादि घटकों की साधना संयुक्त रूप से होती है । अत: नमस्कार दर्शनात्मक बने, ज्ञानात्मक बने एवं यही ही नमस्कार चारित्रात्मक बने तब जाकर मोक्ष हेतुक नमस्कार होगा । यद्यपि बाह्य रूप से तो नमस्कार कायिक (शारीरिक) ही दिखाई देगा । लेकिन अन्तर में मनोगत भाव जैसे होंगे वैसा नमस्कार होता जाएगा ।

महामंत्र में "नमो" पहले क्यों रखा है ?—

अरिहंतादि पांचों परमेष्ठी का महामंत्र में स्थान हो यह बिल्कुल उचित है, सही है । लेकिन नमस्कार को इतनी ज्यादा प्राधान्यता देने की आवश्यकता क्या थी ? लेकिन आप देख ही रहे हैं कि नवकार महामंत्र में "नमो" पहले रखकर नमस्कार को प्राधान्यता दी है । इतना ही नहीं अरिहन्तादि परमेष्ठी भगवन्तों का पद एक ही बार लिया गया है परन्तु नमस्कार वाचक "नमो" शब्द का 5 बार प्रयोग किया गया है । इस तरह संख्या की दृष्टि से भी नमो-नमस्कार को प्राधान्यता दी है ।

जैन धर्म जगत्कर्तृत्ववादी दर्शन नहीं है । अत: इस धर्म में अरिहन्तादि भगवान जीवों की रचना, सृष्टि उत्पत्ति, विलय तथा जीवों को सुख-दु:खादि के फल देने आदि किसी भी प्रकार का कार्य नहीं करते हैं । वीतराग स्वभावी सर्वज्ञ अरिहन्तादि भगवान अपने केवलज्ञान के जगत् के जीवों को उपदेश देकर मोक्षादि तत्त्वों का स्वरूप एवं मार्ग रूप धर्मादि दिखाते हैं, समझाते हैं । आगे जीवों को स्वयं को सोच समझकर चलना है । इस तरह अन्य धर्मों की तरह जैन धर्माभिप्रेत अरिहन्तादि ईश्वर सृष्टि से सृष्टा नहीं अपितु दृष्टा मात्र है । सृष्टा तो अनन्त जीव स्वयं ही है । जीव ही कर्ता है फिर अन्य को मानकर सच्ची यथार्थ व्यवस्था क्यों बिगाड़ना ? इसलिए अन्य धर्मों के ईश्वर और जैन धर्म के भगवान में यह जमीन- आसमान के जैसा रात-दिन का अन्तर है ।

अरिहन्त, स्वयं हमारे जैसे संसार के जीवों को मार्ग दिखाकर उपदेश दे देंगे । लेकिन जीव स्वयं अपना मानस, श्रद्धा और भाव बनाकर उसी रास्ते चलेंगे तो गन्तव्य स्थान तक पहुंचेंगे । इसलिए चलने वाला स्वयं जीव है और चलने की दिशा के दर्शक अरिहन्त परमात्मा है । अत: जीव नमस्कार करके अरिहन्तादि के प्रति अपना मानस भाव बनाएगा तब ही चल पाएगा । इसलिए अरिहन्तादि तीर्थंकर भगवान अनन्त उपकारी है । अत: प्रथम नमस्कार उपकार स्वीकृति का है । अत: साधक अरिहन्तादि परमेष्ठी भगवन्तों का अनुगामी है । पथदृष्टा के पीछे-पीछे उसी मार्ग पर चलने वाला साधक अनुगामी है । अत: जो अनुगामी होगा वही आगे गए हुए के पीछे चलकर उनके स्थान तक पहुंच पाएगा । इसलिए साधक के लिए मूल मंत्र है—**"महाजनो येन गत: स पन्था:"** महापुरुष जिस रास्ते चलकर महान बने हैं वही हमारे लिए भी मार्ग है, अर्थात् हम भी उसी रास्ते चलकर एक दिन उनके जैसे बन सकेंगे ।

नमस्कार-नमस्कार में अन्तर—

यह पहले ही कह चुके हैं कि... बाह्य दृष्टि से देखने पर नमस्कार की क्रिया काया से होती है । काया पौद्गलिक है । अत: सबका शारीरिक नमस्कार क्रियात्मक रूप में समान हो सकता है । लेकिन भावात्मक कक्षा सबकी अपने-अपने ज्ञान और श्रद्धा पर आधारित रहती है । एक हिन्दू साधक अपने ईश्वर को नमस्कार करते समय हिन्दू धर्म का सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त कर श्रद्धापूर्वक नमस्कार करेगा । हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों में ईश्वर ही सर्वेसर्वा है । सृष्टिकर्ता है । वही सुख, दु:ख फल दाता, स्वर्ग-नरक दाता, नियन्ता है । अवतारवाद की प्रक्रिया में मानने वाले हिन्दू धर्म में वह एक ही ईश्वर बार-बार आकर भिन्न-भिन्न रूप धारण करके जन्म लेता है । वही पुन: भगवान बनता है । अन्य कोई नहीं । तथा एकात्मवादी बनकर अद्वैतवादी साफ कहते हैं कि जगत् में मात्र एक ही आत्मा का अस्तित्व है वह है—ईश्वर । बस, उसके अतिरिक्त दूसरी आत्मा जगत् में है ही नहीं । ये जो संसार में अनन्त जीव दिखाई दे रहे हैं ये तो सिर्फ मेरे ही अंश रूप है । **"ममैवांऽशो जीवो नाऽपरो"** ऐसा पाठ स्पष्ट है ।

अब इस प्रकार के सिद्धान्त की बात सुनकर कोई भी साधक कभी भी ईश्वर भगवान बनने की इच्छा तो कर ही नहीं सकता है । अरे ! इच्छा तो क्या साधक ऐसा स्वप्न भी नहीं देख सकता है । बस, सर्व शक्तिमान कर्ता, सृष्टा एवं फलदाता ईश्वर को नमस्कार करके सुखादि की याचना कर सकता है या फिर सद्भाव बढने पर श्रद्धा से उपरोक्त अर्थों में गुणगान करते हुए नमस्कार कर सकता है ।

लेकिन जैन धर्म की दार्शनिक सिद्धान्तधारा ही अलग प्रकार की है । अरिहन्त भगवान न ही कर्ता, सृष्टा या फलदाता है, और न ही सर्जन विसर्जनहार है । तथा न ही अवतारवाद की कोई ऐसी मान्यता है कि बार-बार वही अवतार लेकर पुन: भगवान बनता ही रहे ऐसी कोई ठेकेदारी भी अरिहन्त की नहीं है । संसार में अनन्त आत्माएं है । कोई भी आत्मा आगे चलकर सही साधना करके भगवान बन सकती है तथा अरिहन्त भगवान किसी भी प्रकार के सुख-दु:खादि के फलदाता नहीं है, न ही स्वर्ग नरक दाता है । अत: जिनेश्वर भगवान का अनुगामी जैन अनुयायी कभी भी सुख की याचना हेतुक नमस्कार नहीं करेगा तथा सृष्टि के सर्जन विसर्जन हेतु भी नमस्कार नहीं करेगा । हां, साधक स्वयं अरिहंत बनने के लिए, सिद्ध बनने की भावना से जरुर नमस्कार करेगा तथा उसके माध्यम रूप कर्म क्षय के लिए जरुर नमस्कार करेगा । जैन धर्म में आदिनाथ-ऋषभदेव से महावीर स्वामी तक सभी भगवान की अलग-अलग जीवात्मा है । कोई एक भी बार वापिस आकर भगवान नहीं बने हैं । इस तरह अपने-अपने धर्म के सिद्धान्तों के ज्ञान के आधार पर जीव वैसे नमस्कार करेंगे । बाह्य शारीरिक नमस्कार समान होते हुए भी आन्तरिक ज्ञान, श्रद्धा के अध्यवसाय जन्य भावों के कारण भिन्नता जरुर रहती है । इसलिए इससे यह सिद्ध होता है कि... नमस्कार करने के

पहले नमस्करणीय भगवानादि का ज्ञानादि सही सम्यग् होना आवश्यक है । अत: सामान्य भाषा में मात्र इतना ही कहते हैं कि— "खूब सोच समझकर नमस्कार करना । इसमें "समझ" का ही अर्थ जानकारी, ज्ञान है ।

नमस्कार क्रियात्मक है—

चेतन जीवात्मा सक्रिय तत्त्व है । जड़ की तरह सर्वथा निष्क्रिय नहीं है । उसमें स्व-स्व कर्मानुसार प्राप्त किये हुए शरीर को धारण करने के कारण अपने शरीर द्वारा तथाप्रकार की क्रिया करता रहता है । काया के अंगों को नमाने की क्रिया को नमस्कार कहते हैं । वैसे काया के अंग शारीरिक कसरत, व्यायाम और आसनों आदि में भी नमते ही है । लेकिन वहां पर हेतु श्रद्धा, ज्ञान, भावना आदि भगवान के प्रति भाव आदि वाली न होने के कारण शरीर के अंग नमने के बावजूद भी वे नमस्कार नहीं कहलाते हैं । यदि कहलाते होते तो सैंकड़ों किस्म के भिन्न-भिन्न नमस्कार हो जाते । एक "सूर्य नमस्कार" के आसन में सूर्यनारायण भाष्कर सवितु: को भगवान् मानकर उनके सामने नमस्कार करने की दृष्टि से आसन की वैसी अवस्थाओं का क्रमश: संयोजन किया है ।

नमस्कार में शरीर के मुख्य अंगों को नमाने की क्रिया की जाती है । शरीर के मुख्य अंगों में सिर (मस्तिष्क) प्रधान अंग है । फिर हाथ पैर आदि है । इस तरह जैन धर्म की परम्परा में 2 पैर + 2 हाथ और 1 उत्तमांग-सिर । ये पांचों अंग झुकाकर शरीर का संकुचन कर जमीन पर स्पर्श करते हैं । अत: इसे पंचांग प्रणिपात कहते हैं । ऐसे ही खड़े रहने पर पैर तो जमीन को स्पर्श किये हुए ही है लेकिन घूटने जमीन पर स्पर्श करने, और इसी तरह दोनों हाथ की कोनियां एवं हथेली खड़ी करके नमस्कार मुद्रा में रखकर उसे भी जमीन पर स्पर्श करके तथा अन्त में सिर का ललाट भाग भी जमीन पर स्पर्श करने को पंचांग प्रणिपात कहते हैं । शरीर के पांचों मुख्य अंग पूरी तरह झुककर, मुड़कर जमीन पर स्पर्श करते हैं । ऐसी नमस्कार की शारीरिक क्रिया के साथ मानसिक कक्षा के भाव भी ज्ञान और श्रद्धा के आधार पर सम्यग् कक्षा के बनते हैं ।

सामाजिक व्यवहार के, शिष्टाचार के नमस्कार में सिर्फ हाथ जोड़ने का साथ ही हल्का सा सिर झुकाने का इतना सा ही रिवाज प्रचलित है । पूरी काया झुकाकार जमीन को स्पर्श करने की बात नहीं है । विदेशों की धरती पर... हाथ से हाथ मिलाने मात्र का रिवाज है । इसमें देश-देश में भिन्न-भिन्न जाति और समाजों में भिन्न-भिन्न रिवाज और पद्धतियां प्रचलित है । लेकिन ये मात्र शिष्टाचार के प्रतीक है । भाव, ज्ञान, श्रद्धा तथा मोक्षादि किसी भी प्रकार के फल या कर्म क्षयादि किसी के साथ इनका कोई संबंध नहीं है । अत: लौकिक और लोकोत्तर दोनों कक्षा के नमस्कारों का प्रचलन है । लौकिक कक्षा के नमस्कारों में शिष्टाचार परक नमस्कार की गणना होती है । जबकि कर्म क्षय हेतुक भाव-श्रद्धापूर्ण नमस्कार यह लोकोत्तर कक्षा का नमस्कार होगा । लौकिक कक्षा का नमस्कार समाज में लोगों के बीच शिष्टाचार के व्यवहार में ही सीमित रहता है । जबकि लोकोत्तर कक्षा का सर्वश्रेष्ठ नमस्कार देव गुरू धर्म समक्ष कर्म क्षय हेतुक श्रद्धा भाव पूर्वक उपयोग में आता है ।

हिन्दू संस्कृति में साष्टांग दंडवत् नमस्कार की पद्धति प्रचलित है । वह भी श्रेष्ठ कक्षा की है । सम्पूर्ण समर्पित भाव से देव, गुरु के समक्ष पूरे उल्टे शरीर जमीन पर सो जाने जैसा यह साष्टांग नमस्कार हैं । लेकिन इसमें झुकाव नहीं है । नमने जैसी झुकाव की अवस्था नहीं है । जैसे हम सीधे खड़े हैं वैसे ही सीधे जमीन पर हैं । फिर भी भाव श्रद्धा की कक्षा उसे श्रेष्ठ बना देती है । इस प्रकार नमस्कार कायिक क्रिया प्रधान है ।

गुण प्रधान नमो भाव— का विनय स्वरूप—

गुण प्रधान नमो भाव—का विनय स्वरूप की जाती क्रिया-नमस्कार भी कायिक है । काया की सभी प्रवृत्तियां क्रिया प्रधान रहती है । वही मनोयोग में जाकर मानसिक बन जाती है । और आत्मा की तरफ से ज्ञान श्रद्धा की भावना उसमें मिलने पर वह भाव प्रधान बन जाती है तथा स्थिरता की कक्षा में पहुंचकर वह गुणात्मक रूप धारण कर लेती है । अत: गुण के रूप में उसे स्थिरता की कक्षा में लाने के लिए क्रिया करनी आवश्यक है । जिस तरह दूध पर संस्कार करके दहीं फिर छाछ, फिर मंथन की क्रिया से मक्खन, फिर उसे गरम करके घी बनाते हैं । घी बनाने की प्रक्रिया तक सारी क्रियाएं क्रमश: चलती रही । अन्त में दूध की शक्ति का स्थिरीकरण घी के स्वरूप में हो गया । अब घी अपने स्वरूप में वर्षो तक स्थिर-स्थायी स्वरूप में रहेगा । अब विकृति नहीं आएगी । लेकिन घी के पहले की एक भी पर्याय स्थिर स्थायी स्वरूप वाली नहीं है । दूध-दही-मक्खन किसी को भी स्थायी स्वरूप में नहीं रखा जा सकता है । दूसरे चौथे दिन विकृति आ जाएगी । लेकिन अन्तिम कक्षा में पहुंचा हुआ घी सैंकड़ों वर्षो तक रखा जा सकता है । इस स्थायी अवस्था में वह वर्षो तक बिना विकृति के रहेगा ।

ठीक इसी तरह कायिक नमस्कार यह प्राथमिक कक्षा की क्रिया है । आगे बढकर यही मानसिक कक्षा की बन जाय तब उसमें भावों का निवेश होगा । ज्ञान-श्रद्धादि से सुसंस्कारित करने पर वही भाव पूर्वक की हो जाएगी । और श्रद्धा के घर में स्थायी स्वरूप धारण कर वह गुण स्वरूप बन जाती है । नमस्कार कायिक की प्रथम कक्षा में क्रिया प्रधान है । मानसिक भूमिका में पहुंचकर वही "नमो भाव" बन जाता है । जैसे दूध ही जलकर मावा बन जाता है वैसे और आगे ज्ञान और श्रद्धा से अधिवासित होकर वे ही नमो भाव स्थायी स्वरूप में आत्मा में पहुंचकर

विनय के रूप में गुण स्वरूप बन जाता हैं । क्रिया सदाकाल या दीर्घकालिक नहीं है । जबकि नमो भाव और विनय गुण सदा काल स्थायी भाव वाले हैं । इसी कारण व्यवहार में काया जब नमस्कारादि की क्रिया करने का साथ छोड़ देती है, या रुग्णावस्था में, फ्रेक्चर एवं प्लास्टर की अवस्था में जब झूकना, मुड़ना कुछ भी नहीं कर पाती है, पंचांग प्रणिपातादि किसी भी प्रकार की कोई क्रिया नहीं कर पाती है ऐसी अवस्था में भाव प्रधान स्थायी रूप से प्रगट हुआ विनय गुण नमो भाव काम करता है । अब काया के बजाय मन काम करेगा । काया क्रिया की वाहक है जबकि मन भावों का एवं गुणों का वाहक है । वचन भी शाब्दिक रूप से वाहक बनता है । आखिर तो तीनों ही आत्मा के लिए माध्यम रूप से योग स्वरूप है । अत: काय योग, मनोयोग एवं वचन योग ये तीनों योग कहलाते हैं । तीनों का कार्य क्षेत्र भिन्न-भिन्न है ।

नमस्कार क्रियात्मक रूप में जब कायिक रहता है तब आत्मा को 30% से 40% लाभ कराता है । वाचिक बनते हुए काया की क्रिया के साथ 50% तक प्रतिशत मात्रा पहुंचाता है और मनोयोग की भाव कक्षा पर पहुंचता है तब 90% और अन्त में गुणात्मक कक्षा में स्थायी स्थिर स्वरूप बन जाता है तब 100% लाभ कराता है । दूध में से पानी जलाने की क्रिया करने पर जैसे वह मावा बन जाता है वैसे ही नमस्कार की क्रिया में से जलीय अंश की तरह दोषादि निकाल देने पर और नमस्कार की क्रिया हजारों बार कर लेने के पश्चात्-अन्त में जाकर वह विनय गुण का रूप धारण कर लेता है । आयुर्वेद में जैसे अभ्रक आदि को खरलीकरण प्रक्रिया में घूटकर बनाया जाता है तब वह भस्म बन जाती है । सामान्य दिखाई देती वह कच्ची वस्तु भी प्रक्रिया विशेष से गुणवाली बन जाती है । अब उसे शतपुटी अभ्रक या सहस्त्रपुटी अभ्रक के रूप में वैद्य उपयोग में लेगा । कीमत एवं गुणों में वह अनेक गुणी बन जाती है । ठीक इसी तरह नमस्कार की क्रिया हजारों लाखों बार करते-करते वह विनय गुण रूप में स्थिर स्थायी रूप धारण करके अनेक गुना महत्व वाला बन जाता है ।

1. यदि कोई नमस्कार की क्रिया अच्छी करता है परन्तु विनय गुण नहीं है ।
2. दूसरा कोई नमस्कार की क्रिया अच्छी करता है, और विनय का गुण भी काफी है ।
3. तीसरा कोई नमस्कार की क्रिया करता ही नहीं है, फिर भी विनय का गुण अच्छा है ।
4. न तो कोई नमस्कार की क्रिया करता है । और न ही कोई विनय का गुण है ।

इस तरह 4 भेदों में चौथा तो सर्वथा गया बीता है । शेष 3 में से दूसरी कक्षा का सर्वश्रेष्ठ है । परन्तु 1ली और तीसरी कक्षा में दोनों में एक एक की न्यूनता है । परिणाम स्वरूप में गुणवत्ता घट जाती है । द्वि संयोगी ये चारों भंग जगत् के समस्त जीवों के है । संसार के सभी जीव इन चार भेदों के दृष्टान्त रूप है । फिर भी विनय गुण की उपस्थिति वाला विशेष लाभ में रहेगा ।

द्रव्य-भाव नमस्कार—

इत्थ नमुत्ति पयं दव्व-भाव संकोयरुव पूयत्थं ।
कर-सिर-नमाइ दव्वे मण पणिहाणाइ भाव नमो ।।

— शास्त्रकार महर्षि फरमाते हैं कि... नवकार के प्रथम पद "नमो अरिहंताणं" में प्रयुक्त "नमो" पद पूज्य भाव, भावपूजा के अर्थ में भी है । नमस्कार के 2 भेद है । 1. द्रव्य संकोच नमस्कार और 2. भाव संकोच नमस्कार । 1. द्रव्य संकोच नमस्कार में हाथ-मस्तिष्क, पैरादि शरीर के अंगों अवयवों को संकुचित करना है, अर्थात् मोड़कर झुकाने रूप पंचांग प्रणिपात है । अत: वर्तमान में जो हम पंचांग प्रणिपात रुप खमासमणे आदि देते हैं, वंदन-नमस्कार आदि जो करते हैं यह द्रव्य संकोच नमस्कार है । जबकि अन्दर से मन को नमाना या झूकाना यह भाव संकोच नमस्कार होता है । मन और काया दोनों के पुन: द्रिक संयोगी 4 भंग होते हैं ।

1. मन झुकता है परन्तु काया नहीं झुकती है ।
2. काया झुकती है तो मन सर्वथा नहीं झुकता है ।
3. मन भी पूरा झुकता है और काया भी पूरी झुकती है ।
4. मन और काया दोनों अंश मात्र भी नहीं झूकते हैं ।

इस तरह इन चारों भंगों में जगत् के सभी जीव उदाहरण के रूप में समा जाते हैं । संसार में सब प्रकार के जीव है । ऐसे अभिमान में अक्कड़, कषाय और मिथ्यात्व की जड़ें इतनी मजबूत होती है कि वे काया और मन दोनों से नमने के लिए तैयार ही नहीं है । ये चौथे प्रकार के जीव है । ऐसे अनेक हैं । कई जीवों के जीवन में सम्यग् भाव होते हैं अत: उनका मन दूर से नमन करता है परन्तु कषाय की मात्रा इतनी प्रबल है कि वे पास में प्रत्यक्ष रूप से सामने जाकर काया से नहीं झूकेंगे । नमस्कार नहीं करेंगे । ये प्रथम नम्बर के हैं । कई जीव अपने घर में सोते बैठे अपने

दुश्मन के भी सत्कार्यों की अनुमोदना करते हुए मन से नमस्कार जरुर कर लेंगे । लेकिन कषाय भाव की प्रबलता के कारण सामने जाकर हाथ जोड़ने या क्षमा याचना के लिए वे सर्वथा तैयार नहीं होंगे । ऐसे प्रथम क्रम के जीव है ।

कई जीव ऐसे भी है कि... दबाव में, व्यवहार में आकर या किसी के कहने आदि के कारण या क्रिया-विधि के क्रम में आने पर लौकिक व्यवहार से काया से झुककर नमस्कार कर लेंगे या क्षमा याचना कर लेंगे । परन्तु मन से वे कषाय भाव में ही रहते हैं । उनका मन नहीं झूकता है । काया से झूकने-नमने के बावजूद भी वे मन में कषाय भाव में रहकर वैर-वैमनस्य की गांठ बांधते रहते हैं ऐसे जीव दूसरे प्रकार के हैं ।

एक मात्र तीसरे प्रकार का जीव ही सर्वश्रेष्ठ कक्षा का है जो मन से भी भावपूर्वक नमता है, अहोभाव, पूज्यभाव रखता है और काया से भी बराबर नमस्कार की सम्पूर्ण शुद्ध क्रिया करता है । वही सच्चा लाभ प्राप्त करता है । ऐसा तीसरे क्रमांक वाला जीव ही निर्जरादि का लाभ प्राप्त करता है । नवकार में नमो पद से नमस्कार करने वाले ऐसे जीव ही योग्य पात्र कहलाते हैं । वे ही कल्याण साध सकते हैं ।

कषाय भाव नाशक नमस्कार—

8 कर्मों के मुख्य राजा मोहनीय कर्म के घर में राग-द्वेषादि के अवान्तर भेदों में क्रोध-मान-माया और लोभ ये चारों है । द्वेष भाव के घर में क्रोध और मान है तथा राग के घर में माया और लोभ है । मान-अभिमान, नमस्कार-नम्रता का नाशक है । जिस जीव के जीवन में मान, अभिमान, दर्प, घमण्ड का प्रमाण (उदय) जितना ज्यादा रहता है उसके जीवन में नमस्कार की प्रवृत्ति नहीं रहेगी । नम्रता के परिणाम, नमो भाव और विनय गुण का अंश भी नहीं रहेगा । गुण और क्रिया दोनों के अभाव में वह शून्यावकाश में जीता है । कषाय भावों की तीव्रता भारी कर्म बंध कराती है ।

इसी तरह क्रोध जब रहता है तब नमस्करणीय देव गुरु एवं देव देवियों आदि के प्रति पूज्य भाव सद्भाव बढने ही नहीं देता है । कषाय के साथ मिथ्यात्व की मात्रा और ज्यादा मिल जाने के कारण अहोभाव, पूज्यभाव बिल्कुल बढने ही नहीं देता है । राग के घर में जाओ तो माया-कपट की छल वृत्ति में जीव नमस्कार कर लेगा । ना नहीं कहेगा क्योंकि राग के घर में रहकर उसकी पुष्टी करते हुए अपना स्वार्थ साधते हुए जीना है । इसलिए नमस्कारादि के लिए ना नहीं कहेगा । परन्तु माया, लोभादि भी आखिर तो कषाय के ही घटक अंग है । अत: नम्रता का गुण या नमो भाव या विनय गुण के संस्कार आदि अन्दर में कुछ भी नहीं रहेगा । वह आन्तर गुण वैभव से खोखला रहेगा । यहां तक कि दंभ के भाव में आन्तरिक रूप से बदला लेने के लिए, स्वार्थ साधने के लिए वह बाह्य व्यवहार में दिखाने के लिए नमस्कारादि सब कुछ करेगा, परन्तु उसके लिए नमस्कार की कोई महत्ता नहीं है । मात्र उसे अपना स्वार्थ साधना है और दूसरी तरफ बाह्य व्यवहार से नमस्कार करने पर विश्वास संपादन की सिद्धि हो जाती है, जो कि उसके कार्य या स्वार्थ साधने में सहायक बनती है । कभी-कभी ऐसे मायावी नमस्कार की क्रिया के माध्यम से विश्वास संपादन करके अपने नमस्करणीय गुरु आदि का खून करके उनको मारने का कुकृत्य भी कर बैठते हैं । ऐसे भी दृष्टान्त है ।

चौथा कषाय लोभ है । लोभ कषाय के आधीन होकर भी जीव नमस्कारादि की क्रिया का व्यवहार करते हैं । आखिर लोभ भी कषाय ही है । यह याचक वृत्ति में भिखारी जैसा बन जाता है । अत: नमस्कार करता भी है तो सामने नमस्करणीय देव-गुरु आदि की महत्ता एवं पूज्यता, श्रेष्ठता, गुणात्मकता आदि कुछ भी न देखते हुए एक मात्र मुझे जो चाहिए.वह मिल रहा है कि नहीं ? मात्र इसी बात का ध्यान रखते हुए नमस्कार करता है । अत: ऐसे लोभी के लिए नमस्कार की क्रिया का कोई महत्व नहीं है, और इसी तरह नमस्करणीय देव गुरु आदि किसी का भी कोई महत्त्व नहीं है । न कोई भावादि की विशुद्धि है । न कुछ श्रद्धा या ज्ञान या भावना या कुछ भी नहीं है । एक मात्र मुझे इच्छित पदार्थ की प्राप्ति होनी चाहिए । इतनी ही बात से मतलब है । इष्ट प्राप्ति को प्रधान रूप से लक्ष में रखकर नमस्कारादि क्रिया प्रवृत्ति धर्म के नाम पर करने वाला न तो कोई रागी द्वेषी देव-देवी का विचार करता है और न ही कोई वीतरागी सर्वज्ञ का । उसके लिए सभी समान है । न कोई श्रेष्ठ है और न कोई निकृष्ट । भगवान वीतरागी सर्वज्ञ हो या न हो मुझे क्या करना है ? क्या मतलब है ? मुझे तो इच्छित पदार्थ की प्राप्ति होनी चाहिए । बस ! यदि प्राप्ति होती है तो मैं हजारों नमस्कार करने के लिए तैयार हूं । लाखों-करोड़ों नवकार आदि मंत्रों को जपने के लिए तैयार हूं । सब प्रकार का धर्मादि करने के लिए तैयार हूं । चाहे वह धर्म सम्यग् हो या मिथ्या ? देव और गुरु भी भले सम्यग् हो या मिथ्या स्वरूप वाले हो मुझे कोई मतलब नहीं है । मुझे एक मात्र इष्ट पदार्थ की प्राप्ति होनी चाहिए । इससे अधिक कुछ भी नहीं चाहिए । ऐसे विचार लोभी के होते हैं ।

अनादिकालीन कर्म कृत नमस्कार—

कर्म आत्मा के साथ अनादि-अनन्त काल से लगे हुए ही है तथा कर्म विषय-कषाय की प्रवृत्तियों से जन्मे हुए हैं । राग द्वेष रूपी बीजों का बना हुआ वृक्ष कर्म है । जीव अनन्त काल से कर्मों के आधीन है । अत: जीव की समस्त प्रवृत्तियां कर्म जनित ही रही है । नमस्कार भी क्रिया-प्रवृत्ति स्वरूप है । अत: यह भी कर्म प्रेरित ही रही है । इसलिए हमारे नमस्कारादि कर्म के अनुकूल रहे है । जिनकी स्थिति ऊपर जैसा वर्णन किया है वैसी रही । अत: कर्म जनित नमस्कार या कर्मों के औदयिक भाव में किया हुआ कोई भी धर्म क्या काम आया ? शायद वह कर्मों की परम्परा

को और लम्बी कर गया हो । स्थिति बंध की दृष्टि से एक भी कर्म प्रकृति अनादि अनन्तकालीन नहीं है । सभी सीमित मर्यादित बंध स्थिति के काल की ही है । फिर भी ये कर्म आत्मा के साथ अनादिकालीन कैसे हैं ? और इसके साथ में अनन्त काल कैसे बीत गया ? इसके उत्तर में यही कहना है कि... एक कर्म जो अपनी मध्यम या उत्कृष्ट बंध स्थिति को अभी समाप्त कर भी नहीं पाता है कि... दूसरे वैसे ही सजातीय कर्म सैंकड़ों नए बंध जाते हैं वैसे प्रवृत्तियों के कारण । स तरह कर्मों की परम्परा काफी लम्बी हो जाती है । इन कर्मों के घर में विषय-कषाय प्रधान अंग है । ये ही कारण रूप में रहते हैं और पुन: उदय में आने पर कार्य रूप में भी ये ही रहते हैं । परिणाम स्वरूप जीव कर्म रहित बन ही नहीं पाता है । ऐसी स्थिति में कर्मों के प्रभाव में, उनके उदय और असर के नीचे तथा साथ ही जीव अपनी प्रवृत्तियां करता रहता है । अत: जैसे पाप की प्रवृत्तियां तो कर्म के कारण हुई, लेकिन धर्म की शुभ प्रवृत्ति जो आत्मा के गुणों के आधार पर होनी चाहिए थी वे भी न होकर कर्मों के आधीन ही हुई और होती रही तथा वर्तमान में भी हो रही है । जीवों का इतना उपयोग कहां है ? और इतना ध्यान भी कहां कि वे इस भेद रेखा को समझ पाए ? कि क्या यह प्रवृत्ति कर्मजनित है या आत्म गुण जनित है ।

याद रखिए ! आत्मगुण के अनुरूप जो प्रवृत्ति होगी, जो क्रियादि प्रवृत्ति होगी वही सच्चा धर्म होगा । कर्मों के उदय में औदयिक भाव से राग, द्वेष कषायदि के साथ होती हुई क्रिया और प्रवृत्ति बाह्य व्यवहार से धर्म का आभास जरुर कराएगी लेकिन वास्तव में वह धर्म सच्चा धर्म नहीं होगा । ऊपर से कषाय, राग, द्वेष एवं कर्म पोषाक निमित्त बन जाएगा । इससे साधक भ्रमवश यदि संतोष मान ले कि हां मैंने काफी धर्म कर लिया है तो वह धोखा खा रहा है । शक्कर की अपेक्षा वाला भ्रम वश निमक की सफेदी आदि सादृश्यतावश निमक को ही शक्कर समझकर मानकर दूध-दूधपाक आदि में डाल रहा है । लेकिन भ्रम और भ्रान्तियां सच्चाई को वास्तविकता को दबा नहीं सकती । आखिर मेहमानों के बीच जब दूध पाक खाया जाएगा तब रहस्य खुल जाएगा । उसे भ्रान्ति भ्रमणा पर अफसोस हो जाएगा ।

ठीक इसी तरह राग, द्वेष, कषाय, कर्म पोषक धर्म की क्रिया प्रवृत्ति में भी धर्म की भ्रान्ति भ्रमणा जो होती रहती है वह जो आभास मात्र है । उसका पर्दाफाश तब होगा जब वह जीव कर्म शास्त्र के विज्ञान को, धर्म तत्त्व के विज्ञान को सुव्यवस्थित यथार्थ स्वरूप से समझेगा । निर्जरा न होकर जब बंध होगा तब । क्योंकि कर्म का आधार मात्र क्रिया-प्रवृत्ति पर नहीं अपितु 'हेतु' पर रहता है यह कर्म की व्याख्या में कर्मग्रन्थकार ने पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि.....किरइ जीएण हेउहिं जेणं तो भन्नए कम्मं" । अर्थात् जीव के द्वारा हेतु पूर्वक जो क्रिया की जाती है वह कर्म कहलाता है । यहां क्रिया माध्यम रूप या निमित्त रूप है और हेतु प्रधान कारण है । यह विषचक्र अनन्त काल से चला आ रहा है । अज्ञानतावश जीव कर्म एवं कषायदि पोषक आभास को भी धर्म मान बैठता है । परिणाम स्वरूप कर्मपाश में बंधकर संसार चक्र में परिभ्रमण करता रहता है । वर्तमान काल में इसके सैंकड़ों उदाहरण प्रत्यक्ष गोचर होते ही है । नामना, यश कीर्ति की प्राप्ति या अपने धन का प्रदर्शन कराते हुए अंदर की अहं की पुष्टि की गंध स्पष्ट आती ही है । ऐसा सोचकर जो धर्म किया जाता है वे लोग अंतर में साफ समझते भी है कि... कैसा दाव खेला ? सामने वाला मेरे सामने चढावे में टिक ही नहीं पाया । देखा मैंने कैसे चढावा लिया लोगों की बोलती बंद कर दी । देखा ! मैंने कैसा मस्त भोजन खिलाया कि मेरे निंदक भी मेरे प्रशंसक बन गए । देखा ! मैंने कैसा व्याख्यान-भाषण दिया ? कि मुझे विद्वान वक्ता की प्रसिद्धि मिल गई । मेरा नाम देश भर में प्रसिद्ध हो गया । क्या आपको इन और ऐसे वाक्यों में अहं पुष्टि, कषाय पोषण, राग-द्वेष की झलक एवं गंध स्पष्ट नहीं दिखाई देती ? यदि हां ! तो कहां कर्म निर्जरा हुई ? यह तो उपर से कर्म बंध ही हुआ । और बढा । आत्मा को फायदा, लाभ कहां हुआ ? इसलिए ज्ञानी-गीतार्थों ने संवर निर्जरा कारक धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म कहा है । इतना समझकर धर्मप्रेमियों को कर्म पोषक धर्म नहीं करना चाहिए । नवकार महामंत्र में "सव्व पावप्पणासणो" का पद निर्जरा धर्म की श्रेष्ठता को अपने में प्रमाणित करता है । अत: नवकार यह सही अर्थ में "पढमं हवई मंगलं' है ।

आत्म गुण पोषक-शोधक ही सच्चा धर्म—

कर्मों के औदयिक भाव का धर्म करने के बजाय आत्म गुणों के उदय के साथ जो धर्म करेंगे वही सच्चा धर्म होगा । याद रखिए— कर्म आत्म गुणों का घातक है । गुणों को प्रगट न होने देते हुए उस जगह अपनी प्रकृतिओं को उदय में भेजता है जिसमें क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष कामादि अनेक है । बस, ये ही व्यवहार करते हैं । समता गुण को दबाकर क्रोध व्यवहार करता है । नम्रता के गुण को दबोचकर मान, अभिमान कर्म व्यवहार करता है । सरलता, ऋजुता, सज्जनता का गला घोंट कर माया कपट की वृत्ति काम करती है । संतोष, अकिंचन के गुण को छिपाकर लोभ कषाय का कर्म ऊपर हावी हो जाता है और वही सारा व्यवहार करता है । ऐसे अनेक कर्म है जो आत्मा के गुणों को दबाकर वे खुद प्रगट होते हैं और सारा व्यवहार बाह्य जगत् में वे ही करते हैं । अब आप ही सोचिए... आत्मा के किसी भी गुण को प्रगट होने ही नहीं दें... और खुद कर्म ही सदा उदय में आते रहें, वे ही व्यवहार करते रहें । चौबीसों घंटे... महीनों के तीसों दिन कर्म ही उदय में रहकर समस्त प्रवृत्ति करते-कराते रहेंगे तो धर्म होगा कहां ? सच्चा आत्म धर्म कहां होगा ?

सच्चा धर्म ही आत्म धर्म है अर्थात् कर्मो के उदय को क्षय करना कम करना या नाश करना और आत्मा के समता, नम्रता, सरलता, संतोष, करुणा, दया सज्जनता आदि गुणों को प्रगट करना, इन्हीं गुणों में स्थिर रहना तथा इन गुणों के अनुरूप ही आचरण करना यही धर्म है । इसे ही आत्म धर्म कहते हैं । गुणानुसार आचरण करने पर पुन: गुणों की पुष्टि होगी, गुणों की वृद्धि होगी, गुणानुराग बढता जाएगा तब जाकर उपासक साधक गुणी बनता जाएगा । यदि यह रहस्य समझकर विश्व के सभी धर्म नामादि की महत्ता गौण कर लें और एक मात्र आत्म धर्म को प्रधान करके अपना लें, और उसी का आचरण करे तो सारे संसार में आत्म धर्म ही विश्व धर्म बन जाय और सारे संसार में शान्ति फैल जाय । बस, फिर तो कर्मो का सफाया हो जाय । कर्मो का एक चक्री शासन ही खत्म हो जाय । लेकिन वो दिन कहां जब मियां के पांव में जूते ?

इसी तरह प्रत्येक समाज भी यदि गुणों के आधार पर गुणवान गुणी व्यक्ति की कीमत करने लग जाय । तथा समाज में बड़ा कौन ? प्रतिष्ठित कौन ? आगेवान कौन ? का सारा मापदण्ड इन और ऐसे गुणों पर आधारित कर दें, गुणों प्रमाण पर केन्द्रित कर दें तो निश्चित गुणों की कीमत बढती जाएगी । लोग गुणवान-गुणीयल बनते जाएंगे । वे ही समाज में आगे आएंगे । उन्हें ही प्रतिष्ठित कहें जाएंगे तब तो समाज का सारा ढांचा ही बदल जाएगा और धरती पर स्वर्ग का अवतरण हो जाएगा । यह धरती नंदनवन बन जाएगी । कल्पना करो समाज में कितनी शान्ति फैल जाएगी ? ऐसे गुणीयल एक समाज का अनुकरण करने पर दूसरे समाज भी इसी तरह विकास साधेंगे । परिणाम स्वरूप संसार में गुणवानों की संख्या लाखों, करोड़ों गुनी बढती जाएगी । इस तरह सारे विश्व में गुणों का साम्राज्य फैल जाएगा । सर्वत्र गुणों की ही बोलबाला रहेगी । गुणों की तथा गुणों के आधार पर गुणवानों की पूजा होगी । यद्यपि यह कल्पना के घोड़े दौड़ाने जैसा लगता है... अत: शायद विश्वस्तर पर, देश या राष्ट्रीय स्तर पर यदि मानों की संभव न भी हो तो कम से कम व्यक्ति अपने समाज में तो अवश्य प्रयत्न करें..., और यह भी यदि संभव न लगता हो तो कम से कम व्यक्ति अपने घर में, अपने परिवार में इसे अवश्य संभव कर सकता है । बड़े प्रेम से गुणों को विकसाया जा सकता है पारिवारिक सदस्यों के बीच और यदि पारिवारिक स्तर पर गुण धर्म को विकसाना कठिन लगता हो तो... अन्त में व्यक्तिगत रूप से अपना ही जीवन गुण रूपी पुष्पों से सुवासित किया जा सकता है । याद रखिए ! कि फूलों की, इत्र, सेन्ट सबकी सुगन्ध अल्पकालीन है उड जाएगी, नष्ट हो जाएगी लेकिन जीवन में गुणों की सुगन्ध कदापि नष्ट नहीं होगी । यह ऐसी महक होगी कि जो मृत्यु के पश्चात् भी हजारों वर्षो तक वातावरण में फैली हुई रहेगी । सदियों तक जगत् को प्रेरणा देती रहेगी । संभव है कि इसी सुगन्ध में से भविष्य में और भी कोइ चिराग जलते जाय ।

अत: निश्चित करिए कि आत्मा के गुण कौन-कौन से हैं ? उन उन गुणों के घातक कर्म कौन-कौन से हैं ? ऐसे बीच के अवरोधक कर्मो को हटाना नष्ट करना ही श्रेयस्कर है । इसीलिए नवकार में "सव्व पावप्पणासणो" का उद्देश्य दिया है । यह हेतु पद है । जैसे-जैसे सब पाप कर्मो का नाश होता जाएगा वैसे-वैसे उन कर्मो के ढेर के नीचे दबे गुण प्रगट होते ही जाएंगे । और जागृत हुए गुणों के आधार पर पुन: वैसा ही आचरण और व्यवहार किया जाय कि जिससे उन गुणों की ही पुष्टि होती रहे । गुण और घनीभूत एवं स्थिर-स्थायी होते जाय ताकि पुन: कभी कोई कर्म उन्हें दबोच कर नष्ट न कर दें । गुणाचरण ही सच्चा धर्म होगा ।

नमस्कार आत्म गुणात्मक धर्म है—

याद रखिए... ! नमस्कार कर्मोदय जन्य नहीं है, यह आत्मगुण स्वरूप है । कर्मो का उदय तो नमस्कार भाव को नष्ट कर देते हैं । मान कषाय का मोहनीय कर्म जब ज्यादा प्रबल होकर उदय में आ जाता है तब नम्रता-नमस्कार भाव को दबा देता है । विनय गुण का नाम निशान ही मिटा देता है और उसके स्थान पर मान-अभिमान और घमण्ड का ताण्डव मचा हुआ रहता है । अत: आत्मा के अनन्त गुणों के घर में अनन्त चारित्र या यथाख्यात स्वरूप भी एक गुण है । यह एक गुण होते हुए भी गुण समूहों का एकीभूत पिण्ड रूप है । इसके अवान्तर गुणों के रूप में क्षमा, समता, नम्रता, सरलता, संतोष, सज्जनता, मैत्री, प्रमोद, करुणा और दया, प्रेम आदि सैंकड़ों गुण यथाख्यात स्वरूप या अनन्त चारित्र के एक गुण के घर में अवान्तर रूप से पड़े हैं ।

इन सब गुणों का एक राजा विनय गुण है । नम्रता इसलिए सबसे बड़ा गुण है कि शेष सभी गुण व्यवहार में बाद में आते हैं लेकिन नम्रता के गुण का व्यवहार सबसे पहले होता है । आप में क्षमा-समतादि गुण है या नहीं ? इनकी पहचान तो क्रोधादि कषाय का प्रसंग आने पर ही होगी । लेकिन हर जगह सबसे पहले नम्रता के गुण का व्यवहार होगा तथा एक बार पहले विनय गुण दिखाई देने पर लोग स्वयं अनुमान से समझ जाते हैं कि... जब नम्रता विनय गुण इतनी अच्छी मात्रा में है तो उसके साथ या उसके पीछे समता, सरलता, संतोष आदि सैंकड़ों गुणों का अस्तित्व होगा ही होगा । स्वाभाविक है कि... जो विनय गुणवान नम्र होगा वह लोक व्यवहार में भी जिस किसी को नमस्कार करेगा वह उनको अपने से बड़ा समझेगा ही । नमस्कार का यही गर्भित अर्थ है कि नमस्कार करने वाला छोटा और जिनको नमस्कार किया जाता है वे नमस्करणीय बड़े गिने जाते हैं । महान गिने जाते हैं । अत: उनके प्रति पूज्य भाव जितना ज्यादा बढ़ता जाएगा उतना ही ज्यादा नमस्कार श्रेष्ठ कक्षा का होगा ।

जिसके प्रति आदर भाव, पूज्यभाव रखेगा वह उनको गाली-गलौच कैसे करेगा ? उनके प्रति क्रोध-मान कैसे करेगा ? क्रोध में भी दूसरों का अपमान किया जाता है । अपशब्द बोले जाते हैं । मान-अभिमान के नशे में दूसरों का अनादर किया जाता है । अन्यों को नीचा दिखाया जाता है । माया कपट से किसी के साथ वंचना की जाती है तथा लोभ में किसी को ठगा जाता है । लूटा जाता है । लोभवश चोरी आदि भी की जाती है इत्यादि अनेक कषाय और अनेक पाप किये जाते हैं । अत: ये और ऐसे एक भी पाप नम्रता धारक, विनय गुण सम्पन्न व्यक्ति कभी कर ही नहीं सकता है । संसार के व्यवहार में क्रोध, मान, माया, लोभ, इर्ष्या, निंदा आदि ये सब व्यवहारिक अपराध है । एक मात्र नमो भाव का विनयगुण टिकाकर रखने से एवं उसका आचरण करने से ये क्रोध, मान, माया, लोभादि सभी कषाय दबकर छिप जाएंगे । सच्चे विनयी जीव के जीवन में प्रगट होने की हिम्मत ही नहीं करेंगे ।

गुणों का राजा-विनयगुण

जैसे कर्मों का राजा मोहनीय कर्म है, और मोहनीय कर्म की भी अवान्तर 28 कर्म प्रकृतियों का अग्रगण्य सेनापति राग-द्वेष है । इसी तरह इस कर्म के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में आत्मा के गुणों का राजा विनय गुण है । आत्मा में रहने वाला गुण रूप विनय है और लौकिक व्यवहार में बाहर प्रगट काम करने वाला नमस्कार है । नमस्कार क्रियात्मक है । जैसे दूध को उबालते हुए घूंटने पर मावा बन जाता है उसी तरह लाखों बार नमस्कार को घूंटने पर अर्थात् बार-बार करते रहने पर घनीभूत होकर वह विनयगुण के रूप में बनता है । अब एक ही युद्ध के जीवन रूपी मैदान में—कर्मों की और गुणों की सेना को आमने-सामने खड़ी कर दी जाय, और दोनों में यदि घमासान युद्ध भी छिड़ जाय तो कर्म सेना की तरफ से राग-द्वेष पहले सामने आएंगे । वे अपने क्रोध मानादि एक-एक कषायों को छोड़ेंगे । लेकिन गुण सेना की तरफ से सशक्त राजा विनय गुण ही आगे रहकर सबको निगल जाएगा । क्रोध की घूंट ऐसी उतार लेगा कि डकार भी न आए । मान को ऐसा खत्म कर देगा कि सैंकड़ों बार वंदन-नमस्कार कर लेगा । ताकि मान-अभिमान का सिर ऊंचा उठने ही न दें । माया-कपट की वृत्ति ऐसी अदृश्य कर देगा कि स्वयं जिनको नमस्कार कर रहा है, विनय भाव से उनके चरणों में समर्पित हो जाएगा, और पूज्यभाव इतना बढा देगा कि उनको या किसी को ठगने, कपट वृत्ति से लूटने आदि का कोई विचार ही नहीं आएगा और इसी तरह नमस्कार करने का तथा अहोभाव-सद्भाव इतना बढा हुआ रखेगा कि... लोभ को आने का अवकाश ही नहीं देगा । जिनके चरणों में सिर झूकाकर नमस्कार वंदन करेगा उनकी निंदा टिका नहीं करेगा । उनके प्रति ईर्ष्या द्वेष नहीं रखेगा । इस तरह विनय गुण कर्मों के सेना के सामने अटल हिमालय की तरह अड़िग रहेगा । कर्मों की सेना आखिर हार खाकर वापिस लौटेगी और विनय गुण की विजय होगी ।

इस तरह यह विनय गुण समता, क्षमा, सरलता, संतोष, दया, करुणा आदि सबका पिण्डीभूत गुण है । अन्य सबका अंश इसमें शामिल है । इसलिए संसार के व्यवहार में भी विनय गुण की नम्रता काम करेगी और धर्म के क्षेत्र में देव गुरु के समक्ष भी विनय गुण काफी सहायक उपयोगी बनकर काम करेगा । अत: किसी को अन्दर आने ही नहीं देगा । ऐसे विनय गुण का प्रतीक शब्द "नमो" नवकार में सबसे पहले रखा है । इससे भी आगे यहां तक कि... इस महामंत्र को अरिहंत मंत्र या सिद्ध मंत्र या आचार्य मंत्रादि नाम न देकर इसको नमस्कार महामंत्र नाम दिया गया है । विनय गुण की नम्रता एवं नमो भाव की इससे बड़ी और क्या प्रतिष्ठा हो सकती है ? सोचिए ! अरिहंत सिद्धादि से भी इतना बड़ा दर्जा नमस्कार को दिया गया है तथा इन पांचों परमेष्ठियों को किया गया नमस्कार सब पाप कर्मों का क्षय नाश करके मोक्ष प्राप्त कराता है । इससे बड़ी और क्या प्रतिष्ठा हो सकती है ? इससे बड़ा विनय गुण का फल और क्या हो सकता है ? ऐसे नमस्कार की महत्ता एवं प्रधानता वाला दूसरा मंत्र समस्त विश्व के धर्मों में है क्या ? नवकार में सर्वप्रथम "नमो" का प्रयोग और बार-बार 5 बार "नमो" का प्रयोग नमो भाव की, विनय गुण की प्राधान्यता को सूचित करता है । 'विनय' या 'नमो' यह आत्म गुण है । अत: इस और ऐसे नमो से सुशोभित एवं प्रतिष्ठित ऐसा महामंत्र आत्म मंत्र है । आध्यात्मिक कक्षा का महान मंत्र है । आत्म साधना का मंत्र है । आत्म गुणों का प्रादुर्भाव करने का महामंत्र है । ऐसा मंत्र अन्यत्र दुर्लभ है । एक मात्र विनय गुण के प्रथम सोपान से लेकर मोक्ष मार्ग पर मोक्ष की प्राप्ति तक क्रमश: कितना लाभ है ? किस तरह विनय का नमो भाव मोक्ष दायक सिद्ध होता है ? इसका प्रमाण शास्त्रों में इस प्रकार उपलब्ध है—

विनय से क्रमशः मोक्ष प्राप्ति—

विनय फलं शुश्रूषा, गुरु शुश्रूषा फलं श्रुत ज्ञानम् ।
ज्ञानस्य फलं विरतिर्विरतिफलं चाश्रवनिरोधः ॥72 ॥
संवर फलं तपोबलमथ तपसो निर्जरा फलं दृष्टम् ।
तस्मात् क्रियानिवृत्तिः क्रिया निवृत्तेरयोगित्वम् ॥73 ॥
योग निरोधाद् भव सन्ततिक्षयः सन्तति क्षयान्मोक्षः ।
तस्मात् कल्याणानां सर्वेषां भाजनं विनयः ॥74 ॥

— पूर्वधर महापुरुष पू. वाचक मुख्यजी उमास्वाति महाराज प्रशमरति ग्रन्थ में अनुभव के निचोड़ात्मक तथ्य को वर्णित करते हुए उपरोक्त श्लोकों में फरमाते हैं कि...नम्रता के आचरण, नमोभाव के वर्तन, नमस्कार की क्रिया के घनीभूत हुए विनयाचरण से शास्त्रवचनादि सुनने की इच्छा जागृत होती है और गुरु भगवन्त, आचार्य, उपाध्याय, साधु भगवन्तों को "नमो" भाव से वन्दनादि करने पर उनसे श्रुतज्ञान की प्राप्ति होती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि... सम्यग् ज्ञान की प्राप्ति का आधार गुरु विनय है। गुरु वंदन एवं गुरु सेवा है। इससे गुरु भगवन्तों द्वारा श्रुत-शास्त्र का सम्यग् ज्ञान प्राप्त होगा। संसार में धन दौलत से भी ज्यादा कीमती सच्चा ज्ञान है और उसकी प्राप्ति इतनी सरलता से गुरु विनय मात्र से ही उपलब्धि हो जाय तो फिर चाहिए ही क्या ? आगे "ज्ञानस्य फलं विरति" के नियमानुसार सम्यग् ज्ञान के आने के पश्चात् हेय-ज्ञेय-उपादेय आदि की समझ एवं विवेक बढ़ने से जीवन में विरति आती है। विरति अर्थात् पाप प्रवृत्ति में अब कोई आनन्द, रस, रुचि कुछ भी नहीं रहता। पाप प्रवृत्ति से बचने का मानस बन जाता है और ऐसी विरति से आश्रव मार्ग का निरोध हो जाता है, अर्थात् पाप कर्मों का आगमन रूक जाता है। पापों की प्रवृति होनी बन्द हो जाती है। अब मन, वचन, काया से कोई पाप करने की इच्छा, विचार नहीं होगा। आत्मा में इस तरह नए पाप कर्मों का आगमन ही रुक जाएगा। इसको कहते हैं संवर तत्त्व।

ऐसे संवर धर्म की आचरणा से तप का बल जागृत होता है। तपो भाव में मन लगता है। बाह्य एवं आभ्यन्तर उभय प्रकार की तप शक्ति बढ़ती है। 12 प्रकार के इस तप के भेद में शेष सभी धर्मों का समावेश अच्छी तरह हो जाता है। अत: तप धर्म की आराधना से सभी धर्मों की उपासना साथ में ही हो जाती है। ऐसे तप धर्म के आचरण से कर्मों की निर्जरा होती है। निर्जरा अर्थात् कर्म क्षय होता है। आप अच्छी तरह देखिए कि... नवकार में पहले 5 बार नमो-नमो कहकर देव गुरुओं को अच्छी तरह नमस्कार किया गया है। और इस प्रकार के नमस्कार से... पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने से "सव्व पावप्पणासणो" सब पाप कर्मों का नाश होता है। इसे कहते हैं निर्जरा। अत: नवकार का यह सातवां पद निर्जरा सूचक पद है। साधक को निर्जरा करने का आदेश-संदेश देता है। बिल्कुल निर्जरा के अर्थ को गर्भित करके यह पद रहा हुआ है। निर्जरा तप साध्य है। तप का फल है। अत: नवकार तपरूप है। इसीलिए तप रूप नवकार से निर्जरा रूप फल में पाप कर्मों का नाश होता है। अत: नवकार से कर्म क्षय पाप नाश होते हैं यह स्पष्ट सत्य है।

निर्जरा के कारण जीवों की आगे पाप कर्मादि की क्रिया रूक जाती है। मन, वचन, काया की क्रिया प्रवृत्ति रूप योगों का निरोध होता है। निर्जरा से क्रिया निवृत्ति रूप योग निरोध होता है। ये मन, वचन, काया के तीनों योगों की क्रिया प्रवृत्ति का निरोध हो जाने से, रुकने से योग निरोधावस्था के फल की प्राप्ति होती है और योग निरोध होने से भव संसार की परम्परा ही रुक जाएगी। अर्थात् 4 गतियों में जन्म, मरण धारण करता हुआ जीव जो 84 लक्ष योनियों में भटकता रहता था, परिभ्रमण करता ही रहता था वह भव संसार रुक जाएगा और संसार की परम्परा रुकने से सीधे मोक्ष की प्राप्ति हो जाएगी। बस, अब एक बार मोक्ष की प्राप्ति हो जाने के बाद पुन: कभी भी संसार में आने का और जन्मादि लेने का कोई सवाल ही नहीं खड़ा होता है।

विनय से क्रमशः मुक्ति मार्ग पर प्रयाण—

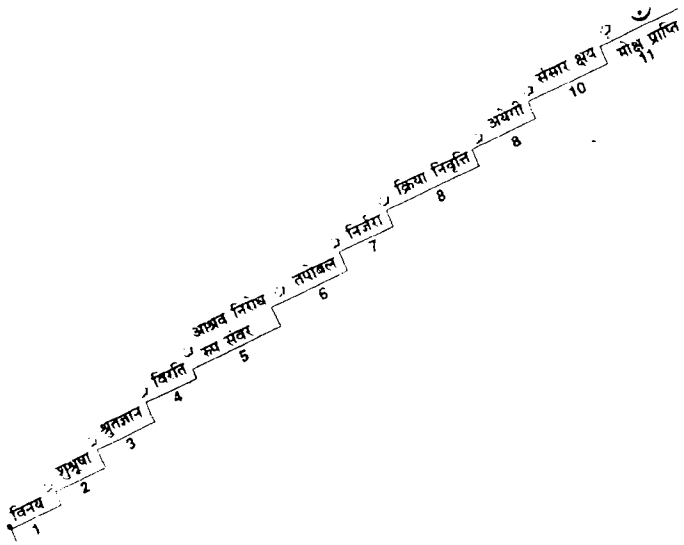

यह है मोक्षमार्ग। जिस रास्ते पर चलते हुए मोक्ष की प्राप्ति की जा सकें उसे मोक्षमार्ग कहते हैं। उस मार्ग के सोपान क्रमश: इस प्रकार है। इनमें सर्वप्रथम सोपान विनय गुण नमो भाव का है। अर्थात् नवकार है। जिसने प्रथम सोपान सही चढा है वह क्रमश: एक-एक सोपान आगे-आगे चढ़ता ही जायेगा। क्योंकि आगे-आगे के सोपान कार्य रूप है। फल रूप है तथा पूर्व-पूर्व के सोपान कारण रूप हेतु रुप है। अत: कारण हेतु रुप सोपानों का आरोहण सही सोपानों पर चढाव आसान होता जाएगा। इस तरह देखिए विनय गुण से क्रमश: मोक्ष कहा है ? मोक्ष चाहे कितना भी दूर क्यों न हो ? लेकिन विनय गुण का बीज हमारे हाथों में दे दिया है। एक लम्बी रस्सी का अन्तिम किनारा मोक्ष है तो प्रथम किनारा विनय गुण है। जो कि हमने पकड़ रखा है। अत: ऐसे विनय गुण से एक दिन मोक्ष अवश्य मिलेगा। नवकार में प्रयुक्त नमो यही विनय का बीज है। इस तरह नवकार के बीज रूप नमो की साधना से मोक्ष की सिद्धि प्राप्त होती है।

एक परमेष्ठी में—सब पाप नाशक सामर्थ्य

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

एसो पंच नमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ।।

नमस्कार महामंत्र क्या है ? कैसा है ? इसके जाप का फलादि कैसा है ? इत्यादि प्रश्नों के उत्तरों का स्पष्टीकरण नवकार महामंत्र की "चुलिका" गाथा से दिया गया है । जैसे मंदिर पर शिखर होता है और शिखर के ऊपरी भाग पर कलश होता है, या पर्वत के उपरी भाग को शिखर और ऊपर चूलिका स्वरूप है । वैसे ही नमस्कार जैसे महामंत्र में भी दूसरी गाथा चूलिका स्वरूप है । इस मंत्र की यशोगाथा-यश कीर्ति गाने वाली इस चूलिका गाथा में मंत्र की महिमा बताई है । अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भगवन्तों को किया हुआ नमस्कार फल स्वरूप में सब पाप कर्मों का नाश करने वाला है तथा मंगलों में श्रेष्ठ मंगल है । ऐसा अर्थ नवकार की दूसरी गाथा चूलिका का है । नवकार अपने आप में एक सम्पूर्ण शास्त्र है । इसलिए इसे श्रुतस्कंध भी कहा है । "श्री पंच मंगल महाश्रुत स्कंध" ऐसा इस शास्त्र का नामकरण किया है । नाम में ध्वनित "नामार्थ" में काफी स्पष्ट रूप से नवकार का विषय निर्देश किया है । पंच जो परमेष्ठी भगवन्त है वे ही महामंगलकारी महात्मा है । अत: इन पांच को ही नमस्कार करना, इसी से अपने पाप कर्मों को धोना, क्षयादि करना, इसी कारण से परमेष्ठी भगवन्तों की सर्वश्रेष्ठ मांगलिकता दर्शायी गई है । इसे श्रुत शास्त्र का स्कंध अर्थात् आधार भूत स्तंभ कहा है । जैसे किसी महल विशेष का कोई केन्द्री भूत आधार भूत स्तंभ होता है । ठीक उसी तरह यह पंचमंगल रूप नमस्कार महामंत्र श्रुत ज्ञान, शास्त्र रूपी महल का आधार स्तंभ माना गया है । अनेक स्तम्भों के बीच कोई एक आधार भूत स्तम्भ होता है । वैसे अनेक सूत्र श्रुत ज्ञान रूप शास्त्र है । उन सबमें केन्द्री भूत, आधार भूत स्तम्भ के रूप में यह पंच मंगल महाश्रुत स्कंध स्वरूप नवकार महामंत्र है । इसीलिए इसे सामान्य स्तंभ ही नहीं "महाश्रुतस्कंध" नाम दिया गया है । नाम में "महा" शब्द जोड़ा गया है । इसकी सार्थकता उपरोक्त भाव से स्पष्ट की है । श्रुत स्कंध तो अनेक है, क्योंकि श्रुतज्ञान काफी विशाल है । श्रुत ज्ञान के आधार पर श्रुत शास्त्र का क्षेत्र भी काफी विशाल है । इस विशाल क्षेत्र में "स्कंध" स्तंभ भी अनेक है । लेकिन इन अनेकों स्तंभों के बीच महास्कंध नवकार महामंत्र को कहा गया है । इसको प्राथमिकता दी गई है । इस तरह नाम की नामार्थ के रूप में सार्थकता स्वयं सिद्ध है ।

नवकार का मुख्य सार—

यद्यपि नवकार महामंत्र ही 14 पूर्वों का सार है । सर्वशास्त्रों का सार है । फिर भी नवकार का भी कुछ सार है । ऐसे सार रूप अंश की मुख्य ध्वनि सिर्फ इतनी सी है कि— "पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करो और अपने सब पाप कर्म खपाओ ।" यही अर्थ चूलिका की गाथा के प्रथम आधे भाग में कहा गया है । जो कि छट्ठे और सातवें पद से ध्वनित होता है । इस सार रूप वाक्य में कार्य कारण भाव स्पष्ट किया है । पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करना यह कारण रूप है और सब पाप कर्मों का नाश होना यह कार्य रूप है । अत: कार्य कारण भाव रूप सम्बन्ध है । साधक को जो साधना हो वह लक्ष्य बनावें । कार्य से कारण का अनुमान होता है । इसी तरह कारण से भी कार्य का अनुमान होना संभव है । धुएं को देखकर अग्नि का अनुमान करना यह कार्य से कारण का अनुमान है । धुआं कार्य है और जनक होने से अग्नि उसका कारण है । दूसरे पक्ष में छाए हुए घने काले बादलों को देखकर वर्षा होगी ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है । घने काले बादल कारण है और उस कारण के होने पर कार्य का होना अनुमानित है ।

कार्य के पीछे कारण का होना निश्चित होने के कारण अनुमान के विषय में संदेहास्पदता, संदिग्धता नहीं लगती है । क्योंकि कार्य हो चुका है । धूआं दिखाई देने पर अग्नि रूप कारण के अनुमान में संदिग्धता नहीं रहती है, क्योंकि आग के बिना धूआं किसी भी अन्य निमित्त से उत्पन्न होता ही नहीं है । अत: कार्य के पीछे कारण निश्चित है । मात्र कार्य दृष्टि पथ में आ गया और कारण रूप अग्नि दूर होने के कारण या नीचे होने के कारण दिखाई नहीं दी । इसलिए अनुमान करना पड़ा । वरना यदि कारण का भी प्रत्यक्षीकरण हो चुका होता तो अनुमान करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती ।

कारण से कार्य होने के विषय में संदिग्धता की संभावना है । कारण से कार्य का होना अवश्यंभावी भी है और नहीं भी है । घने काले बादलों को देखकर वर्षा होगी ऐसा अनुमान करने पर कार्य निष्पत्ति शायद हो या न भी तो क्या करें ? संभव है कि तेज हवा बादलों को बिखेर भी दे । या बादल अन्य क्षेत्र में दूसरी जगह भी चले जाये । किसी कारण वृष्टि रुक भी सकती है । इस अवस्था में कारण के होते हुए कार्य न होने पर अनुमान निरर्थक भी हो सकता है ।

दूसरा पक्ष ऐसा भी जिसमें कारण से कार्य अवश्यंभावी है अत: अनुमान असंदिग्ध है । उदाहरण रूप में— अरुणोदय होने के कारण आगे सूर्योदय अवश्य होगा । प्रात: प्रभात काल में सूर्य निकलने के पहले जो लालिमा छा जाती है वह अरुणोदय है और उसके कुछ काल पश्चात् सूर्योदय अवश्य होने वाला ही है । इसमें कोई संदेह रखना उचित ही नहीं है । दूसरे दृष्टान्त में यह जन्म हुआ है । अत: कर्म कारण रूप अवश्य ही है । यहां कर्म और जन्म का अवश्यंभावी कार्य कारण भाव सम्बन्ध है । आज जीव भारी पाप कर्म बांध रहे हैं, अत: अगला जन्म निश्चित ही होगा । कर्म शेष रहते जन्म न हो ऐसा हो ही नहीं सकता है । जन्म होना अवश्यंभावी ही है । ठीक इससे विपरीत सर्व कर्मों के सर्वथा समूल नाश हो जाने के पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति अनिवार्य ही है । कर्म क्षय कारण रूप है और मुक्ति कार्य रूप है । जन्म में कर्म बन्ध, कर्म का अस्तित्व कारण रूप है । और कार्य द्वारा कारण का अनुमान भी होता है ।

नमस्कार और पाप नाश के बीच कार्य कारण भाव संबंध—

नवकार महामंत्र में प्रथम मंत्र गाथा में पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार किया गया है । तत्पश्चात् चूलिका में "एसो पंच नमुक्कारो' छट्ठे-सातवें पद में यह स्पष्ट किया गया है कि— इन पांच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने के फल स्वरूप पाप कर्मों का नाश होता है । नमस्कार और पाप कर्म के बीच सीधा कार्य कारण भाव सम्बन्ध है । नमस्कार कारण रूप है और पाप कर्मों का क्षय कार्य रूप है । कारण में नमस्कार की गुणवत्ता सर्वोच्च कक्षा की श्रेष्ठ है तो निश्चित रूप से सब पाप कर्मों का नाश रूप कार्य फल सामने आएगा । नमस्कार पाप नाश का कारण है । जबकि अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भगवन्त नमस्कार के निमित्त है । बिना पंच परमेष्ठी भगवन्तों के नमस्कार करेंगे किसको ? पंच परमेष्ठी के सिवाय भी संसार में ऐसे अनेक निमित्त भूत है जिनको लोग नमस्कार करते हैं । परन्तु सब पाप कर्मों के क्षय का फल हासिल नहीं कर पाते हैं । ऊपर से विपरित रूप से कर्म बंध करते हैं । इसलिए नमस्कार के साथ अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भगवन्तों का और अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भगवन्तों का अन्योन्य परस्पर पूरक संबंध अनादि अनन्त काल से जुड़ा हुआ है । एक रूप है इसी कारण बिना "नमस्कार" (नमो) शब्द के नवकार महामंत्र बन ही नहीं सकता है । ठीक इसी तरह अरिहंतादि परमेष्ठी वाचक शब्दों के बिना भी नवकार महामंत्र बन ही नहीं सकता है । अत: "नमो" नमस्कार वाचक शब्द तथा अरिहंतादि परमेष्ठी वाचक शब्दों उभय संयोजन से यह महामंत्र बना है । इसी में इसकी सार्थकता है । इसी कारण ही पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने से पाप कर्मों का नाश होता है ।

नमस्कार के कारण से पाप नाश रूप कार्य की सिद्धि का अनुमान लगाने से फल निष्पत्ति में संदिग्ध और असंदिग्ध दोनों प्रकार के अनुमानों का ख्याल आता है । अत: नमस्कार करने पर पाप कर्मों का क्षय (नाश) हो भी सकता है और नहीं भी होता है । अत: संदिग्धता बनती है और नहीं भी बनती है । लेकिन पाप कर्मों के नाश का परिणाम यदि नहीं आता है तो उसमें कारण में कमी है, क्षति है । नमस्कार की योग्यता गुणवत्ता सर्वोत्कृष्ट होगी और वह भी पंच परमेष्ठी भगवन्तों को ही हो तो ही.. कार्य सिद्धि अन्यथा नहीं । इसलिए कारण की गुणवत्ता और न्यूनाधिकता पर कार्य सिद्धि का आधार रहता है । असंदिग्धावस्था के उदाहरण अनेक है । जिन-जिन महात्माओं ने पाप कर्मों के क्षय की उत्कृष्ट भावना से पंच परमेष्ठी भगवन्तों को उत्कृष्ट कक्षा के नमस्कार किये उन्होंने वैसा पाप कर्म क्षय का फल प्राप्त किया ।

दूसरे पक्ष में कार्य से कारण का अनुमान करने पर निश्चितता स्पष्ट दिखाई देती है— जैसे जिन-जिन महापुरुषों ने मोक्ष प्राप्त कर लिया है... जो-जो मोक्ष में जा चुके हैं उन-उन सबने अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भगवन्तों को पाप कर्मों के नाश कारक सर्वोत्कृष्ट कक्षा के नमस्कार अवश्य ही किये थे । पाप कर्म रहित मोक्ष स्थान की प्राप्ति रूप कार्य के पीछे नमस्कार रूप कारण और अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भगवन्त रूप निमित्त अवश्य ही रहे थे ।

एक बात निश्चित रूप से याद रखिए कि... कोई अन्य व्यक्ति हमें नमस्कार करे या न करे कोई फर्क नहीं पड़ता है । हमारी मोक्ष प्राप्ति किसी के नमस्कार न करने से रूक नहीं सकती है । परन्तु हम यदि पंच परमेष्ठी या किसी एक भी परमेष्ठी भगवन्त को नमस्कार नहीं करेंगे तो हमारी मुक्ति अवश्य ही रुकेगी । क्योंकि नमस्कार की भावना, नम्रता के गुण की आचरणा, विनयादि कुछ भी नहीं आएगा तो निश्चित रूप से मोक्ष प्राप्त नहीं होगा । कदापि संभव ही नहीं है । इसलिए नमस्कार मोक्ष प्राप्ति में कारण रूप है । सहायक-सहयोगी है । अत: मोक्ष प्राप्ति की भावना वाले मुमुक्षु आत्माओं को चाहिए कि... निरंतर प्रतिदिन... सर्वोत्कृष्ट गुणवत्ता की कक्षा के नमस्कार अरिहंतादि परमेष्ठी भगवन्तों को करने

ही चाहिए। सामने हमें भी कोई नमस्कार करे ऐसी अंश मात्र भी अपेक्षा रखनी ही नहीं चाहिए। अपेक्षा रखने वाले फिर अहंकार भाव में ही पलते रहते हैं तथा अपेक्षा पूरी न होने पर... दुःखी होते रहते हैं। और अनेक प्रकार के कर्मों का भारी बंध करते रहते हैं। परिणाम स्वरूप मोक्ष से उनका अन्तर बढता ही जाता है।

मोक्ष प्राप्त करने वाले जीवों के पीछे निश्चित रूप से नमस्कार की कारणता की पुष्टि करते हुए शास्त्रकार महर्षी फरमाते है कि...

"जे के वि गया मुक्खं"

अनन्त भूतकाल में जो भी (जितने भी) मोक्ष में गए हैं वे सब एक मात्र नमस्कार के प्रभाव से गए हैं। अर्थात् अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भगवन्तों को अनेक बार नमस्कार करके ही मोक्ष में गए हैं। अत: नमस्कार मोक्ष साधक है। मोक्ष दाता है। ऐसा अप्रत्यक्ष रूप से सिद्ध होता है। अत: नमस्कार का आश्रय और अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भगवन्तों का निमित्त लेना अनिवार्य ही है। यह बात निश्चित ही है तो फिर हमें विलम्ब क्यों करना चाहिए ? चाहे अनन्त जन्मों के बाद करें या अगले जन्म में करें। चाहे जब भी करें नवकार महामंत्र तो यही होगा। तो फिर यह नमस्कार का मार्ग आज ही क्यों न अपना लें ? नमस्कार का मार्ग शाश्वत है। अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भी अनादि अनन्त शाश्वत स्वरूप ही है। नमस्कार मुक्ति का मार्ग है— उपरोक्त दृष्टिकोण से अरिहंतादि पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करना ही मुक्ति पाने का मार्ग है। शाश्वत मार्ग है। तीनों काल में यह मार्ग सदा ही खुल्ला रहने वाला है। कदापि किसी भी काल में बन्द होने वाला ही नहीं है। यदि साधक के रूप में हम समझ लें तो अच्छा ही है। हमें ज्यादा सावधानी रखनी है। निश्चित रूप से दूसरा कोई विकल्प जब है ही नहीं तो फिर निरर्थक कालक्षेप करके क्या फायदा। अगले जन्मों में करने के बजाय इसी जन्म में, और इस जन्म में भी बाद में करने के बजाय आज ही क्यों न प्रारम्भ कर लें ?

आत्मा पर पिछले अनेक जन्मों के कर्म ढेर सारे पड़े हैं और जीवन का आयुष्यकाल भी परिमित ही है। अत: पाप कर्मों का क्षय करना जरुरी है तथा पाप कर्मो का क्षय करने का उपाय नमस्कार सामने तैयार है। अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भगवन्तों के नाम स्थापनादि निक्षेपों की दृष्टि से प्राप्ति भी सुलभ है। इतनी उपलब्धियां होने पर भी न करना हमारी बहुत बड़ी भारी भूल होगी।

पाप कर्मों का क्षय करने का मानस बनाकर नवकार की साधना करें या नवकार की साधना को अपनाकर पाप कर्मों का क्षय करने के भाव बनाए और इस तरह साधना करेंगे तो निश्चित रूप से कार्य सिद्धि होगी ?

माप-प्रमाणानुसार साधना—

साधना करने वाले साधक को अपने पाप कर्मों का प्रमाण देखना चाहिए। इसी तरह सामने नमस्करणीय पंच परमेष्ठी भगवन्तों की शक्ति, क्षमता या उनको किये जाते नमस्कारों के प्रमाण का भी ख्याल अच्छी तरह करना चाहिए। हमारे घर में यदि धूल कण हो तो उसे निकालने के लिए हाथी को बुलाने की आवश्यकता नहीं रहती है। परन्तु घर गिर गया है तो उसके बड़े-बड़े गडरों को उठाकर ले जाने के लिए हाथी को बुलाने की आवश्यकता जरुर लगेगी।

ठीक इसी तरह हमारे पाप कर्मों का प्रमाण हमें देखकर तदनुरुप साधना का प्रमाण निश्चित करना चाहिए। यद्यपि बहुत मुश्किल कार्य है। श्री कृष्ण के पाप कर्मों का प्रमाण इतना ज्यादा था कि 7वीं नरक में जाने की संभावना थी अत: श्री नेमिनाथ भगवान ने नरक नाशक उपाय के रूप में 18 हजार साधु मुनिराजों को वंदन-पंचांग प्राणिपात रूप बड़े नमस्कार करने का आदेश दिया। वीरा सालवी नामक अपने साले के साथ 18000 साधु भगवन्तों को वंदन करने लगे। जहां तक भाव विशुद्धि उत्कृष्ट कक्षा की बनी रही वहां तक नमस्कार-वंदन की गुणवत्ता काफी ऊंची बनी रही और परिणाम स्वरूप पाप कर्मों की निर्जरा होने के कारण एक-एक नरक टूटती गई। कम होती गई। इस तरह क्रमश: 7वीं, 6ट्ठी, 5वीं, 4थी नीचे के क्रम से बड़ी-बड़ी नरकें टूटकर खत्म हो गई। लेकिन वंदन की गुणवत्ता वीरासालवी के कारण घट गई। अहंकार भाव की वृद्धि होती गई। अत: वंदन चालू रहे लेकिन नरक टूटनी बन्द हो गई। क्योंकि अहंकारादि के भाव से पाप कर्मों की निर्जरा ही रुक गई। अत: अन्त में 3री नरक तक आकर रुके। श्रीकृष्ण ने श्री नेमीनाथ भगवान को पूछा— हे भगवन् ! आपने सातों नरकें टल जाएगी ऐसा कहा था फिर ऐसा क्यों हुआ ? भगवान ने स्पष्टीकरण देते हुए बताया कि... तुम्हारे अध्यवसायों में परिवर्तन आ गया था। भाव बदल चुके थे। विशुद्धि खत्म होकर अहंकार भाव की अशुद्धि बीच में आ जाने के कारण बाद के वंदन मात्र शारीरिक कसरत रूप ही रहे। इसलिए शेष 3 नरकें ऐसी ही रह गई है। अब क्या होगा ? अत: 3री नरक में जाना अनिवार्य हो गया है।

इस तरह यह दृष्टान्त स्पष्ट करता है कि... पांच में से किसी एक परमेष्ठी को वंदन नमस्कार करके भी कोई अपने अपने पाप कर्मों का नाश करके नरक गति से बच सकता है। यहां पाप कर्मों का प्रमाण कितना ज्यादा भारी था कि सजा भुगतने के लिए जीव को 7वीं नरक में जाना संभव हुआ था। नरक गति में नरक पृथ्वियों में 7वीं नरक अन्तिम नरक है। बस, इसके आगे नरक नहीं है। लेकिन जीवों के द्वारा जो पाप किया

जाता है उसकी तो कोई सीमा होती ही नहीं है । अन्त होता ही नहीं है । अत: यदि किसी जीव के पाप कर्मों का प्रमाण 7वीं नरक से भी हजारों गुना ज्यादा हो तो वह कहां जाएगा ? 7वीं नरक से भी ज्यादा भारी पाप कर्मों के उदय वाले जीव 4, 3, 2 और एकेन्द्रिय के जन्मों में जाता है और यहां तक कि अन्त में निगोद के जन्मों में भी जाकर जन्म लेना पड़ता है । निगोद में जहां अनन्तकाल तक रहकर प्रतिक्षण जन्म-मरण धारण करते हुए अनन्त जन्म-मरण करते रहता है । विकलेन्द्रिय आदि के जन्मों में जाकर छोटे-छोटे आयुष्य वाले जन्म धारण करते हुए बार-बार माना और बार-बार जन्म धारण करते रहना, इसी तरह अनन्त गुने दु:खों को भुगतना पड़ता है । ऐसी भयंकर प्रमाण की पाप कर्मों की सजा भुगतते हुए काल व्यतीत करते रहना पड़ता है ।

विपाक सूत्र नामक 11वें अंग सूत्र के दु:ख विपाक अध्ययन में उज्झितक कुमार, इक्काई राठोड़, अंजु सुता आदि अनेक 10 दृष्टान्त ऐसे दिये है जिन जीवों ने इतने भयंकर कक्षा के पाप कर्म किये है जिसका प्रमाण नहीं है और इतने भारी पाप कर्मों को भुगतने के लिए सैंकड़ों जन्म नरक और विकलेन्द्रिय एकेन्द्रिय के जन्मों में करने पड़े... और भयंकर कक्षा के दु:ख वेदना भुगतनी पड़ी । आखिर अन्तिम जन्मों में जाकर पंच परमेष्ठी भगवन्तों की प्राप्ति की, आखिर नमस्कार किया, नवकार महामंत्र का जाप स्मरण भक्ति उपासना की । अन्त में साधु मुनिराजों से अच्छी संगत की तथा स्वयं भी साधु मुनिराज बने । पाप कर्मों का सर्वथा क्षय किया और अन्त में मोक्ष में गए ।

क्या एक परमेष्ठी को नमस्कार से पाप क्षय संभव है ?

अरिहंतादि परमेष्ठी पांच है । पांचों को नमस्कार भी समान रूप से होता है । एक ही सूत्र पाठ से पांचों परमेष्ठियों को पंचांग प्रणिपात पूर्वक वंदन होता है । परमेष्ठियों का स्वरूप जरुर भिन्न-भिन्न है तथा वंदन नमस्कार करने वाले आराधकों की कक्षा भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है । भावना भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है । गुणवत्ता की कक्षा में भी न्यूनाधिकता रहती है । तदनुसार कर्मक्षयादि की मात्रा भी कम-ज्यादा रहती है ।

श्री नेमीनाथ भगवान ने श्री कृष्ण को 18000 साधुओं को ही वंदन करने के लिए क्यों कहा ? वे स्वयं तीर्थंकर भगवान के रूप में मौजूद थे । भगवान ने अपने को ही वंदन करने के लिए क्यों नहीं कहा ? या सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार वंदन हजारों बार करने के लिए क्यों नहीं कहा ? पांच परमेष्ठियों में से पांचवें अन्तिम परमेष्ठी साधु मुनिराज को वंदन नमस्कार करने के लिए आदेश दिया तथा उसमें भी 7 नरकों के हिसाब से 18000 साधु, मुनिराजों को वंदन करने का आदेश दिया । यदि एक समान उत्कृष्ट परिणामों शुभ अध्यवसायों की धारा रहती और उसी से एक साथ क्रमश: 18000 साधुओं को वंदन करते ही रहते तो निश्चित रूप से सातों नरक का छेद हो जाता । अर्थात् 7वी नरक में जाने योग्य पाप कर्मों का सर्वथा समूल नाश हो जाता तो उन्हें नरक में जाना ही नहीं पड़ता । नियम ही है कि... कारण के नष्ट हो जाने पर कार्य होगा ही नहीं । पाप कर्म वैसे सत्ता में रहे ही नहीं है तो फिर नरक में जाने का कोई प्रश्न खड़ा ही नहीं होता है ।

छट्ठे पद में "एसो पंच नमुक्कारो" के अर्थानुसार परमेष्ठियों की संख्या तथा उन्हें नमस्कार की संख्या दोनों के कुछ भेद इस प्रकार होंगे और तदनुसार 7वें पद के लक्ष्य के अनुसार फल प्राप्ति होगी । भंग प्रकार—

परमेष्ठी संख्या—नमस्कार संख्या—पाप नाश

1. 5 परमेष्ठियों को (अनेक) 5 नमस्कार करने से सब पापों का नाश हो ।
2. 5 परमेष्ठियों को 1 नमस्कार करने से सब पापों का नाश हो ।
3. 1 परमेष्ठियों को 1 नमस्कार करने से सब पापों का नाश हो ।
4. 1 परमेष्ठियों को अनेक नमस्कार करने से सब पापों का नाश हो ।
5. 5 परमेष्ठियों को (अनेक) नमस्कार करने पर भी नाश न हो ।
6. 5 परमेष्ठियों को 1 नमस्कार करने पर भी नाश न हो ।
7. 1 परमेष्ठियों को 1 नमस्कार करने पर भी नाश न हो ।
8. 1 परमेष्ठियों को अनेक नमस्कार करने पर भी नाश न हो ।
9. 1 या 5 परमेष्ठी हो उनको चाहे 1 या अनेक नमस्कार हो पाप नाश भी कम ज्यादा, अल्प या सब पाप कर्मों का नाश या क्षय हो सकता है । पाठक वर्ग को निवेदन है कि उपरोक्त भंगों को विचार करके विस्तृत स्वरूप से समझने का प्रयत्न करना चाहिए । विस्तार भय से यहां संक्षिप्त में ही दिया है । एक में है तो सब में है—यदि एक तिल में तेल है, तो तिल जितने भी हैं चाहे असंख्य हो या अनन्त हो तो उन सब में

तेल होगा ही । यदि रेती के 1 कण में भी तेल नहीं है, तो अनन्त कणों में भी तेल संभव नहीं होगा । इसी तरह मूंगफली या एरण्ड बीज या सूर्यमुखी के बीज में 1 बीज में यदि तेल है तो अनेकों में भी है ही । अत: सबको पीलने से तेल निकलेगा ही । इससे ठीक विपरीत एक पत्थर या रेती के कण में तेल पानी यदि नहीं है तो उनके समूह में भी नहीं है ।

ठीक इसी तरह यदि 1 परमेष्ठी को नमस्कार करने से पाप कर्मों का क्षय होता है, तो अरिहंतादि पांचों परमेष्ठियों को भी नमस्कार करने पर पाप कर्मों का नाश हो सकेगा । इसमें पाप कर्म के नाश का आधार परमेष्ठियों को नमस्कार करने पर है । ऐसा भी नहीं है कि पांचो परमेष्ठियों को नमस्कार करने पर ही सब पाप कर्मों का नाश होगा नहीं । एक परमेष्ठी को भी नमस्कार करने पर भी पाप कर्मों का क्षय नाश हो सकता है ।

संख्या का विचार तीनों तरफ किया गया है । परमेष्ठी नमस्कार और पाप इन तीनों की संख्या भिन्न-भिन्न है । परमेष्ठी 1, 2, 3, 4 और 5 भी है तथा उनको किये जाने नमस्कार की भी संख्या में 1 से लेकर हजारों, लाखों, करोड़ों तथा संख्यात भी हो सकते हैं । इसी तरह पाप कर्मों की संख्या का प्रमाण का विचार करने पर... 2-5-10-20 तो है नहीं । पाप कर्मों की संख्या असंख्य की या अनन्त की है । उदाहरणार्थ आज की इस जिन्दगी के 60-70 या 80 वर्षों में एक व्यक्ति ने कितनी बार झूठ बोला है ? कितनी बार गालियां दी है ? इसकी संख्या किसके पास है ? गिनती करने जाय तो किसको याद है ? यह तो एक पाप के विषय की बात की है । ऐसे पापों की 18 जातियां है । लेकिन एक-एक जाति के पाप को असंख्य बार किया जा सकता है । इस पाप कर्मों की संख्या निश्चित न होने के कारण संख्यावाची शब्द "सव्व" रखा है । जो सब पाप कर्मों के विषय की बात करता है । परमेष्ठी की संख्या निर्धारित ही है । वह कदापि परिवर्तनशील नहीं है । तीनों काल में या अनन्त काल में भी परमेष्ठी की संख्या में कोई परिवर्तन कदापि संभव ही नहीं है । निर्धारित निश्चित रूप से यही संख्या रहेगी । इसलिए नवकार के छट्ठे पद में "एसो पंच" शब्द से 5 की निश्चित स्थिर संख्या का सूचन किया गया है । ये 5 परमेष्ठी और इन पांच परमेष्ठी भगवन्तों को किया हुआ नमस्कार (आगे 7वें पद का अर्थ जोड़ने पर) सब पाप कर्मों का नाश करने वाला है ।

जैसे डॉक्टर निश्चित हो गया, रोग का भी निदान निश्चित हो गया हो फिर तो दवाई का निश्चितीकरण करना है । इसमें गुणवत्ता के आधार पर दवाई का चुनाव सही करना है । लेने की मात्रा को आधार पर संख्या में घट-बढ़ होती रहेगी । कहां तक दवाई लेनी है ? सीधा उत्तर यही है कि जहां तक रोग निवृत्ति नहीं होती है वहां तक दवाई अनिवार्य रूप से लेनी है । अब संख्या पर आधार ही नहीं है । परिणाम आने तक ही सीमा है । इस परिणाम को लाने के लिए संख्या जो भी आए भले आए ।

ठीक इसी तरह एक साधक की बीमारी है पाप कर्मों की । डॉक्टर, वैद्य के रूप में पांच परमेष्ठी भगवन्त है और दवाई उपचार के रूप में नमस्कार की साधना बताई है । अब हमें नमस्कार कहां तक करना है ? इसके उत्तर में निर्णय स्पष्ट ही है कि... जहां तक पाप कर्मों का समूल सर्वथा नाश न हो वहां तक नमस्कारादि उपचार उपाय नहीं छोड़ने चाहिए । इसमें 3 भेद होते हैं— 1. पाप कर्म का नाश और 2. सब पाप कर्मों का नाश । 3. सब पाप कर्मों का प्रकृष्ट रूप से नाश करना चाहिए । पहले में 1, 2, या थोड़े से पाप कर्मों का नाश हो जाने मात्र से संतोष नहीं मानना चाहिए । जैसे ज्वर उतारने के लिए सुदर्शन आदि की औषध लेने पर मात्र आधी या एक डिग्री ज्वर उतर जाने पर औषध छोड़कर भाग नहीं जाना चाहिए । संपूर्ण रूप से ज्वर उतर जाय, रोग निवृत्ति होने पर ही संतोष मानना हितावह है । ठीक इसी तरह कई साधक थोड़े से नमस्कार किये और पाप नाश नाम मात्र भी हुआ न हुआ बीच में ही छोड़कर भाग जाते हैं । यह उचित नहीं है । दूसरे विभाग में सब पाप कर्मों का नाश करने की विचारणा है । पहले की अपेक्षा दूसरे में संख्या का प्रमाण काफी बड़ा है तथा तीसरे भेद में संख्या में सब पाप होते हुए भी प्रकृष्ट रूप से उनका नाश होना चाहिए । इस तरह गुणवत्ता और संख्या दोनों का संयोजन साथ रखा है । तब जाकर निर्धारित परिणाम आता है । लक्ष्य सिद्धि होनी जरुरी है । इसीलिए नवकार में प्रयुक्त पदों में मात्रा, अक्षर, शब्द, उपसर्ग, अव्यय आदि जो भी प्रयुक्त है उन सबका सही अर्थ में चिन्तन, मनन करना चाहिए । इसलिए चूलिका के पदों और शब्दों में परिवर्तन करके फिर अर्थ का अनुसन्धान बैठाकर देखें—

एसो पंच नमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं - पढमं हवइ मंगलम् ॥

— इन पांच परमेष्ठी भगवन्तों को किया हुआ नमस्कार सब पाप कर्मों का प्रकृष्ट नाश करने वाला हो । यही सब मंगलों में प्रथम मंगल है । यहां चूलिका में सब पाप कर्मों का नाश करने के लिए पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार किया गया है । इस चूलिका में प्रथम चरण पद का परिवर्तन करके इस जगह यदि हम अभिप्सित किसी भी 1 परमेष्ठी को नमस्कार करने का पद रखकर फिर अर्थ का अनुसन्धान बैठाकर देखें—

नमो अरिहंताणं—सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं—पढमं हवइ मंगलम् ॥

श्री अरिहंत परमेष्ठी भगवान को किया गया नमस्कार सब पाप कर्मों का नाश करने वाला हो । यही सब मंगलों में प्रथम मंगल है । उपर पांच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करके जो परिणाम लाया था वही परिणाम इस दूसरी प्रकार की चूलिका में मात्र 1 ही परमेष्ठी अरिहंत भगवान को नमस्कार करके लाया । इस तरह अन्य भी परमेष्ठी हैं उनको भी एक-एक को स्वतंत्र नमस्कार करके परिणाम लाया जा सकता है—

"नमो सिद्धाणं" —सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं—पढमं हवइ मंगलम् ।।

सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करके सब पाप कर्मों का नाश किया जा सकता है । यही सब मंगलों में पहला मंगल है ।

"नमो आयरियाणं" — सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं — पढमं हवइ मंगलम् ।।

— तीसरे परमेष्ठी श्री आचार्य भगवन्त को नमस्कार करने से सब पाप कर्मों का नाश हो । यही सब मंगलों में श्रेष्ठ मंगल है ।

"नमो उवज्झायाणं" — सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं — पढमं हवइ मंगलम् ।।

— चौथे परमेष्ठी उपाध्याय भगवन्तों को नमस्कार करने से सब पाप कर्मों का नाश हो । यही सब मंगलों में सर्वश्रेष्ठ प्रथम मंगल है ।

"नमो लोए सव्व साहूणं" — सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसि — पढमं हवइ मंगलम् ।।

अढाई द्वीप रुप मनुष्य क्षेत्र में रहे हुए समस्त साधु भगवन्तों को किया हुआ नमस्कार सब पाप कर्मों का नाश करने वाला हो । यही सब मंगलों में सर्वश्रेष्ठ कक्षा का प्रथम मंगल है ।

इस तरह 6 विकल्प हुए । 1. परमेष्ठी को नमस्कार करके सब पाप कर्मों का नाश किया जा सकता है । परमेष्ठी 5 है, अत: पांच विकल्प इनके नाम वाले पदों से हुए तथा पांचों परमेष्ठी को संयुक्त रूप से एक साथ नमस्कार करके छट्ठा विकल्प भी बनता है । सर्व सामान्य रूप से जगत् के समस्त जीवों की दृष्टि से "एसो पंच नमुक्कारो" वाला संयुक्त रूप से जो है वही प्रचलित है । वही मुख्य है । इसलिए नवकार महामंत्र में इस एक की ही प्रधानता रखी गई है । शेष सभी पांचों एक-एक परमेष्ठी को नमस्कार करने के विकल्प वाले पद व्यक्तिगत साधकों के आधार पर आधारित है । व्यक्तिगत साधक जो विशेष रूप से अभिप्सित जिस परमेष्ठी की सविशेष उपासना करता हो उसे उसी परमेष्ठी के नाम पद वाली चूलिका की स्तुति प्रार्थना के रूप में उपयोग करके सब पाप कर्मों का क्षय नाश करने की साधना करनी चाहिए । इससे भी परिणाम आ सकता है ।

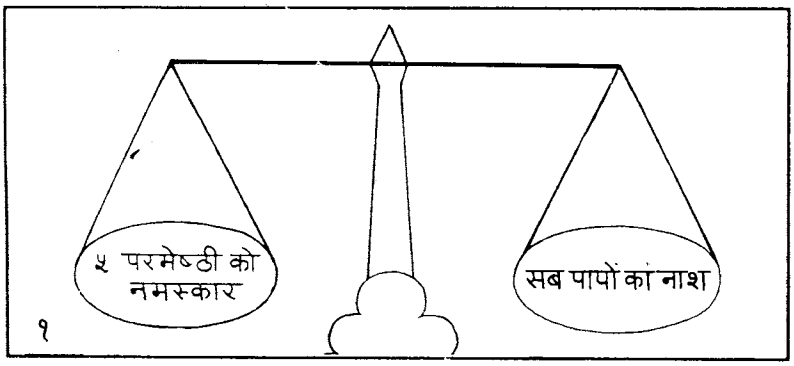

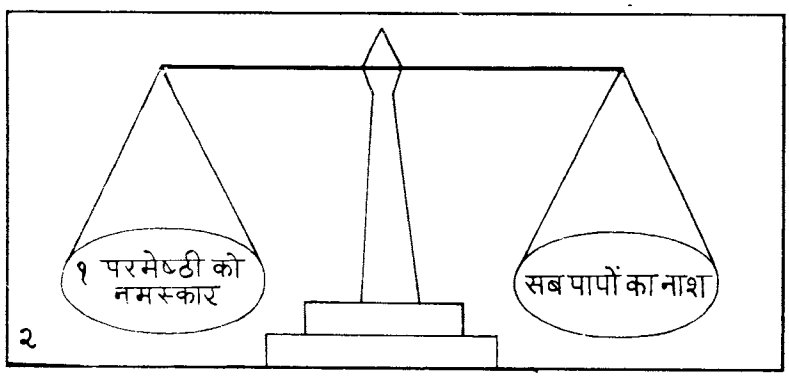

शास्त्रों में ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलते हैं जिनमें एक-एक पद की स्वतंत्र रूप से उपासना करके भी पाप कर्मों का नाश किये हुए है । हस्तिपाल राजा ने अकेले सिद्ध पद की उपासना सविशेष रूप से की तथा तीर्थंकर नामकर्म भी उपार्जन किया । देवपाल कुमार नामक लड़के ने पहले अरिहंत पद की विशिष्ट उपासना कर देवपाल राजा बना । पाप कर्मों की निर्जरा भी की तथा तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया । महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर बनकर मोक्ष में जाएगा । प्रदेशी राजा ने तीसरे परमेष्ठी आचार्य पद की उपासना की । केशी स्वामी इसमें मुख्य निमित्त बने । इस तरह एक-एक पद की, एक-एक परमेष्ठी की उपासना करके भी परिणाम लाने वाले ऐसे अनेकों दृष्टान्त मौजूद है ।

· · एक-एक परमेष्ठी को किया गया नमस्कार भी सब पाप कर्मों का नाश करने में समर्थ है । इसका अर्थ ऐसा नहीं होता कि... पांच परमेष्ठियों को नमस्कार करने की आवश्यकता ही नहीं है । संक्षिप्त में एक परमेष्ठी को नमस्कार करने से यदि सब पाप कर्मों का नाश हो जाता हो तो फिर निरर्थक क्यों पांचो परमेष्ठी को नमस्कार करने का लम्बा रास्ता अपनाएं ? जी हां... संक्षिप्त रास्ते के अच्छे अनुरागी है आप... परन्तु साथ-साथ यह भी ध्यान में रखिए कि... परमेष्ठी भगवन्तों में पांचों का स्वरूप अन्दर ही अन्दर एक दूसरे से मिला जुला मिश्रित है । एक अरिहंत परमेष्ठी अपने आप में अरिहंत तीर्थंकर भगवान तो है ही... साथ ही... सिद्ध भी बनते ही है । संसार का त्याग करके साधु बने हैं उपाध्याय, आचार्य पदवियां उनके तीर्थंकरपने की बड़ी पदवी में समाविष्ट हो जाती है । इसी तरह सिद्ध पद में शेष चारों पद समा जाते हैं । क्योंकि चारों मार्गो से अरिहंत, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु सभी जाकर सिद्ध बन सकते हैं । इसी तरह साधु पद में निष्ठ आत्मा भावि में अरिहंतादि बनती है । साधु मूलभूत पद है । पहला प्राथमिक पद है । नवकार में प्रवेश करने के लिए सर्वप्रथम साधु बनना अत्यन्त आवश्यक है ।

संक्षिप्तकरण की अन्तिम सीमा पर "ॐ" कार के अक्षर मात्र में पांचों परमेष्ठियों का समावेश करके भी संतोष माना जा सकता है ।

साधकों को नम्र निवेदन है कि... प्रस्तुत लेख का सम्यग् अध्ययन करके चिन्तन मनन द्वारा ऐसा मनोभाव बनाकर सब पाप कर्मों का क्षय करने की दिशा में आगे बढ़े । साध्य सिद्ध करके साधकपना सार्थक सिद्ध करें ।

मुंबई-पुना-मद्रास-बेंगलोर और जोधपुर आदि शहरों में —

प. पू. पंन्यास प्रवर श्री अरूणविजयजी गणिवर्य महाराज

की प्रेरक प्रेरणा — सदुपदेश एवं मार्गदर्शनानुसार कार्यरत समोजपयोगी संस्था

श्री महावीर जैन साधर्मिक कल्याण केन्द्र

आयकर विभाग से 80G नियमानुसार कर माफी पत्र प्राप्त-ट्रस्ट रजिस्टर्ड नं. E-28001 पुणे

* जैन साधर्मिक परिवारों के निवासार्थ — साधर्मिक नगर का आयोजन.....
* साधर्मिक बंधुओं के आर्थिक अभ्युदयार्थ — व्यापारार्थ बिना ब्याज की लोनदान.....
* साधर्मिक युवकों और युवतियों को नोकरी दिलाने हेतु कार्यरत संस्था.....
* साधर्मिक परिवारों के बालक-बालिकाओं के शिक्षणार्थ शैक्षणिक सहयोग.....
* साधर्मिक श्राविकाओं, विधवाओं, वृद्धाओं के लिए गृह उद्योगार्थ आर्थिक सहयोग.....
* असहाय-अपंग-विकलांग-दुर्बल-रोगी साधर्मिकों के लिए घर बैठे दान योजना.....
* अक्षम साधर्मिक परिवारों के लिए रोगोपचार हेतु वैद्यकीय सहायता.....
* साधर्मिक परिवारों के बालक-बालिकाओं विद्यार्थियों को शिक्षणार्थ पुस्तकों, कॉपी आदि का वितरण...
* साधर्मिक युवकों-युवतियों को स्वावलंबी बनाने हेतु कम्प्युटर शिक्षण सहयोग.....
* साधर्मिक युवक-युवतियों को कंपनी के डिस्ट्रीब्यूटर नियुक्त कराए जाते हैं .....
* गृह उद्योग, लघु उद्योगादि का आयोजन साधर्मिक परिवारों के विकासार्थ करना.....

साधर्मिक परिवारों के सर्वांगीण विकासार्थ पुना शाखा का संपर्क करें —

श्री महावीर जैन साधर्मिक कल्याण केन्द्र - पुना शाखा

कार्यालय — मारुति कॉम्प्लेक्स, ५वां माला. गणेश पेठ, डुल्या मारुति चौक, पुना ४११००२ महाराष्ट्र
मद्रास शाखा — १५ व १६ वेपेरी चर्च रोड़, वेपेरी पोलीस स्टे. के पीछे, वेपेरी, चेन्नई ६०००००७
फोन ६६१०९२०

अपरिवर्तनशील शाश्वत महामंत्र—"नवकार"

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

अनादिकाल से इसी स्वरूप में चल रहे इसी नवकार महामंत्र में एक भी शब्द या अर्थादि किसी के भी परिवर्तन की कोई गुंजाइश ही नहीं है तथा किसी प्रकार के शब्द या अक्षरों का परिवर्तन या कम ज्यादा करना संभव ही नहीं है । यदि किसी भी शब्द या अक्षर का परिवर्तन लोप या वृद्धि किसी भी प्रकार की संभावना होती तो तीर्थंकर परमात्मा सर्वज्ञ थे वे स्वयं ही कर लेते, क्योंकि उनके काल में यही महामंत्र अपने स्वरूप में जैसा आज है वैसा ही मौजूद था । जब नवकार मौजूद था और सर्वज्ञ केवली भी उपस्थित थे और उनके काल में नवकार की निरन्तर जाप आदि साधना बराबर चलती ही रहती थी तो फिर उन्होंने परिवर्तन क्यों नहीं किया ? परिमार्जन, समार्जन जो भी आवश्यक था, वे स्वयं कर लेते । क्योंकि सर्वज्ञ के सिवाय "नवकार" में परिवर्तन करने का अधिकार अन्य किसी का हो ही नहीं सकता है । आज के इस कलियुग में सर्वज्ञों की अनुपस्थिति में अल्पज्ञों की ही विपुल संख्या है । हजारों लाखों अज्ञानी इकट्ठे होकर नवकार की एक मात्रा या अनुस्वार की भी क्षय वृद्धि नहीं कर सकते । सर्वज्ञ केवली को यदि अशुद्ध-अनुचित लगे तो संभव है वे स्वयं अकेले पूर्ण संपूर्ण आमूलचूल परिवर्तन कर सकते हैं । उनका पूरा अधिकार रहता है । सर्वज्ञ केवलीओं को मीटिंग करके विचारणा करने की आवश्यकता नहीं रहती है । इसीलिए सर्वज्ञों की कभी मीटिंग नहीं होती है । अल्पज्ञों की भले ही रोज होती रहे... लेकिन कुछ भी या किसी भी प्रकार का परिवर्तन करना अल्पज्ञों के वश की बात ही नहीं है । सिद्धान्त यही कहता है कि... जो शाश्वत होता है वह तीनों काल में समान रूप से अस्तित्व रखता है । अपरिवर्तनशील शाश्वतता त्रैकालिक है ।

सर्वज्ञों के काल में नवकार—

24 तीर्थंकर आदिनाथ से भगवान महावीरस्वामी तक सभी सर्वज्ञ केवली थे । उनके शिष्य गणधर केवली सर्वज्ञ नियमा बनते ही है तथा अन्य साधु, साध्वियों में से भी हजारों लाखों केवलज्ञानी हुए हैं । इस अवनितल पर वर्तमान अवसर्पिणी काल में सर्वप्रथम केवलज्ञानी श्री आदिनाथ भगवान हुए और सबसे अन्तिम श्री जंबूस्वामी केवली हुए तथा इस आदि और अन्त के बीच लाखों केवलज्ञानी हो चुके हैं । अकेले महावीर भगवान के 14000 शिष्यों में से 700 केवलज्ञानी हुए और वे मोक्ष में गए तथा गौतम स्वामी के शिष्यों में से कितने केवलज्ञानी हुए ? एक दृष्टान्त में 1500 तापस जो अष्टापद पर साधना करते थे वे सब केवलज्ञानी बने तथा अन्त में अन्तिम केवलज्ञानी के रूप में श्री जम्बुस्वामी का नाम शास्त्रों में आता है । जिनको हुए मात्र 2486 वर्ष ही बीते हैं । यह काल कोई ज्यादा लम्बा काल नहीं है । भगवान महावीर के निर्वाण को 2523 वर्ष बीते हैं । उनके पश्चात 12 वर्ष तक गौतम स्वामी सर्वज्ञ रहे, फिर 8 वर्ष तक सुधर्मा स्वामी सर्वज्ञ रहे— 12 + 8 = 20 वर्ष हुए और अन्त में जम्बुस्वामी भी केवली बनकर 20 वर्ष तक रहे हैं । 20 + 20 = 40 वर्ष हुए । 2526 निर्वाण काल में से 40 और घटाने पर 2486 वर्ष आए । अत: आज से 2486 वर्ष पहले सर्वज्ञ भगवन्तों की सत्ता बराबर थी । किन-किन केवलीयों ने नवकार में परिवर्तन किया ?

यदि मान भी लो कि किसी भी केवली ने नवकार में परिवर्तन किया हो तो इससे यह सिद्ध होगा कि उन केवली के परिवर्तन करने के पहले नवकार अशुद्ध था । तो क्या उन परिवर्तनकारी केवली के पहले अन्य कोई केवली हुए ही नहीं ? अरे ! भगवान महावीर तो तीर्थंकरों की श्रेणी में चौबीसवें थे और उनके पहले 23 केवलज्ञानी तीर्थंकर और बीत चुके हैं तथा उन सर्वज्ञ तीर्थंकरों के भी हजारों शिष्य प्रशिष्यादि केवली हुए ही हैं । तो क्या नवकार की अशुद्धि या दोषादि कभी उनके ख्याल में नहीं आया और अन्तिम केवली के ही ध्यान में आ गया ? ऐसा मानने पर केवली जो पूर्ण सम्पूर्ण सर्वज्ञ है उनमें कमी मानने का दोष आएगा । जो और भी बड़ा अपराध हो जाएगा ।

अब यदि केवलियों की परम्परा में सर्वप्रथम केवली आदिनाथ भगवान हुए थे, और मान लो कि... आदिनाथ भगवान प्रथम सर्वज्ञ भगवान ने नवकार में परिवर्तन-सुधारणा की होगी । तो उनको हुए कितना काल बीता ? शास्त्रकार बताते हैं कि चौथा आरा एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपमं में 42000 वर्ष कम का होता है । तीसरे आरे के अन्त में केवलज्ञानी आदिनाथ भगवान हुए हैं । उसके पश्चात् चौथा आरा पूरा समाप्त हो चुका है । और उसके बाद पांचवें आरे के भी 2526 वर्ष बीत चुके हैं । अत: इतने लम्बे चौथे आरे के कोड़ा-कोड़ी सागरोपम के ही असंख्य

वर्ष बीत चुके हैं । अत: भगवान आदिनाथ के समय में जो नवकार महामंत्र था वही आज भी है । इस तरह नवकार महामंत्र को असंख्य वर्ष पुराना-प्राचीन तो मानना ही पड़ेगा । क्योंकि बराबर सिद्ध हो रहा है ।

नयसार के भव में नवकार साधना—

भगवान आदिनाथ के समय उनके पुत्र भरत चक्रवर्ती के पुत्र मरीचि थे । मरीचि ही भगवान महावीर का जीव था । जो भगवान महावीर के 27 में से 3 रा भव था । मरीचि भगवान आदिनाथ के समय में थे । भगवान आदिनाथ का भी 84 लाख पूर्व का आयुष्य था, और मरीचि का भी उतना ही था । अत: समानान्तर आयुष्यधारी समकालीन थे । मात्र पौत्र होने के नाते मरीचि कुछ 50-100 वर्ष बाद में हुए होंगे । लेकिन कल्पसूत्रादि शास्त्र स्पष्ट कहते हैं कि... मरीचि का यह तीसरा भव था । इसके पहले के दूसरे भव में वे स्वर्गवासी देव थे । देवलोक में देवताओं का आयुष्य पल्योपम, सागरोपमों की गणना वाले होते हैं और उसके पहले पहला भव नयसार का था । नयसार पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य के रूप में था । सबसे पहले वहां वह मुनि महात्मा से धर्मलाभ में नवकार महामंत्र पाया था । वहां नयसार ने नवकार की अंतिम साधना की थी । उसके बाद भव परम्परा आगे बढ़ी और अन्तिम 27वें जन्म में वह (नयसार) भगवान महावीरस्वामी बनकर मोक्ष में गया ।

महाविदेह क्षेत्र में यही नवकार—

अत: इससे यह निष्कर्ष निकला कि नयसार को नवकार महामंत्र आदिनाथ भगवान से नहीं मिला है, परन्तु महाविदेह क्षेत्र में साधु महात्मा से प्राप्त हुआ है । इससे एक नया तथ्य और सामने आता है कि... महाविदेह क्षेत्र में भी नवकार यही था और ऐसा ही था । जबकि महाविदेह क्षेत्र में सर्वज्ञ केवली तीर्थंकरों की शाश्वत परम्परा चलती है । शाश्वत कहने का तात्पर्य है भूत, वर्तमान और भावी तीनों काल में समान रूप से अखण्ड रूप से तीर्थंकर भगवान होते ही रहते हैं । जब तीर्थंकर भगवान होते ही रहते हैं तो उनके गणधर, उनके केवली शिष्यादि भी नित्य रूप से होते ही रहते हैं । इसमें शंका को अवकाश ही नहीं है । असंख्य के साथ पू. आद्य गणधर गौतम स्वामी ही 'जगचिंतामणी' के सूत्र में स्पष्ट लिखते हैं कि...

कम्म भूमिहिं कम्म भूमिहिं पढम संघयणि,
उक्कोसय सत्तरिसय, जिणवराण विहरंत लब्भइ ।
नवकोडिहिं केवलीण, कोडिसहस्स नव साहु गम्मइ ।
संपइ जिणवर वीस मुणि, बिहुं कोडिहिं वरनाण;
समणह कोडि सहस्स दूअ, थुणिज्जइ निच्च विहाणि ॥2 ॥

— 5 भरत क्षेत्र + 5 ऐरावत क्षेत्र + और 5 महाविदेह क्षेत्र ऐसे कुल 15 कर्मभूमियों में विचरण करने वाले, वज्रऋषभनाराच नामक प्रथम संघयण वाले जिनेश्वर भगवानों की उत्कृष्ट संख्या 170 की होती है । सामान्य केवलज्ञानियों की उत्कृष्ट संख्या 9 करोड़ तथा साधुओं की 9 हजार करोड़ की उत्कृष्ट संख्या होती है । अर्थात् 90 अरब की होती है । आज वर्तमान काल में 20 तीर्थंकर सीमंधर स्वामी आदि विचर रहे हैं और उनके केवलज्ञानी 2 करोड़ है तथा साधुओं की संख्या 2 हजार करोड़ अर्थात् 20 अरब है । यह संख्या आज है ।

इस तरह हजारों करोड़ की संख्या जहां केवलज्ञानी सर्वज्ञ भगवन्तों की बताई है । क्षायिक भाव से प्राप्त हुआ केवल ज्ञान सभी केवलियों में एक समान एक जैसा ही रहता है । तीर्थंकर भगवन्तों में भी केवल ज्ञान सामान्य केवली के जैसा समान रूप ही रहता है । रत्ती भर भी न्यूनाधिकता का प्रश्न ही नहीं रहता है । अत: इतने हजारों करोड़ केवलज्ञानियों में से किस केवलज्ञानी भगवान ने नवकार महामंत्र में सुधारणा की और परिमार्जन किया ? कब किया ? या कब रचना की ?

इतिहास में परम्परा प्रमाण—

याद रखिए ! इतिहासविदों ने इतिहास के विषय में अन्य प्रमाणों के साथ-साथ परम्परा के प्रमाण को भी स्वीकारा है । सही बात है कि लाखों करोड़ों वर्षों की प्राचीनता के लिए सन्, संवत् या वस्तु का आधार ही सदा उपलब्ध होगा यह संभव ही नहीं है । अत: परम्परा का प्रमाण भी ग्राह्य है । नवकार की परम्परा अखण्ड रूप से आज तक चल रही है । जिसमें अनन्त काल बीत गया है । यदि नवकार के विषय में आधार भूत वस्तु तथ्य का प्रमाण ढूंढने जाएंगे तो करोड़ों वर्षों के पहले की कोई वस्तु कहां से लाएंगे ? उसके ताम्रपत्रों, ताड़पत्रों या पाषाणादि पर लिखा हुआ नवकार कितना पुराना मिलेगा ? इसकी अपेक्षा जापादि साधना में परम्परा से अखण्ड रूप से अगणित वर्षों पुराना नवकार चला ही आ रहा है ।

भगवान महावीर के जीव ने नयसार के प्रथम भव में जो नवकार महामंत्र पाया और उसकी जो साधना की वही महामंत्र नवकार आज कल्पसूत्र आदि शास्त्रों में प्राप्त हो रहा है । अब आप काल गणना करिए, कितने वर्ष बीत गए नवकार की प्राचीनता को और यह तो 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के 27 जन्मों की बात है । इसमें नयसार का प्रथम भव तो इस पूरी चौबीशी के पहले के काल का है । क्योंकि 3रा भव मरीचि का ही प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ भगवान के काल का समकालीन था । अत: प्रथम नयसार का भव तो भगवान आदिनाथ के भी काफी पहले हुआ है ।

अब यदि प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ भगवान के पूर्व भवों की दृष्टि से विचारणा करें तो उनके भी 13 भव हुए हैं । सर्वप्रथम धन सार्थवाह का था । इस प्रथम जन्म में ही नवकार महामंत्र उन्होंने पाया और साधना की, सभी तीर्थंकरों के विषय में नवकार की साधना प्रथम भव में ही की गई का विधान है । क्योंकि जिस जन्म में सम्यग् दर्शन प्राप्त किया वही प्रथम भव के रुप में गिना जाता है और सम्यग् दर्शन तथा नवकार महामंत्र का परस्पर साथ रहने का गाढ सम्बन्ध है । बिना नवकार के सम्यग् दर्शन टिक ही नहीं सकता है । क्योंकि सम्यग् दर्शन का आधार देव, गुरु, धर्म पर रहा हुआ है । अरिहंत और सिद्ध देव तत्त्व है, आचार्य, उपाध्याय, साधु ये तीनों गुरु तत्त्व है तथा "नमो" यह धर्म तत्त्व है । इन तीनों तत्त्वों के सम्मिलित शुद्ध स्वरूप की श्रद्धा का ही नाम सम्यग् दर्शन है । इसलिए सम्यग् दर्शन और नवकार ये दोनों एक ही सिक्के के दोनों तरफ है । एक दूसरे के पूरक है । अन्योन्य एक दूसरे से संकलित है ।

इस तरह सम्यग् दर्शन और नवकार एक स्वरूप है । भिन्न-भिन्न हो ही नहीं सकते हैं । अत: सम्यग् दृष्टि साधक नवकार का निषेध कभी कर ही नहीं सकता है और नवकार का साधक सम्यग् दर्शन का निषेध भी कभी कर ही नहीं सकता है । अत: सम्यग् दृष्टि अवश्य ही नवकार का उपासक होगा और वैसे ही नवकार का उपासक अवश्य ही सम्यग् दृष्टि होना चाहिए । बशर्त कि यदि वह नवकार का सच्चा भाव साधक हो ।

प्रत्येक जीव प्रथम भव में नवकार पाता है—

निगोद में जीव के अनन्त भव बीतते हैं । फिर 84 लक्ष योनि में चारों गतियों में परिभ्रमण करते हुए जीव के अनन्त भव बीतते हैं । अनन्त की गणना कदापि संभव नहीं रहती है । लेकिन शास्त्रीय नियम यह है कि... जिस जन्म में जीव सम्यग् दर्शन प्राप्त करता है उसी भव से जीवों की भव गणना होती है । इस सिद्धान्त के आधार पर ही भगवान आदिनाथ के 13, भगवान शान्तिनाथ के 12, भगवान नेमिनाथ के 9, भगवान पार्श्वनाथ के 10 और भगवान महावीर के 27 भवों की गणना होती है । जिस जन्म में इनके जीव ने सम्यग् दर्शन पाया वह पहला जन्म और जिस जन्म में वे मोक्ष में गए वह अन्तिम भव गिना जाता है । इस तरह बीच के भवों की गणना हो जाती है । जीव मात्र के लिए यही सिद्धान्त लागू होता है । यह शाश्वत सिद्धान्त है । सम्यग् दर्शन के साथ नवकार का शाश्वत सम्बन्ध होने के कारण प्रत्येक जीव जो भी सम्यग् दर्शन पाएगा वह उसी जन्म में नवकार महामंत्र की साधना अवश्य करेगा ही करेगा और कहां तक करेगा ? मोक्ष में न जाय वहां तक अनिवार्य रूप से करेगा । इसलिए जितना मोक्ष का आधार सम्यग् दर्शन पर है उतना ही नवकार महामंत्र पर भी अनिवार्य रूप से है ही । अत: मोक्ष प्राप्ति नवकार महामंत्र से अवश्य होती है । इसलिए इस महामंत्र को मुक्तिदाता मंत्र मोक्षदायक मंत्र भी आसानी से कह सकते हैं ।

सम्यग् दर्शनी मोक्ष में अवश्य जाएगा ही । इसमें संदेह को अवकाश ही नहीं है । सिर्फ बीच के काल में न्यूनाधिकता होनी संभव है । ठीक इसी तरह नवकार का उपासक सम्यग् दृष्टि होता जाय तो नवकार साधक भी मोक्ष में अवश्य जाएगा । काल और भव गणना की संख्या न्यूनाधिक हो सकती है । ऐसे तीनों काल में सदा अपरिवर्तनशील रहने वाले शाश्वत महामंत्र की उपासना मोक्षार्थी मुमुक्षु आत्माओं को अरश्य करनी ही चाहिए । जिससे यथाशीघ्र मुक्ति की प्राप्ति हो सकें । सभी जीव नवकार की साधना करके मोक्ष प्राप्त करे यही शुभभावना ।

ग्रह पीड़ा निवारक — महामंत्र नवकार

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

"ग्रह" शब्द सभी जानते हैं तथा संस्कृत भाषा में उपसर्ग आगे जुड़कर कई प्रकार के शब्दों की रचना करते हैं। जैसे—ग्रह से संग्रह, आग्रह, विग्रह, निग्रह, कदाग्रह, दुराग्रह, हठाग्रह, उपग्रह, परिग्रह ऐसे अनेक प्रकार के शब्दों की संरचना होती है। इन सबमें "ग्रह" होते हुए भी उपसर्ग के आधार पर सबका अर्थ बदल जाता है। भिन्न-भिन्न अर्थ होता है। आश्चर्य तो इस बात का है कि... विज्ञान के लिए अरबों-खरबों के खर्च से "उपग्रह" छोड़ना आसान खेल हो गया है। लेकिन मानव के लिए आग्रह, दुराग्रह, कदाग्रह, हठाग्रह और परिग्रह छोड़ना असंभवसा लग रहा है। ऐसा क्यों ? आत्म जागृति के साथ अन्तस्थ चेतना में जागृति आ जाय तो क्षण मात्र में परिग्रहादि सब छूट सकते हैं। चक्रवर्ती भी यदि अपना अमाप-असीम सब परिग्रह छोड़े और संयम चारित्र ग्रहण करे तो मुक्ति जरुर होती है और यदि नहीं छोड़ता है तो चक्रवर्ती सातवीं नरक तक भी जाता है। सोचिए एक परिग्रह कितना भारी ग्रह है। जो चेतन जीव को सातवीं नरक तक ले जाने में कारण भूत निमित्त बनता है। इसलिए भगवान ने अपने उपदेश में परिग्रह को त्याज्य, हेय बताकर छोड़ने के लिए कहा है।

नवग्रह की समस्या—

वर्तमान काल में... मानव जाति को ज्योतिष्क मण्डल के नौं ग्रहों की ग्रह पीड़ा बहुत बड़ी समस्या लग रही है। भारत देश के ज्योतिष शास्त्र में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति (गुरु), शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नव ग्रह माने गए हैं। ज्योतिष यह वेद की अंग रूप शाखा है। अत: नौं ग्रहों के स्वभाव आदि सैंकड़ों बातें वेद की वैदिक विचारधारा के आधार पर जुड़ी हुई है। वैसे नौ ग्रहों का वर्णन जैन आगम शास्त्रों आदि तथा जैन ज्योतिषादि शास्त्रों में भी उपलब्ध है। परन्तु वह उनकी भौगोलिक, खगोलिक स्थिति का वर्णन है। न कि... वैदिक संस्कृति के समान स्वभावों का वर्णन है। सूर्य, चन्द्रादि क्या हैं ? कहां हैं ? कैसे हैं ? उनका स्वरूप क्या है ? देवगति की चार निकाय में ज्योतिषी देव यह एक स्वतंत्र निकाय है। अत: सारा वर्णन जैन शास्त्रों में अद्‌भुत है। लेकिन कहीं भी वैदिकी मान्यता एवं वर्तमान ज्योतिष शास्त्रों की मान्यता के जैसा वर्णन जैन शास्त्रों में कहीं भी उपलब्ध नहीं है।

हजारों वर्षों से ज्योतिष विद्या के अध्ययनादि की कुशलता ब्राह्मण वर्ग ने ही प्राप्त की। अत: अधिकारी भी प्राय: वे रहे और ब्राह्मणों की परम्परा में ज्योतिष चलता ही रहा। यह उनकी आजीविका के साथ जुड़ा हुआ पेशा होने के कारण विशेष पनपा। इन अनेक कारणों से ज्योतिष विद्या पर ब्राह्मणों की छाप काफी ज्यादा पड़ी। मनमानी भी काफी चली। विशेषकर फलादेश विभाग में 50% से, 60% से ऊपर मनघड़न्त, कपोल कल्पित कल्पनाएं भविष्य कथन में खूब चल रही है। अन्जान, अनपढ़ और अंध श्रद्धालु भोली, भाली जनता के लिए दु:ख टलने और सुख की आशा का सहारा यह ज्योतिष तंत्र और ब्राह्मण जोशी वर्ग बनता गया। अन्य व्यापारों में वस्तु में मिलावट की जाती है। इसी तरह ज्योतिष शास्त्र में फलादेश आदि के विषय में काफी मिलावट की जाती है। तत्त्वज्ञान की दृष्टि से ज्योतिष शास्त्र और उसमें भी नौ ग्रहों के स्वभाव एवं दु:ख, सुखदाता स्वभाव एवं शुभाशुभ फल का विषय संशोधन का विषय है। कोई सत्य का तटस्थ अन्वेषण करने वाला संशोधक गहराई में जाकर सत्य की खोज करें तो कुछ निष्कर्ष निकले कि... आखिर चरम सत्य क्या है ?

जैन धर्म में कर्मवाद—

विश्व की अनेक संस्कृतियों और धर्म दर्शनों में जैन धर्म का, जैन दर्शन शास्त्र का तथा जैन संस्कृति की एक अलग ही प्रकार की स्वतंत्र मौलिक विचारधारा है। इसके प्रणेता सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान केन्द्र में रहे हैं। सर्वज्ञ स्वयं वीतरागी है। अत: उनके वचनों में असत्य का अंश भी नहीं आता है। ऐसे सर्वज्ञ वीतरागी तीर्थंकर भगवानों ने कहीं भी ग्रहों का ऐसा स्वभाव, ऐसा स्वरूप, ऐसा वर्णन और पर पीड़ाकारीपना आदि कुछ भी नहीं बताया है। जैसा कि ब्राह्मण ज्योतिषी लोग आज भी उनकी परम्परानुसार ज्योतिष शास्त्र के आधार पर बताते रहते हैं। कहीं कुछ मेल ही नहीं मिलता है।

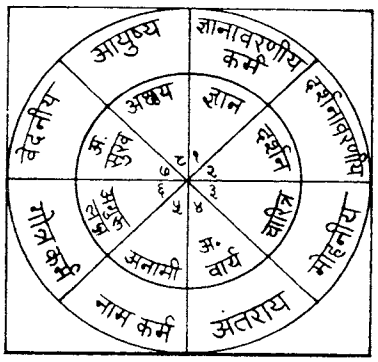

सर्वज्ञों ने जो कि चरम सत्य को प्रस्तुत करने वाले है— उन्होंने कर्मवाद की प्ररुपणा की है। 8 कर्म बताए हैं। आत्मा के आठ गुणों पर 8 कर्म लगते हैं। साथ के चित्र में दर्शाया है। इन 8 कर्मों में शुभाशुभ का विभाग जरुर है। इन 8 कर्मों की 158 उत्तर प्रकृतियां है। आत्मा के आठों गुणों पर लगे हुए ये आठों कर्म आत्मा के मूलभूत स्वभाव एवं गुणों का घात करते हैं। उदय में आकर सुख-दुःख दाता ये कर्म बनते हैं। अतः सुख-दुःख, विघ्न, संकट आदि जैन धर्म ने सब कर्म जन्य माना है। हिन्दु धर्म में ईश्वर जन्य एवं ग्रह जन्य माना है। अतः हिन्दु वैदिक धर्मों ने ग्रह निवारणार्थ कर्मकाण्ड जोड़ दिये हैं। इसके साथ पूजा, अर्चना, जापादि भी जोड़ दिये हैं। जिससे ग्रह पीड़ा का निवारण हो सकें।

जैन धर्म में नौ ग्रहों का स्थान—

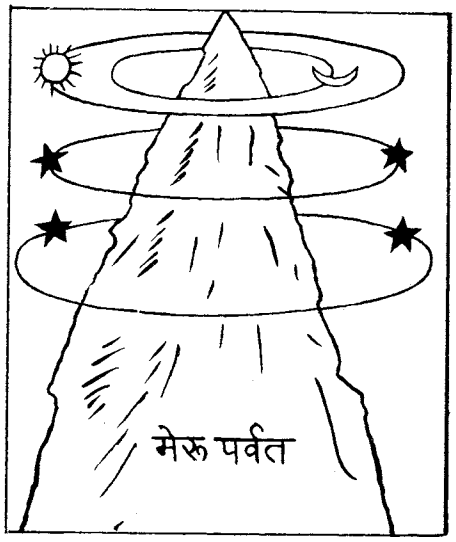

समस्त 14 राज लोक के ब्रह्माण्ड में मनुष्य लोक के मध्यवर्ती जंबूद्वीप के केन्द्र में 1 लाख योजन ऊंचा विस्तार वाला मेरु पर्वत है। इसके चारों तरफ निरन्तर प्रदक्षिणा करते हुए सूर्य, चन्द्रादि ज्योतिष्क मण्डल के देवता है। 1. भवनपति, 2. व्यंतर, 3. ज्योतिष्क और 4 वैमानिक इन देवगति की चार निकायों में इनकी तीसरी जाति है। इनमें ये पांच प्रकार के हैं। 1. सूर्य, 2. चन्द्र, 3. ग्रह, 4. नक्षत्र और 5. तारा। इसलिए पांच अंग के आधार पर पांचों अंगों का समूहात्मक नाम बना 'पंचांग'। वैसे 2-3 तरीकों से यह पंचांग शब्द की व्युत्पत्ति बताई गई है। 1. तिथि, 2. वार, 3. करण, 4. नक्षत्र और 5. योग इन 5 अंगों के समूह को भी "पंचांग" नाम दिया गया है। तत्त्वार्थ के "मेरु प्रदक्षिणा नित्य गतयो नृलोके" इस सूत्र के आधार पर... ये पांचों प्रकार के सूर्य, चन्द्रादि नृलोक = मनुष्य लोक क्षेत्र में मेरु पर्वत के चारों तरफ प्रदक्षिणा करते रहते हैं। ज्योति अर्थात् प्रकाश फैलाते हुए परिभ्रमण करते रहते हैं। पृथ्वी तल से 790 योजन से इनका भ्रमण क्षेत्र ऊपर आकाश में शुरु होता है जो 900 योजन की ऊंचाई तक है। मात्र 110 योजन के क्षेत्र में ये ज्योतिष मण्डल के विमान निरन्तर गति करते रहते हैं। ऐसा वर्णन बृहत्संग्रहणी, क्षेत्र समास आदि शास्त्रों में है। लोक प्रकाश आदि में और भी सैंकड़ों बातें वर्णन के विषय में मिलती है। लेकिन प्रचलित वैदिक मान्यतानुसार ज्योतिष शास्त्र में राहु, केतु आदि विषयक जो और जैसी विचारधारा स्वभाव एवं कार्य क्षेत्र तथा उनकी उत्पत्ति आदि विषयक बातों को आधार अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं होता है।

वर्तमान आधुनिक विज्ञान की बातें—

आज प्रचलित आधुनिक खगोल विज्ञान की बातें आश्चर्यकारी... चौकाने वाली है। उनके आधार पर सूर्य स्थिर है और आकाश में पृथ्वी भी एक ग्रह ही है। इस तरह ग्रहमाला बड़ी लम्बी चौड़ी है। मार्स, विनस, ज्युपिटर, सेटर्न, अर्थ, मून आदि नामकरण अंग्रेजी भाषा के प्रचलित है। वर्तमान वैज्ञानिकों की मान्यतानुसार सूर्य के चारों तरफ सभी ग्रहों का परिभ्रमण होता रहता है। कौन किससे कितनी दूरी पर है ? आकार, प्रकार आदि का पता लगाने का दावा करते हुए आज का विज्ञान खगोल विषयक ज्ञान जनता को दे रहा है। यह छद्मस्थ मानव उपार्जित ज्ञान है। सर्वज्ञों के ज्ञान की जो धारा आर्हत् शास्त्रों में चल रही है उससे सर्वथा विरुद्ध एवं विपरीत मान्यता आधुनिक विज्ञान की है। दोनों में कोई तालमेल नहीं है। विज्ञान की मान्यता कहां तक सही है ? सत्य से कितनी समीप और कितनी दूर है यह निर्णय तो जब

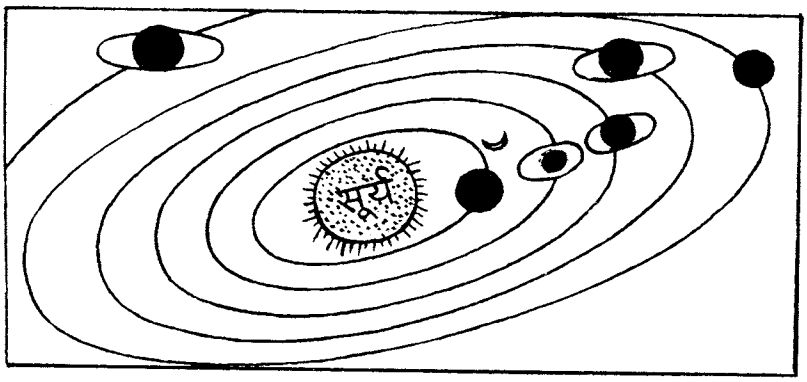

ज्ञानियों के पास होगा तब समस्त जनता की भ्रांति, भ्रमणा दूर हो सकती है। लेकिन वे दिन आज कहां दिखाई दे रहे हैं ? इस विज्ञानवाद ने यंत्रों के सहारे जितना ज्ञान प्राप्त हुआ उतना ज्ञान आज के मानव को जो दिया है उसमें ग्रहों के स्वभाव, प्रभाव के कार्य की बात अंश मात्र भी कहीं नहीं है। अत: नौं ग्रहों राशियों आदि के स्वभाव प्रभाव का विषय अत्यन्त शीघ्र ही संशोधन मांगता है। संशोधन सत्य की दिशा में तटस्थ भाव से हो तो ही सत्य प्रगट होगा। अन्यथा जितनी भ्रान्ति और भ्रमणाओं से आभासात्मक ज्ञान से ज्योतिष शास्त्र भरा हुआ है। उतना ही अन्य किसी विद्या में होगा ?

जनता के सुख-दु:ख का दर्पण जैसा रूप इसे दे दिया है अत: लोगों की अंध श्रद्धा के साथ जुड़ जाने से यह लोगों के जीवन का एक अंग बन गया है। जैसी भी प्रचलित व्यवहारिक जो मान्यताएं ग्रहों आदि के विषय में जुड़ी हुई है, उसमें नौं ग्रहों के स्वभाव और प्रभाव के आधार पर जो जीवों को सुख-दु:ख माना गया है उसमें ग्रहदशा को कारण बताते हुए काफी वर्णन किया है। यद्यपि जैनाचार्यो ने भी ज्योतिष शास्त्र पर कलम चलाई है, लेकिन उसमें अधिकांश भाग मुहूर्त विषय पर है। ज्योतिष के मुहूर्त विभाग गणित और फलादेश आदि विभाग है। मुहूर्त विभाग में दिन शुद्धि आदि में तिथि, वार, नक्षत्र, करण और योग के आधार पर शुभ कार्य हेतु शुभ दिन लेने का विधान है। जातक के जन्म समयानुसारी कुण्डली बनाकर, 12 राशियों के 12 घर (खाने) बनाकर उसमें समस्त मानव जीवन को 12 विभागों में विभक्त कर 12 भाव स्थापित किये हैं। उनमें कहां, कौन सा ग्रहगोचर स्थिति में पड़ा है ? तथा किसकी दृष्टि किस पर कहां पड़ रही है ? इत्यादि के आधार पर ग्रहों के स्वभाव के आधार पर प्रभाव के अनुरुप फलादेश ज्योतिषी करते हैं। आधार ग्रहों के स्वभावों के प्रभाव को लेकर व्यक्ति अपने वाक्चातुर्य में शब्द रचना की भाषा को मोड़ देकर सामान्य जनता के सामने भविष्य कथन करता है। ग्रहों में मित्रता, शत्रुता, भाईचारा, पिता, पुत्र, गुरु, शिष्य, वैमनस्य विरोधी आदि अनेक भावों के संबंध ज्योतिष शास्त्र प्रस्तुत करता है। यहां वास्तविकता जरुर प्रश्न चिन्ह बनी हुई है। शनि का, राहु, केतु का स्वभाव निश्चित कर लिया गया है। अब जातक की कुण्डली में गोचर ग्रहस्थिति को देखकर ग्रहों के स्वभाव के आधार पर क्या और कैसा प्रभाव पड़ेगा ? यह कथन फलादेश है। ग्रहों के नीच स्थान, उच्च स्थान आदि की व्यवस्था बैठाई गई है। राशियों की व्यवस्था भी बैठाई गई है। एक बात निश्चित लगती है कि ज्योतिष शास्त्र सर्वज्ञ प्रणीत नहीं लगता है।

ग्रह पीड़ा निवारणार्थ उपाय—

उपरोक्त विचारणा वाचक वर्ग के अवलोकनार्थ प्रस्तुत की है। सत्यान्वेषी बुद्धिजीवी इस पर गंभीरतापूर्वक विचार करें।

ग्रहादि को जीवन का अंग एवं आधार बनाकर सुख-दु:ख की विचारणा दी गई है। अब व्यक्ति का स्वभाव ऐसा है कि... दु:ख निवृत्ति करने के लिए, विघ्न, संकटों को टालने के लिए तथा सुख-सम्पत्ति पाने के लिए आखिर धर्माचरण का आश्रय लिया गया है। वैदिकों और ज्योतिषियों ने ग्रह पीड़ा निवारणार्थ दान, जाप, पूजा, तपादि बताए हैं। उनमें भी ब्राह्मणों को दान, वस्त्र, पात्र, अन्न, मिष्टान्न, रुपए, सोना, चांदी आदि धातुओं का तथा रत्नों का भी दान बताया है और ब्राह्मण भोजन का विधान भी किया है। जाप विधान में ग्रहों के मंत्रों का जाप किया जाता है। व्यक्ति स्वयं नहीं कर पाता है तब ब्राह्मण वर्ग निर्धारित संख्या में व्यापारी स्तर पर पैसे लेकर लोगों के बदले जप कर देता है। लोगों को इसी में सन्तुष्टि मान लेनी पड़ती है। ग्रहों की आकार प्रकार वाली शास्त्रादियुक्त मूर्तियां कल्पी गई है। उनकी निर्धारित वर्ण के पुष्पों से पूजादि का भी विधान करके मानव मन को सन्तुष्टी देने का प्रयत्न किया गया है तथा ग्रहों के नामों से प्रसिद्ध एवं प्रचलित वारों के दिन तपादि का विधान भी ब्राह्मण ग्रन्थों से किया है।

जैन दर्शन एवं धर्म ने भी इसके पीछे-पीछे अनुकरण किया है। यद्यपि यह तत्त्वों से परिपूर्ण तात्त्विक विषय नहीं है अत: दार्शनिक विषय भी नहीं है। मात्र मान्यता का विषय है। अत: देखा कि जनता दु:ख निवृत्ति और सुख प्राप्ति की दिशा में भागने के स्वभाववाली है। अत: इस निमित्त से, इतने से कारण से नास्तिक, मिथ्यात्वी जीव भी यदि धर्म के आचार क्षेत्र में आते हैं तो आने दीजिए अच्छा है। धर्म की समझ, तत्त्वों का ज्ञान, पाप धोने, पाप रोकने और कर्म क्षय की भावना से धर्म करने वालों की अपेक्षा दु:ख, दर्द, पीड़ा, संकट आदि के भय से धर्माचरण करने की वृत्ति वाली सामान्य जनता अधिक संख्या में है। अत: अज्ञानता और अंध श्रद्धा वश जिन्दगी भर ग्रहों आदि का जापादि करते ही रहेंगे तो जीवन ऐसे ही समाप्त हो जाएगा। ग्रह जीवन भर लगे ही रहते हैं। मृत्यु की अन्तिम श्वास तक लगे ही रहते हैं। साधक फिर अपनी देव गुरु धर्म की साधना कब कर पाएगा ? जैन परम्परा के मनीषियों ने उदार विचारणा करके ग्रहों के साथ नवकार महामंत्र और नवपद की साधना जोड़कर सामान्य जनता को दी है। यद्यपि यह आगमिक नहीं है।

ग्रह पीड़ा निवारणार्थ — नवकार एवं नवपद की आराधना—

वैसे ग्रहों का नवकार के साथ या नवपद के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। न ही कोई कार्य कारण भाव का आधारभूत सम्बन्ध है। एक मात्र नवकार और नवपद की वर्ण व्यवस्था का आधार है। नौं ग्रहों को जिनेश्वर परमात्मा के अनुचर-दास माने गए हैं। जिन प्रतिमा के परिकर की गादी में नीचे के भाग में आगे नौं ग्रहों की छोटी-छोटी आकृतियां आती है। सर्वज्ञ तीर्थंकर परमात्मा के अनुचर-दास रूप ये ग्रह है। अत:

परमेश्वर परमात्मा के उपासक के दु:ख, दर्द, संकटों का निवारण करने का कर्तव्य ये ग्रहादि करते हैं। अत: जैन धर्म के विधि ग्रन्थों में ग्रहों की पूजा, जपादि को गौण करके उनके निमित्त पंच परमेष्ठी भगवन्तों की, नवपदजी की पूजा भक्ति, नवकार की जाप साधना आदि को प्राधान्यता दी है। जिससे जीवन में शुद्ध धर्म का स्थान बना रहे। यह साधना इस क्रम से बताई है—

1. सूर्य— जब पीड़ाकारक स्थिति में सूर्य हो तब निवारणार्थ पद्मप्रभु स्वामी आदि भगवान की पूजा लाल वर्ण के पुष्पों से करके "ॐ ह्रीं नमो सिद्धाणं" नवकार के दूसरे पद के मंत्र का जाप रोज 108 बार लाल रंग की माला पर करना चाहिए। साथ ही रविवार के दिन मात्र गेहूं के एक धान का शुद्ध अलूणा आयंबिल करना ज्यादा लाभकारी है। इससे देह पीड़ा, रोग, शोकादि कम होते हैं और धन हानि भी रुकती है। इसके लिए माणेक (Ruby) का नंग भी प्रभावकारी बताया जाता है। लोग परिधान करते हैं।

2. चन्द्र— यह जब प्रतिकूल होकर पीड़ाकारक बने तब अनुकूल करने हेतु "श्री चन्द्र प्रभ स्वामी" आदि जिनेश्वरों की सफेद रंग के फूलों से पूजा अर्चादि करनी चाहिए तथा "ॐ ह्रीं नमो अरिहन्ताणं" का 108 बार जाप प्रतिदिन सफेद रंग की माला पर करना चाहिए तथा सोमवार को "सफेद धान्य चावल का शुद्ध अलूणा आयंबिल का तप करे। दान देवें। इसके लिए मोती का नंग (PEARL) सहायक माना है।

3. मंगल— ग्रह की पीड़ा एवं प्रतिकूलता के निवारणार्थ श्री वासुपूज्य स्वामीं आदि जिनेश्वरों की पूजा, भक्ति, रक्तवर्णी पुष्पों से करके प्रार्थना करनी चाहिए। "ॐ ह्रीं नमो सिद्धाणं" का जाप प्रतिदिन लाल रंग की 1 माला गिन कर करना चाहिए। लाल गेहूं के धान्य का आयंबिल मंगलवार को करना विशेष लाभकारी होगा। परवाला (CORAL) का नंग धारण करना भी लाभकारी बताया है।

4. बुध— की पीड़ा के शमन हेतु एवं प्रतिकूलता निवारणार्थ श्री शान्तिनाथ भगवान की पूजा हरे रंग के फूलों से करके प्रार्थना करें। "ॐ ह्रीं नमो उवज्झायाणं" पद की 1 माला हरे रंग वाली रोज गिननी चाहिए। तथा हरे रंग के धान्य मूंग का शुद्ध आयंबिल तप बुधवार को करना हितावह है। नंगों में पन्ना (EMERALD) नंग धारण करना लाभकारी बताया है।

5. गुरु (बृहस्पति) — की पीड़ा के शमन हेतु एवं प्रतिकूलता निवारणार्थ श्री आदिनाथ भगवान आदि की पूजा पीले रंग के फूलों से करके प्रार्थना करें। "ॐ ह्रीं नमो आयरियाणं" पद की पीले रंग की माला रोज 1 गिननी चाहिए। चने एवं चने की दाल के एक धान्य का आयंबिल गुरुवार को करना लाभकारी है। इसके लिए पुखराज (TOPAZ) का नंग धारण करने की परम्परा चल रही है।

6. शुक्र— की पीड़ा बढने पर या प्रतिकूलता निवारणार्थ श्री सुविधिनाथ आदि भगवानों की पूजा सफेद वर्णी पुष्पों से करके "ॐ ह्रीं नमो अरिहंताणं" पद की सफेद रंगवाली 1 माला तो रोजाना गिननी ही चाहिए। सफेद धान्य में चावल का आयंबिल तप विशेष लाभकारी होता है। शुक्र का नंग (DIAMAND) धारण करते हैं।

7. शनि— की पनोती अक्सर लोगों को ज्यादा परेशान करती है। ऐसी शनि की प्रतिकूल परिस्थिति में साधक को श्री मुनिसुव्रत स्वामी आदि भगवान की पूजा हरे रंग के फूलों से करनी चाहिए और रोज उसी भगवान का जप तथा "ॐ ह्रीं नमो लोए सव्व साहूणं" की रोज काले रंग वाली माला अवश्य गिननी चाहिए तथा शनिवार को काले उड़द के धान्य का आयंबिल विशेष कर्म निर्जरा कारक है। नीलम या नीलमणि का नंग (Blue Sapphire) धारण करते हैं।

8. राहु— सबसे ज्यादा दु:खदायी में इस ग्रह का नाम ज्यादा आता है। अत: इसकी बाजी सीधी करने के लिए श्री नेमिनाथ प्रभु की पूजा भक्ति जैन शासन में प्रबल कक्षा की है। इनकी तथा "श्री ॐ ह्रीं नमो लोए सव्व साहूणं" पद की काले रंग की माला गिनते हुए रोज ज्यादा जप करना चाहिए एवं काले उड़द का अलूणा आयंबिल तप कर्म क्षय दुगूना करता है। गोमेधक (ZIRCON) नामक नंग धारण करना भी लाभदायक कहलाता है।

9. केतु— अन्तिम ग्रह केतु भी विपरीत चलने एवं पीड़ाकारी लगने पर श्री पार्श्वनाथ आदि भगवानों की पूजा अर्चना, जाप, प्रार्थना, भक्ति विशेष करनी चाहिए। हरे रंग के सुमन चढ़ाएं तथा काले रंग की माला के मणकों पर "ॐ ह्रीं श्री नमो लोए सव्व साहूणं" मंत्र का जप ज्यादा संख्या में करते रहना चाहिए। विशेष तो काले उड़द आदि धान्य का अलूणा आयंबिल तप विशेष कर्मक्षय कारक है। वैडुर्यमणि या लसणिया का नंग (CAST EYE) धारण करने से भी लाभ बताया है।

वैसे ग्रहों के नाम के व्यक्तिगत मंत्र भी प्रचलित हैं लेकिन जैन परम्परा में तीर्थंकर परमात्मा की पूजा भक्ति प्रार्थना, नमस्कार महामंत्र में प्रयुक्त पंच परमेष्ठी भगवन्तों के मंत्र पदों का जाप आयंबिल का तप इत्यादि प्रबलतर श्रेष्ठ कक्षा की साधना बताई गई है। फिर भी एक बात अवश्य समझिए कि... ग्रह बलवान नहीं है, ग्रहों से भी अनन्त गुने ज्यादा बलवान है कर्म। मनुष्यों को अपनी समझ में ग्रह लगते हैं, परन्तु संसार की समस्त जीव सृष्टि कर्मग्रस्त है। गाय, भैंस को किसको कब कौनसा ग्रह पीड़ा कर रहा है ? क्या आपने सुना ? लेकिन कर्म सबके साथ है और कर्म रहेंगे तथा ग्रह शान्त भी हो जाएंगे तो भी दु:ख होगा। अत: समझदारी और बुद्धिमत्ता तो इसी में है कि हम ग्रह शान्ति करने की अपेक्षा कर्म क्षय की साधना को विशेष बलवत्तर बनाकर धर्माराधना करें।

नवकार और नवपद की समानता

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

अनादि अनन्तकालीन सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवन्तों के इस जैन धर्म में नमस्कार महामंत्र और नवपदजी की साधना भी अनादि अनन्तकाल से है। ऐसा भी नहीं है कि... जैन धर्म पहले सें था और बाद में धीरे-धीरे नवकार और नवपद जी की व्यवस्था बनी या बाद में अस्तित्व में आए या सबसे पहले नवकार और नवपदजी का अभ्युदय हुआ या अस्तित्व में आए। और उसके बाद धीरे-धीरे जैन धर्म की रचना हुई या उत्पत्ति हुई। जी नहीं। ऐसी कोई बात ही नहीं है। संभावना ही नहीं है। क्योंकि जैन धर्म नवकार और नवपद से अलग नहीं है। बाहर नहीं है। इसी तरह जैन धर्म से नवकार और नवपद अलग तथा बाहर नही है। इस तरह भिन्नता का एवं प्रथम अनन्तर के क्रम का विचार भी नहीं कर सकते हैं। यह सर्वथा अनुचित है। याद रखिए कि... जैन धर्म का सर्वस्व नवकार और नवपद है तथा नवकार और नवपद ये सम्पूर्ण जैन धर्ममय ही है। दोनों एक दूसरे के सर्वथा पूरक है। अत: एक के बिना दूसरे की कल्पना ही नहीं कर सकते हैं, अर्थात् जैन धर्म के बिना नवकार और नवपदजी की कल्पना करना या नवकार और नवपद जी के बिना जैन धर्म की कल्पना करना ही गलत है।

नवकार और नवपद स्वरूप—

नवकार	नवपद जी
1. नवकार मंत्रात्मक है	1. नवपद यन्त्रात्मक विशेष है।
2. नवकार गद्य-पद्यात्मक रचना है।	2. नवपद वैसी रचना नहीं है।
3. नवकार में मंत्र गाथा और चूलिका ऐसी 2 गाथा है।	3. नवपद में कोई गाथा श्लोक नहीं है।
4. नवकार में महिमा दर्शक गाथा है।	4. नवपद में महिमा दर्शक कुछ भी नहीं है।
5. नवकार में नौं पद है।	5. नवपद में भी नौं पद है।
6. नवकार में 8 संपदा है।	6. नवपद में संपदा स्वतंत्र नौं है।
7. पद प्रमाण अक्षरों की संख्या 68 है।	7. नवपद के मूलाक्षरों की संख्या 57 है।
8. नौं पदों में 5 पद मंत्रात्मक है। शेष चूलिका है।	8. नौं ही पद मंत्रात्मक है।
9. 2 देव, 3 गुरु और नमस्कार धर्म है।	9. 2 देव, 3 गुरु और दर्शन ज्ञानादि 4 धर्म है।
10. अनादि अनन्त कालीन शाश्वत अस्तित्व वाला है।	10. अनादि अनन्तकालीन शाश्वत अस्तित्व है।
11. साध्य-लक्ष्य सर्व पाप कर्म क्षय का है।	11. साध्य-लक्ष्य सर्व पाप कर्म क्षय का है।
12. सब मंगलों में सर्वश्रेष्ठ मांगलिक है।	12. सब मंगलों में सर्वश्रेष्ठ मांगलिक है।
13. पूजनीय परमेष्ठी अरिहन्तादि 5 है।	13. इसमें भी पूजनीय परमेष्ठी 5 है।
14. अरिहन्त पहले और सिद्ध बाद में क्रमश: है।	14. अरिहंत केन्द्र में कर्णिका में तथा सिद्ध ऊपर है।
15. नमस्कार गुण की प्रधानता है।	15. दर्शन ज्ञान चारित्र तप गुणों की प्रधानता है।
16. केन्द्रित कर्णिका और मूल दिशा की 4 पंखुड़ी इस तरह 5 पंखुड़ी के कमल में पंच परमेष्ठी की स्थापना करते हैं।	16. कर्णिका और मूल तथा विदिशा के 9 पंखुडी वाले कमल में रचना है।
17. अष्टदलाकृति की स्थापना पूर्वक ध्यान साधना ।	17. अष्टदलाकृति की स्थापना पूर्वक ध्यान साधना ।
18. नवकार सूत्रात्मक सूत्र है।	18. नवपद सूत्रात्मक नहीं है।
19. शास्त्रीय नाम श्री पंच मंगल महाश्रुत स्कंध है।	19. नवपद नाम ही प्रसिद्ध एवं प्रचलित है।
20. नवकार के विस्तृत यंत्रात्मक परमेष्ठी यंत्र आदि यंत्र बने हैं।	20. नवपद का विस्तृत यंत्रात्मक सिद्धचक्र है।
21. भाषा अर्धमागधि हैं।	21. भाषा अर्धमागधि है।
22. नवकार की साधना में नमो भाव प्रधान रूप से चाहिए।	22. नवपद साधना में भी नमो भाव प्रधान चाहिए।
23. पंच परमेष्ठी के 108 गुण है।	23. पंच परमेष्ठी के 108 और 4 धर्मों के 147 गुण है।

इस तरह नवकार और नवपद में सादृश्यता और वैसादृश्य दोनों स्वरूप है । अत: दोनों का तुलनात्मक विचार किया गया है । अत: दोनों का अध्ययन करते हुए जितने अंश में समानता है उतने अंश में समानता के विचार है और कुछ अंशों में जो असमानता-विसदृशता है वह भी प्रस्तुत की गई है । याद रखिए ! यह विचार धारा दोनों के बाह्य स्वरूप बाह्य देह के आधार पर की गई है । वैसे देखा जाये तो दोनों के मूल में पंच परमेष्ठी भगवन्त ही केन्द्र में है । एक ही है । कोई अन्तर नहीं है ।

सूत्रात्मक नौं पद रूप नवकार मंत्र

नमो अरिहन्ताणं — 1 ला पद
नमो सिद्धाणं — 2रा पद
नमो आयरियाणं — 3रा पद
नमो उवज्झायाणं — 4था पद
नमो लोए सव्व साहूणं — 5वां पद
एसो पंच नमुक्कारो — 6ठा पद
सव्व पावप्पणासणो — 7वां पद
मंगलाणं च सव्वेसिं — 8वां पद
पढमं हवइ मंगलम् — 9वां पद

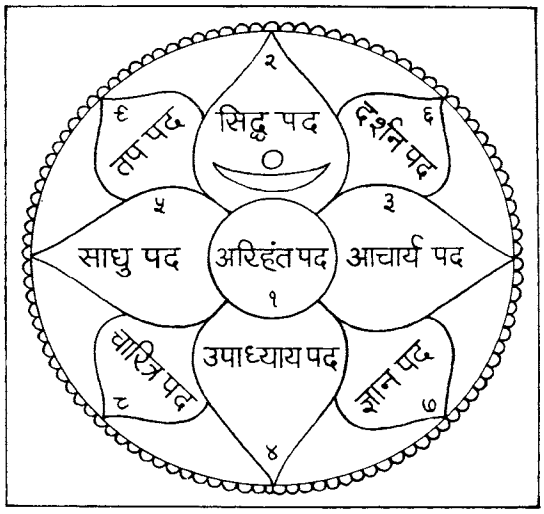

उपरोक्त तीनों चित्रों को ध्यान से देखने पर स्पष्ट ख्याल आएगा कि ..... 1. प्रथम चित्र सिर्फ नवपदजी की चित्राकृति है । 2. दूसरे चित्र में नवपदजी की तरह अष्टदल कमल में सिर्फ नवकार महामंत्र की स्थापना है । जबकि 3 तीसरे में अष्टदल कमलबद्ध चित्राकृति में श्री नवपदजी एवं श्री नवकार महामंत्र की संयुक्त स्थापना है । वैसे भी पंच परमेष्ठी भगवन्तों की मुख्य केन्द्रस्थ कर्णिका एवं मुख्य दिशाओं में स्थापना तथा उनके मंत्र पदों की रचना एवं स्थापना क्रम दोनों में समान रूप से हैं । सिर्फ नवकार की चूलिका गाथा के 4 पद एवं दर्शन ज्ञानादि के 4 पदों में समानता नहीं है ।

चूलिका एवं दर्शनादि चार पद

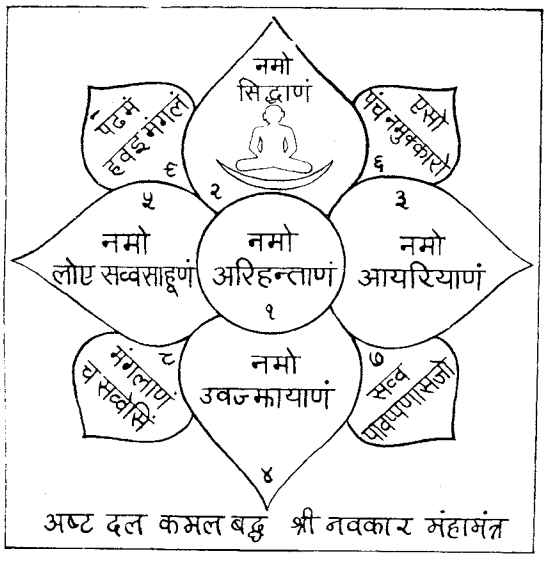

चूलिका के 4 पद
1. एसो पंच नमुक्कारो ।
2. सव्व पावप्पणासणो ।
3. मंगलाणं च सव्वेसिं
4. पढमं हवइ मंगलं ॥

दर्शनादि के 4 पद
1. दर्शन पद — नमो दंसणस्स
2. ज्ञान पद — नमो नाणस्स
3. चारित्र पद — नमो चारित्तस्स
4. तप पद — नमो तवस्स

श्री पंच मंगल महाश्रुत स्कंध स्वरूप नमस्कार महामंत्र में प्रथम की मंत्र गाथा के पश्चात् की दूसरी चूलिका गाथा को मेरु पर्वत के ऊपर की चूला (टोच) को शिखर स्थानवत् ऊंचा श्रेष्ठ स्थान दिया गया है । इसके चारों पदों की नवपद के दर्शनादि चारों पदों के साथ अर्थ और भाव की कक्षा में क्या और कैसी समानता आदि है इसका विचार करें । शब्द रचना से सर्वथा भिन्न है । दर्शनादि मूलभूत आत्मा के गुण है । नवतत्त्वकार स्पष्ट कहते हैं कि...

नाणं च दसणं चेव चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो य एअं जीवस्स लक्खणं ॥

— ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य, उपयोग ये सभी आत्मा के मुख्य लक्षण है । लक्षण इतर व्यावर्तक होते हैं । अन्य से भिन्नता दिखाते हुए अपने स्वतंत्र अस्तित्व का स्वरूप लक्षण निर्धारित करते हैं । ये लक्षण गुणाश्रित है । ज्ञान-दर्शनादि ऐसे गुण है जो एक मात्र चेतनात्मा में ही है । आत्मेतर या चेतन विरोधि (विरुद्ध) पदार्थ में ये गुण नहीं होने से इतर से अपनी भिन्नता दिखाते हैं । अत: गुणाश्रित लक्षण है । चेतनात्मा

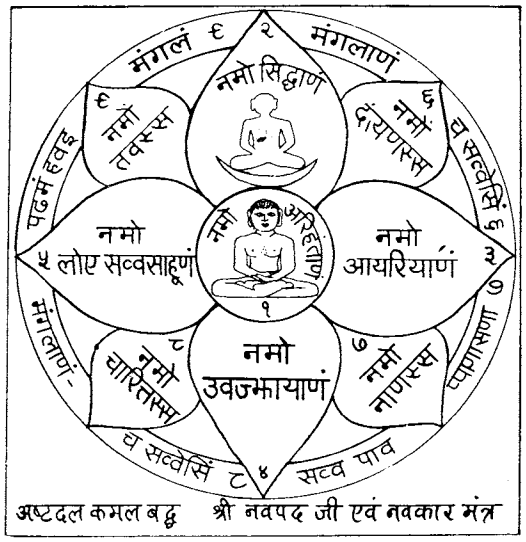

ही एक मात्र ऐसा द्रव्य है जो ज्ञानादि गुणमय है। समस्त ब्रह्माण्ड स्वरूप लोक का अन्य ऐसा एक भी द्रव्य नहीं है जो ज्ञानादि गुणयुक्त हो। आत्मा के इन मुख्य गुणों को ही धर्म का मुख्य स्वरूप स्थान दिया गया है। इसलिए निश्चय नयानुसार धर्म का लक्षण ऐसा भी बन सकता है कि... चेतनात्मा के ज्ञानादि गुणों का प्रगटीकरण करने के लिए जो किया जाय वह धर्म है या थोड़ी सी बात को घूमाकर कहने में ऐसा भी कह सकते हैं कि... चेतनात्मा के ज्ञानादि गुण जिस आच्छादक आवरण से दब गए हैं, ढक गए हैं उनको सर्वथा क्षय करने के लिए जो आत्म पुरुषार्थ हो उसे धर्म कहते हैं।

नवपद के संयोजन में 2 देव, + 3 गुरु और + 4 धर्म इस तरह मिलाकर संयुक्त रूप से नवपद का स्वरूप बनता है। नौ पदों की संख्या बनती है। आप देखिए तत्त्वत्रयी के देव गुरु धर्म इन तीनों में तीसरा धर्म तत्त्व लिया है। यहां गुण नाम नहीं रखा है। यद्यपि ज्ञानादि आत्मा के गुण स्वरूप ही है। वहां धर्म स्वरूप नहीं है। परन्तु आत्मा स्वयं संसारी अवस्था में कर्माश्रित कर्मग्रस्त है। इन कर्मों से आत्मा के ये ज्ञानादि गुण ही ग्रस्त है। आच्छादित है। ऐसी आत्मा संसार में शरीर में रहती है। अत: देहधारी यह आत्मा अपने गुणों पर लगे हुए आच्छादक स्वरूप इन कर्मावरणों का सर्वथा क्षय-नाश करें। अर्थात् "सव्व पावप्पणासणो" करें। इसी से गुण पुन: निरावरणावस्था में प्रगट हो जाएंगे। अपने वास्तविक स्वरूप में पूर्ण रूप में प्रगट हो जाएंगे। यह धर्म है। गुण द्रव्य में स्थायी स्वरूप में है। धर्म आचरणात्मक होता है यह व्यवहार नयात्मक बात है। जबकि स्थायी गुणों में ही स्थिर चित्तता यह निश्चय नयात्मक बात है। जिसे हम स्वभाव रमणता कहें या स्वगुण रमणता तथा मस्ति कह सकते हैं। अत: आचरणात्मक धर्म का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो गुणात्मक स्वरूप के साथ संलग्न हो। उसे प्रगट करें।

चूलिका के चार पदों की अर्थ ध्वनि—

वक्ता के अभिप्राय विशेष को नय कहकर उसके अनेक भेद बताए हैं, और "जावइया वयणपहा, तावइया चेव हुंति णयवाया" सन्मति तर्क के इन शब्दों से जगत् में जितने वचन पद है उतने सब नय है ऐसा कहा गया है। अत: नयानुसारी विचारणा करते हुए अपेक्षा बुद्धि से ऐसा कहा जा सकता है कि दर्शन से सम्यग् दर्शन गुण लेते हुए हम नवकार के "एसो पंच नमुक्कारो" पद से इन अरिहन्तादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के प्रति सच्ची श्रद्धा प्रगट कर सकते हैं। यह दर्शन का कार्य है कि अरिहन्तादि 5 का ही ग्रहण होता है। न्यूनाधिक नहीं।

"सव्व पावप्पणासणो" नवकार के इस पद में नवपद के तप पद की ध्वनि सन्निहित है। तप से निर्जरा होती है। निर्जरा कर्मक्षय कारक है। सर्वथा सब पाप कर्मों का समूल सम्पूर्ण क्षय करना ही साध्य-लक्ष्य है। जो तप के आधार पर ही संभव है। इसलिए तप पद का कार्य सव्व पावप्पणासणात्मक ही होना चाहिए।

ज्ञान जानकारी प्राप्त कराने वाला गुण है। नवकार के 8वें पद में संसार के समस्त मांगलिक पदार्थों का ज्ञान हमें प्राप्त करना है। ऐसे अनेक मंगल भूत का संग्रह एवं जानकारी "मंगलाणं च सव्वेसिं" पद से ज्ञान पद के आधार पर प्रगट की है। अत: 8वां पद ज्ञान पद स्वरूप है।

8वें पद से संचित समस्त मांगलकि पदार्थों में से एक मात्र श्रेष्ठतम सर्वोपरि सर्वोच्च कक्षा के मांगलिक पदार्थ के रूप में श्री नमस्कार महामंत्र ही है। इन पंच परमेष्ठियों का स्थान ही श्रेष्ठ है। अत: इनको ही नमस्कार करना यह चारित्र पद से संभव है। चारित्र पद आचारात्मक है। आचरण की क्रिया द्वारा श्रेष्ठ मांगलिक पंच परमेष्ठियों को नमस्कार किया जाता है। परमेष्ठी पांचों ही जरुर प्रथम कक्षा के श्रेष्ठ मांगलिक है इसमें कोई संदेह नहीं है। लेकिन मंगल स्वरूप पांचों परमेष्ठी भगवन्तों से हमें सर्व पाप कर्मों को क्षय करने का लाभ तो तब ही मिलेगा जब हम उन्हें वैसे नमस्कार करते रहे। नमस्कार करना यह चारित्र पद सिखाता है। इन चारों गुणों का इस तरह नवकार के चारों पदों के साथ अर्थ घटाते हुए समानता अभिव्यक्त करते हुए समावेश किया है। यह नय एवं अपेक्षा बुद्धि से समझें।

नवकार के नामकरण की सार्थकता

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

श्री नमस्कार महामंत्र को "अरिहन्त मंत्र" या "सिद्ध मंत्र" आदि ऐसे कोई भी नाम नहीं दिये हैं। परन्तु नवकार मंत्र ऐसा नाम प्रसिद्ध है। "पाप नाशक मंत्र" नाम देना भी बिल्कुल सार्थक लगता है, परन्तु यह नवकार का फलात्मक नामाभिधान होगा। यह 7वें पद के आधार पर होगा। इसी तरह 8वें, 9वें पद की संयुक्त एक सम्पदा स्वरूप 8वीं सम्पदा के अर्थ के अनुरूप यदि नाम देने जाएं तो "मंगल मंत्र" ऐसा नाम भी हो सकता है। गुरु तत्त्वों में 3 गुरुओं के 3 पद है। आचार्य, उपाध्याय और साधु। इन 3 गुरुओं के वाची पदों के आधार पर नामकरण इसलिए उचित नहीं लगता है कि इन गुरुओं से बड़े महान देव तत्त्व के दो देव अरिहन्त और सिद्ध भगवान है। इनके नामों पदों के आधार पर मंत्र का नामकरण करना और भी सुसंगत लगता है। संसार के लाखों मंत्र उन-उन मंत्रों से वाच्य भगवान, देव-देवियों के ही नाम से प्रसिद्ध है एवं प्रचलित है।

परन्तु बहुत बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि... इस महान मंत्र का नामकरण "नमस्कार महामंत्र" किया है। संस्कृत भाषा में नमस्कार शब्द रचना बनती है तथा अर्धमागधि (प्राकृत) भाषा में "नवकार" शब्द रचना होती है। भिन्न-भिन्न भाषा की शब्द रचना होने पर भी अर्थ की दृष्टि से नमस्कार अर्थ ही शाश्वत है, सही है। नवकार नामकरण का आधार सर्वप्रथम प्रयुक्त "नमो" शब्द है। सूत्रों के नामकरण की दो प्रसिद्ध पद्धतियां जो प्रचलित है। उसके आधार पर 1. आद्य शब्दानुसारी— प्रथम शब्द प्रयोग के अनुसार नाम बनता है। इस सूत्र का आद्य शब्द "नमो" है। अत: नमोकार नाम भी बनता है। प्राकृत भाषा के व्याकरणानुसार 'न' का 'ण' विकल्प से होता है। अत: "नमोकार मंत्र" और "णमोकार मंत्र" दोनों नाम प्रचलित है। परन्तु इससे अर्थ भेद अंश मात्र भी नहीं है। दोनों का एक ही अर्थ है—नमस्कार। दिगम्बर संप्रदाय में "णमोकार" नाम प्रचलित है। जबकि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में नवकार नाम ज्यादा प्रचलित है।

नामकरण की दूसरी पद्धति "विषयानुसारी" की है। जिस सूत्र का जो प्रमुख विषय हो उसके अनुसार भी नामकरण होता है। इसके अनुसार श्री नवकार का मुख्य विषय नमस्कार है। जो नमो पद से द्योतित किया गया है। अभिव्यक्त होता है। नमस्कार संस्कृत भाषा वाची शब्द के लिए "नवकार" प्राकृत भाषा का शब्द है। अत: दोनों के आधार पर नामकरण हुआ— 1. नमस्कार महामंत्र और 2. दूसरा नवकार महामंत्र। संस्कृत भाषा का ही शब्द "नमस्कार" हिन्दी भाषा में भी चला, अत: हिन्दी जो संस्कृत मातृ भाषा से निकली हुई चली आ रही है उसमें "नमस्कार महामंत्र" ही सुव्यवस्थित चलता रहा। दूसरी अर्धमागधी प्राकृत की लम्बे काल में बनी अपभ्रंश स्वरूप गुजराती भाषा में नवकार ही प्रचलित रहा। परन्तु दोनों में अर्थ एक ही है। समानार्थक दोनों शब्द भिन्न-भिन्न भाषा के आधार पर है।

सूत्र का नामकरण—

नवकार अपने आप में मंत्र होते हुए सूत्र भी है। द्वादशांगी का प्रथम सूत्र है। नमो पद के आधार पर नमस्कार अर्थ में नवकार नामकरण तो हो गया। लेकिन यह नमस्कार किसको ? किसके सामने नमस्कार है ? इसके उत्तर में— "छट्ठा पद स्पष्ट उत्तर देता है कि... अरिहन्तादि पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार किया गया है। अरे ! ये अरिहन्तादि स्वयं कैसे परमेष्ठी है ? इसके उत्तर में आठवी सम्पदा उत्तर देती है कि... ये महामांगलिक कक्षा के महापुरुष है। क्यों इनको ही नमस्कार ? के उत्तर में कहते हैं— ये अरिहन्तादि ५ ही परमेष्ठी महा मांगलिक महापुरुष है। अत: एक मात्र ये ही नमस्करणीय है। वंदनीय है। ये ही महा मांगलिक क्यों है ? मंगल शब्द धर्म को लाने वाले और ममत्व बुद्धि के मोहभाव रूप पाप कर्मों का नाश करने के अर्थ में है अत: धर्म का आगमन हमारे में, तथा सब पापों का नाश भी इन्हीं पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने से होता है। अत: इन्हीं अरिहन्तादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को महान कक्षा के मांगलिक महापुरुष कहें है। अत: इन्हें ही नमस्कार करना उचित है। सुसंगत है।

·· अत: सूत्र का नामकरण अरिहंतादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों की महा मांगलिकता के आधार पर "श्री पंच मंगल महाश्रुत स्कंध" ऐसा किया गया है । यह श्रुत-शास्त्र का स्कंध है । जैसे आगम शास्त्रों में श्रुत स्कंध है ठीक उसी तरह यह सूत्र भी अपने आप में स्वतंत्र श्रुतस्कंध है । कितना बड़ा या छोटा श्रुत स्कंध है ? इसके उत्तर को स्पष्ट करने के लिए "महाश्रुत स्कंध" शब्द का प्रयोग किया है । यह "महा" विशेषण ही श्रुत स्कंध की महानता को सिद्ध करता है । इस तरह श्रुत का स्कंध अर्थात् स्तंभ रूप अर्थ करने पर सम्पूर्ण आधार भूत कारण रूप इस महामंत्र को कहा है ।

द्वादशांगी के सूत्रों में इसका प्रथम क्रम है । सबसे पहला सूत्र है । अत: द्वादशांगी में प्रवेश करने के लिए सर्वप्रथम नवकार के इस सूत्र से ही प्रवेश किया जा सकता है । अत: इसे प्रवेश द्वार कहा गया है । इसका फलितार्थ यह है कि नमो भाव से अत्यन्त नम्र, विनम्र होकर अरिहंतादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करके अब आप आगे द्वादशांगी रूप श्रुत शास्त्र में प्रवेश करिए । आसानी से प्रवेश होगा ।

नवकार सूत्र और मंत्र दोनों है—

यह नवकार महामंत्र अपने आप में सूत्र भी है और यही अपने आप में मंत्र भी है । अत: इसकी सूत्रात्मकता एवं मंत्रात्मकता स्वयं सिद्ध है, प्रसिद्ध है । सूत्रात्मकता होने से अध्ययन योग्य है । अभ्यास करने योग्य है तथा संक्षिप्तीकरण से सूत्र रचना होती है । अत: निश्चित ही संक्षिप्त सूत्र का विस्तृत अर्थ अगाध अर्थ का विस्तार भी है तथा सूत्र अपने आप में तत्त्वों के गहन गूढार्थ को संजोये हुए रहता है । अत: ऐसा गहन अर्थ से परिपूर्ण सूत्र के आगे "नमो" नमस्कारवाची शब्द लगाने से मांत्रिकता का ऊंचा दर्जा प्राप्त होता है । इससे इस महामंत्र की अर्थपूर्णता सिद्ध होती है । इस तरह नामकरण भी गहन अर्थ सूचक है ।

महाराष्ट्र राज्य की ..... संस्कार नगरी ..... लघु काशी तुल्य विद्या नगरी — पुण्यपत्तन — पुना शहर के सीमावर्ती — कात्रज घाट की सुरम्य पर्वमाला के बीच .... प्रकृति की गोद में .... प्राकृतिक सौंदर्य से सुशोभित ..... शुद्ध हवा-पानी युक्त हवा खाने के शुभ स्थल MINI HILL STATION स्वरुप — **वीरालयम्** में .....

पू. पंन्यास प्रवर श्री अरुणविजयजी गणिवर्य महाराज

की प्रेरक — प्रेरणा, सदुपदेश एवं मार्गदर्शनानुसार — नव निर्माण हो रहे

श्री महावीर समवसरण ध्यान प्रासाद

की अद्‌भूत अनोखी शिल्पकलाकृति युक्त विशाल वास्तु

३ गढ युक्त, १२ सामरणों से सुशोभित १२ चौकियों वाले १२ प्रवेश द्वारों वाले भव्य चतुर्मुख महाप्रासाद की पर्वतमाला के बीच ऊंची पहाडी पर एक अद्‌भूत अनोखी रचना हो रही है ।

समग्र महाराष्ट्र में सर्वप्रथम एक मात्र अद्वितीय तथा संपूर्ण विश्व में अपने प्रकार का एक अनोखा ध्यान महाप्रासाद निर्माण हो रहा है ।

बंसी पहाडपुर के सुंदर गुलाबी पाषाण में बन रहे इस विशाल समवसरण महाप्रासाद में मूलनायक के रूप में श्री महावीर स्वामी भगवान की विशाल भव्य मूर्ति बिराजमान होगी । अभी निर्माणाधीन है ।

जी .... हां ..... आइए ..... पधारिए ..... दर्शनार्थ पधारिए ....

पत्ता — **"वीरालयम्"** — मुंबई-पुना एन.एच. ४ के कात्रज-देहु रोड, बाय पास पर ओबे गांव खुर्द — पोस्ट जांभुलवाडी — ता. हवेली, पुना ४११०४६ फोन नं. ४३७७७५७

VEERALAYAM – Trust Registration No. E-2697 Pune – 29-1-1998

नवपदजी का नाम—"सिद्धचक्र" ही क्यों ?

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

नवकार महामंत्र के पद भी नौं ही है और नवपदजी के भी पद नौं ही है । दोनों में पंच परमेष्ठी के अरिहन्तादि पांच पद समान ही है । शेष चार पदों में अन्तर है । नवपदजी को अष्टदल कमल बद्ध पुष्प की आकृति देकर नौं पदों की स्थापना करके चित्राकृति की है । जबकि मंत्र स्वरूप होने के कारण नवकार बिल्कुल सीधा नौं पद मय मंत्र है । 8 पंखुड़ियों वाले एक फूल को लीजिए । बीच की कर्णिका के भाग में अरिहन्त की स्थापना होगी । उपर की पंखुड़ी में सिद्ध की, अरिहन्त के बाएं हाथ की तरफ तीसरे आचार्य भगवन्त, सन्मुख उपाध्याय जी और दाहिने हाथ की तरफ साधु पद की स्थापना की गई है । इस तरह चारों मुख्य दिशा की 4 पंखुड़ियों में 4 परमेष्ठी तथा केन्द्र के बीच में अरिहन्त परमात्मा, कुल मिलाकर 5 परमेष्ठियों की स्थापना है । अब दो पंखुड़ियों के पीछे विदिशा में 1-1 ऐसी 4 पंखुड़ियां और है उनमें क्रमशः दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप की स्थापना की गई है । इस तरह 2 देव + 3 गुरु + और 4 धर्म कुल मिलाकर नवपदजी की आकृति अष्टदल कमलबद्ध की की गई है ।

नामकरण की व्यवस्था—

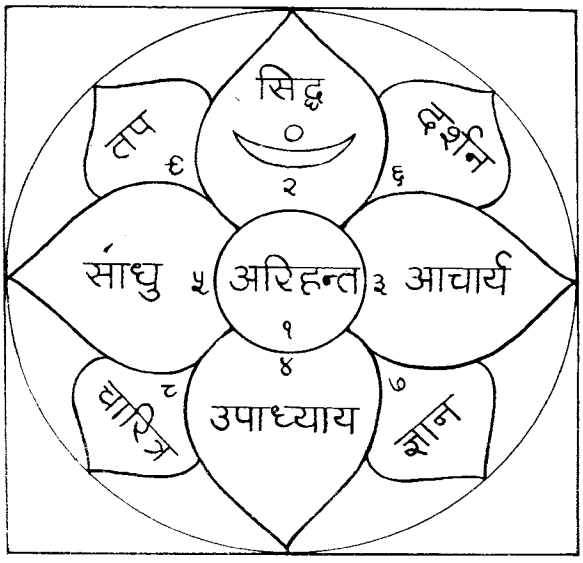

नौं पदों का संयुक्त स्वरूप देने के पश्चात् और उसमें भी एक चित्राकृति प्रदान करने के पश्चात् उसका वाचक सामूहिक नामकरण करना अनिवार्य है । ऐसे ही नौं पदों की संख्या के आधार पर नवपदजी नाम प्रचलित है । लेकिन यह मात्र संख्या सूचक नाम है । वैसे नौं पदों वाला ऐसा "नवपदजी" का नाम तो नवकार महामंत्र को भी दे सकते हैं । नवकार मंत्र में भी नौं पद है । अतः नवपद मंत्र, नवपदजी मंत्रादि भी दे सकते हैं । अर्थ की दृष्टि से बराबर सही लगेगा । लेकिन जब पदवाची नामकरण किया गया तब किसी एक पद को ही प्रधान रूप में लेकर नामकरण करना कहां तक उचित लगेगा ? और पद के अनुसार नाम रखो तो नौं पदों में कौनसा पद गौण है और कौन सा पद प्रधान रूप है । ऐसा भी नहीं है कि... कोई पद ज्यादा महत्व का है और कोई पद कुछ भी महत्व नहीं रखता है । एक भी पद कम करने जैसा नहीं है । देव गुरु और धर्म तीनों मिलाकर ही उपकारी है । तीनों की श्रद्धा पर ही सम्यग् दर्शन का आधार है । एक भी कम होने पर दर्शन सम्यग् नहीं हो सकता है । अतः देव, गुरु और धर्म इस तत्त्वत्रयी के नौं पदों में से एक भी पद कम हो ही नही सकता है । अतः नौ पदों की व्यवस्था शाश्वत है । संख्या की दृष्टि से भी पदों की नौं की संख्या शाश्वत है ।

ऐसी शाश्वत नवपद की व्यवस्था के अनुरूप शाश्वत नाम भी होना ही चाहिए । अतः ऐसा भी न हो कि... आज नाम कुछ अलग है और कालान्तर में फिर कभी कोई दूसरा नाम बदल जाएगा या फिर कभी कोई और तीसरा नाम आएगा । इत्यादि कुछ भी संभव नहीं है । बीते हुए भूतकाल में इस तरह कभी नाम परिवर्तन हुआ ही नहीं है । एक ही नाम चला आ रहा है । अब नामकरण के बारे में विचारणा करने पर अरिहंत चक्र या आचार्य चक्र या उपाध्याय चक्र या साधु चक्र आदि पंच परमेष्ठियों में से अन्य किसी का भी नाम नहीं रखा गया है । एक मात्र सिद्ध पद के अनुरूप ही नाम रखा गया है । 4 गुणों में से किसी भी एक गुण का नाम पसंद करके उसके आगे चक्र शब्द लगाकर क्या दर्शन चक्र नाम नही बनाया जा सकता है ? ज्ञान चक्र भी कह सकते हैं कि नहीं ? दर्शन, ज्ञान आदि के पद भी अपने आप में अपना पूरा महत्व रखते हैं । फिर भी ये नाम भी देखने में नहीं आए ।

संसार में अनेक प्रकार के चक्र—

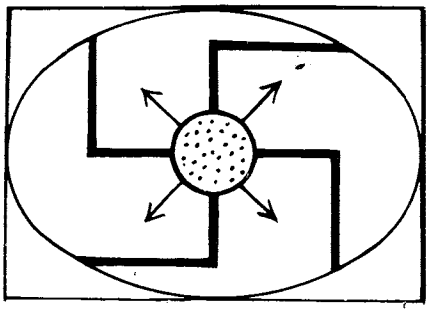

संसार में ऐसे नामकरण वाले अनेक चक्रों के नाम प्रचलित है । 1. संसार चक्र, 2. अशोक चक्र, 3. सुदर्शन चक्र, 4. धर्म चक्र और 5. चक्रवर्ती का चक्र रत्न, तथा 6. सिद्ध चक्र । ऐसे अनेक चक्रों के नाम प्रचलित है । ये सभी अपने अपने क्षेत्र में सुप्रसिद्ध है ।

1. चार गति सूचक चक्र को संसार चक्र नाम दिया गया है । जीव चारों गतियों में कर्म संयोगवश सतत परिभ्रमण करता रहता है । कभी देव गति में, तो कभी तिर्यच गति में तो कभी नरक गति में और कभी मनुष्य गति में जाकर जन्म, मरण धारण करता हुआ घूमता रहता है । इसे संसार चक्र कहा है ।

2. अशोक चक्र सुप्रसिद्ध नाम है । भारतीय चलन रुपए, सिक्कों आदि पर छपता है । राजा अशोक के नाम से यह अशोक चक्र प्रसिद्ध है । चारों तरफ शेर के मुंह और आगे के 2 पैर दिखाई देते हैं । राजकीय क्षेत्र में इसका महत्त्व विशेष है ।

3. सुदर्शन चक्र श्रीकृष्ण के हाथ में है । इसी कारण श्रीकृष्ण चक्रधारी कहलाए हैं । उनके फोटो, मूर्ति आदि में भी एक हाथ की अंगुली पर सुदर्शन चक्र बराबर देखा जाता है ।

4. धर्म चक्र—तीर्थंकर परमात्मा को केवल ज्ञान प्राप्त हो जाने के पश्चात् देवी-देवता आदि आकर परमात्मा के प्रबल तीर्थंकर नामकर्म के पुण्योदयानुसार अतिशय प्रातिहार्य एवं समवसरण आदि की रचना करते हैं । भगवान जब विचरते हैं तब आकाश में देवता एक चक्र चलाते हैं । उसका नाम धर्म चक्र है । सिर्फ अतिशय सूचक होने से आगे चलता है । धर्म शासन का द्योतक चिन्ह विशेष है ।

सिद्धचक्र—

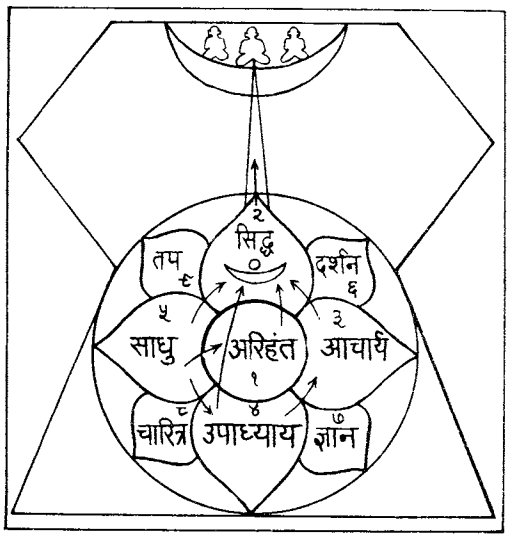

धर्म के क्षेत्र में अरिहन्तादि नौं पदों की अष्टदल कमल बद्ध रचना की विशेषाकृति को सिद्धचक्र नाम दिया गया है । अरिहन्त केन्द्र में, कर्णिका में होते हुए भी अरिहन्त चक्र नाम नहीं दिया । नवकार में यह हेतु जरुर मिलता है कि... सिद्ध यद्यपि अरिहन्त से बड़े हैं फिर भी उपकार के कार्य क्षेत्र में अरिहन्त आधार भूत रूप से केन्द्रित होने के कारण अरिहन्त को प्रथम तथा सिद्धों को दूसरे पद में स्थान दिया गया है । अत: सर्वप्रथम "नमो अरिहन्ताणं" पद से अरिहन्त परमात्मा को नमस्कार किया गया है तथा "नमो सिद्धाणं" के दूसरे पद से सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार किया गया है ।

यह व्यवस्था जैसी नवकार में है वैसी नवपद सिद्धचक्र में इसी हेतु को आगे करके व्यवस्था नहीं बैठाई है । संख्या के क्रम से जरुर अरिहन्त परमात्मा को ही केन्द्र में प्रथम क्रम पर रखे हैं तथा सिद्ध को दूसरे क्रम में रखे हैं । ना नहीं है । फिर भी चित्राकृति में सिद्ध पद ऊपर की पंखुड़ी में है । इससे अरिहन्त के भी ऊपर की पंखुड़ी में सिद्धों का स्थान है । जैसा कि चित्र में स्पष्ट दिखाई देता है ।

ध्रुव पद—

14 राज लोक में ऊपर लोकान्त में सिद्ध भगवान अनन्त की संख्या में है । इसी में नीचे सिद्ध चक्र बनाया है । आप देखेंगे कि सिद्ध पद ध्रुव अर्थात् स्थिर, शाश्वत पद है । दिशा सूचक यंत्र में आप देखेंगे कि... आप चाहे उसे किसी भी दिशा में घुमाकर यंत्र को रख दीजिए लेकिन वह सूंई बराबर उत्तर दिशा बताती हुई स्थिर हो जाएगी । इससे उत्तर दिशा का सही पता लग जाएगा । ठीक इसी तरह सिद्ध चक्र यन्त्र को रखते समय सिद्ध पद ऊर्ध्व दिशा तरफ रहे तो ही सही सीधा रखा है समझना चाहिए । बराबर सिद्ध स्वरूप को ही हमेशा दिखाएगा । अर्थात् हमारे जैसे समस्त जीवों के लिए पाने जैसा एक मात्र चरमपद जो है वही सिद्ध पद है ।

चरम साध्यपद—

मोक्ष को मानने के आधार पर ही भव्य अभव्यपने का निर्णय होता है तथा सम्यग् दर्शन की प्राप्ति के साथ ही सर्वप्रथम हमारा मोक्ष नक्की होता है । अनन्त पुद्गल परावर्त काल में से सम्यक्त्व का स्पर्श करने मात्र से ही शेष संसार भ्रमण मात्र अर्ध पुद्गल पुरावर्त का सीमित रह जाता है । बस, इतनी काल अवधि में वह मोक्ष में जाएगा ही जाएगा । अत: आज हमारे जैसे सभी भव्यात्माओं को अन्तिम एक ही लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति का बनाना चाहिए । भव्य सम्यक्त्वी जीवों का इससे दूसरा चरम लक्ष्य होना ही नहीं चाहिए । नवपद में एक ही सिद्ध पद स्थिर पद है । साधु, उपाध्याय, आचार्य और यहां तक कि अरिहन्त भगवान को भी सिद्ध ही बनाना है । लेकिन सिद्ध को अब कुछ भी नहीं बनना है । जब शेष सबको सिद्ध बनना है अत: सिद्ध पूर्ण पद है । शेष पद अपूर्ण है । दर्शन ज्ञानादि सभी सिद्ध पद के साधक है । सहायक है । अत: इसी मुख्य कारण से और किसी के नाम को जोड़कर चक्र न बनाते हुए सिद्ध शब्द को चक्र के साथ जोड़कर सिद्धचक्र नामकरण सुयोग्य किया है । अत: सिद्ध बनने के लक्ष्य वाले सबको सिद्धचक्र की साधना अवश्य ही करनी चाहिए ।

जैनं जयति शासनम्

—मुमुक्ष कल्पेश कुमार सा जैन

असीम दु:खों से भरे हुए इस असार संसार में अनन्त आत्माएं दु:खग्रस्त है । जन्म-मरण धारण करते हुए अनन्त जीव चोरासी लक्ष जीव योनियों में सतत् परिभ्रमण कर रहे हैं । इन अनन्त आत्माओं का संसार से छुटकारा कैसे हो ? सभी जीव सुखी कैसे बनें ? सभी का कल्याण कैसे हो ? सबकी मुक्ति कैसे हो ? इस पवित्र भावना से अनन्त उपकारी तीर्थंकर परमात्मा ने सर्व कल्याणकर जैन शासन की स्थापना की है । पूर्व तीसरे भव में ऐसी पवित्र भावना से भावदया का चिन्तन करके जिन्होंने तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया और वे पुण्यात्माएं तीर्थंकर बने । ऐसे तीर्थंकरों का कार्य ही है तीर्थ की स्थापना करना ।

अत: सबको तारने में सक्षम यह तीर्थ सर्वोपकारी है । ऐसा जैन शासन संसार की समस्त आत्माओं को प्राप्त हो ऐसी प्रार्थना हमें प्रतिदिन करनी चाहिए । ऐसी भावना प्रतिदिन भानी ही चाहिए । बिना जैन शासन को पाए संसार से कल्याण होना असंभवसा है । अनन्त काल से मिथ्यात्व के पंक में फंसे हुए जीव सच्चा ज्ञान, सच्ची श्रद्धा प्राप्त कब करेंगे ? जब उन्हें जैन शासन की प्राप्ति होगी तब । आज दिन तक भूतकाल में अनन्त आत्माओं का जो कल्याण हुआ है वह जैन शासन की प्राप्ति से ही हुआ है ।

ऐसे सर्वज्ञ स्थापित जैन शासन में वीतरागी सर्वज्ञ जैसे अरिहंत भगवान रूप में है । त्यागी तपस्वी पंच महाव्रतधारी साधु, उपाध्याय, आचार्य भगवन्त गुरु के रूप में है और अहिंसा जीवदया प्राणी रक्षा की प्राधान्यता वाला श्रेष्ठतम धर्म है । तप, त्याग की संस्कृति रूप इस धर्म में भोग की वृत्ति नहीं है । इस तरह जैन शासन रूपी खान के ये उत्तम रत्न है । अत: ऐसे जैन शासन की प्राप्ति तो चक्रवर्ती के चक्र रत्न से भी अनन्तगुने ज्यादा पुण्योदय से होती है और वह भी आज हुंडा अवसर्पिणी के इस कलियुग, कलिकाल में जहां पाप व्यापक बनते जा रहे हैं । ऐसे में आत्माओं को संसार सागर से पार उतरने के लिए इस प्रकार के कल्याणकारी जैन शासन की प्राप्ति हो यह तो सबसे बड़ी विशेष बात है । आज हमें प्राप्त हुआ है तो इसकी कीमत समझकर उपासना पूरी करनी ही चाहिए । हमें जैन शासन के प्रति अपना कर्तव्य समझकर आचरण करना चाहिए ।

अनेक महापुरुषों ने भूतकाल में जैन शासन की इस सरिता को बहाए रखी है । इस नदी को सूखने नहीं दीया है । तभी तो "जैनं जयति शासनं" होता ही रहा है । इसे हम भी हमारा कर्तव्य समझकर आगे बढाते रहें ।

कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य महाराजजी तो यहां तक कहते हैं कि... "नमोऽस्तु तस्मै तव शासनाय च" हे भगवान् ! आपको तो नमस्कार हो ही हो परन्तु आपके स्थापित इस शासन को भी मैं नमस्कार करता हूं । अत: उनकी दृष्टि में यह जैन शासन तीर्थंकर भगवान के समकक्ष पूजनीय है, आदरणीय है । अत: आचरणीय है ।

आप जानते ही होंगे कि... 21000 वर्ष के पांचवें आरे के इस कलियुग में भगवान महावीर प्रभु को हुए अभी सिर्फ ढाई हजार वर्ष ही बीते हैं । अभी तो साडे अठारह हजार वर्ष और शेष रहे हैं । तब तक जैन शासन अखण्ड रूप से चलेगा । इसे चलाने में हमे नाविक बनना पड़ेगा । सक्रिय रहना पड़ेगा । तभी जाकर "जैनं जयति शासनं" होता ही रहेगा । जैन शासन जयवंता बनो... "जैनं जयति शासनं" की यह गूंज-यह नारा सर्वत्र गूंजता करना पड़ेगा । इस पुण्य कार्य के लिए हम सब एकजूट होकर जुड़ जाएं जिससे सब असंभव भी संभव हो जायेगा । इसी शुभकामनाओं के साथ ।

आइए... तत्त्वों को पहचानें

—मुमुक्ष धीरजकुमार सा जैन बैंगलूर

"एगं जाणइ सो सव्वं जाणइ" भगवान महावीर प्रभु आचारांग सूत्र में कह रहे हैं कि... जो एक आत्मा को पहचान ले वह सबको पहचान सकता है। क्योंकि जगत के सभी तत्त्व आत्मा के साथ संबंधित है। इसलिए आत्मा को जानने वाला सब को जान सकता है। परन्तु संसार के अन्य सब को जानने वाला आत्मा को न भी पहचान सकें।

आज संसार में लोक सैंकड़ों, लाखों पदार्थों को जानते हैं, पहचानते हैं परन्तु स्वयं अपने आपको नहीं पहचानते हैं। यही इन्सान की सबसे बड़ी कमजोरी है। जगत में अनन्त पौद्गलिक पदार्थ हैं। पुद्गल पदार्थ नाशवंत है। क्षणिक है। जबकि आत्मा शाश्वत, नित्य अविनाशी तत्त्व है। ऐसे तत्त्व को विशेष प्रयत्न करके भी पहचानना ही चाहिए।

संसार के सांसारिक पौद्गलिक पदार्थों के बारे में चिन्ताएं होती है। चिन्ता के विषय या तो वस्तु है या व्यक्ति। हमारा कई व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध होने के कारण उनके बारे में चिन्ता होती है। इसी तरह पत्नी, पुत्र, पौत्रादि कई व्यक्तियों के बारे में चिन्ता होती है। लेकिन चिन्तन किसके बारे में होता है ? याद रखिए कोई भी व्यक्ति अपनी पत्नी, पुत्र, पौत्र परिवार या वस्तु के बारे में चिन्तन नहीं करता है। क्योंकि ये सब चिन्ता के विषय हैं। चिन्ता आर्तध्यान कराती है। और आर्तध्यान से भी अशुभ कर्मों का बंध होता है। तथा उससे तिर्यंच गति का बंध होता है। अत: चिन्तन करना चाहिए। चिन्तन आत्मा परमात्मा मोक्षादि का होता है। इनकी चिन्ता संभव नहीं है।

चिन्तन के विषय में आत्मा, परमात्मा, मोक्षादि तत्त्व कहलाते हैं। जैन धर्म में भगवान महावीर विभु ने ऐसे नौं तत्त्व बताएं हैं। 1. आत्मा (जीव), 2. अजीव, 3. पुण्य, 4. पाप, 5. आश्रव, 6. संवर, 7. निर्जरा, 8. बंध और 9. मोक्ष। ये सभी तत्त्व है। इन नौं तत्त्वों में द्रव्य सिर्फ दो ही है। एक जीव और दूसरा अजीव। शेष सातों तत्त्व जीव अजीव के संयोग वियोग की अवस्था विशेष है। सभी तत्त्वों का मूलभूत आधार है आत्मा। आत्मा सभी तत्त्वों के केन्द्र में है। यदि जीवात्मा न हो तो अन्य सभी तत्त्वों की स्थिति बिना जीव के मृत शरीर के जैसी हो जायेगी।

इसीलिए आत्मा माने बिना तो चल ही नहीं सकता है। एक बात तो निश्चित ही है कि... एक दिन जीवात्मा इस संसार में आती है। कुछ वर्षों का जीवन जीती है और एक दिन मृत्यु पाकर संसार से विदाई ले लेती है। आखिर जीव क्या साथ ले जाता है ? जब संसार की सारी सम्पत्ति वस्तुएं आदि सब कुछ यही पड़ा रह जाता है कुछ भी साथ नहीं आता है। सिर्फ किए हुए अच्छे बूरे कर्म साथ आते हैं और जन्मान्तर में आगे जाने के बाद उन्हीं कर्मों के उदय से दु:ख उदय में आता है। तो फिर यह सत्य समझकर निरर्थक क्यों पर पुद्गलों के पौद्गलिक नाशवंत पदार्थों के पीछे जिन्दगी बर्बाद करनी ?

सर्वप्रथम तत्त्वों को जानने के लिए जिज्ञासा बनानी अत्यन्त आवश्यक है। तत्त्व रुचि बनने से जीव तत्त्वों को पहचानने की दिशा में प्रवृत्त होता है। तत्त्वरुचि जागृत होना ही सम्यकत्त्व प्राप्ति की पूर्व भूमिका है। जब तक जीव गाढ मिथ्यात्व ग्रस्त होता है। तब तक तत्त्वरूचि भी जागृत नहीं होती है। बस, किसी प्रकार के तत्त्वों को पहचानने जानने की रुचि जिज्ञासा सर्वथा न होना ही मिथ्यात्व का लक्षण है। इस व्याख्या के आधार पर कोई भी व्यक्ति अपने आपका निर्णय कर सकता है कि मैं सम्यक्त्व की भूमिका में हूं या मिथ्यात्व की कक्षा में हूं ? इसलिए तत्त्व रुचि, तत्त्वों को पहचानने की उत्कृष्ट जिज्ञासा होनी ही चाहिए। जिससे सम्यक्त्व के सोपान चढ़ सकें।

शास्त्रकार महापुरुष फरमाते हैं कि **"जीवाई नवपयत्थे जो जाणई तस्स होइ सम्मत्तम् ॥"** जीवादि नौं तत्त्वों को जो जानता हो उसे सम्यक्त्व होता है। श्रद्धा दोनों प्रकार की है। एक बिना ज्ञान की श्रद्धा जो, सामान्य श्रद्धा कहलाती है। और जो ज्ञानजन्य सच्ची श्रद्धा हो उसे श्रेष्ठ सच्ची सम्यक्त्व-श्रद्धा कहलाती है। शास्त्रकार महापुरुष फरमाते हैं कि जब जीव को सम्यग् दर्शन श्रद्धा की प्राप्ति हो जाय उसका मोक्ष उसी दिन निश्चित हो जाता है। अत: मोक्ष के निर्णयार्थ सम्यग् दर्शन अनिवार्य है और सम्यग् दर्शन के लिए तत्त्वरुचि होना भी जरुरी है। अत: तत्त्वों को पहचानते हुए... तत्त्वज्ञानी बनना चाहिए।

॥इति शं भवतु ॥

महामंत्र नवकार की महिमा

—बाल दीक्षार्थी कल्पेश कुमार सागरमलजी जैन बैंगलूर

"नमस्कार" के लिए प्राकृत भाषा में "नवकार" शब्द प्रयुक्त है । इसी नमस्कार के अर्थ में "महामंत्र" में नमो शब्द प्रयुक्त है । आश्चर्य तो इस बात का है कि... महामंत्र में अरिहंतादि के पहले "नमो" शब्द का प्रयोग किया है । इससे नमस्कार की श्रेष्ठता एवं प्राधान्यता स्पष्ट सिद्ध होती है । ऐसे अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पांचों परमेष्ठि भगवन्तों को नमस्कार किया गया है । जगत् के सैंकड़ों मंत्रों में नमस्कार वाचक नमो या "नमः" पद मंत्र के अन्त में प्रयुक्त होता है, हुआ है । लेकिन इस नवकार महामंत्र में "नमो" शब्द का प्रथम प्रयोग हुआ है । यही इसकी विशेषता तथा महानता है ।

परमेष्ठी भगवान् तो सभी महान् ही है । परम कक्षा के ही है । लेकिन नमस्कार करने वाला कर्ता महान नहीं है । वह तो पामर है । अतः नमस्कार में पामर को परम बनाने की अद्‌भुत शक्ति है । जैसा कि श्रेणिक जैसे सम्राट में यह उक्ति सार्थक होती हुई दिखाई दी है । अपने जीवन में व्रत, तपादि कुछ भी न कर पाने वाले श्रेणिक राजा ने भी भगवान महावीर प्रभु को नमस्कार, वंदन भक्ति आदि करके... तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया और आगामी चौवीशी में तीर्थंकर बनने का सौभाग्य प्राप्त किया ।

मंत्रों से चमत्कार होते हैं ऐसी भी लोक मान्यता है । लेकिन यहां पंच परमेष्ठी भगवंन्तों को किया हुआ नमस्कार करने से हम किस चमत्कार की अपेक्षा रखते हैं ? क्या जो दुःख, संकट का निवारण करें और सुख सम्पत्ति की प्राप्ति कराए वही चमत्कार है ? जी नहीं ! यहां नवकार महामंत्र में छट्ठे पद में प्रयुक्त "एसो पंच नमुक्कारो" अर्थात् इन पांचों परमेष्ठी को किया गया नमस्कार "सव्व पावप्पणासणो" अर्थात् सर्व पापों का नाश हो ऐसी श्रेष्ठ भावना है । आप ही सोचिए पापों का नाश बड़ा है ? या दुःखों, संकटों का नाश बड़ा है ? आखिर सोचिए... पापों से दुःखों की उत्पत्ति है या दुःखों से पापों की ? कर्म शास्त्र तो स्पष्ट कह रहा है कि... पाप कर्म मूल जड़, कारण रूप है और दुःख उसके कार्य रूप में है । पाप कर्म जनक है और दुःख जन्य है । पाप कर्म के द्वारा ही कालान्तर में दुःख उदय में आता है । अब आप ही सोचिए कि.. दुःख का नाश करना अच्छा है या पाप कर्म को जड़मूल से नष्ट करना श्रेष्ठ है ? क्या आग लगने पर आग की ज्वाला पर पानी डालना अच्छा है या उपर उठे हुए धुएं पर ? धूएं पर पानी डालने वाला जैसे मूर्ख कहलाता है, ठीक वैसे ही सिर्फ दुःख नाश करने के हेतु मात्र से ही धर्म करने वाला ही अज्ञानी कहलाता है । इसीलिए नवकार महामंत्र के सातवें पद में "सव्व पावप्पणासणो" सर्व पाप कर्म के नाश का लक्ष्य बताया है । न कि मात्र दुःख नाश के लिए । अब आप ही सोचिए... कि दुःख का नाश होना बड़ा चमत्कार है या पाप कर्म का नाश हो यह श्रेष्ठ चमत्कार है ? हां, दुःखनाश होने का विषय थोड़ा प्रत्यक्ष दिखाई देगा । लेकिन... पाप कर्म का नाश प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर न होते हुए भी आंतरिक परिणाम में सर्वश्रेष्ठ है ।

अब जो दुःखनाश करने की ही एक मात्र दृष्टि रखते हैं उनके पाप कर्म का प्रमाण यदि ज्यादा होगा तो दुःख का नाश भी संभव नहीं रहेगा । और ऐसी परिस्थिति में नवकार महामंत्र गिनने के बाद या जापादि के बाद भी यदि दुःख नाश नहीं होगा तब उसे अश्रद्धा होने की बारी आएगी । परन्तु वह अपने पाप कर्म के प्रमाण की तीव्रता के बारे में नहीं सोच पाएगा । इसलिए मानव को दुःख क्षय की ज्यादा चिन्ता किए बिना पाप क्षय की तरफ ज्यादा लक्ष्य देना ही श्रेयस्कर है और पाप कर्म के क्षय करने का लक्ष्य जब बढ जायेगा तब नए पाप कर्म करने की भी ज्यादा इच्छा नहीं होगी । इस तरह यदि पुराने पाप कर्मों का क्षय करना और नए पाप कर्मों से बचने के लक्ष्य से ही मानव को अच्छा जागृत साधक कहा जाएगा ।

जब दुःख क्षय की अपेक्षा भी पाप नाश का बड़ा कार्य जिस नवकार महामंत्र से होता है तब उसे ही सर्व मंगलों में श्रेष्ठ प्रथम मंगल कहा है । यही अर्थ है— **"मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं"** पद का । दुःख क्षय कारक मंत्र बड़ा नहीं है परन्तु सर्वथा पाप कर्म को जड़मूल से नाश करने वाला मंत्र ही महामंत्र की कक्षा में गिना जा सकता है । सच ही है कि यदि पाप बुद्धि ही नष्ट हो जाए तो फिर पाप करेगा ही नहीं और जब पाप कर्म करेगा ही नहीं तो उसका उदय भी नहीं होगा, तो दुःख भी भोगने की नोबत नहीं आएगी । जीव दुःखी भी नहीं होगा ।

इस तरह यह नवकार महामंत्र जीवों को जीने की एक नई दृष्टि प्रदान करता है । सही दिशा सूचन करता है । अतः आवश्यक है कि... नवकार महामंत्र के उपासक, आराधक इस भावार्थ को संक्षेप में समझकर सही दिशा में सही अर्थ में सुयोग्य साधना करें । इसी में कल्याण समाया है ।

"सव्व" शब्द के अर्थ की संयोजना

— प न्यास मुनि अरुणविजय महाराज

जैन धर्म के सारभूत एवं प्राणभूत महामंत्र का नाम है— श्री नवकार महामंत्र । संस्कृत भाषा में "नमस्कार" और प्राकृत भाषा में "नवकार" महामंत्र कहते हैं । यह महामंत्र अपने आप में एक पूर्ण शास्त्र है । अर्थ पूर्ण गहन और गंभीर अर्थों से परिपूर्ण है । अर्थ शब्दों से निकलता है । यह नमस्कार प्रधान एवं मंत्रात्मक होते हुए भी प्रयुक्त शब्दों के आधार पर अर्थ की विशालता के कारण उदधि तुल्य गरिमा और महिमा से भरा हुआ है । प्रस्तुत लेख में हम नमस्कार महामंत्र में प्रयुक्त "सव्व" शब्द की अर्थ मीमांसा करेंगे ।

तीन बार "सव्व" का प्रयोग—

मंत्रों में सामान्य नियम यह जरुर है कि संक्षिप्तीकरण ज्यादा से ज्यादा हो और शब्दों के प्रयोगों में पुनरोक्ति न हो । शब्दों की पुनरोक्ति के कारण मंत्र का बाह्य कलेवर बढ़ता जाता है । इसलिए दुनिया के सैंकड़ों मंत्र 10, 15, 20 अक्षरों तक की सीमित संख्या वाले होते हैं । मंत्र में जितने अक्षर कम से कम संख्या में होंगे उतना ही वह मंत्र छोटा बनेगा और छोटे से छोटा मंत्र साधक वर्ग में आबाल-गोपाल, अज्ञानी और ज्ञानी सभी साधकों के लिए जापादि की साधना के समय सुखकर सानुकूल होता है । उसका जाप भी ज्यादा संख्या में होता है । इस नियमानुसार इष्ट देव का नाम लेकर साथ में नमस्कारवाची नमो या नम: या ऐसा ही कोई शब्द जोड़कर मंत्र रचना बिल्कुल संक्षिप्त की जा सकती है । ऐसे सैंकड़ों मंत्र है ।

"नवकार" इन और ऐसे सामान्य नियमों से परे हैं । यह एक मंत्र नहीं है । पांच मंत्रों का समूहात्मक स्वरूप होने से इसका बाह्य कलेवर नौ पदों का और 68 अक्षरों का विस्तृत विशाल स्वरूपात्मक है । अत: इसमें पुनरोक्ति प्रतीत होती है यह स्पष्ट बात है । नवकार में जैसे "नमो" शब्द की पुनरोक्ति बार-बार हुई है । वैसे ही "सव्व" शब्द की पुनरोक्ति भी 3 बार हुई है । संख्या की दृष्टि में पहले क्रमांक पर "नमो" शब्द की पुनरोक्ति 5 बार हुई है । शब्द की दृष्टि से गणना 5 बार की होती है । परन्तु एक ही नमस्कार अर्थ में यही शब्द "नमुक्कारो" (6 ट्ठे पद में) साथ में गिनने से 6 बार होती है । दूसरे क्रम पर जिसका पुन: प्रयोग हुआ हो ऐसा शब्द है— "सव्व" । यह 3 बार प्रयुक्त हुआ है और 'मंगल' शब्द 2 बार प्रयुक्त हुआ है । बस, इन 3 शब्दों के सिवाय अन्य किसी भी शब्द की पुनरोक्ति नहीं हुई है । इन तीनों शब्दों के प्रयुक्त शब्द संख्या $6+3+2=11$ होती है और इन 11 शब्दों की अक्षर संख्या $14+7+7=28$ होती है । यदि एक ही बार की आवश्यकतानुसार प्रयोग हुआ होता तो इन शब्दों को अक्षर नमो—2, सव्व—2, मंगलं—3 $(2+2+3)=7$ ही प्रयुक्त होते हैं और 28 में से 7 कम करने पर 21 अक्षर जो शेष बचे हैं । वे ज्यादा होते हैं । अत: कुल 68 अक्षरों में से 21 कम करने पर 47 अक्षर का नवकार रह जाता । इतना छोटा हो सकता था नवकार मंत्र । ताकि किसी को बहुत बड़ा होने का मानसिक भय नहीं रहता । लेकिन उपरोक्त गणितानुसार कोई भी व्यक्ति अपनी मनमानी से अक्षरों, शब्दों की संख्या कम करके गिनने का प्रयत्न न करें अन्यथा वह दोष का भागीदार बनेगा । यह मात्र एक विचारणा की गई है । दूसरी तरफ नवकार महामंत्र अपने आप में अपरिवर्तनशील शाश्वत महामंत्र है ।

"सव्व" शब्द का अर्थ—

"सव्व" यह संख्यावाची शब्द है । संस्कृत भाषा में "सर्व" होता है । लेकिन प्राकृत के व्याकरणानुसार संयुक्ताक्षर सजातीय ही होता है, विजातीय नहीं । इस नियमानुसार 'व' अक्षर का सजातीय 'व' ही आया । अत: 'व' डबल होने से "सव्व" शब्द बना । हिन्दी भाषा में 'सब' यह अर्थ होता है । इस शब्द को संख्या सूचित करनी होती है । अत: जिस विषय वाले के साथ जुड़कर बैठेगा उसकी संख्या बताएगा । यदि रुपयों के विषय में इसे लगाएंगे तो सब रुपए अर्थ बताएगा । लोगों के विषय में जोड़ेंगे तो सब लोग, सभी लोग, ऐसा इंगित करेगा । नवकार में "सव्व" शब्द का भिन्न-भिन्न विषयों के साथ 3 बार प्रयोग हुआ है ।

1. पहला "सव्व" शब्द — पांचवे पद में प्रयुक्त हुआ है ।
2. दूसरा "सव्व" शब्द — सातवें पद में प्रयुक्त हुआ है ।
3. तीसरा "सव्वेसिं" शब्द — आठवें पद में प्रयुक्त हुआ है ।

संस्कृत भाषा में 'सर्व' संख्यावाची शब्द तीनों लिंगों में चलता है । पुल्लिग में पुरुष लिठी शब्द की संख्या बताता हुआ चलेगा । 2. स्त्रीलिंग में 'सर्व' शब्द स्त्रीलिंगी विषय वाले शब्द की संख्या बताता हुआ चलेगा तथा 3. नपुंसकलिंग में दुनिया भर की लाखों वस्तुओं की संख्या दर्शाता हुआ चलेगा । इस तरह विषय की दृष्टि जो भी शब्द सामने आएगा उसके साथ प्रयुक्त होकर सर्व शब्द संख्या का सूचन करता हुआ चलेगा । यही नियम प्राकृत भाषा में भी समान रूप से रहेगा । मात्र प्राकृत भाषा के नियमानुसार "सव्व" बनकर चलेगा । सभी रूप सब होंगे ।

नवकार में "सव्व" शब्द के विषय

नवकार के नौं पदों में से 3 पदों में प्रयुक्त हुए सव्व शब्द के तीनों विषय भिन्न-भिन्न है । 1. पांचवें पद का विषय साधुओं की संख्या बताना है । 2. सातवें पद में पापों की संख्या या प्रमाण बताने का विषय है तथा 3. आठवें पद में मंगल की संख्या का सूचन किया गया है । इस तरह तीनों स्थानों पर 3 विषयों की संख्या को सूचित करने के लिए 'सव्व' शब्द वहां बैठा है । साधु, पाप और मंगल इन तीनों विषय का प्रमाण संख्या में काफी बड़ा है । अत: तीनों का सम्पूर्ण स्वरूप ग्रहण करने के लिए 'सव्व' शब्द का संयोजन बिल्कुल सही है । यदि "सव्व" शब्द इन तीनों पदों में से हटा दें तो अर्थ संकलना लड़खड़ा जाएगी उदाहरणार्थ— "सव्व" के प्रयोग बिना—

1. नमो लोए साहूणं

2. पावप्पणासणो

3. मंगलाणं च, पढमं हवइ मंगलं ॥

इस तरह आप देखिए "सव्व" शब्द के बिना कैसा स्वरूप हो जाता है । कितना विकृत लगता है ? अर्थ संयोजन कैसे करेंगे ? 1. पांचवें पद का सव्व शब्द रहित अर्थ— लोक में साधु को नमस्कार हो । 2. सातवें पद में पाप का नाश हो । आठवें पद या 8+9 वें पद की संयुक्त जो अन्तिम संपदा बनती है उसकी तो "सव्वेसिं" के प्रयोग के बिना सारी अर्थ संकलना चर्रमर्रा जाएगी । अर्थ ही नहीं निकलेगा । क्योंकि पूरा आधार ही "सव्वेसिं" शब्द पर है । बिना इसके अर्थ बैठाना भी कैसे ? यदि "सव्वेसिं" शब्द का प्रयोग होता है तो ही अर्थ बैठेगा । इसलिए आधार के रूप में अधिकरण वाली सप्तमी विभक्ति का प्रयोग सही है । लेकिन इसको हटाकर अर्थ कैसे करें । मंगलो में पहला मंगल है । इतना कहने पर कितने मंगलों में पहला मंगल है ? यह प्रश्न जल्दी खड़ा हो जाएगा ।

"कितने" ? प्रश्न के उत्तर में "सव्व" शब्द का प्रयोग—

नमो लोए साहूणं— लोक में साधु को नमस्कार हो । यहां जब "लोए" शब्द लोक अर्थ में प्रयुक्त है और लोक में रहे हुए साधु को हम जब नमस्कार कर रहे हैं तब यह प्रश्न उठेगा कि कितने साधु को ? क्या 1 ही साधु को ? या अनेक साधुओं को ? या सब साधुओं को नमस्कार करता हूं ? अब यहां संख्या का उत्तर कौन देगा ? यदि "सव्व" शब्द का प्रयोग न करें तो नमस्कार की व्यापकता खत्म हो जाती है और नमस्कार सीमित रूप से एक ही साधु को होगा । इससे तो नवकार की व्यापकता खत्म होने से नवकार को बहुत बड़ा धक्का लगेगा । नवकार को महामंत्र कहने में, इसकी महानता बनाए रखने में "सव्व" शब्द की बहुत बड़ी भूमिका है । अत: "सव्व" शब्द के साथ अन्याय करना बहुत बड़ा अन्याय होगा । किसको नमस्कार करते हैं ? के उत्तर में "साहूणं" शब्द स्वयं ही स्पष्ट करता है कि साधु को नमस्कार कर रहे हैं । साधु शब्द इतर अर्थात् साधु से इत्र का व्यावर्तक है । इससे साधु के सिवाय अन्य किसी को नमस्कार इस 5वें पद से नहीं होगा । लेकिन अतिव्याप्ति दोष से बचने के बाद अब अव्याप्ति दोष से भी बचना उतना ही आवश्यक है । "सव्व" शब्द अव्याप्ति दोष से बचाता है । "सव्व" शब्द का प्रयोग करने पर अर्थ में अब कोई भी साधु नमस्कार में छूट नहीं जाएगा । सब साधुओं को नमस्कार होगा । क्योंकि पांचवें पद में विषय साधु का है और "सव्व" शब्द साधु के साथ संख्यावाची अर्थ बताने के लिए जुड़ा है ।

पांचों परमेष्ठी पदों के साथ अनुवृत्ति—

शायद आपके मस्तिष्क में यह प्रश्न अवश्य उपस्थित होगा कि... जब 5वें पद में सव्व शब्द के संयोजन से निर्दोषता आती है तो फिर शेष 4 पदों में न होने से सदोषता आती होगी ? जी हां बात सही है । नवकार महामंत्र की शब्द रचना ने इसके बाह्य कलेवर की रचना की है जबकि अर्थ रचना से आभ्यन्तर देह की रचना का ख्याल स्पष्ट आता है । जैसे हमारा ही शरीर देख लो । बाह्य रूप से तो हाथ, पैर, मुख, धड़, उदर आदि की बाह्य रचना को सामान्य व्यक्ति कोई भी समझ सकता है । लेकिन आन्तरिक स्वरूप समझने के लिए तो एक विशेषज्ञ डॉक्टर भी पूरी जिन्दगी में एक छोटे से अंग को भी शायद ही समझ पाएं । एक आंख जैसे छोटे से अंग को समझना भी बहुत बड़ी बात है ।

ठीक इसी तरह दिखने में यह छोटे से मंत्र का अर्थ की दृष्टि से आन्तर वैभव किसी महोदधि से भी अनन्त गुना गहन है । बाह्य कलेवर में शब्दों की संख्या सीमित है । कुल मात्र 24 सीमित शब्द है और अक्षर मात्र 68 ही है । शब्द और अक्षरादि की संख्या की गणना बाह्य कलेवर में संभव है । लेकिन अर्थ की गणना कदापि संभव नहीं हो सकती ।

अनुवृत्ति दो प्रकार की होती है । 1. पूर्वानुवृत्ति जो ऊपर के (पहले प्रयोग हुए) शब्द को नीचे के सूत्रों में भी अर्थ संकलना में साथ ले जाए और दूसरी पश्चानुपूर्वी में बाद में प्रयोग हुए शब्द को पहले के सूत्रों में भी अर्थ संयोजन में साथ जुड़कर अर्थ बैठाए । इस महामंत्र में पांचवें

पद में प्रयुक्त "लोए" और "सव्व" इन दोनों शब्दों की पश्चानुपूर्वी के क्रम से अर्थ करने में उपर के चारों पदों में अर्थ लगेगा तथा पद रचना इस प्रकार होगी—

1. नमो लोए सव्व अरिहंताणं — लोक में रहे हुए सभी अरिहंतों को नमस्कार हो ।
2. नमो लोए सव्व सिद्धाणं — लोक में रहे हुए सभी सिद्धों को नमस्कार हो ।
3. नमो लोए सव्व आयरियाणं — लोक में रहे हुए समस्त आचार्यों को नमस्कार हो ।
4. नमो लोए सव्व उवज्झायाणं — लोक में रहे हुए समस्त उपाध्यायजीयों को नमस्कार हो ।
5. नमो लोए सव्व साहूणं — लोक में रहे हुए सभी साधुओं को नमस्कार हो ।

इस तरह लोए और सव्व दोनों शब्द मंत्र पदों में साथ में जुड़ने पर ऐसी रचना होगी तथा अर्थ भी इस तरह सबका होगा । लेकिन इसमें नवकार का बाह्य देह बढ़ जाएगा । पुनरावृत्ति बहुत ज्यादा हो जाएगी । जो अनावश्यक लगेगी । लोए शब्द का प्रयोग भी 5 बार हो जायेगा और सव्व शब्द का प्रयोग 7 बार हो जाएगा । अनावश्यक इतनी ज्यादा पुनरावृत्ति शब्द रचना में करने की अपेक्षा एक ही बार एक ही जगह पांचवें पद में रखकर पश्चानुवृत्ति से ऊपर के पदों के साथ जोड़कर अर्थ करने में और भी ज्यादा सुविधाजनक अच्छा लगेगा । इससे बाह्य कलेवर भी सीमित लगेगा । संक्षिप्तीकरण मंत्रों में और सूत्र रचना में शोभास्पद रूप से स्वीकार्य है ।

प्रश्न यह उठता है कि... क्या यही नियम "नमो" शब्द के लिए लागू नहीं हो सकता है ? क्योंकि नमो शब्द की पुनरावृत्ति भी 5 बार हो चुकी है तथा चूलिका की गाथा में भी "नमुक्कारो" शब्द नमो का ही शब्द है । यह भी साथ गिने तो 6 बार पुनरावृत्ति एक ही शब्द की होती है । लेकिन अपवाद रूप से कहो या जिस किसी भी कारण से कहो यह पुनरावृत्ति अपरिहार्य रही है । अत: अनिवार्य समझी गई है ।

दूसरी विचारणा यह भी की जा सकती है कि... नवकार पांचों मंत्रों का एकीकरण रूप एक मंत्र है । अरिहंतादि 5 परमेष्ठी भगवन्त है । पांचों को नमस्कार करने रूप एक-एक स्वतंत्र मंत्र पद की रचना है । फिर भी संयुक्तिकरणया एकीकरण की प्रक्रिया में पांचों का सम्मिलित स्वरूप एक रूप में होने पर सब परमेष्ठियों को नमस्कार स्वंत्रत रूप से एक-एक "नमो" पद से रहा है । तत्त्व तो केवली ही जाने ।

नि:शेष पूर्णांक का सूचक "सव्व" शब्द—

"सव्व" शब्द का प्रयोग संख्या अर्थ में है । विषय उसका पंच परमेष्ठी है । जिस परमेष्ठी के साथ जाकर बैठेगा वहां उनकी संख्या को सूचित करेगा जैसे साधु परमेष्ठी के साथ बैठा तो उनकी संख्या सूचित की । लोक में रहे हुए साधुओं को नमस्कार करना है— पांचवे पद से । अब आप ही बताइये यदि "सव्व" शब्द मान लो न भी रखें तो दूसरा कौन सा शब्द रखें ? ढाई द्वीप रूप जो नर लोक मनुष्य क्षेत्र है उसमें सब मिलाकर साधु है कितने ? क्या कोई निश्चित संख्या हो सकती है ? जी नहीं ? कदापि संभव ही नहीं है । "कोडी सहस्स नव साहु गम्मइ" और "समणह कोडी सहस्स दुअ" ये दो पद जगचिन्तामणी के चैत्यवंदन सूत्र में प्रयुक्त हुए है । इनमें साधुओं की संख्या का निर्देश जरुर है । लेकिन कितनी संख्या ? और किस क्षेत्र में कितने साधु यह भी विचारणा करनी चाहिए ।

1. पहले पद में जो 9 हजार करोड़ की संख्या साधुओं की बताई है यह उत्कृष्टतम साधुओं की संख्या है । जब समस्त ढाई द्वीप की 15 कर्मभूमियों में उत्कृष्ट रूप से 170 तीर्थंकर एक साथ होते हैं उस समय उनके श्री संघ में साधुओं की उत्कृष्ट संख्या भी 9 हजार करोड़ की होती है । अन्यथा नहीं । ऐसा वर्तमान चौवीसी के दूसरे तीर्थंकर श्री अजितनाथ भगवान के समय में हुआ था । तब ढाई द्वीप के 5 महाविदेहों में 160 तीर्थंकर भगवान एक साथ हुए थे और भरत में 5 तथा ऐरावत क्षेत्र में भी 5 । इस तरह 160 + 5 + 5 = 170 तीर्थंकर भगवान एक साथ ढाई द्वीपों की 15 कर्मभूमियों में हुए थे । उस समय उनके संघ में केवलज्ञानी सर्वज्ञों की संख्या उत्कृष्ट रूप से 9 करोड़ थी, और समस्त साधुओं की उत्कृष्टतम संख्या 9 हजार करोड़ थी । ऐसा कभी कदाचित ही होता है कि एक साथ 170 तीर्थंकर भगवानादि बने । इससे 1 भी ज्यादा हो ही नहीं सकती । क्योंकि उनके होने से क्षेत्र ही उतने सीमित है । एक महाविदेह क्षेत्र में 32 विदेह (क्षेत्र विशेष) होते हैं । ऐसे 5 महा विदेह है । अत: 5x32 = 160 विदेह महाविदेह क्षेत्र के ही हो गए । एक-एक विदेह में एक-एक तीर्थंकर भगवान हो जाने पर 1 भी शेष खाली नहीं बचती है । और 5 भरत क्षेत्र में 5 क्षेत्र होते हैं । इसी तरह ऐरावत भी 5 ही है । अत: कुल मिलाकर 170 से ज्यादा 1 भी हो ही नहीं सकते हैं । इसलिए तीर्थंकर भगवन्तों के विषय में यह उत्कृष्टतम अन्तिम संख्या है ।

जब तीर्थंकर भगवन्तों के विषय में उत्कृष्टतम अन्तिम संख्या यह आती है तब उनके केवली और साधु आदि की भी जितनी उत्कृष्ट संख्या हुई थी वही अंक जगचिन्तामणी के चैत्यवंदन सूत्र में लिखा है । "कोडी सहस्स नव साहु गम्मइ" में नौ हजार करोड़ की उत्कृष्ट संख्या साधुओं की हुई थी ऐसे शब्द लिखे हैं तथा केवलज्ञानी 9 करोड़ बताए हैं । ये भी उत्कृष्ट से अन्तिम संख्या जितनी हुई उतनी लिखी है ।

जगचिन्तामणी चैत्यवंदन सूत्र में इसके आगे "संपइ" शब्द देकर आज वर्तमान में कितनी संख्या है यह निर्देश किया है । आज उत्कृष्ट रूप से 170 तो है नहीं । आज पांचों महाविदेह में कुल मिलाकर 20 तीर्थंकर भगवान विचरण कर रहे है । याद रखिए ! महाविदेह क्षेत्र में सदा काल चौथा ही आरा रहता है । यह शाश्वत काल वहां है । आरों का परिवर्तन महाविदेह क्षेत्र में नहीं होता है । अत: वहां सदा काल तीर्थंकर भगवान

होते ही रहते हैं। उनमें सीमंधर स्वामी आदि 20 नामधारी तीर्थंकर भगवान आज वर्तमान काल में मौजूद है और विचरण कर रहे हैं। उनके परिवार में अर्थात् संघ में केवलज्ञानी 2 करोड़ है और साधुओं की संख्या 2 हजार करोड़ अर्थात् 20 अरब आज है।

याद रखिए ! यह संख्या मात्र पांचों महाविदेह क्षेत्र की है। इसमें भरत और ऐरावत क्षेत्र का कोई नाम निशान भी नहीं है। क्योंकि भरत-ऐरावत क्षेत्र में आज कोई तीर्थंकर भगवान भी नहीं है और न ही उनके केवलज्ञानी आदि है। यहां आज भगवान महावीर स्वामी का ही शासन है। अत: उनके ही संघ के साधु-साध्वी है। इसलिए 20 अरब साधुओं की संख्या में यहां की गणना साथ में नहीं गिनी जाती है।

आज पूरे भारत देश में गिन भी लें तो चारों संप्रदायों की कुल साधु-साध्वीजियों की संख्या है ही कितनी ? 20 अरब की संख्या के सामने 10-20 हजार की संख्या किस हिसाब में आती है ?

इसलिए "नमो लोए सव्व साहूणं" के पांचवें पद में कौनसी संख्या रखें ? कोई भी संख्या रखने पर उस सीमित संख्या वाले साधुओं को ही नमस्कार होगा और शेष संख्या वाले बिना नमस्कार के रह जाएंगे। इससे तो नवकार पर भी दोषारोपण होगा और नवकार जैसा पवित्रतम महामंत्र भी रागद्वेष के वमल में फंस जाता। इससे नवकार महामंत्र बदनाम भी होता है। सारी व्यवस्था बिगड़ जाएगी। कहां की संख्या लिखें ? कितनी संख्या लिखें ? इस समस्या का समाधान एक "सव्व" शब्द कर देता है। एक सव्व शब्द पांचवें पद में रख देने से न तो कोई शेष रहते हैं। और न ही कोई कम ज्यादा होते हैं। क्योंकि "सव्व" शब्द अपने आप में सब का संग्राहक है। भूत, वर्तमान, भावी तीनों काल की, समस्त क्षेत्र की, सभी तीर्थंकरों के शासन की तथा सब सम्प्रदायों आदि जो भी गिनो सबकी संख्या का समावेश नवकार में हो जाता है। अब कोई शेष बचता ही नहीं है। समस्त साधुओं का समावेश इस "सव्व" की संख्या में हो जाता है। और "नमो" शब्द से सबको एक साथ नमस्कार भी हो जाता है। दूसरी तरफ "सव्व" शब्द के प्रयोग के कारण किसी प्रकार के पक्षपात आदि किसी की गंध भी नहीं रहती है। न ही कोई भेदभाव। कुछ भी नहीं। उपर से "सव्व" शब्द से नवकार की व्यापकता विशालता बनी। नवकार कितना उदार है कि... समस्त साधुओं को एक ही बार में नमस्कार करता है तथा नमस्कारकर्ता को कितने कम प्रयत्न में कितना ज्यादा लाभ ? एक बार के नमस्कार में एक साथ सबको नमस्कार होता है। इस तरह "सव्व" अपने आप में पूर्ण संख्या का सूचक है। पूर्णांक है।

सव्व पावप्पणासणो में "सव्व"—

जिस तरह पांचवें पद में "सव्व" साधु के विषय में पूर्ण संख्या सूचित करता था। उसी तरह 7वें पद में प्रयुक्त दूसरे "सव्व" शब्द का विषय पाप कर्म है। नमस्कारकर्ता पाप कर्मों से भरा हुआ है। और वही अपने पाप कर्मों को खपाना चाहता है। इसीलिए वह नमस्कार करता है। नमस्कार करने के पीछे पाप कर्मों का क्षय करने का लक्ष्य उसका बड़ा है तथा जिनको नमस्कार कर रहा है वे सभी पाप कर्मों को खपा चुके हैं। पाप रहित निष्पाप है। इसीलिए श्रेष्ठ कक्षा के परमेष्ठी है। अत: नमस्कार करने वाले साधक ने स्वयं के पाप कर्मों का क्षय करने के लिए ऐसे निष्पाप परमेष्ठियों का चयन किया है और उनको नमस्कार करता है, उनके आलंबन से उनको नमस्कार करने से पाप कर्मों का क्षय करना चाहता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि... कितने पाप कर्मों का क्षय करें ? जब अरिहंतादि ऐसे सर्वोच्च कक्षा के पंच परमेष्ठी मिले हैं तो फिर पाप कर्मों को धोने में फिर क्यों थोड़े पाप धोना ? जब इनका ही आलंबन सर्वोच्च कक्षा का है, जब निष्पापी, पाप कर्म रहित परमेष्ठियों की कक्षा में इनसे बड़े जगत् में कोई दूसरे है ही नहीं तो फिर साधक को भी भूल नहीं करनी चाहिए। क्योंकि थोड़े से पाप कर्मों को धोना ? जब स्वर्ग से गंगा ही घर आ चुकी है तब फिर थोड़ा सा ही पानी पीकर प्यासा क्यों रहना ? इसी तरह साधक को भी समझ लेना चाहिए। अनन्त जन्मों में जो कार्य सब पाप कर्मों के नाश का नहीं हो पाया और अब जब मौका आया ही है तब क्यों कमी रखनी ? इसलिए सव्व शब्द का निवेश 7वें पद में पाप के साथ है। सब पाप कर्मों का सर्वथा नाश करता है। अब कुछ भी शेष रखने नहीं है। सर्वथा सम्पूर्ण सर्वांशिक रूप से सब पाप कर्मों का नाश करना है या पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने मेरे समस्त पाप कर्मों का नाश हो। ऐसी भावना रखनी चाहिए। यहां "सव्व" शब्द होने से कोई भी पाप कर्म शेष नहीं बचेगा और यदि बचेगा तो मुक्ति नहीं होगी।

हम थोड़े-थोड़े पाप कर्मों का नाश तो हमेशा करते आए हैं। इसे कहते हैं आंशिक निर्जरा। यह सम्पूर्ण निर्जरा नहीं है। आज उपवास किया, अट्ठाई की। अगले वर्ष मासक्षमण किया था। पूजा की। माला गिनी। तप-जपादि बहुत कुछ किया लेकिन सर्वथा सब पापों का नाश नहीं हुआ। वहां तक मोक्ष गमन संभव नहीं है। अत: व्यक्तिगत रूप से हमारे जीवन मे "सव्व पावप्पणासणो" के बदले "अप्पपावप्पणासणो" ही चरितार्थ हुआ है। "अप्प" मतलब अल्प। संख्या में काफी कम। अल्प शब्द से यह निश्चित होता है कि... जितने पाप कर्मों का प्रमाण है उनमें से मात्र थोड़े से ही पाप कर्मों का क्षय हुआ है या किया है। जबकि ढेर सारे अभी भी पड़े हैं। दूसरी तरफ जब नवकार यह स्पष्ट कह रहा है कि... "सव्व पावप्पणासणो" पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने से सब पापों का समूल सर्वथा सम्पूर्ण नाश हो सकता है तो फिर मैं अभागा अल्प (थोड़े से) पापों का नाश करके ही संतोष क्यों मानूं ? यह तो मेरी गलती है। अरे ! भूतकाल में इसी नवकार से अनन्तात्माओं ने अपने सब पाप कर्मों का सम्पूर्ण समूल नाश किया है। अत: भूतकालीन ऐतिहासिक प्रमाण से यह तो सिद्ध हो चुका है कि नवकार से सब प्रकार के समस्त पाप कर्मों का समूल सर्वथा नाश हुआ है। अनन्तात्माओं ने किया है। यह प्रमाण सिद्ध है। शास्त्रकार स्पष्ट कहते हैं कि— "जे केइ गया मुक्खं, जे के वि य"

..जो भी कोई मोक्ष में गए हैं और भविष्य में जो भी कोई जाएंगे। वे सभी एक नवकार महामंत्र के प्रभाव से गए हैं और जाएंगे। बिना नवकार के कोई मोक्ष में गया नहीं है और जा भी नहीं सकता है। दूसरी तरफ यहां तक कहा गया है कि...

नवकार इक्क अक्खर पावं फेडेइ सत्त सयराइं।
पन्नासं च पएण, पणसयं च समग्गेण।।

— अरे ! नवकार महामंत्र के 1 अक्षर मात्र से भी सात सागरोपम तक के सुदीर्घ काल के पाप कर्म धुल जाते हैं। मिट जाते हैं। एक पूरे पद से 50 सागरोपम के पाप कर्म धूलते हैं और पूरे 68 अक्षर के नौ पदों के नमस्कार महामंत्र के स्मरण जपादि से 500 सागरोपमों के पाप कर्मो का सफाया हो जाता है। जितने पाप कर्म जीव ने किये है उन सबका समूल सर्वथा नाश करने के अर्थ में "प्पणासणो" की क्रिया का प्रयोग है। इन सब पापों का द्योतक सव्व पाव शब्द है। सब पापों का नाश करने वाला यह महामंत्र होने से इसे आत्मशुद्धिकारक मंत्र कहा है। सव्व शब्द सब पाप कर्मो की बात करता है। जिसमें अंशमात्र भी कोई पाप छूटता नहीं है। बचता नहीं है। सब पाप कर्मो का समूल सर्वथा क्षय नाश हो जाने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। अत: नवकार को मुक्तिदाता मंत्र कहने में भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है। अनेक बार हमने अप्पपावप्पणासणो अल्प पाप कर्मो का नाश किया है। अब सव्व पावप्पणासणो करना है। इसलिए सातवें पद में सबसे पहले लगे सव्व शब्द पर ज्यादा भार देना है। पूरा ध्यान "सव्व" शब्द पर केन्द्रित करना है। सब पापों का सम्पूर्ण रूप से सर्वथा आत्यन्तिक क्षय करना है। तब जाकर नवकार में प्रयुक्त सव्व शब्द की उपयोगिता सार्थक सिद्ध होगी।

सभी मंगलों में—

नवकार महामंत्र में तीसरा "सव्व" शब्द 8वें पद में प्रयुक्त हुआ है। वह सप्तमी विभक्ति के साथ है— "मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं।" इसमें विषय मंगल का है। अत: नवकार अवश्य ही मंगल है। सिर्फ इतना ही नहीं कहा है कि नवकार मांगलिक है। यह सीधी सादी बात होती है। लेकिन और विशेष महत्त्व प्रदान करने की दृष्टि से 8वें और नौवे दो पदों की व्यवस्था है। दोनों पदों को साथ मिलाकर बात इस तरह की है—सभी मंगलों में यह (नवकार) पहला मंगल है। अर्थात् संसार में एक मात्र नवकार ही मंगल स्वरूप है ऐसा नहीं है। अन्य अनेक पदार्थ मांगलिक है। ऐसे दुनिया भर के सब मंगलों का संग्रह यहां सव्वेसिं शब्द कर रहा है। अत: सव्वेसिं से संसार में जितनी भी मांगलिक वस्तुएं पदार्थ है उन सबका संचय करना है। चाहे वे द्रव्य मंगल हो चाहे वे भाव कक्षा के मंगल हो। उन सबकी तरफ 'सव्वेसिं' इंगित करता है। सव्व शब्द संख्यावाची है। यह जिसके साथ बैठेगा उसकी संख्या बताएगा। 8वें पद में मंगल के विषय के साथ 'सव्वेसिं' बैठा है। अत: यहां यह मंगल की संख्या बता रहा है। संसार में कितने मांगलिक पदार्थ है ? जितने भी है उतने सब मंगलों की संख्या 'सव्व' शब्द द्योतित कर रहा है और संसार के जितने भी मंगल पदार्थ हो, संख्या की दृष्टि से वे भले ही कितने भी हो, लेकिन उन सब में सर्वोपरि, श्रेष्ठ कक्षा का सर्वप्रथम मंगल यदि कोई हो तो वह एक मात्र नवकार महामंत्र ही है। यह पढमं शब्द ने दिखाया है। गणना की दृष्टि से 'पढमं' शब्द प्रथम पहले क्रमांक का द्योतक है। जब 'सव्व' शब्द में अधिकरण अर्थ में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग करके 'सव्वेसिं' बनाया है तो उन सबों में प्रथम कौन है ? इसका उत्तर देने के लिए ही पढमं शब्द का प्रयोग समुचित है। यदि यहां 'सव्वेसिं' शब्द नहीं होता तो हम 'पढमं' किसे कहते ?

उदाहरणार्थ एक विद्यार्थी 1ला नंबर आया है, तब कितने में पहला आया ? यह अर्थ अभिप्रेत होना ही चाहिए। इसलिए उत्तर में 100 या 200 की संख्या का अभिप्रेत अर्थ समझाना पड़ेगा कि... 100 विद्यार्थियों में यह पहला आया है। यह 200 में पहला है। यह 1 लाख में प्रथम आया है और यह विद्यार्थी समूचे भारत देश में प्रथम आया है। यह विद्यार्थी पूरे विश्व भर में प्रथम कक्षा में उत्तीर्ण हुआ है। इस तरह जो जितनी बड़ी संख्या के लोगों में प्रथम आया हो उतनी ही उसकी महत्ता और बढ़ती है। ठीक उसी तरह 8वें पद में प्रयुक्त 'सव्वेसिं' शब्द कितने मंगलों में नवकार प्रथम मंगल है को सूचित करता है। इस 8वें पद के बिना नौवा पद पंगू बन जाएगा। नौवे पद की सार्थकता का आधार ही 8वां पद है। अत: जरुरी है। दोनों मिलकर पूर्ण अर्थ प्रगट करते हैं। इसी कारण दोनों की एक संपदा बनती है यह भी सार्थक है। सहेतुक है।

दूसरी तरफ 8वें पद में 'सव्वेसिं' से जितने भी मंगल ग्राह्य हैं वे सब द्रव्य मंगल की गणना में आते हैं। और नौवे पद में 'पढमं' शब्द से जो नवकार ग्रहण किया गया है उसे भाव मंगल कहते हैं। द्रव्य मंगल गौण है। कमजोर अल्प प्रभावी होते हैं, जबकि भाव मंगल बलवान महाप्रभावी होता है। इस तरह सव्व शब्द की भूमिका इस महामंत्र में काफी महत्त्वपूर्ण है। इसके सुयोग्य अर्थ को समझकर महामंत्र के प्रत्येक शब्द के प्रति पूर्ण श्रद्धा का सद्भाव का मानस बनाना ही हितावह है।

ऐसे नमस्कार महामंत्र को अनन्त नमस्कार हो।

बिना किसी के "नाम" का — अनामी महामंत्र

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

जगत् के प्राय: असंख्य मंत्र देवी-देवता, गुरु और भगवान के नामादि से जुड़े हुए हैं । भगवान् गुरु, देवी, देवतादि के नाम के साथ नमस्कारवाची नमो, नम: आदि जोड़ने से वह पद मंत्र बनता है । भिन्न-भिन्न मंत्रों में "स्वाहा" आदि शब्द भी जुड़ते है । कहीं वषट् आदि के प्रयेग है । फिर भी अधिकांश मंत्रों में नामादि के साथ "नम:" जुड़ता है । यह नमस्कार की क्रिया का वाचक है । अत: "....." नामधारी ऐसे भगवान को या गुरु या, देवी, देवताओं को नमस्कार हो ऐसा ध्वनित होता है । अन्य धर्मों में भी प्राय: देवी-देवता, भगवान और गुरु के नाम के साथ नमस्कारादि जोड़कर मंत्रों की रचना की गई है । "ॐ" "ह्रीं" "श्रीं" आदि बीज मंत्रों में भी भगवान गुरु और देवी-देवताओं की स्थापना की गई है । उनके वाचक ये बीज मंत्र बनाए गए हैं या उनके आद्य अक्षरों के संयोजन द्वारा ऐसे 'ॐ' जैसे मंत्राक्षर बनते हैं । इनके साथ नम: आदि जोड़कर मंत्र की रचना होती है । इस नुंकार में भी अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भगवन्त ही आराध्य तत्त्व है । वही वंदनीय, नमस्करणीय है । इस तरह अरिहंतादि पंच परमेष्ठी देव, गुरु स्वरूप ही है । अत: नामादि को लेकर बने हुए मंत्र लाखों है ।

जैन धर्म में सर्वमान्य शिरोमणि मंत्र स्वरूप "श्री नवकार महामंत्र" है । इसमें इष्ट नमस्करणीय अरिहंतादि पांच परमेष्ठी भगवन्त है । वे देव गुरु स्वरूप है । अरिहंत और सिद्ध ये दो देवतत्त्व में परमात्म स्वरूप है और आचार्य, उपाध्याय तथा साधु ये 3 गुरु स्वरूप है । इन पांचों को आराध्य स्वरूप गिने जाते हैं । उनको सबको "नमो" पद जोड़कर नमस्कार किया गया है, इस तरह पांच मंत्र पदों की रचना हुई है । इसमें सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि... पांचों परमेष्ठी में से किसी एक का भी नाम नहीं लिया गया है । अरिहंतादि नाम नहीं है । ये गुणवाची शब्द है । जैन धर्म में वर्तमान चौवीशी में ऋषभ देव (आदिनाथ) से 24वें महावीर स्वामी तक 24 भगवान हुए हैं । इनमें से किसी का भी नवकार महामंत्र में नाम लेकर नमस्कार नहीं किया गया है । नाम पूर्वक नमस्कार करते तो "नमो आदीश्वराणं", "नमो महावीराणं" जैसे मंत्र बनते । लेकिन नाम के मंत्र बनाने में एक सबसे बड़ी समस्या ऐसी आती कि... उन-उन नाम वाले भगवान को ही नमस्कार होता और उनके सिवाय अन्य किसी भी भगवान को नमस्कार नहीं होता । उदाहरणार्थ— "नमो महावीराणं" ऐसी मंत्र रचना यदि होती तो भगवान महावीर को नमस्कार जरुर होता लेकिन शेष 23 तीर्थंकर भगवान और है उनको नमस्कार नहीं होता । इतना ही नहीं गत चौवीशी के भी 24 भगवान हुए है तथा अनागत चौवीशी में भी 24 भगवान होने ही वाले है । इसमें कुछ भी संदेह नहीं है और दृष्टि दूरंदेशी बनाकर सोचने पर शास्त्रकार भगवन्तों ने अनन्त अरिहंत भगवान भूतकाल में हो चुके हैं, तथा भविष्यकाल में भी अनन्त अरिहन्त भगवान होने वाले हैं । नामवाची विशेष मंत्र होने पर किसी को भी नमस्कार नहीं होगा । सभी वंचित रह जाएंगे । जिनका नाम होगा उनको ही नमस्कार होगा और सबको नमस्कार करना हो तो सबके नाम से स्वतंत्र एक-एक मंत्र बनाने जाएं तो कितने मंत्र बनेंगे ? अन्त ही नहीं आएगा, इतने अनन्त मंत्र बन जाएंगे ।

क्योंकि भूतकाल में अनन्त अरिहंत भगवान हो चुके हैं । इतने अनन्त अरिहन्त भगवन्तों के नाम भी कहां से ढूंढकर लाएंगे ? एक मात्र सर्वज्ञ केवल ज्ञानी भगवन्तों के सिवाय अन्य कहीं से भी मिलने की कोई संभावना ही नहीं है । दूसरी तरफ वर्तमान कलियुग में कोई सर्वज्ञ केवलज्ञानी भगवान है ही नहीं । अत: किसको पूछें ? और मान लो कि कोई दैवी सहाय से महाविदेह क्षेत्र जाकर सीमंधर स्वामी आदि वर्तमान काल में विचरते सर्वज्ञ भगवान को पूछकर आए, सब अनन्त नाम मिल भी जाये, सब नामों के साथ नम: शब्द जोड़कर मंत्र बना भी लें तो भी हम अपने सम्पूर्ण आयुष्य काल के जीवन में भी इन अनन्त मंत्रों का उच्चारण-स्मरण जापादि कर भी नहीं पाएंगे । संभव ही नहीं है । क्योंकि आयुष्य का काल सीमित है । जबकि मंत्र अनन्त है । अत: ऐसे असंभव कार्य को संभव करने के लिए सबके स्वतंत्र नाम मंत्रों की अपेक्षा नवकार में प्रयुक्त "नमो अरिहंताणं" प्रथम पद का मात्र एक बार स्मरण करने पर अनन्त अरिहंत भगवन्तों को एक साथ नमस्कार होता है ।

"अरिहन्त" शब्द यद्यपि किसी भी भगवान विशेष का नाम नहीं है । फिर भी भगवान की ही गुणात्मक पर्याय है । अत: गुण पर्यायवाची विशेषण के रूप में भगवान का ही वाचक कहलाता है । "अरिहन्त" शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार भी बताई है— अरि = शत्रु, रिपु । और हन् धातु का हन्त शब्द हनन करने नाश या क्षय करने के अर्थ में जुड़ा है । आत्मा के आन्तरिक शत्रु जो राग, द्वेष, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या,

मोह मत्सरादि अनेक है उन सबका हनन्, समूल क्षय या नाश जिन्होंने कर दिया है वे है— "अरिहंत" । इनमें चाहे महावीर स्वामी हो या श्री आदिनाथ, पार्श्वनाथादि कोई भी तीर्थंकर भगवान हो उन्होंने अपनी आत्मा पर लगे हुए राग द्वेषादि समस्त आत्मिक शत्रुओं को जीत लिया है । उन्हें हराकर उन पर विजय पा ली है । राग-द्वेषादि समस्त शत्रुओं का ऐसा हनन किया है कि अब अनन्त काल में भी वे राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोहादि दुबारा कभी वापिस आएंगे ही नहीं इसे कहते हैं आत्यन्तिक क्षय । जड़ से समूल नाश करने का अभिप्रेत अर्थ "हन्" धातु के "हन्त" शब्द का अर्थ है ।

इस तरह अरिहन्त भगवान को जिन भी कहते हैं । राग, द्वेषादि एवं पांचों इन्द्रियों पर भी विजय पा ली है, उन सबको जीत लेने के अर्थ में जिन शब्द बना है । तीर्थ की स्थापना करने के अर्थ में तीर्थंकर शब्द की रचना हुई है । जगत् के आदर्श महान गुरु के रूप में होने के कारण "जगगुरु" विशेषण प्रयोग में आया है । राग, द्वेषादि सभी आन्तरिक आत्म शत्रुओं का क्षय हो जाने के कारण प्रगट हुए आत्म गुण "वीतरागता" के कारण वीतराग भगवान कहलाए । राग के क्षय होने से वीतराग, इसी तरह द्वेष के क्षय होने से वीतद्वेष शब्द भी बनता है । यदि इन दोनों शब्दों को एक साथ जोड़कर प्रयोग करने पर "वीतराग द्वेष" शब्द रचना सही बनती है । लेकिन आम जनता में बोलचाल की भाषा में बड़ा लम्बा, चौड़ा शब्द बोलना नहीं जमता है अत: लोक संक्षिप्तीकरण करके बोलने की आदत वाले होते है । अत: वीतराग शब्द का प्रयोग अधिकांश होता आया है । फिर भी इससे दोनों शब्द अभिप्रेत है ।

भगवान अनन्तज्ञानी सर्वज्ञ बने हुए हैं । अत: उन्हें केवली, केवलज्ञानी सर्वज्ञ कहते हैं । जैन धर्म में भगवान के लिए भगवान अर्थ में अरिहन्त, जिन, जिनेश्वर, वीतराग, तीर्थंकर, सर्वज्ञ आदि अनेक शब्द जो कि समानार्थक, पर्यायवाची है वे प्रयोग में आते हैं । महावीर स्वामी आदि नामधारी सभी तीर्थंकरों के नाम विशेष्य है और अरिहंतादि शब्द गुणवाची बनकर विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं ।

अरिहंत परमात्मा आत्मा के 8 कर्मों में से 4 घाती कर्मों का क्षय करके सर्वज्ञ वीतरागी भगवान बने हैं । आत्मा के मुख्य गुण केवल ज्ञानादि पूर्ण सम्पूर्ण रूप में प्राप्त कर चुके हैं । लेकिन आयुष्य कर्म की काल अवधि अभी काफी ज्यादा होने से... इतने वर्ष और इस शरीर में रहकर जीना पड़ता है । अत: नाम गोत्र, वेदनीय तथा आयुष्य ये 4 अघाती कर्म रहते हैं । आयुष्य कर्म की समाप्ति के साथ ही शेष सभी अघाती कर्म भी क्षय नष्ट हो जाते हैं । इस तरह 4 घाती + और 4 अघाती कर्म = कुल आंठों कर्मों का सर्वथा सम्पूर्ण क्षय हो जाने पर आत्मा सिद्ध बनती है । नवकार के दूसरे पद में प्रयुक्त सिद्ध शब्द किसी देहधारी के लिए प्रयुक्त नहीं है । सिद्ध किसी व्यक्ति विशेष का वाचक भी नहीं है । संसार में ऐसी एक भी व्यक्ति नहीं है जो सिद्ध अर्थ में वाचक हो । "सिद्ध" शब्द अशरीरि, अकर्मी, अकाल, अजन्मा, अर्थ में प्रयुक्त है । इन अर्थों का जो स्वरूप है वैसा इस संसार में कोई भी जीव नहीं है । संसारी जीव मात्र के शरीर है, आयुष्यादि कर्म है । जन्म-मरण का चक्र है । वे काल के व्यवहार में है । अत: असिद्ध है । पंच परमेष्ठी भगवन्तों में से अरिहन्त, आचार्य, उपाध्याय, साधु ये चारों सर्व कर्मों का क्षय करके अन्त में सिद्ध बनते हैं । लोकान्त क्षेत्र में उनकी आत्मा पहुंचकर स्थिर हो जाती है । वहां प्रकाश पुंज की तरह मात्र आत्मा ही रहती है । वहां शरीर नहीं होता है । जब शरीर ही नहीं होता है तो जन्म-मरण और कर्मादि कुछ भी संभव ही नहीं है । कर्मों का सर्वथा क्षय करने का अपना साध्य सिद्ध कर लिया है अत: वे सिद्ध कहलाते हैं । अत: नवकार के दूसरे पद में ऐसे सिद्ध भगवन्तों को "नमो" शब्द जोड़कर नमस्कार किया गया है ।

बीते हुए भूतकाल में अनन्त पुद्गल परावर्त का काल बीत चुका है । उसमें अनन्त आत्माएं सिद्ध बन चुकी है । सिद्धावस्था में किसी का नामादि कुछ भी नहीं होता है । नाम, आकार, प्रकारादि सब शरीर का होता है । शरीर जड़ पुद्गल परमाणुओं का बना हुआ पिण्ड है । आत्मा अरुपी है । अत: अदृश्य है । आत्मा न दिखाई देने के कारण जिस शरीर में रहती है, उस शरीर का नाम रखकर व्यवहार करने के लिए नाम उपयोग में लाया जाता है । यदि नामकरण की व्यवस्था ही नहीं होती तो समाज में, संघ में, ज्ञाती में, हजारों, लाखों लोगों मनुष्यों, स्त्री, पुरुषों को बुलाने, संबोधन करने आदि का व्यवहार कैसे करते ? हे आत्मन् ! हे चेतन ! अरे हे जीव ! इस तरह कितने लोगों को बुलाएंगे ? हजारों लोगों में से या अपने घर के 10-20 सभ्यों में से किसी एक-दो को भी बुलाना हो और हम यदि ऐसे संबोधन करेंगे तो कौन समझेगा कि मुझे बुला रहे हैं ? अनेकों में से कौन एक आएगा ? इसलिए नामादि की व्यवस्था यहां व्यवहारार्थ है । इसी कारण जड़ पुद्गल पदार्थों के भी नाम रखे गए हैं ।

संसार में सर्वथा मुक्त ऐसे सिद्धात्मा को शरीर ही नहीं है, अत: नाम रखें भी तो किसका रखें । "आत्मा" शब्द आत्म द्रव्य का नाम है ही । दूसरी तरफ सिद्धों के साथ व्यवहार होता ही नहीं है । कर ही नहीं सकते हैं । फिर नाम की आवश्यकता कहां रहती है ? सिद्ध होने के पहले वे जिस रूप में थे... उसी जन्म जीवन का नामादि से व्यवहार किया जा सकता है । इसलिए सिद्ध अनामी, अरुपी, अवर्णी, अगंधी, अरसी, अस्पर्शी, अनाकारी (निराकार) स्वरूपी है । जो कृत कृत्य हो चुके हैं । सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो चुके हैं । ऐसे अनन्त सिद्ध भगवन्तों को एक साथ नमस्कार करने के लिए "नमो सिद्धाणं" का पाठ है । इसका बार-बार उच्चारण स्मरणादि करने के लिए यही मंत्र स्वरूप पद है । साधक मात्र का सिद्ध

स्वरूप प्राप्त करने का लक्ष्य होना चाहिए । यही चरम कक्षा का अन्तिम लक्ष्य है । क्योंकि जगत् में प्राप्त करने योग्य अन्तिम पद यह एक ही है तथा दूसरी तरफ आत्मा की अन्तिम पर्याय यही एक मात्र सिद्ध पर्याय है । बस, सिद्ध की पर्याय में एक बार स्थिर, स्थायी हो जाने के पश्चात् अनन्त काल में कभी भी कदापि कोई पर्याय बदलने वाली ही नहीं है और जो एक बार अन्तिम पर्याय सिद्ध हो चुकी है वह कभी भी नष्ट होने वाली नहीं है । यह सिद्धावस्था अनन्तकालीन है । भविष्य के अनन्त काल तक एक ही पर्याय में स्थिर रहना है । अत: अपरिवर्तनशील पर्याय है । इस संसार में जीव की सर्वप्रथम पर्याय "निगोद" की है, संसारी पर्याय (अवस्था) में अनन्त जन्म मरण धारण किये जीव ने और अन्त में सिद्ध बनकर अन्तिम पर्याय में स्थिर हो गया । अन्तिम साध्य के रूप में सिद्ध पद की प्राप्ति साधक को करनी है अत: यहां साधना के समय मानस भाव आचरण, स्थिरतादि वैसी ही लानी चाहिए । साध्य के अनुरूप साधक वैसे साधन रूप धर्म का आलंबन लेकर साधना करे तो ही साधक साध्य को साध सकता है "सव्व पावप्पणासणो" सब पाप कर्मों का सर्वथा सम्पूर्ण क्षय करने की ही होनी चाहिए । इससे भिन्न किसी भी अन्य प्रकार की साधना होने पर सिद्धत्व की प्राप्ति संभव नही होगी । सिद्धों का नाम होता ही नहीं है फिर भी यदि संसारी अन्तिम नाम रखकर उसके अन्त में सिद्ध विशेषण के रूप में जोड़कर नमो के साथ मंत्र पद बनाकर भी नवकार महामंत्र में बोलने का व्यवहार करने भी जाएंगे तो मंत्रार्थ की व्यापकता, विशालता खत्म हो जाएगी । फिर उस नाम वाले सिद्ध को ही नमस्कार होगा और अन्य सभी अनन्त सिद्धों को नमस्कार नहीं होगा । इस तरह नवकार महामंत्र की व्यापकता, विशालता खत्म होने पर संकुचितता आ जाएगी । फिर नवकार को महामंत्र कहने में न्यूनता आएगी ।

गुरु पदवाची 3 मंत्र—

नवकार जैसे महामंत्र में अरिहंत भगवान और सिद्ध परमेष्ठियों के नाम न रखकर गुणात्मक पर्याय की अवस्था का विशेषणतात्मक पद रखकर नमस्कार किया गया है । जिससे यह मंत्र त्रैकालिक अस्तित्व धारक बना है । जब भगवानों के ही नाम नहीं रखे हैं तब गुरुओं के नाम रखने की आवश्यकता का सवाल ही नहीं खड़ा होता है ।

गुरु पद में 3 की गणना है । 1. आचार्य, 2. उपाध्याय और 3. साधु । आचार्य और उपाध्याय ये पदवी प्रधान है जबकि मूलपद साधु का है । इन तीनों की भूतकालीन संख्या देखने जाय तो अनन्त की है । अब इन अनन्तों में से किसका नाम लिखना और किसका नहीं ? जिसका नाम लिखेंगे उनको ही नमस्कार होगा और वह मंत्र उनके एक का व्यक्तिगतवाची वह मंत्र पद बन जाएगा । न तो अन्यों को नमस्कार होगा और न ही नाम वाले की मृत्यु आदि के पश्चात् वह ज्यादा लम्बे सुदीर्घकाल तक टीक पाएगा । दूसरी तरफ "नाम" आ जाने से मंत्र का सीमित दायरा क्षेत्र बन जाता है । व्यापकता विशालता को बहुत बड़ा धक्का लगता है और यदि व्यापकता ही खत्म हो जाएगी तो महानता का आधार ही नहीं बच पाएगा ।

संसार का महाभिनिष्क्रमण करके सबसे पहले कोई भी साधु ही बनेगा । फिर अपनी ज्ञानादि योग्यता पात्रता बढाएंगे तब कोई उन्हें उपाध्याय पद पर आरुढ करेंगे या अन्त में कोई भी गुरु उपाध्याय महाराज की भी योग्यता पात्रता विशेष देखकर उन्हें कोई भी आचार्य महाराज अपना उत्तराधिकारी बनाने के रूप में आचार्य पद प्रदान कर आचार्य महाराज बना दे । इस तरह उपाध्याय और आचार्य ये दोनों पद पदवी स्वरूप है । साधु मूलभूत अवस्था है । ऐसे आचार्य, उपाध्यायादि भी अनन्त हो चुके हैं । साधु भी अनन्त हो चुके हैं । अनन्त की संख्या में से किस किस का नाम लिखा जाय नवकार में ? तथा ऐसा कोई नाम हो ही नहीं सकता है जिससे अनन्तों को एक साथ नमस्कार हो सकें और अनन्तों का वाचक एक नाम भी नहीं हो सकता है जिसको नमस्कार करने से अनन्तों को एक साथ पहुंच सकें । वह शब्द ऐसा जरुर हो सकता है जिससे अनन्तों को एक साथ नमस्कार हो सकें । लेकिन ऐसा शब्द किसी व्यक्ति विशेष का वाचक नाम नहीं बनेगा । आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि एक भी ऐसे शब्द नहीं है, जो नाम रूप हो और किसी एक के वाचक रूप हो ऐसा नहीं है । आचार्यादि शब्द पद, पदवी के वाचक है । अत: ये व्यक्ति के नाम नही है । इस तरह सम्पूर्ण नवकार महामंत्र में 2 देव + और 3 गुरु ऐसे पांच ही परमेष्ठी भगवन्त है । इन पांच के अतिरिक्त अन्य किसी का भी नाम एवं नमस्कार इस महामंत्र में नहीं है । अत: ये 5 ही आराध्य, उपास्य तत्त्व नमस्करणीय है । नवकार में इन्हीं को क्रमश: नमस्कार किये गए हैं । इससे यह भी प्रतीत होता है कि 'सव्व पावप्पणासणो' के हेतु की दृष्टि से इन 5 परमेष्ठियों के व्यतिरिक्त इस संसार में कोई भी वंदनीय नमस्करणीय नहीं है ।

"अनामी" अनन्तों को नमस्कार—

पांचों परमेष्ठियों के नाम न रखकर पूरे नवकार को "अनामी" बिना किसी के नाम का बना दिया है । एक दृष्टि से काफी अच्छा है । नाम रहने से अनेक लोगों को राग द्वेष होते हैं । किसी को किस नाम से राग, अनुराग रहता है और किसी को किसी नाम विशेष से द्वेष भी होता है । इस तरह नाम युक्त मंत्र बनने पर व्यापक रूप से सर्वग्राही नहीं भी होता है । अत: बिना नाम के "अनामी" नवकार मंत्र के होने से अब किसी

के लिए रागद्वेष का कारण बनने का कोई प्रश्न ही नहीं रहता है । ऊपर से वीतराग भाव का यह मंत्र है । हमारे जैसे नामधारियों को "अनामी" बनने का श्रेष्ठ कक्षा का संकेत है इस अनामी मंत्र में । आत्म स्वरूप अनामी अरुपी है । अत: नवकार में पांचों परमेष्ठी अनामी रखे गए हैं । जिससे इसके साधक को सतत् अनामी अरूपी बनने का लक्ष्य रखकर ही साधना करनी चाहिए । इस दृष्टि से यह नवकार महामंत्र स्वरूप मंत्र है । आत्म रूप मंत्र है । आध्यात्मिक कक्षा का महामंत्र है । साध्य के अनुरूप होने से साध्य साधक महामंत्र है । अनामी अरुपीपने के साध्य को साधने में इस महामंत्र की साधना अत्यन्त उपयोगी है ।

"लोए" और "सव्व" शब्दों का नियोजन—

नवकार की प्रथम मंत्र गाथा के पांचों पदों में पंच परमेष्ठी भगवन्तों के जो 5 मंत्र पद है । उनमें 5वें मंत्र में लोए और सव्व ये दो शब्द जोड़े हुए हैं । क्षेत्रवाची लोए शब्द "लोक" अर्थ में प्रयुक्त है और "सव्व" शब्द संख्यावाची है । "सब" अर्थ में प्रयुक्त है । यद्यपि इन दोनों शब्दों को पांचवें पद में ही रखा गया है । "नमो" शब्द की तरह पुनरावृत्ति न करते हुए एक ही बार मंत्र गाथा में प्रयुक्त है । इन दोनों शब्दों की पूर्वानुपूर्वी के क्रम से पांचों पदों में जोड़कर इस प्रकार अर्थ करें—

1. नमो लोए सव्व अरिहंताणं — लोक में रहे हुए सभी अरिहन्तों को नमस्कार हो ।
2. नमो लोए सव्व सिद्धाणं — लोकान्त में रहे हुए सभी सिद्धों को नमस्कार हो ।
3. नमो लोए सव्व आयरियाणं — लोक में रहे हुए संभी आचार्यों को नमस्कार हो ।
4. नमो लोए सव्व उवज्झायाणं — लोक में रहे हुए सभी उपाध्यायों को नमस्कार हो ।
5. नमो लोए सव्व साहूणं — लोक में रहे हुए सभी साधुओं को नमस्कार हो ।

इस तरह अर्थ की विशालता नजर आती है ।

ऐसे गुण रूप पर्याय वाले अनामी अरुपी नवकार महामंत्र की उपलब्धि महान पुण्योदय से अनायास प्राप्त हुई है । यही हमारा परम सौभाग्य है । ऐसे महान् मंत्र की महानता समझकर इसका क्षुद्र, तुच्छ उपयोग न करें । जैसा यह अनामी गुण पदवाची महामंत्र है वैसा ही अपनी आत्मा को बनाने का, उन पदों गुणों को प्राप्त करने के लक्ष्य से सही सदुपयोग-साधना करनी चाहिए ।

---

४५ आगमों में सर्वश्रेष्ठ — सर्वोत्तम — शास्त्र शिरोमणी स्वरूप — गणधर गौतमस्वामी के अनेक प्रश्न एवं श्री वर्धमान स्वामी के समाधान स्वरूप ज्ञान के खजाने स्वरूप विशाल आगम शास्त्र —

पंचमांग — श्री भगवती सूत्र

प्रताकार भाग १, २ और ३ *करीब २००० पृष्ठों का ग्रन्थ*

वर्तमान काल में जैन शासन में सर्वोत्तम-श्रेष्ठतम कक्षा का ज्ञान का खजाना स्वरूप **पंचमांग — श्री भगवती** सूत्र है । जिसे — वियाह पण्णत्ति सूत्र, व्याख्या प्रज्ञप्तिसूत्र आदि विविधनामों से पहचाना जाता है । गणधर गौतम स्वामी के ३६००० प्रश्नों का समाधान परमात्मा परमगुरु श्री महावीर प्रभु द्वारा उत्तर रूप में समझाया गया है । विविध व्याख्याएं दी गई है ।

ऐसा एक अद्‌भूत आगम शास्त्र अर्धमागधी मूल सूत्र तथा नवाङगीवृत्तिकार अभयदेवसूरिविरचित संस्कृत टीका का प्रताकार (पोथी आकार) के रूप में प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है ।

दूसरा तथा तीसरा भाग निकट भविष्य में प्रकाशित होगा ।

प्रथम भाग प्रकाशक — **श्री महावीर विद्यार्थी कल्याण केन्द्र — मुम्बई**

द्वितीय-तृतीय भाग प्रकाशक — **"श्री महावीर रिसर्च फाउण्डेशन" — वीरालयम्**

एन.एच. ४ मुम्बई — पुणे — हाइवे, कात्रज — देहुरोड बायपास, आंबेगांव खुर्द, जांभुलवाडी, कोलेवाडी ता. हवेली पुना — ४११०४६

अनामी बनने की प्रेरणा देता है – "अनामी महामंत्र'

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

—समूचा संसार "नाम" के आधार पर चलता है । संसार में व्यवहार करने हेतु लोग सर्वप्रथम वस्तु एवं व्यक्ति दोनों का नामकरण करते हैं । बच्चा पैदा होता है कि... पहले उसका नाम रखते हैं । जब तक सही नामकरण नहीं होता है तब तक लोग बोलचाल में अपनी तरफ से कुछ भी नाम रखकर व्यवहार करते रहते हैं । फिर सही नाम पड़ने पर उससे व्यवहार करेंगे । मनुष्यों ने जड पौद्गलिक वस्तुएं बनाकर उनका भी नाम रख दिया है और नाम पूर्वक ही सारा व्यवहार करते हैं । यहां तक स्थिति बन चुकी है कि... इस समस्त संसार में बिना नाम की कोई व्यक्ति और वस्तु बची ही नहीं है । आप चिन्तन करके सोचिए कि... इस संसार में ऐसी कौन सी वस्तु है जिसका कोई नामकरण ही न हो । बताइये आप ! ऐसी एक स्वतंत्र वस्तु बताइये जिसका नाम न हो । शायद एक भी नहीं मिल पाएगी ।

दूसरी तरफ यह भी सोचिए कि... क्या कोई ऐसा नाम है ? जिसकी वाची कोई वस्तु न हो ? कोई अवस्था या पर्याय विशेष न हो ? फिर भी उसका वाची नाम लोक व्यवहार में प्रचलन में हो । हर व्यक्ति और हर वस्तु का नाम बना हुआ है । इसी तार्किक पद्धति से आत्मादि तत्त्वभूत द्रव्यों की सिद्धि हो जाती है । "आत्मा" भाषाकीय शब्द रचना से निर्मित नाम है । अत: इसकी वाच्य वस्तु भी अवश्य अस्तित्व रखती होनी ही चाहिए । बिना पदार्थ के अस्तित्व के नाम कहां से आ गया ? वस्तु पदार्थ या द्रव्य विशेष के अस्तित्व के आधार पर ही नामकरण होता है । या मानस वस्तु की कल्पना करके वैसा आकार प्रकार आदि मानसिक स्तर पर ही नाम देकर फिर बाद में वस्तु बनाने पर वह नाम और वस्तु दोनों संसार के व्यवहार में आते हैं । फिर भी प्रधान रूप से वस्तु को जगत् के व्यवहार में प्रचलित करने का श्रेय नाम को विशेष है ।

आत्मा द्रव्य है तो आत्मा उसका नाम भी है । और आत्मा नाम ही संसार के व्यवहार में प्रचलित है उसकी वाच्य वस्तु आत्म द्रव्य भी संसार के व्यवहार में है ही ।

अल्पकालीन नाम व्यवहार—

याद रखिए ! नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चारों निक्षेपों के आधार पर वस्तु का व्यवहार होता है । वस्तु के रखे गए नाम का नाम रूप व्यवहार होता है । स्थापना में वस्तु की पर्याय, आकार, प्रकार से व्यवहार होता है । द्रव्य में वस्तु अपने आप में जड़ या चेतन किस द्रव्य की है । द्रव्य स्वरूप में उसका अस्तित्व कैसा है ? यह व्यवहार होता है । भाव स्वरूप में गुणों का व्यवहार होता है । क्षेत्र काल भी द्रव्य के सहयोगी परिचायक है । इस तरह गुण और पर्याय युक्त द्रव्य उत्पाद, व्यय धौव्यात्मक तीनों अवस्था वाला है । जीव भी संसार का द्रव्य ही है और जड़ पदार्थ भी द्रव्य विशेष ही है । इसलिए दोनों को वस्तु कहते हैं । यह जरुर कह सकते हैं कि एक जड़ वस्तु है और दूसरी चेतन । जीव जो शरीरधारी बना हुआ है वह व्यक्ति कहलाएगा और जड़ पदार्थ वस्तु के रूप में ही रहेगी । फिर भी दोनों का व्यवहार नामकरण से होता है ।

वस्तु के नाम का आधार उसकी पर्याय पर रहता है तथा पर्यायें परिवर्तनशील होती है । कोई पर्याय कभी चिरस्थायी नहीं होती है । हां, द्रव्य स्वरूप अस्तित्व ध्रुव रूप से जरुर रहता है । जीव की संसारी अवस्था में अनन्त पर्यायें बदल गई । लेकिन मोक्ष में सिद्धावस्था की चरम पर्याय है जो कभी भी नहीं बदलती । अत: पर्याय की दृष्टि से मोक्ष की व्याख्या इस तरह की जा सकती है कि... आत्मा अपनी अपरिवर्तनशील स्थिर पर्याय में आ जाय उसे ही मुक्तावस्था, सिद्ध स्वरूप कहते हैं । लेकिन पुद्गल के विषय में यह संभव नहीं है । पुद्गल का आधारभूत घटक परमाणु है । परमाणुओं में संघात विघात की प्रक्रिया सतत् होती रहती है और इसी कारण पुद्गल की पर्यायें सतत् बदलती रहती है । पौद्गलिक पदार्थों में चयापचय होता ही रहता है । हमारा यह शरीर भी पुद्गल निर्मित होने के कारण पौद्गलिक ही है । इसमें भी चयापचय होता ही रहता है । इसीलिए जन्म समय की अवस्था देखिए फिर शैशव काल, फिर यौवन काल, फिर प्रौढावस्था और अन्तिम वृद्धावस्था देखिए... कितनां चयापचय हुआ और पुद्गल पदार्थ में कितना परिवर्तन आया है ? पर्याय कालिक मर्यादा के बंधन में बंधी हुई है । जबकि द्रव्य काल के बंधन से मुक्त है । अत: काल की सीमा के बाहर कालातीत है । अत: त्रैकालिक है । आत्मा मूलभूत द्रव्य है अत: यह कालातीत है काल के व्यवहार

से बाहर है । आत्मा को काल कुछ भी नहीं कर सकता है । जबकि पुद्गल का बना हुआ यह पिण्ड रूप शरीर काल की मर्यादा में बंधा हुआ है । कभी भी नष्ट हो सकता है । नष्ट हो जाने पर अब उसका जो नाम था, जिस नाम से व्यवहार चलता था वह भी समाप्त हो जाएगा । द्रव्य का नाम आत्मा है, और आत्मा तीनों काल में एक जैसी एक समान रहती है अकाल द्रव्य है अत: इसका वाचक नाम "चेतन" "आत्मा" आदि भी अनन्त काल तक बराबर बने रहेंगे । कभी भी नष्ट नहीं होंगे । लेकिन आत्मा ने जो शरीर धारण कर रखा है और व्यवहार हेतु शरीर का जो नाम अरुण, तरुण वरुणादि रखे हैं ये सब शरीराश्रित है । अत: शरीर के नष्ट-विलय होते ही व्यवहार नष्ट होते ही एक दिन नामों का भी नाश हो ही जाएगा । यही नियम संसार की अनन्त जड़ वस्तुओं के लिए भी लागू होगा । जड़ वस्तु का विनाश हुआ नाम भी व्यवहार से ओझल हो जाता है । लेकिन एक वस्तु की समान जातियां बनी रहती है । अत: उस वस्तु के समान अन्य वस्तु का नाम जातिवाचक नाम बनकर व्यवहार में रहेगा । इस तरह संसार का व्यवहार चलता रहता है ।

संसार अनन्त कालीन है और संसार है किसका ? जड़, वस्तु और चेतन, व्यक्तियों के समूह का ही नाम जगत्-संसार है । संसार में इन दोनों वस्तुओं की पर्यायें बदलती रहेगी । इन दोनों द्रव्यों का आपस में संयोग-वियोग भी होता ही रहेगा । इस तरह प्रवाह से संसार का स्वरूप भी त्रैकालिक शाश्वत है । अनन्त कालीन है । मूलभूत अस्तित्व वाले द्रव्यों के नामकरण शाश्वत रहते हैं परन्तु पर्यायों के नाम शाश्वत नहीं रहते हैं परिवर्तनशील होते हैं । परिवर्तन कैसा होता है ? उत्पाद व्ययात्मक जो पर्यायों में परिवर्तन होता है उसे परिवर्तन कहते हैं । उत्पाद अर्थात् नई पर्याय का उत्पन्न होना, व्यय अर्थात् पुरानी पर्याय का नष्ट होना । यह नया पुराना कालिक व्यवहार है । काल निमित्तक है । काल सहयोगी है । दोनों अवस्था में नाम भी साथ ही चलता है । जब पुरानी अवस्था नष्ट हो जायेगी तब उसका वाचक पुराना नाम भी नष्ट हो जायेगा और नई पर्याय उत्पन्न होगी तब नया नामकरण होगा । इस तरह उत्पाद व्ययात्मक पर्याय है । द्रव्य अपने स्वरूप में त्रैकालिक शाश्वत ध्रुव है । इसलिए लोक व्यवहार में कहा जाता है कि... जिसका नाम उसका नाश ।

नाम उसका नाश—

वर्तमान काल में चारों तरफ अपने नाम को प्रसिद्ध करने एवं अपने नाम को स्थिर नित्य रखने के लिए मानों होड लगी है । इसमें त्यागी वर्ग भी अछूता नहीं रहा है । संसारी जीव अपना नाम कायम करने-रखने के लिए प्रयत्नशील जरुर है लेकिन वे रखेंगे कहां ? ऐसी कोई चिरस्थाई वस्तुएं है कहां ? ज्यादा से ज्यादा मनुष्यों को भवन, मकान आदि का आधार दिखाई दिया कि... यहां मेरा नाम सदाकाल रह जाएगा । लेकिन यह नहीं सोचा कि... ईंट, मिट्टी, चूने के संमिश्रण वाली दीवार क्या सदाकाल रहने वाली है ? संभव भी है ? जी नहीं ? यदि ऐसा होता तो हमारे पूर्वज जिनकी हजारों पीढ़ियां बीत चुकी है उनके नामादि कहां हैं ? कहां घर-बार भवनादि है ? शायद वे इस सत्य को अच्छी तरह जानते थे कि... नाम इन दीवारों पर टिकने वाले नहीं है । जो नाम जिस शरीर का वाचक है, ऐसे नाम से वाच्य यह शरीर ही सदा टिकने वाला नहीं है तब इसके बजाय ईंट, चूने, मिट्टी, रेती के मिश्रण वाले भवन की दीवारों पर कहां तंक टिकने वाला है ? अरे ! यह शरीर भी जैसा पौद्गलिक है वैसा ही भवन इमारत भी पौद्गलिक ही है । पुद्गल निर्मित है । अत: शरीर जब विनाशी है तो भवनादि भी विनाशी नाशवन्त ही है । दोनों समान धर्मी है । अत: नाम कहां टिकने वाला है ? कहां रहने वाला है ?

दूसरी तरफ आधुनिक विज्ञान के विशेषज्ञों ने भी स्पष्ट रूप से यह कह ही दिया है कि... आधुनिक सीमेंट के बने मकानों का आयुष्य भी मनुष्य के आयुष्य के समकक्ष आ चुका है । इसमें मनुष्य का आयुष्य जो कि दिन-प्रतिदिन घटता ही जा रहा है । अब कहां 100 साल के होते हैं लोग ? अब 60-70 तक सीमित रह गए हैं । और इसी तरह मकानों, इमारतें भी 60-70 से 100 साल की सीमा के अन्तर्गत आ चुके हैं । अब वह और वैसा संमिश्रण नहीं है जो कि हजारों साल तक भवनों को टिकाये रखें । अत: सीमेंट आदि पदार्थों की गुणवत्ता भी कितनी कमजोर हो चुकी है । यह सत्य समझकर हमें अपना मानस बदलना चाहिए और अपना नाम अमर करने की मोहदशा को बदलनी चाहिए । जहां नाम की बात आएगी वहां क्लेश, कषाय और कलह होंगे । हर व्यक्ति का स्वभाव राग, द्वेष का ऐसा है कि... अपने नाम का मोह उसे जरुर रहेगा । पसंद आयेगा । वह अपना नाम जरुर चाहेगा । लेकिन दूसरों के नाम से द्वेष भाव रखेगा । ईर्ष्या रहेगी । कर्माधीन जगत् के जीवों का राग-द्वेषात्मक यही स्वभाव संसार में अनन्तकाल से रहा है । आज भी चल रहा है और भविष्य में भी चलता ही रहेगा । इस प्रकार का नाम मोह हमेशा कर्म बंध कारक बनता है । ऐसा कर्मों का भारी बंध नाम के पीछे कहां तक रखना ? शायद यह बात भी लोग सत्य मानेंगे की त्याग वैराग्य की भावना अपने अन्तर में रखने वालों के लिए संसार छोड़ना आसान है लेकिन मोह के उदय के कारण नाम ममत्व नाम राग छोड़ना बहुत मुश्किल लगता है । अरे ! नवकार में किसका नाम है ?

नवकार महामंत्र में नाम कहां हैं ?

नवकार एक मात्र ऐसा त्रिकाल शाश्वत मंत्र है कि... जो अनन्त काल से चला आ रहा है और भविष्य में भी अनन्तकाल तक चलता ही रहेगा। अरे ! नष्ट होना ही होता तो बीते हुए अनन्त काल में क्यों नहीं नष्ट हुआ ? और आज कौन से ऐसे नाशक परिबल सामने आ चुके हैं कि जिसके कारण नवकार नष्ट हो जाएगा ऐसी भीति रखें। शायद आप कहेंगे कि पांचवा आरा समाप्त होने के बाद छट्ठे आरे में धर्म का ही नाम निशान नहीं रहेगा तब नवकार मंत्र कहां रहेगा ? कैसे रहेगा ? इसका सीधा उत्तर है 5 महाविदेह क्षेत्रों में नवकार शाश्वत रूप से रहेगा। क्योंकि 5 महाविदेह क्षेत्र शाश्वत है तथा वहां सदाकाल 4था आरा ही रहता है यह भी शाश्वत काल है तथा शाश्वत रूप से वहां अरिहंत तीर्थंकर भगवान सर्वज्ञ, केवली तथा साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकादि एवं धर्म भी शाश्वत रहेगा। अत: वहां नवकार महामंत्र शाश्वत रूप से रहेगा। भरत और ऐरावत क्षेत्र में भले ही पांचवा आरा समाप्त होते ही छट्ठे तथा अन्य आराओं में धर्म नहीं रहेगा। नवकार नहीं रहेगा, लेकिन इतने मात्र से नवकार का सम्पूर्ण अस्तित्व सर्वथा लुप्त नहीं हो जाएगा।

यह बात भी सत्य है कि नवकार महामंत्र में यदि पंच परमेष्ठी भगवन्तों के नाम होते तो वह जरुर नष्ट हो जाता। उदाहरणार्थ— "नमो अरिहन्ताणं" पद के स्थान पर नामवाची पद "नमो महावीराणं" "नमो आदीश्वराणं" यदि रखें तो इसमें भगवान महावीर स्वामी और श्री आदीश्वर भगवान का नाम है। अत: यह मंत्र जहां तक ये भगवान रहेंगे, या इन भगवानों का शासन काल रहेगा तब तक ही यह मंत्र रहेगा। लेकिन जिस दिन तीर्थंकर का निर्वाण हो जायेगा और उनके शासन के काल की सीमा भी समाप्त हो जाएगी। उसके पश्चात् क्या होगा ? जब नए तीर्थंकर भगवान होंगे ? और उनका नाम जब सामने आएगा तब लोग नए भगवान के नाम का मंत्र बनाकर व्यवहार में लाते जाएंगे तथा पूर्व पूर्व के नाम लुप्त होते जाएंगे। इस तरह आज दिन तक भूतकाल में अनन्त तीर्थंकर भगवन्तों के नाम मंत्र बने और काल के प्रवाह में ओझल हो गए। कहां है हमारे पास ? वर्तमान चौवीसी के 24 भगवानों के नाम भी शायद मुश्किल से 50% ही लोगों को याद होंगे। ऐसी स्थिति में गत चौवीसी के और उसके भी पहले भी चौवीसी के 24-24 तीर्थंकर भगवन्तों के नाम कहां स्मृति में उपस्थित होंगे ? सवाल ही नहीं खड़ा होता है। लेकिन इतना काल बीतने के बावजूद भी नवकार महामंत्र इतनी अनेक चौवीशियों के बीतने के बाद भी अपना अस्तित्व बराबर बनाए हुए हैं। आखिर क्यों और कैसे ? इसका हमें निश्चित रूप से गहरा चिन्तन करना ही चाहिए।

सिद्धों का नाम—

महामंत्र नवकार सर्वथा अनामी महामंत्र है। देव और गुरु दो भगवान् इस मंत्र में है। देव तत्त्व में अरिहंत और सिद्ध भगवान है और आचार्य, उपाध्याय तथा साधु ये 3 गुरु भगवन्त है। 2+3=5. इस तरह पांच परमेष्ठी भगवन्त है। इनमें पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के नाम कहां से लाएं ? क्योंकि सिद्ध भगवन्त सर्वथा अनामी निरंजन निराकार होते हैं। उनका कोई आकार, प्रकार संस्थान ही नहीं होता है। क्योंकि शरीर ही नहीं है। सर्वथा अशरीरी आत्मा द्रव्य स्वरूप ही है। और आत्मा अरुपी अदृश्य है। उसमें भी निश्चित आकार प्रकारादि कुछ भी नहीं ऐसे निरंजन निराकार का नाम कहां से लावें ? वहां मोक्ष में रखे कौन ? यह व्यवस्था कौन करें ? और क्यों करें ? सिद्धों का वहां मोक्ष में किसी भी प्रकार का कोई व्यवहार ही नहीं करना है तो फिर नाम रखने का सवाल ही कहां उठता है ? आत्मा यह द्रव्यवाची शब्द है। अत: व्यवहार में यदि आज भी हम किसी को ए आत्मा !... ए आत्मा... ! ऐसा व्यवहार करें तो हजारों में से कौन आएगा ? कौन जवाब देगा ? संभव ही नहीं है। इसलिए द्रव्यवाची "आत्मा" नाम से व्यवहार संभव ही नहीं होता है। क्योंकि सभी "आत्मा" ही है। अत: पर्याय विशेष का व्यक्तिगत स्वतंत्र नाम रखा जाय वही उसका वाचक बनता है उसी से व्यवहार हो सकता है।

दूसरी तरफ यदि "सिद्ध" शब्द को ही हम नाम रूप समझकर व्यवहार करें तो कैसे करें ? सिद्ध नाम किसका होगा ? किसी एक का हो तो ही स्वतंत्र रूप से उनका समझ सकें। परन्तु अनन्त भूतकाल में अनन्त आत्माएं सिद्ध बन चुकी है। अत: अनन्त सिद्धों का व्यक्तिगत एक नाम नहीं हो सकता है। अत: यह सिद्ध नाम किसी एक का नहीं अपितु अनन्तों का एक नाम है। समूहवाची नाम है। जातिवाचक नाम है। "सिद्ध" कहने से हमेशा अनन्त सिद्ध सभी अभिप्रेत रहेंगे। इसीलिए नवकार के दूसरें पद में 'सिद्धाणं' के आगे नमस्कार वाची "नमो" शब्द जोड़कर 'नमो सिद्धाणं' मंत्र बनाया है। सिर्फ 5 अक्षर के दो शब्दों के इस मंत्र का उच्चारण, स्मरण करने मात्र से अनन्तान्त सिद्ध भगवन्तों को एक साथ नमस्कार होता है। सिद्ध यह आत्मा की कर्म रहित शुद्ध पर्याय का नाम है। अत: यह गुणवाची नाम है। व्यक्तिवाची नहीं। जप करने वाले साधक को अपने इस गुणवाची नाम के पद से सिद्ध भगवन्त यह प्रेरणा देते हैं कि... मुझे नमस्कार करने के फल स्वरूप हे जीव ! तूं भी मेरे जैसा बन जा। मेरे जैसा ही तेरा भी मूलभूत स्वरूप सत्ता में पड़ा है उसे पूर्ण रूप से प्रगट करके मेरे जैसा सर्वथा निरावरण अशरीरि-निरंजन निराकार सिद्ध बन जा। इस तरह सिद्ध परमेष्ठी भले ही प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर न भी होते हो फिर भी गुणवाची, विशुद्ध चरम पर्यायवाची, पद के जप स्मरण से हमें अनुपम प्रेरणा प्राप्त होती है। ऐसी प्रेरणा पाकर सिद्ध बनने का लक्ष्य लेकर साधना करें और सिद्ध बनें।

अरिहंत कहां नाम हैं ?

सिद्ध पद का जैसा विवेचन किया है ठीक वैसा ही प्रथम 'नमो अरिहंताणं' पद में भी समझना चाहिए। अनन्त भूतकाल में अनन्त भगवान हो चुके हैं। किसका नाम "अरिहंत" था ? आज भूत, वर्तमान और भविष्य की 3 चौवीसियों के नाम उपलब्ध है। इन तीनों में अरिहंत नाम किसी भी भगवान का नहीं है। अनन्त भूतकाल में भी किसी एक भी भगवान का अरिहंत नाम नहीं था। नाम तो ऋषभदेव, महावीर स्वामी आदि थे। अरिहन्त उन सबकी अवस्था विशेष का वाची पद है। अपनी आत्मा पर लगे कर्म रूप अरि के अवान्तर आन्तर शत्रु क्रोध, मान, माया, लोभ, काम, राग, द्वेषादि का हनन, नाश करने वाले अरिहन्त बनते हैं। वैसे तो आत्म दृष्टि से सभी समान ही है। लेकिन हम इन अरियों से हनन हो चुके हैं अत: पामर है और वे भगवान जिन्होंने अरियों आत्मरिपुओं का ही सर्वथा हनन-नाश कर दिया है, अत: वे अरिहंत बन चुके हैं। गुणस्थानों की श्रेणी पर आरुढ बनकर आगे के एक-एक सोपानों पर चढ़ते-चढ़ते क्रमश: कर्म अरियों (आन्तर शत्रुओं) का वे हनन करते ही गए। अत: वे अरिहन्त कहलाए। अरिहन्त बने। ऐसे गुणवाची, पर्यायवाची और समूहवाची समस्त भगवन्तों का एक नाम लेकर उसके आगे नमस्कारवाची 'नमो' शब्द जोड़कर सप्ताक्षरी, द्विशब्दी प्रथम पद बना है। इस एक पद के उच्चारण मात्र से अनन्त अरिहन्त भगवन्तों को एक साथ में नमस्कार होता है।

गुरु पद में कहां किसका नाम है ?

गुरु पद में मूलभूत पद "साधु" पद है। जबकि आचार्य और उपाध्याय ये दोनों उपाधि पदवी स्वरूप है। साधु के जीवन में ही आगे विकास करते-करते गुणों की उस कक्षा में पहुंचने पर योग्यतानुसार किसी को उपाध्याय और किसी को आचार्य पदवीयां प्रदान की जाती है। तीर्थंकर भगवान ने तीर्थ व्यवस्था में चतुर्विध श्री संघ की व्यवस्था की है। जिसमें साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका ऐसे 4 वर्ग है। तीर्थंकर परमात्मा ने किसी को स्व हस्ते आचार्य, उपाध्याय की पदवीयां नहीं दी है। हां, गणधर पद पर जरुर नियुक्त किये हैं। साधु समूह या साधु समुदाय स्वरूप गण को धारण करने वाले, पढ़ाने वाले, संभालने वाले को गणधर कहा है। परन्तु आचार्य, उपाध्याय की पदवी किसी को दी हो ऐसा उल्लेख कहीं मिलता नहीं है। गणधरों का समावेश भी तीसरे "नमो आयरियाणं" पद में ही किया गया है। इस तरह चतुर्विध श्री संघ की व्यवस्था एवं संचालन हेतु आचार्य, उपाध्याय पद की व्यवस्था है। ये भी पदवाची शब्द है। व्यक्ति के स्वतंत्र नामवाची पद नहीं है। इस तीसरे, चौथे और पांचवे इन तीनों पदों में गुरु भगवन्तों को नमस्कार भी पदानुसार किये गये हैं। व्यक्तिगत नामानुसार नहीं। जब देव तत्त्व के अरिहंत और सिद्ध भगवन्तों के भी नाम नहीं लिए हैं तो फिर गुरु पद के तीनों भगवन्तों का नाम लेने का प्रश्न ही कहां खड़ा होता है ?

अनामी बनने का लक्ष्य रखें

इस तरह नवकार जैसा महामंत्र सम्पूर्ण रूप से सर्वथा अनामी महामंत्र है। किसी का भी नाम इस मंत्र में नहीं है। अनामीपना यह आत्मा का गुण है। अत: नवकार के साधक को यह रहस्य समझकर अनामी बनने का भाव रखकर नवकार की उपासना करनी चाहिए और इस उपासना के अन्दर नाम और नामना का मोह कम करते-करते समाप्त ही कर लेना चाहिए। नाम के कारण जो राग, द्वेष होते हैं वे नाम रहितावस्था अनामीपने का भाव लाकर करने पर नहीं होंगे। एक इस दृष्टिकोण से नवकार की साधना करने पर साधकों का नाम ममत्व मोह कम होने का प्रत्यक्ष लाभ साधक अनुभव कर सकेंगे।

गुरु तत्त्व में गुण एवं क्रम व्यवस्था

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

— श्री नमस्कार महामंत्र में अरिहन्तादि पांच परमेष्ठी भगवन्त है । पांचों को नमस्कार किया गया है । नमस्कारवाची नमो पद आगे और पीछे साथ में पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के वाचक गुणात्मक पदवाची नाम रखे गए हैं और उनको नमस्कार करते हुए पांच मंत्रों की व्यवस्था की गई है । पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के वाचक पांचों मंत्र पदों के पांच स्वतंत्र पदों की रचना है । इन पांच में 2 देव तत्त्व भगवान है । 1. अरिहन्त और 2. सिद्ध ये दो देव तत्त्व में भगवान स्वरूप है । जबकि शेष आचार्य, उपाध्याय और साधु ये 3 गुरु तत्त्व में गुरु स्वरूप है । इस तरह नवकार महामंत्र को देव गुरु का संयुक्त नमस्कारात्मक महामंत्र बताया है ।

गुरु तत्त्व में क्रम व्यवस्था—

गुरु तत्त्व में जो 3 गुरु है उनके छोटे बड़े पद के आधार पर क्रमानुसार तीनों पदों का क्रम बैठाया गया है । गुरुओं में सबसे बड़े मुख्य आचार्य भगवन्त है । श्री संघ के धूरि है । संघ संचालक है । जो तीर्थंकर भगवान की अनुपस्थिति में तीर्थंकर भगवन्तों के समकक्ष है । सदृश है । शास्त्र में पाठ भी ऐसा ही प्राप्त है— "तीत्थयर समो सूरि" तीर्थंकर के समकक्ष-समान सूरि अर्थात् आचार्य महाराज है । जैसे एक राजा की अनुपस्थिति में राजकुमार प्रतिनिधि के रूप में राजा के समकक्ष अधिकारी कहलाता है, वैसे ही तीर्थ संस्थापक पू. तीर्थंकर भगवन्तों की अनुपस्थिति में आचार्य भगवन्त संघ संचालक, संघ व्यवस्थापक के रूप में तीर्थंकर सदृश समान अधिकारी के रूप में है । अर्थात् ऐसे भी कह सकते हैं कि... कलिकाल के तीर्थंकर स्वरूप है आचार्य भगवन्त । ये तीनों गुरुओं में पद पर सबसे बड़े हैं अत: सर्वप्रथम इनको नमस्कार किया गया है ।

आचार्य भगवन्त के पश्चात् उपाध्याय पद का क्रम आता है । आचार्य भगवन्त से छोटे लेकिन साधु भगवन्त से बड़े ऐसे उपाध्यायजी भगवन्त का 3 गुरुओं के क्रम में दूसरा पद आता है । ये संघ के आधार स्तम्भ है । समस्त साधु, साध्वियों, शिष्यों को ज्ञान प्रदान सूत्र पाठ, वाचनादि देने के अधिकारी पू. उपाध्यायजी महाराज बताए हैं । अत: आचार्य भगवन्तों के बाद दूसरे क्रम पर उपाध्याय भगवन्त को नमस्कार किया गया है । 3 गुरुओं में अन्तिम तीसरे गुरु साधु मुनिराज है । पद में ये सबसे छोटे हैं । साधना के पथ पर जिन्होंने सर्वप्रथम कदम रखा है वे साधु भगवन्त आत्म साधना साधने के लिए कटिबद्ध हुए हैं । स्व पर हित साधक ऐसे, मोक्ष मार्ग पर आरुढ हुए हैं ऐसे साधु, मुनिराजों को अन्तिम गुरु के क्रम पर रखे हैं । अत: इस तरह बड़े...बड़े से फिर छोटे... फिर उनसे भी अर्थात् सबसे छोटे साधु के इस सुव्यवस्थित क्रम से नमस्कार किये हैं तथा क्रम के अनुसार पद की व्यवस्था है । क्रमानुसार यह व्यवस्था बिल्कुल सही है ।

उल्टे क्रम में छोटे से बड़े—

ऊपर का वर्णन ऊपर से नीचे की ओर का था । अब नीचे से ऊपर की ओर जाते हुए क्रमश: छोटे से बड़े के क्रम में तीनों गुरु भगवन्तों को इस तरह बताए हैं— सर्वप्रथम साधु मुनिराज, फिर उपाध्यायजी और अन्त में आचार्य भगवन्त । जैसे 5 मंजिली इमारत दूर से दिखाई देने पर ऊपर की पांचवी मंजिल सबसे पहले दिखाई देगी । अत: ऊपर से नीचे की तरफ गणना होगी । परन्तु जब उसी बिल्डिंग में चढना होगा तो नीचे की प्रथम मंजिल के क्रम से ही चढ़ा जाएगा । इस तरह आरोह-अवरोह उभय क्रम से विचारणा की गई है । सर्वप्रथम साधु बनते हैं, फिर उपाध्याय बनते हैं और अन्त में आचार्य बनते हैं । अत: गुरु पद में इस प्रकार का क्रम है । इस तरह गुरु पद में 3 पदों की ही व्यवस्था है । आगे ज्यादा नहीं ।

इन 3 पदों में भी देखा जाये तो जिसे पद या पदवी उपाधि कहते हैं वे तो 2 ही है । उपाध्याय और आचार्य ये पदवी स्वरूप है । साधु में उस प्रकार की योग्यता, पात्रता, गुणों के आधार पर देखकर चतुर्विध श्रमण संघ की व्यवस्था हेतु किसी को आचार्य पद पर, किसी को उपाध्याय पद पर आरुढ किया जाता है । परन्तु किसी को साधु पद पर आरुढ नहीं किये जाते हैं । सर्वप्रथम संसार का, गृहस्थाश्रम का त्याग करके कोई साधु बनता है । अत: साधु उपाधि स्वरूप पद नहीं है । पदवी रूप नहीं है । यह मूलभूत पद है । जो भी कोई संसार का त्याग कर दीक्षा ग्रहण

करेगा वह साधु कहलाएगा । साधु-मुनि बनेगा । दीक्षा लेने वाले सभी सर्वप्रथम अनिवार्य रूप से साधु कहलाएगा । संसार का त्यागी है । इसलिए साधु है । अब संसारी नहीं है, अत: साधु है । इसलिए सभी अनिवार्य रूप से साधु बनेंगे लेकिन सभी अनिवार्य रूप से उपाध्याय या आचार्य नहीं बन सकते । उपाध्याय या आचार्य ये योग्यता, उस पद के अनुरूप पात्रता के पद हैं । इन पदों के सुयोग्य जिन गुणों का वर्णन शास्त्रकारों ने शास्त्रों में किया है वैसे गुणों की उपलब्धि, योग्यता, पात्रता जिस साधु में दिखाई देगी उन्हें गुरु भगवन्त चतुर्विध श्री संघ की व्यवस्था हेतु उपाध्याय या आचार्य पद पर आरुढ करेंगे । तब पदारुढ महात्मा ही उपाध्याय एवं आचार्य भगवन्त कहलाएंगे । अन्यथा सामान्य साधु के स्वरूप में ही गिने जाएंगे ।

संसार का त्याग करके सर्वप्रथम कोई साधु ही बन सकता है । यही व्यवस्था है । ऐसा नहीं है कि... सीधे दीक्षा लेते ही सबसे पहले कोई भी उपाध्याय या आचार्य बन जाये । जी नहीं, कदापि नहीं । जिन शासन की एवं श्री संघ की यह व्यवस्था है । जो सुचारु रूप से चल रही है । इससे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि... साधु मूलभूत बनने का पद है । इसके लिए सीधा नियम है कि वैराग्य भाव से दीक्षा ग्रहण करो, संसार छोड़ो, पंचमहाव्रतादि स्वीकारो और साधु बनो । साधु तो आप आज बनना चाहो तो भी बन सकते हो । यह आपके हाथ में है । आपकी भावना पर निर्भर कर रहा है । आप जब चाहें तब साधु बन सकते हैं । लेकिन आप जब चाहो तब उपाध्याय या आचार्य नहीं बन सकते हैं । ये पद आपके हाथ में नहीं है । ये गुरुओं के हाथ में है । गुरु जब आपकी अर्थात् साधु की योग्यता पात्रता क्षमतादि देखेंगे, तब क्रमोन्नत, पदोन्नत करते हुए उपाध्याय या आचार्य पद पर आरुढ करेंगे । एक राजा जिस तरह योग्यता-पात्रतानुसार अपनी गादी राज सिंहासन पर उत्तराधिकारी के रूप में राजकुमार का समारोहपूर्वक राज्याभिषेक, राजतिलक करके अपने अनुगामी के रूप में स्थापना करके जाते हैं । ठीक उसी तरह जिन शासन के धूरि, संघ संचालक संघ नायक, आचार्य भगवन्त भी अपने शिष्यों को उत्तराधिकारी के रूप में आचार्य एवं उपाध्याय पद पर स्थापित करते हैं । जो सकल संघ को मान्य रहते हैं । लेकिन साधु, मुनिराज बनने के लिए यह प्रक्रिया नहीं है । वैराग्य भाव से गृहस्थाश्रम संसार का त्याग करके कभी भी कोई भी साधु बन सकता है ।

गुरु तत्त्व के तीनों पदों में गुणों का आधार—

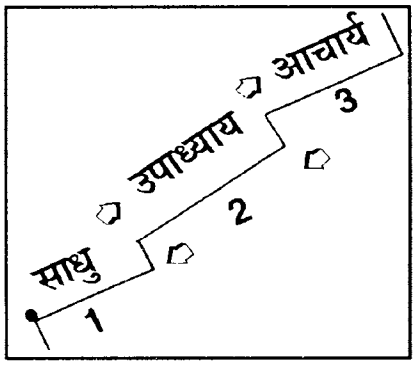

गुरु तत्त्व में आचार्य, उपाध्याय और साधु ये तीन पद हैं । इन तीनों गुरुओं का आधार उनके पद के गुणों पर है । नवकार में आचार्य पद, उपाध्याय पद और साधु पदों के लिए क्रमश: 36, 25 और 27 गुणों की व्यवस्था समाई गई है । आचार्य और उपाध्याय पदों के गुण देखने पर भी पता चल जाएगा कि ये उनके खुद के गुण हैं या पद के गुण हैं ? सच देखा जाय तो ये उनके पद के गुण है । यहां गुण ही उस-उस पद पर आरुढ हुए महात्मा के परिचायक हैं । परीक्षक है । आचार स्वरूप द्योतक है । उनकी पहचान के लक्षण रूप है । ये ही गुण उनके लक्षण स्वरूप है ।

तीनों गुरु भगवन्तों के कुल मिलाकर 88 गुण होते हैं । एक-एक के व्यक्तिगत पदानुरूप 36 और 25 आदि गुण होते हैं । यदि ये और इतने गुण होंगे तो ही उन्हें उपाध्याय या आचार्य पद पर आरुढ किये जाएंगे । जबकि साधु के गुण उसके आचार, विचार एवं जीवन परिचायक है । आप देखेंगे कि उपाध्याय भगवन्त के सभी गुण ज्ञानार्थक, ज्ञानावर्धक गुण है । जो उपाध्याय पद के गुण है । अत: यह नियम बन जाता है कि... जिनमें इतने 25 और ऐसे 25 गुण हो वही इस पद पर बैठ सकते हैं । बैठने योग्य है । उपाध्यायजी के 25 गुण सभी ज्ञान के विषयक हैं । जबकि इतने ये और ऐसे 25 गुण ज्ञान के आचार्य पद के नहीं है । आचार्य पद के अनुरूप उनके गुण अलग ही कक्षा के होते हैं और साधु के 27 सभी गुणों में भी 25 गुण ज्ञान के नहीं है । साधु कहां इतना अंग-उपांग और पूर्वो का ज्ञाता है ? अत: साधु के 27 गुण प्रधान रूप से आचार धर्म प्रधान है । सम्यग् चारित्र धर्म साधु ने स्वीकारा है । अत: साधु जीवन में चारित्र धर्म के आचारात्मक गुणों की प्रधानता है । ये ही गुण साधु के परिचायक रूप में उपयोगी है और ये ही गुण साधु का स्वरूप व्यक्त करते हैं । अत: साधु की पहचान इन गुणों से होती है कि साधु स्वयं कैसे हैं ? या कैसे होते हैं साधु ? ऐसा जानने की जिज्ञासा वाला साधक साधु के 27 गुणों का स्वरूप जान पहचान सकता है कि साधु ऐसे-ऐसे होते हैं ।

दूसरी तरफ गुण भेदक होते हैं । एक से दूसरे का भेद, अलग दिखाने वाले होते हैं । अत: जो साधु के गुण है वे आगे के उपाध्याय, आचार्य भगवन्तों में प्रधान रूप से नहीं होते हैं । अवश्य ही उपाध्याय और आचार्य भगवन्त भी मूल स्वरूप से तो साधु ही है । आचार धर्म के चारित्राचार धर्म से तो तीनों गुरुओं में एक समान समानता रहती है । यहां एक वाक्यता जरुर है । अत: तीनों गुरुओं के आचार में परस्पर कोई भेद नहीं है । अलग-अलग आचार धर्म नहीं है । है तो सभी मोक्ष मार्ग के उपासक । साधु सर्वप्रथम है । मूलभूत साधु ही है । मात्र संघ व्यवस्था की दृष्टि

से कार्यभार सौंपने के साथ उन्हें उपाध्याय और आचार्य पदों पर आरुढ किये गए हैं। अत: इन्हें संघ व्यवस्था, शासन व्यवस्था के पद कह सकते हैं। जबकि साधु यह व्यवस्था के लिए पद नहीं है। यह मूलभूत सम्यग् चारित्र धर्म स्वीकारने की अवस्था विशेष है।

दोनों बड़े पदों का साधु पद में समावेश—

नय बदलने पर विवक्षा बदल जाती है। चत्तारि मंगलं के पाठ में 1. अरिहंता, 2. सिद्धा के बाद तीसरे क्रम पर सीधे साधु का क्रम लिया है। "साहु मंगलं" पाठ दिया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि... साधु पद मूलभूत आधारभूत पद है। "चतारि लोगुत्तमा" के पाठ में भी यही क्रम है और "चत्तारि सरणं पवज्जामि" के पाठ में भी अरिहंत, सिद्ध के बाद साधु का ही नंबर है। तो क्या आचार्य, उपाध्याय लोकोत्तम नहीं है? उनकी गणना क्यों नहीं की? यदि ऐसा पाठ दे देते कि—

1. अरिहंता मंगलं, लोगुत्तमा और सरणं पवज्जामि।
2. सिद्धा मंगलं, लोगुत्तमा और सरणं पवज्जामि।
3. आयरिया मंगलं, लोगुत्तमा और सरणं पवज्जामि।
4. उवज्झाया मंगलं, लोगुत्तमा और सरणं पवज्जामि।
5. साहु (साधु) मंगलं, लोगुत्तमा और सरणं पवज्जामि।

यदि इस तरह पांचों परमेष्ठी भगवन्तों का स्वतंत्र उल्लेख करके मंगल और लोकोत्तम आदि कहते तो ऐसा पाठ होता। लेकिन ऐसा पाठ नहीं है। अत: पांचों की स्वतंत्र रूप से विवक्षा न करके गौण मुख्य भाव से समावेश करके प्ररुपणा की है। लेकिन ऐसी बात नहीं है कि आचार्य, उपाध्याय वैसे मंगलकारी, लोकोत्तम आदि नहीं है। यदि ऐसा होता तो नवकार में पांचों को स्वतंत्र रूप से क्यों ग्रहण किया? अब यहां साधु पद में आचार्य, उपाध्याय पद का समावेश करने पर यहां ये दोनों पद गौण हो गए और सभी मूलभूत रूप से साधु है ही अत: सबको साधु के पद से संबोधन किया गया है। गुरु तत्त्व में गुरु पद पर इन तीनों का मुख्य गौण भाव से समावेश संभव है। अत: हो सकता है। मूल में सभी साधु होने से हो जाता है। लेकिन ऐसा समावेश देव तत्त्व में संभव नहीं है।

देव तत्त्व में समावेश पद्धति क्यों नहीं?—

देव तत्त्व में 1. अरिहंत और 2. सिद्ध भगवान की गणना है। ये दोनों भगवान स्वरूप परमात्मा है। इन दोनों का एक दूसरे में किसी भी दृष्टि से समावेश संभव ही नहीं है। अत: किया नहीं जाता है। यद्यपि दोनों देव ही है। फिर भी दोनों के स्वरूप, गुण आदि में आसमान जमीन का अन्तर है। अरिहन्त सशरीरी है। जबकि सिद्ध सर्वथा अशरीरी है। अरिहंत देहधारी होकर संसार में विचरण कर रहे हैं। जबकि सिद्ध लोकान्त भाग में स्थायी स्थिर है। अरिहंत देशना फरमाते हैं। आहार, निहार, विहार आदि की क्रिया करते हैं। सिद्ध सर्वथा निष्क्रिय होकर स्थिर आत्म पुंज स्वरूप स्थिर है। अरिहंतों के अनेक अतिशय प्रातिहार्य आदि है। जबकि सिद्ध भगवन्तों के एक भी नहीं है। अरिहन्त भगवान 4 घाती कर्मो से मुक्त है और शेष 4 अघाती कर्म अभी उन पर है। जबकि सिद्ध भगवन्तों के आठों कर्मो का सम्पूर्ण समूल क्षय हो चुका है। अरिहन्त भगवन्त 12 गुण वाले हैं जबकि सिद्ध भगवन्त 8 गुणधारक है। अरिहन्तों के सभी 12 गुण अतिशय प्रातिहार्य बाहरी है। जबकि सिद्ध भगवन्त के बाहरी का सवाल ही उपस्थित नहीं होता है सभी गुण आत्मिक कक्षा के ही है।

इस तरह अरिहन्त और सिद्ध भगवान में काफी अन्तर होने के कारण एक दूसरे में गौण मुख्य भाव से समावेश होना संभव नहीं है।

गुरु पद में तीनों के गुणों की व्यवस्था—

वैसे पंच प्रतिक्रमण के सूत्रों में दूसरा पंचिदिय सूत्र है। यह न तो आचार्य का या न ही उपाध्याय का या नहीं साधु विशेष के लिए है। वह सूत्र गुरु तत्त्व का परिचायक सूत्र है। गुरु कैसे होने चाहिए उनका स्वरूप बताते हुए 36 गुणों का वर्णन किया गया है। इसके लिए पंचिंदिय सूत्र की अन्तिम पंक्ति "छत्तीस गुणो गुरु मज्झ" ऐसा स्पष्ट लिखा है। इस पंक्ति में स्पष्ट रूप से गुरु शब्द का प्रयोग किया है। न कि किसी आचार्य, उपाध्याय या साधु पद का। किसी एक गुरु का नामोल्लेख न करके सीधे गुरु शब्द का ही उल्लेख किया है। अत: जैन धर्म मान्य आचार्य, उपाध्याय और साधु इन तीनों के 36-36 गुण मानने चाहिए। न कि किसी एक गुरु विशेष के। किसी एक गुरु के ही विशेष रूप में 36 गुण मान लें और अन्य किसी भी गुरु के ये 36 गुण न मानें और उनके कम मानें। यह उचित नहीं है।

प्रचलित परम्परा में सूत्र का अर्थ करते समय एक मात्र आचार्य के ही पंचिंदिय सूत्र के बताए हुए 36 गुण मान लिये हैं और यही प्रचार सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुका है। परन्तु यह भ्रान्ति है। ये 36 गुण आचार्य के भी हैं, उपाध्याय के भी है और ये ही 36 गुण साधु के भी है। क्योंकि

गुरु तत्त्व में तीनों को गुरु रूप में ही स्वीकारें गए हैं । अत: ये 36 गुण तीनों सर्व सामान्य रूप से समान रूप से रहेंगे ही रहेंगे और तीनों के पद के अलग-अलग जो 36, 25 और 27 गुण होते हैं वे भी रहेंगे । इस तरह 36 + 36 = 72 आचार्य भगवन्त के, 36 + 25 = 61 गुण उपाध्यायजी महाराज के तथा 36 + 27 = 63 गुण साधु मुनिराज के होंगे । इस तरह यह अंक संख्या 72, 61 और 63 गुणों की रहेगी । लेकिन यह प्रचलित नहीं है । 36, 25 और 27 की गुण संख्या ही प्रचलित है । बात सही है । तीनों गुरुओं के पद के गुणों की संख्या 35, 25, 27 होने के कारण यही सही है और तीनों गुरु रूप में होने के कारण सामान्य गुण संख्या 36 की विवक्षा वहां गौण हो जाती है । जैसे किसी के राजा बन जाने के पश्चात या राष्ट्रपति पद पर आरुढ हो जाने के कारण अब सामान्य मानवी की संज्ञा होते हुए भी विवक्षा गौण हो जाती है । अब प्रतिष्ठा पद की है । इसलिए लोग उन्हें नाम से संबोधन न करते हुए पदवाची नाम के शब्दों से हे राजन् ! राष्ट्रपतिजी ! आदि संबोधन करने से वही व्यवहार में अच्छा लगता है । उनको भी अच्छा लगता है । लेकिन सामान्य मनुष्य संज्ञा अब गौण रहती है । ऐसे ही मां का भी नाम तो होता ही है । वह भी एक स्त्री स्वरूप में है ही । संज्ञा सामान्य रूप से है ही लेकिन पुत्र अपनी माता को नामादि से संबोधन न करते हुए माता, हे मां ! या मम्मी नाम से संबोधन करे उसी में अच्छा है । मां भी सन्तुष्ट होती है । पुत्र के लिए भी यही व्यवहार उचित है । ठीक इसी तरह तीनों की सामान्य रूप से गुरु संज्ञा दी गई है वह होते हुए भी और उसके 36 गुण होते हुए भी अब आचार्य, उपाध्याय के विशेष रूप से व्यवहार होने के कारण सामान्य व्यवहार गौण हो जाता है । इसलिए 36, 25 और 27 गुणों का व्यवहार तीनों पदस्थों के लिए विशेष किया जाता है ।

आचार्य पद के 36 गुण कौन से ?

सबसे बड़ा प्रश्न आचार्य भगवन्तों के 36 गुणों का खड़ा होता है कि वे कौन से हैं ? ऊपर जो सामान्य और विशेष रूप से तथा गुरु रूप के और पद के गुणों की भिन्न-भिन्न विवक्षा करके गुणों की अलग-अलग संख्या सूचित की गई है— वह नियम उपाध्याय और साधु दोनों में बराबर पाला गया है । लेकिन आचार्य भगवन्त के 36 गुणों के विषय में क्यों नहीं ? जैसे उपाध्याय पद के 25 और गुरु के 36, साधु के 27 और गुरु होने के 36 । दोनों ही अलग-अलग है । ठीक इसी तरह आचार्य भगवन्तों के गुरु होने के नाते 36 गुण जो पंचिदिय सूत्र से सूचित हैं वे और आचार्य पद के दूसरे 36 गुण कौनसे ? पंचिंदिय सूत्र के अर्थकार ने प्रतिक्रमण सूत्र की पुस्तकों में अर्थ करने के समय में दोनों प्रकार के गुणों की अलग-अलग विवक्षा ही नहीं की और ये पंचिंदिय के 36 गुणों को ही आचार्य के 36 गुणों के रूप में प्रचलित कर दिये हैं । क्या यह भूल नहीं है ? और दूसरी तरफ गुरु के स्वरूपवाची इस सूत्र को मात्र आचार्य का ही सूत्र बता दिया है । क्या यह भी भूल नहीं है ? जबकि तीनों गुरुओं के लिए यह समान सूत्र है । अत: समान गुण संख्या का होना बिल्कुल सही है । साहजिक है । रही बात विशेष गुणों की । विशेष गुण आचार्यों के पद के अनुरूप अलग ही होने चाहिए । भले ही उसके लिए कोई सूत्र विशेष न हो तो कोई हरकत नहीं है । गुण प्रचलित है । 36 गुण भी मिलते ही है । अत: वह भी प्रश्न नहीं है । अत: आचार्य पद के 36 गुण कुछ और अलग ही मानने चाहिए और गुरु पद के सामान्य 36 गुण अलग ही मानने चाहिए ।

गुण संख्या में विस्तार—

यद्यपि शास्त्रों में तीनों गुरु भगवन्तों के विषय में गुणों की संख्या काफी लम्बी चौड़ी भी बताई गई है । आचार्य भगवन्त के पदवाची 36 गुणों को 36 तरीकों से अलग-अलग विशेषता से बताए हैं । 36 गुणों का एक समूह, फिर दूसरे 36 गुणों का और एक समूह । ऐसे 36 अलग-अलग समूह में गुणों का वर्णन किया है । इस 36 गुणों के समूह को "छत्तीसी" ऐसी संज्ञा दी है । अत: ऐसी 36 छत्तीसियां बताई है । शास्त्रकार ज्ञानी गीतार्थ महापुरुषों के पास ज्ञान की कमी तो है नहीं । अगाध ज्ञान के मालिक है । वर्णन करने में कमी नहीं रखते हैं । आचार के विषय को लेकर 36 गुणों के समूह की एक छत्तीसी, इसी तरह ज्ञान के विषय को लेकर 36, इसी तरह स्व पर धर्म स्वरूप ज्ञाता के विषय को लेकर 36, आचार्य भगवन्तों की प्रभावकता के विषय को लेकर 36, आचार्य स्वरूप के विषय में और 36 इस तरह 36 प्रकार की छत्तीसियों के कुल गुणों की संख्या में गणना करने पर 36x36 = 1296 गुण होते हैं । नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादि की सब विवक्षा करके इतने गुण दर्शाए गए हैं और गुरु पद के 36 अलग ।

इसी तरह इसी पद्धति से उपाध्यायजी के बारे में भी विचार करिए । उपाध्यायजी के 25 गुण, 25 तरीकों से समूह रूप में "पच्चीसी" अलग-अलग बताई है । 25x25 = 625 गुण कुल उपाध्याय भगवन्तों के सर्व विवक्षा से होते हैं । इसी पद्धति से साधु पद के गुणों को भी देखिए । 27 गुणों की सत्तावीशी अर्थात् 27x27 = 729 गुण कुल हुए । ये इनके पद के गुण हुए और गुरु होने के नाते पुन: 25 और 27 तो है ही ।

गुणों के आधार पर महत्व

जैन धर्म में व्यक्ति को विशेष महत्त्व न देते हुए गुणों को महत्व दिया गया है । अत: जैन धर्म गुण प्रधान धर्म है । यह श्री नमस्कार महामंत्र से सिद्ध किया है । पांचों परमेष्ठी भगवन्तों का सारा स्वरूप गुणात्मक वर्णन किया है । चाहे देव तत्त्व हो या चाहे गुरु तत्त्व हो दोनों में गुणों को प्रधान स्थान दिया है । यदि इतने और ये तथा ऐसे ही गुण हैं तो वे उस पद पर योग्य परमेष्ठी स्वरूप में है । यदि नहीं है तो नहीं है । इतनी सुन्दर गुण प्ररुपणा और गुणों की विवक्षा की है । जिससे व्यक्ति विशेष का महत्व रखा ही नहीं गौण कर दिया है और इसी कारण नवकार में किसी भी परमेष्ठी के नाम विशेष को स्थान ही नहीं दिया है । गुणों का वाचक पद बनाकर ही रखा है । अत: व्यक्ति विशेष भी गुणों से पहचाना जाये । गुणों से पूजा जाय । यही सही है । कर्माधीन जीवों के नाम प्रधानता तथा व्यक्ति विशेष की प्रधानता से रागद्वेष की मात्रा ही बढ़ती है । जबकि गुणों को देखने से तथा तदनुरुप गुणवान पदों को देखने से न तो व्यक्ति सामने आता है, न ही नाम सामने आता है । एक मात्र गुण ही दृष्टि समक्ष आते हैं । इससे साधक का भी लक्ष्य गुण ग्रहण करने का ही बनता है । गुणानुराग बढ़ता है । गुणग्राही बुद्धि बनती है । गुणों के प्रति पूज्य भाव बढ़ता है और यही गुणानुराग सम्यग् दर्शन का निमित्त सहयोगी बनता है । इस गुणों के प्रति पूज्य भाव अहो भाव से हमारे नमस्कार की, नमो भाव की गुणवत्ता बढ़ेगी तब इसके आधार पर (निर्जरा) कर्मक्षय होगा । तब जाकर मुक्ति संभव होगी । सभी साधना गुणानुरागी, गुण-ग्राही बनकर नवकार की साधना में प्रवेश करें । यही अभिप्सित है ।

श्री महावीर-रिसर्च-फाउण्डेशन-वीरालयम्-पुना द्वारा

पू. पंन्यास प्रवर श्री अरुणविजयजी गणिवर्य महाराज

के निरीक्षण में सुंदर शुद्धिकरण होकर, आधुनिक कम्प्युटर कम्पोजिंग होकर सुंदर आकर्षक टाइप में छपकर तैयार हो रहे हैं —

१. श्री जीवाभिगम सूत्र आगम—भाग १ और २

जैन शास्त्रों में सर्वज्ञ प्रणित जीव संबंधि स्वरुप के अद्‌भुत अनोखे ज्ञान के खजाने स्वरूप ..... महान आगम शास्त्र है । प्रताकार — पोथी साइज में पक्की जिल्द वाले तैयार हो रहे हैं । कपड़े के मावे में से बने Hand Made Paper जिनकी आयु १००-२०० साल से भी ज्यादा है । उस पर ऑफसेट पद्धति की आकर्षक प्रिन्टींग हो रही है ।

२. पन्नवणा सूत्र (प्रज्ञापना सूत्र) आगम शास्त्र—भाग १ और २

जैन वाङमय क्षेत्र में ज्ञान के खजाने स्वरुप विशाल ENCYCLOPEDIA समान गहन तत्व सभर यह शास्त्र भी शुद्धिकरण करके पुनर्मुद्रित किया जा रहा है । दो भागों में प्रताकार — पोथी साइज में पक्की जिल्द वाले तैयार हो रहे हैं ।

पू. पदस्थों एवं ज्ञान भण्डारों को सादर भेट स्वरूप अर्पण किये जाएंगे । आवश्यकता वालों को अग्रिम ऑर्डर यथा शीघ्र देने हेतु नम्र विनंति है ।

श्री महावीर रिसर्च फाउण्डेशन वीरालमयम्—मुंबई—पुना एन.एच. ४ कात्रज-बाइ पास, पोस्ट — जांभुलवाडी आंबे गांव खुर्द, ता. हवेली पुना ४११०४६ फोन नं. ४३७७७५७

सिद्ध बड़े होते हुए भी — दूसरे क्रम पर क्यों ?

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

सर्वज्ञ शासन वाले जैन धर्म में तत्त्वत्रयी के देव तत्त्व में दो देव है । 1. अरिहन्त भगवान और दूसरे सिद्ध भगवान । देव शब्द देवाधिदेव शब्द का संक्षिप्त स्वरूप प्रचलित व्यवहार में आ चुका है अत: संक्षेप में प्रयुक्त होता है । यद्यपि देव शब्द से सामान्य लोग स्वर्ग के, देव लोक के देवी-देवता ऐसा अर्थ कर लेते हैं । लेकिन जहां ऐसा अभिप्रेत अर्थ होता है वहां अनुसंधान, संबंध आदि परस्परावलोकन से अर्थ स्पष्ट हो जाता है । यहां देवों के भी देव, देवाधिदेव तीर्थंकर परमात्मा के अर्थ में देव शब्द अभिप्रेत है । शास्त्रकार फरमाते हैं कि—

जो देवाण वि देवो, जं देवा पंजलि नमंसंति ।
तं देव-देव महिअं, सिरसा वंदे महावीरं ॥

सिद्धस्तव सूत्र की दूसरी गाथा में अर्थ स्पष्ट करते हुए फरमाते हैं कि...जो देवताओं के भी देव हैं, जिन्हें देवता भी नमस्कार करते हैं, ऐसे देवताओं के भी देवों से पूज्य भगवान महावीर स्वामी को वंदन हो । देव लोक में रहने वाले देवताओं के स्वामी देव इन्द्र होते हैं और इन्द्रों से भी परमात्मा अरिहंत पूजित है । पूजे गए हैं । अत: प्रस्तुत अधिकार में देव तत्त्व से तत्त्वत्रयी जो देव, गुरु, धर्म के 3 तत्त्वों की है उसके सर्वप्रथम देव तत्त्व में तीर्थंकर भगवान की विचारणा की गई है ।

श्री नमस्कार महामंत्र में प्रथम के दो मंत्र पदों से दोनों भगवानों को "नमो" शब्द से नमस्कार किये गये है । "नमो अरिहंताणं" के प्रथम पद में अरिहंत भगवान को नमस्कार किया गया है । दूसरे "नमो सिद्धाणं" पद में सिद्ध परमात्मा को "नमो" शब्द से नमस्कार किया गया है । इनके आगे फिर गुरु तत्त्व से अभिप्रेत आचार्य, उपाध्याय और साधु भगवन्तों को क्रमश: नमस्कार किये गए हैं । इस तरह 2 देव अरिहंत और सिद्ध भगवान तथा 3 गुरु आचार्य, उपाध्याय और साधु भगवन्तों को, कुल मिलाकर 2 + 3 = 5 परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार किये गये हैं ।

अरिहन्त और सिद्ध भगवानों का स्वरूप—

यह अच्छी तरह याद रखिए कि जगत् के सभी धर्म में भगवान केन्द्रित है । ईश्वर तत्त्व को केन्द्र में रखकर धर्म को उनसे इर्द-गिर्द घूमाया है । ईश्वर को ही धर्म के संस्थापक के रूप में माना है । अत: धर्म की पहचान भी उन-उन भगवानों के नाम से दी जाती है । जैसे शैव धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म आदि अनेक धर्म है । शिव शंकर भगवान के रूप में माने गए हैं अत: उनसे प्रचलित धर्म शैव धर्म । शंकर से शांकर मत । बुद्ध भगवान से संस्थापित बौद्ध धर्म चला । ईसा से ईसाई धर्म चला । अरिहन्त — अर्हन् से जो धर्म चला उसे आर्हत् धर्म कहते हैं । मुख्य नाम 'जिन" भगवान से चले हुए इस धर्म का नाम "जैन" धर्म प्रचलित नाम है । सभी धर्मों में जिस तरह उनके भगवान का ही नाम मुख्य रूप से लिया गया है वैसा जैन धर्म के विषय में नहीं है । यहां भगवान् का नाम न लेकर उनके वाची विशेषण को ही नाम के रूप में व्यवहृत किया है । अरिहन्त अर्हन् नाम के भगवान् नहीं है । ये विशेषण है । नाम तो श्री महावीर स्वामी, पार्श्वनाथ भगवान आदि हैं । ऐसे 24 नाम वर्तमान चौबीसी के हैं । इन सभी भगवानों को तीर्थंकर, अरिहंत, वीतराग, जिन, जिनेश्वर, सर्वज्ञ, भगवान आदि अनेक विशेषणों से संबोधित किये गए हैं । नवकार जैसे महामंत्र में भी "नमो अरिहन्ताणं" शब्द का प्रयोग किया गया है । भगवान महावीर का नाम लेकर नवकार में मंत्र पद की रचना करते तो "नमो महावीराणं" कहते । नमो आदीश्वराणं कहते । यदि इस तरह एक-एक भगवानों के नाम के मंत्र पदों से नवकार बनाते तो चौबीस प्रकार के अलग-अलग नवकार महामंत्र बन जाते ।

लेकिन चौबीसों भगवान का वाची एक अरिहंत पद लेकर नमस्कारवाची "नमो" शब्द साथ में आगे जोड़कर "नमो अरिहन्ताणं" पद की रचना कर दी है । सभी भगवान अरिहन्त कहलाते हैं । अरि रूप आत्मा के आन्तर शत्रु काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह आदि सबका जिन्होंने सर्वथा हनन अर्थात् नाश कर दिया है, ऐसे अरिहन्त भगवानों को नमस्कार हो । अत: आदिनाथ से महावीर स्वामी तक के

सभी चौबीसों और अन्तन्त चौबीसियों के समस्त भगवान राग-द्वेषादि आत्म अरियों (शत्रुओं) का हनन कर चुके हैं अत: ऐसे अरिहन्त भगवानों को नमस्कार किया गया है ।

यदि "नमो महावीराणं" पद नवकार में रखकर भगवान महावीर को ही नमस्कार करके, जैन धर्म के बजाय महावीर धर्म ऐसा नामकरण करते तो यह महावीर धर्म कहलाएगा । लेकिन जैसा महावीर का धर्म है ठीक वैसा ही उनके पहले के तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान् के समय में भी था ही और उनके पहले, उनके भी पहले और वर्तमान चौबीसी के आद्य प्रथम तीर्थंकर भगवान का धर्म, उनके समय का भी धर्म यही था । कोई अन्तर नहीं था तथा इसके भी पहले की चौबीसियां जो अनन्त हुई है उन सबके समय में यही धर्म था । बिल्कुल समान रूप से ऐसा ही धर्म था । अत: महावीर धर्म कहना या पार्श्व धर्म या आदिनाथ धर्म कहना बहुत बड़ी भूल होगी । इससे धर्म का काल महावीर तक का मात्र 2523 वर्ष का ही रह जाएगा । पार्श्व धर्म कहने पर मात्र 2800 वर्ष का धर्म काल हो जाएगा और भगवान महावीर को ही इस धर्म में आद्य संस्थापक मुख्य प्रवर्तक मान लेना पड़ेगा ।

अनादि अनन्त शाश्वत धर्म—

भूतकाल में अनन्त चौबीसियां बीत चुकी है अत: ऐसे अनन्त अरिहन्त भगवन्तों के समय में ठीक यही धर्म था, ऐसा ही धर्म था । इसलिए अरिहन्त भगवानों का आर्हत् धर्म कहना ही युक्ति संगत है । अरिहन्त परमात्मा ही इस धर्म के आद्य संस्थापक रहे हैं । अब आद्य अरिहन्त का नाम कहां से लाएं ? यह परम्परा ही जहां अनन्त की हैं वहां आद्य अरिहन्त का नाम कहां से लाएं ? लेकिन जिस किसी भी नाम वाले वे हो परन्तु थे जरुर वे अरिहन्त उनका यह धर्म है अत: आर्हत् धर्म उपयुक्त नाम है । अरिहन्त परमात्मा की प्राचीनता अनन्त कालीन है अत: उनके इस धर्म की प्राचीनता भी अनन्त कालीन ही सिद्ध होती है तथा समस्त लोक की दृष्टि से विचारणा करने पर अनादि अनन्त त्रिकाल शाश्वत इस धर्म और भगवान दोनों का स्वरूप स्पष्ट प्रतीत होता है ।

जैसे अरिहन्त विशेषणवाची शब्द है भगवान के लिए ठीक इसी तरह जिनेश्वर, जिन आदि अनेक विशेषण पद प्रचलित है । इन्द्रियों पर विजय पाने वाले, राग-द्वेष, विषय-कषाय आदि सब पर विजय पाने वाले जिन "जिनेश्वर" कहलाए । अपने मन पर, इन्द्रियों पर और विषय वासना के काम पर जीत प्राप्त करना कोई आसान खेल नहीं है । ऐसी जीत पाकर विजेता बनने वाले जिन कहलाते हैं । "जिन" शब्द के आगे ईश्वर जोड़ने पर जिनेश्वर शब्द बना । जो भगवान अरिहन्त परमात्मा के ही अर्थ में वाच्य है । ऐसे जिन को भगवान कहने मानने वाला जैन कहलाता है । जिन वचन को आज्ञा स्वरूप मानने और तदनुरूप आचरण करने वाला जैन कहलाता है । जिनेश्वर के मार्ग का अनुसरण करने वाला अनुयायी जैन कहलाता है । जिन भगवान के धर्म मार्ग को मानने वाला इसी धर्म के सिद्धान्तानुसार जीवन जीने वाला, जिनेश्वर देव की आज्ञा मानने वाला जैन कहलाता है । धर्म भी जैन और मानने वाले व्यक्ति भी जैन । अत: महावीर धर्म न कहकर "जैन धर्म, आर्हत् धर्म" कहा है । बिल्कुल सुसंगत सही कहा है ।

अरिहन्त के स्वरूप की सबसे भिन्नता—

विश्व के समस्त धर्मों के भगवानों और जैन धर्म के जिन अरिहन्त भगवानों में आसमान जमीन का अन्तर है । अन्य धर्मों में जगत् कर्तृत्ववाद की विचारधारा स्वीकारी गई है । अत: उसके अनुरूप उन-उन धर्मों के भगवान को सृष्टि का रचयिता, कर्ता, हर्ता, नियन्ता मानकर वे अपने-अपने भगवानों की महत्ता बताते हैं । यही उनकी प्रधान विशेषता बन जाती है । इस्लाम धर्म में अल्ला, खुदा को, ईसाई धर्म में परम पिता को तथा हिन्दु संस्कृति में ब्रह्मा, विष्णु, शंकर को इस सृष्टि के कर्ता रचयिता, हर्ता, नियन्ता आदि के अर्थ में मानकर सुख-दु:ख जन्म, मरण आदि के दाता आदि सब कुछ मानते हुए सर्व शक्तिमान सर्वेसर्वा कह दिया है ।

जैन धर्म के सिद्धान्त में इस बात को रत्तिभर भी स्थान नहीं दिया है । माना ही नहीं है । पंचास्तिकायात्मक समस्त लोकालोक का स्वरूप अनादि अनन्त शाश्वत है । अत: इसे बनाने आदि के विषय की बात ही नहीं खड़ी होती है तथा सुख-दु:ख, जन्म मरणादि जीवों द्वारा कृतकर्मानुसार फल रूप में प्राप्त होते हैं । अत: किसी नियन्ता या व्यवस्थापक की आवश्यकता है ही नहीं । अन्य सभी धर्मों में भगवान बनने की कोई बात ही नहीं है । प्रक्रिया ही नहीं है । अत: भगवान का स्वरूप ऐसा-ऐसा स्वीकार लिया गया है और वे ही पुन: पुन: अवतार लेकर आते हैं । लीला करते हैं और चले जाते हैं । इस अवतारवाद की प्रक्रिया में एक ही ईश्वर के अनेक रूप मान लिये हैं ।

जिनेश्वरों के विषय में जैन आगम शास्त्र कहते हैं कि भगवान बनते हैं । बने-बनाए तैयार ऊपर से टपकते नहीं है । गुणस्थानों की श्रेणी के सोपानों पर चढता हुआ स्वयं कर्मक्षय की प्रक्रिया अपनाकर साधना करके कर्म क्षय करके 13वें गुणस्थान पर पहुंचकर कोई भगवान, परमात्मा बनते हैं । मुक्त हो जाने पर वे पुन: संसारवास में नहीं आते हैं । अत: पुन: जन्म लेने की कोई बात ही नहीं है । इसलिए अवतारवाद जैन धर्म

में स्वीकार्य ही नहीं है । भव्य की कक्षा के जीव मात्र कोई भी जीव गुणस्थानों के सोपान चढ़ता हुआ कर्मक्षय कर सकता है । सर्वज्ञ बनता है । इस बनने-बनाने की प्रक्रिया के अर्थ में अरिहन्त शब्द है । अत: जैन धर्म अनन्त अरिहन्त-भगवानवादी धर्म है । जबकि अन्य धर्म 24 अवतारवादी मान्यता वाले ही है ।

भगवान के दो स्वरूप अरिहन्त और सिद्ध—

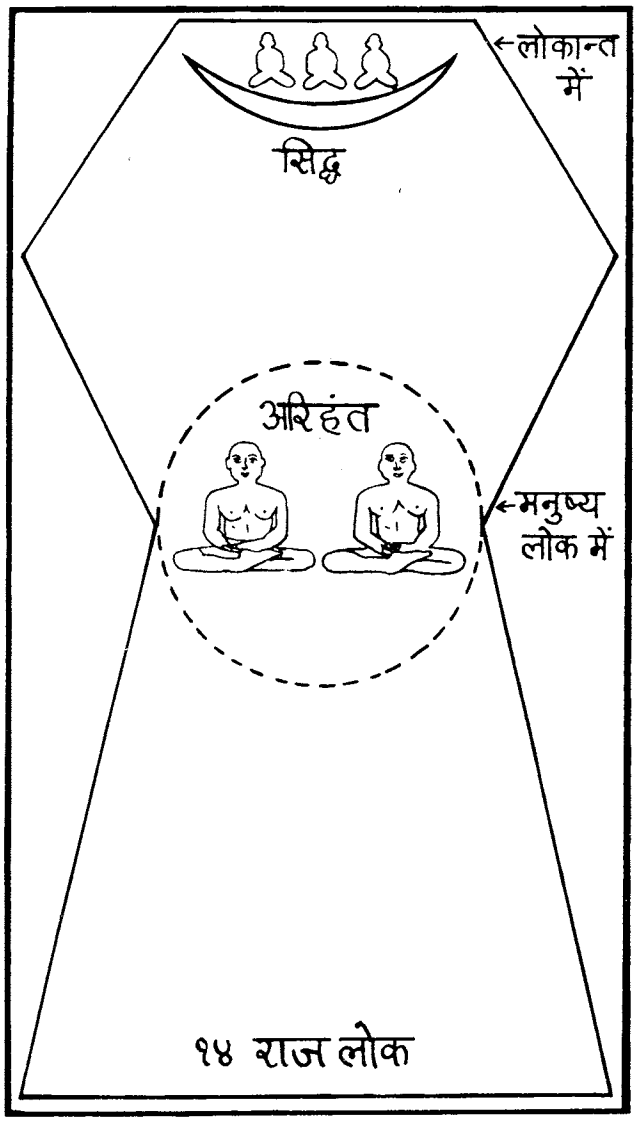

अरिहन्त स्वरूप	सिद्ध स्वरूप
1. अरिहन्त भगवान 14 राज-लोक के मनुष्य लोक में होते हैं ।	1. सिद्ध परमात्मा 14 राज लोक के ऊपरी किनारे के लोक के अन्त लोकान्त में रहते हैं ।
2. अरिहन्त परमात्मा जन्म लेते हैं तथा आयुष्य काल की समाप्ति पर निर्वाण (मृत्यु) पाते हैं ।	2. सिद्ध भगवान मोक्ष में जाकर सिद्ध बनते हैं । सिद्ध के रूप में उत्पन्न होते हैं । फिर अनन्त काल तक स्थिर रहते हैं । जन्म-मरण रहित होते हैं ।
3. अरिहन्त भगवान सदेह विचरण करते हैं । आहार-निहार की दैहिक क्रिया करते हैं ।	3. सिद्ध भगवान का देह होता ही नहीं है ।
4. अरिहन्त सशरीरी होते हैं अत: देशना-विहारादि सब करते हैं ।	4. अशरीरी सिद्ध को किसी भी क्रिया होती ही नहीं है । वे निष्क्रिय होते हैं ।
5. 8 में से 4 कर्मों का क्षय किये हुए अरिहन्त होते हैं ।	5. आठों-आठ सभी कर्मों का क्षय सिद्ध कर चुके होते हैं ।
6. अरिहन्त तीर्थंकर बनकर समवसरण में धर्मतीर्थ की स्थापना करते हैं ।	6. सिद्ध मोक्ष में अशरीरी है । अत: वे सर्वथा निष्क्रिय है ।
7. अरिहन्त सर्वज्ञ, केवली, वीतरागी है ।	7. सिद्ध भी सर्वज्ञ केवली वीतरागी है ।
8. अरिहन्त की मूर्ति, प्रतिमा, अतिशय, प्रातिहार्य युक्त साकार होती है ।	8. सिद्ध स्वयं निरंजन निराकार होते हैं । अत: प्रतिमा नहीं बन सकती । आकार निर्वाणा-वस्था का लिया जाता है । अतिशय एवं प्रातिहार्यादि कुछ भी नहीं होते हैं ।

अरिहन्त स्वरूप	सिद्ध स्वरूप
9. अरिहन्त तीर्थंकर नामकर्म की पुण्य प्रकृति के रसोदय से अतिशय प्रातिहार्यों से सुशोभित होते हैं ।	9. सिद्धों की शोभा मात्र अपने आत्म गुणों से हैं । प्रातिहार्यादि कुछ भी नहीं है । अतिशयादि भी नहीं ।
10. अरिहन्त के अतिशय-प्रातिहार्य रूप 12 गुण होते हैं ।	10. सिद्धों के आठों गुण आत्मा के हैं ।
11. अरिहन्तों के गणधर, साधु, साध्वी, शिष्यादि होते हैं ।	11. सिद्धात्मा के किसी प्रकार के कोई होते ही नहीं है ।
12. अरिहन्त की स्थिति सादि सान्त होती है ।	12. सिद्ध की स्थिति सादि अनन्त होती है ।

अरिहन्त स्वरूप	सिद्ध स्वरूप
13. कोई भी भव्यात्मा 13वें गुणस्थान पर आकर, तीर्थंकर नाम कर्म के पुण्योदय से अरिहन्त बन सकते हैं ।	13. कोई भी भव्यात्मा गुणस्थानों की क्षपक श्रेणी पर चढ़कर सर्व कर्म क्षय करके 14वें गुण स्थान बाद सिद्ध बनते हैं ।
14. अरिहन्त अलोक का स्पर्श न करते हुए मात्र नरलोक में रहते हैं ।	14. सिद्ध लोकान्त क्षेत्र में अलोक का स्पर्श करके रहते हैं ।
15. अरिहन्त के लिए सिद्धशिला नहीं है ।	15. सिद्धशिला से भी काफी ऊपर सिद्ध रहते हैं ।
16. अरिहन्त सशरीरी है ।	16. मोक्ष में मात्र आत्म प्रदेशों का पूंज ही सिद्ध रूप है ।
17. अरिहन्त रूपी, नामी, वर्णादियुक्त देहधारी है ।	17. सिद्ध अरुपी अनामी अवर्णी निरंजन निराकार है ।
18. अरिहन्त मृत्यु (निर्वाण) पाकर सिद्ध बनते हैं वे भी पुन: संसार में नहीं आते है ।	18. सिद्ध पुन: कभी मरते नहीं और वापिस संसार में आते ही नहीं है ।

इस तरह अरिहन्त और सिद्ध भगवानों का स्वरूप है । ऐसा स्वरूप परिचय जानकर जिज्ञासु वर्ग बहुत अच्छी तरह इन दोनों के बीच भेद समझ सकते हैं ।

बड़े-छोटे और पहले दूसरे क्रम की विचारणा—

नमस्कार महामंत्र आप सबको अच्छी तरह आता ही है । सभी जानते ही है । अब आप देखिये कि नवकार महामंत्र में पहले पद में अरिहन्तों का स्थान है तथा दूसरे पद पर सिद्ध भगवन्तों का स्थान है । उपरोक्त भेदों का तुलनात्मक अभ्यास करने से स्पष्ट लगता है कि... सब बातों में सिद्ध भगवान बड़े हैं । महान है । चरम-अन्तिम स्वरूप को प्राप्त कर चुके पूर्ण स्वरूप है । जबकि अरिहन्त परमात्मा अन्तिम स्वरूप को नहीं पाए हुए—अपूर्ण है । अरिहन्त भी निर्वाण पाकर सिद्ध बनेंगे । अत: अरिहन्त के लिए भी आगे पाने की अवस्था है । जबकि सिद्ध के लिए आगे प्राप्त करने योग्य कोई भी अवस्था नहीं है । यही सिद्धावस्था इनकी अन्तिम चरमावस्था है । अत: चरम स्वरूप को प्राप्त सिद्ध भगवान कितने महान है ? कितने बड़े हैं ? इसके उत्तर में स्पष्ट कहा जा सकता है कि... महानता की एवं बड़ेपन की अन्तिम सीमा सिद्ध स्वरूप तक पहुंचकर समाप्त हो गई है । अब आगे है ही नहीं तो कहां जाय ?

दूसरी तरफ कर्मों की दृष्टि से भी तुलना करिए... अरिहन्त भगवन्तों के अभी 8 में से मात्र 4 घाती कर्मों का ही क्षय हुआ है । जबकि सिद्ध भगवन्तों के आठों आठ (समस्त) कर्मों का क्षय हो चुका है । इस दृष्टि से भी सिद्ध भगवान अरिहन्त भगवान से बड़े सिद्ध होते हैं । अत: नवकार के क्रम में ऐसा क्यों ?

अरिहन्त पहले कि सिद्ध ?

नवकार जैसे शाश्वत महामंत्र में सिद्धों से छोटे होते हुए भी अरिहन्त भगवान को पहले क्रम पर पहले पद में बिराजमान किये हैं तथा सिद्ध भगवान अरिहन्तों से बड़े चरम कक्षा के महान् होते हुए भी इन्हें क्यों दूसरे क्रम पर दूसरे पद में स्थान प्रदान किया गया है । ऐसा क्यों ? आखिर इसका रहस्य क्या हो सकता है ?

इसकी विचारणा इस प्रकार है—स्वरूप और पद की दृष्टि से जरुर सिद्ध ही बड़े हैं तथा अरिहन्त उनसे छोटे हैं इसमें संदेह, शंका को कोई स्थान नहीं है । परन्तु दूसरे नय से दूसरी एक और दृष्टि से विचारणा करने पर स्पष्ट ख्याल आएगा कि... अरिहन्तों का उपकार ज्यादा है ? या सिद्धों का ? उपकार क्षेत्र, उपकार काल और उपकार कार्य की दृष्टि से विचार करके देखिए । यदि अरिहन्त ही नहीं होते तो क्या होता ? क्या कोई सिद्ध हो सकता था ? अरिहन्त ही नहीं होते तो इस धर्म तीर्थ की स्थापना कौन कर सकता था ? और यदि धर्म तीर्थ की स्थापना ही नहीं होती तो कोई जीव धर्म पाता ही कहां से ? और बिना धर्म के कोई साधु, साध्वी बन ही नहीं सकते ? दीक्षा ले नहीं सकते और आगे आचार्य, उपाध्याय के पद भी कदापि संभव नहीं बनते तथा बिना आचार्य, उपाध्याय और साधु के कौन मोक्ष में जाता ? और कौन सिद्ध बनता ? कोई गृहस्थ संसारी गृहवेष में मोक्ष में जा नहीं सकता है ? शायद आप कहेंगे मरुदेवी माता की तरह संभव बन सकता है । लेकिन यह भी सोचिए कि बिना धर्म के कोई गृहस्थी भी कैसे मोक्ष में जाएगा ? तथा धर्म स्थापना ही नहीं होती और धर्म सत्ता के अभाव में समस्त संसार की क्या स्थिति होती इसकी कल्पना करिए । अत: समूचे नमस्कार महामंत्र में सबसे प्रमुख प्रधान अरिहन्त परमात्मा है । अरिहन्त परमात्मा ही आधार भूत एवं केन्द्र स्थान पर है । इनके बिना सब कुछ अन्धेरा हो जाता है । फिर न सिद्ध और न ही नवकार का किसी का भी अस्तित्व ही नहीं बचेगा ।

आधारभूत केन्द्र स्थित अरिहन्त पर सब आधार—

श्री नमस्कार महामंत्र मंत्रात्मक है तथा मंत्र के नौ पदों की व्यवस्था है । अत: वह तो एक के बाद एक ही क्रम से ही व्यवस्था होगी । लेकिन इसी नवकार की नवपदमय जो व्यवस्था बैठाई गई है । इसे कमलाकार चित्राकृति में आकृति प्रदान करके व्यवस्था और क्रम बैठाया है । इस

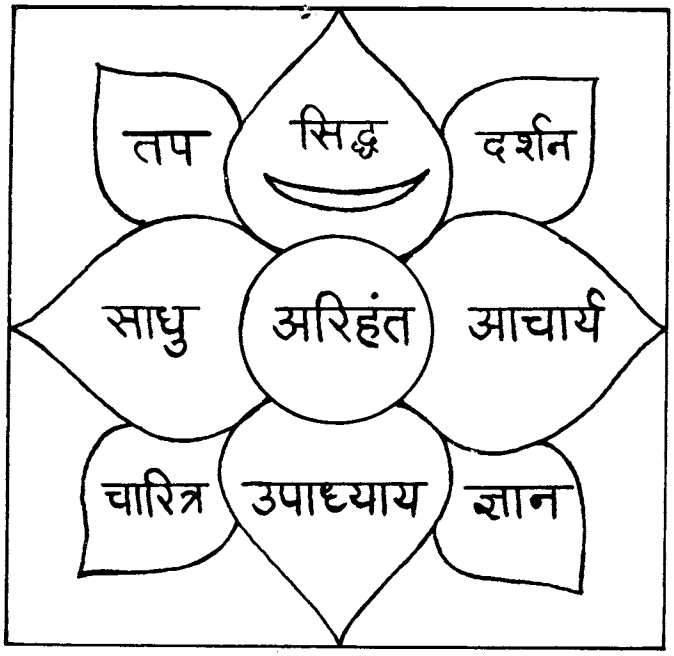

नवपद के अरिहन्तादि नौ पदों को अष्टदल कमल बद्ध आकार में स्थापित करते समय अरिहन्त भगवान को केन्द्रस्थ कर्णिका में बिराजमान करके उसके ऊपर की पंखुड़ी में सिद्ध पद की स्थापना की गई है । इससे भी स्पष्ट होता है कि सिद्ध अरिहन्त के ऊपर बड़े है । महान है । बात सही है । अत: स्थापना स्थान भी सही है ।

अरिहन्त सिद्ध की तुलना में छोटे जरुर हैं लेकिन कार्य क्षेत्र की दृष्टि से तुलना करने पर यह भी स्पष्ट है कि सिद्धों का कोई कार्य नहीं है । सिद्ध स्वयं निष्क्रिय है, स्थिर है । अशरीरी है । अत: कुछ भी करना नहीं पड़ता है । इसी तरह अरिहन्तों के उपकार क्षेत्र एवं उपकार कार्य की तुलना भी सिद्धों के साथ करें तो अरिहन्तों का उपकार कार्य सिद्धों के उपकार से अनेक गुणा बड़ा है । जो अरिहन्त कर सकते हैं वह सिद्ध के लिए संभव नहीं है ।

अरिहन्त परमात्मा अपने पूर्व जन्मों में अन्य अरिहन्त या गुरुओं से धर्म पाते हैं । धर्म के बीज बोये जाते हैं । भव परम्परा में आगे बढ़ते हैं । चारित्रादि ग्रहण करते हैं । संसार के समस्त जीवों का कल्याण करने की भावदया का चिन्तन करते हैं और इसी के साथ वीशस्थानक की आराधना करके तीर्थंकर नामकर्म की श्रेष्ठ पुण्य प्रकृति उपार्जित करते हैं । इसके तीसरे जन्म में वे तीर्थंकर के रूप में जन्म लेते हैं और बड़े होकर संसार का त्याग करके दीक्षा ग्रहण कर साधु बनते हैं । साधना द्वारा चारों घन घाती कर्मों का क्षपक श्रेणी में क्षय करते हैं । गुणस्थानों की श्रेणी में 13वें गुणस्थान पर पहुंचते ही सर्वज्ञ सर्वदर्शी केवली वीतरागी बनते हैं और इस समय तीर्थंकर नामकर्म की पुण्य प्रकृति का रसोदय होता है । देवता आते हैं, समवसरणादि की रचना करते हैं । अतिशय प्रातिहार्यों की भी रचना करके व्यवस्था करते हैं । तब अरिहन्त बने हुए तीर्थंकर भगवान धर्म की एवं चतुर्विध संघ की स्थापना करेंगे । अब तीर्थंकर की देशना श्रवण करके भी जीव धर्म प्राप्त कर दीक्षादि लेकर सर्व कर्मों का क्षय करके मोक्ष में जाकर सिद्ध बनेंगे । इस तरह अरिहन्त का उपकार क्षेत्र अनेक गुना बड़ा है । इसलिए अरिहन्त भगवन्त का स्थान सिद्धों से भी आगे प्रथम क्रम पर पहले पद पर रखा है । अरिहन्त परमात्मा को सिद्ध भगवन्तों से पहले स्थान दिया है । यह बिल्कुल सही है । समुचित है । अत: स्वीकार्य है । इसी क्रम से हमें साधना करनी चाहिए ।

अरिहन्त पिता ... और सिद्ध माता स्वरूप है

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

— त्वमेव माता... पिता त्वमेव, ... त्वमेव बन्धु, सखा त्वमेव। यह पंक्ति सैंकड़ों बार कर्णयुगल पर पड़ी होगी और श्रवण का विषय बनते ही शायद कभी जिज्ञासा ने जन्म लिया भी होगा कि... क्या बात है ? भगवान को ही माता भी कहा, पिता भी कहा, भाई-बन्धु भी कहा और मित्र-सखा के रूप में भी संबोधन किया है। भक्तों ने भक्ति के माध्यम से भगवान की नवधा भक्ति की है। इस नवधा भक्ति में कभी भगवान को, माता स्वरूप, कभी पिता स्वरूप, कभी मित्र-बन्धु, सखा स्वरूप और कभी भगवान को श्रेष्ठ प्रियतम पतिदेव, प्राणनाथ स्वरूप में, कभी मालिक, अधिकारी स्वरूप में, कभी व्यापक विभु स्वरूप में, कभी घट-घट व्यापी अणु स्वरूप में, कभी महान पूज्य स्वरूप में... इत्यादि अनेक स्वरूपों में भगवान को संबोधित करते हुए भक्ति की है।

मीरा की गिरधर भक्ति जगजाहिर ही है। विधवा नारी मीरा ने परमात्मा को पति स्वरूप में ही स्वीकार लिया और "मेरे तो गिरधर गोपाल दूजो न कोई"... इन शब्दों से संबोधित करते हुए पति स्वरूप मानकर खूब भक्ति की। मीरा भक्ति में तल्लीन होकर पति प्रेम को प्रभु प्रेम बना दिया। उपरोक्त जितने प्रेम के सम्बन्ध है उन सब में प्रेम का पात्र परमात्मा को बनाकर बातें करने लग जाओ। बस, भक्ति शुरु हो जाएगी। माता-पुत्र, पिता-पुत्र, भाई-भाई, भाई-बहन, मित्र-मित्र, पति-पत्नी इत्यादि संसार के प्रचलित संबंध है। इन संबंधों में प्रेम भाव छलकता है। प्रेम शब्द को आधुनिक जमाने के दिवाने लोगों ने वासना अर्थ में विकृत कर दिया है। यह लोगों की भूल है। अन्यथा प्रेम में स्नेह, भक्ति, नम्रता, वात्सल्य, समर्पण बहुत कुछ भाव भरे हुए हैं। माता का पुत्र के प्रति वात्सल्य प्रेम होता है। इससे ऊंचा जगत् का और कौन सा प्रेम हो सकता है। यह एक ही प्रेम ऐसा है जो विशुद्ध कक्षा का ऊंचा है। यह प्रेम मात्र शाब्दिक नहीं है। यह हार्दिक है। इसमें कृत्रिमता नहीं चलती। वास्तविकता इतनी चरितार्थ एवं सक्रिय होती है कि अपने संतान के प्रति माता के स्तनों में दूध बनकर ऊभर आता है। ऐसा वात्सल्य स्नेह भाव विश्व में है कहां ?

पति-पत्नी के प्रेम में वास्तविकता के स्थान पर कृत्रिमता कई बार इतनी ज्यादा हो जाती है कि जिससे कटुता बढ़ जाती है और टूटने का किनारा एक दिन आ जाता है। माता-पुत्र, पिता-पुत्र का स्नेह अमर प्रेम है। भाई-भाई के प्रेम में भी कृत्रिमता बीच में आ जाती है और कटुता एक दिन विपरीत वर्तन में परिणत होती है। लेकिन एक मात्र भगवान के प्रति जो प्रेम है वह अमर प्रेम है। वास्तविक है, सच्चा है। नष्ट हो नहीं सकता। क्योंकि परमात्मा के साथ का प्रेम एक पक्षी रहता है। सामने बैठे हुए परमात्मा बोलने वाले नहीं है। उनकी तरफ से न राग का, न ही द्वेष का, किसी भी प्रकार का कोई प्रतिकार मिलने वाला ही नहीं है। अत: प्रेम और भी बढ़ता जाता है। यह भी विशुद्ध कक्षा का बन जाय तो बहुत ऊंचा बनता है। श्रद्धा के बल पर परमात्मा के प्रति प्रेम टिका रहता है। प्रेम आगे बढ़कर समर्पण भाव की प्रक्रिया सीखा देता है और समर्पित कर देता है।

सम्यग् दर्शन–श्रद्धा का प्रेम—

परमात्मा के साथ का प्रेम तथा प्रेम जन्य भक्ति भाव यह सच्ची श्रद्धा, सम्यग् दर्शन पर आधारित है। लौकिक कक्षा के प्रेम में भी विश्वास की भूमिका रहती है। प्रेम ऐसी भूमिका है जहां व्यक्ति अपने आपको खो देता है। भूल जाता है और सामने वाले पात्र में तन्मय तल्लीन बन जाता है। कहीं-कहीं भक्त भगवान को पति के रूप में देखकर जब इन भावों को शब्द देने लगें कि... "ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो... और न चाहुं रे कन्त"...। अवधूत योगी आनन्दघन जी जैसे महात्मा स्वयं पत्नी भाव की भूमिका में रहकर परमात्मा को अपना प्रियतम या प्रीतम समझते हुए भक्ति कहते हैं तब उनके उद्गार उपरोक्त प्रकार के निकले हैं। हे प्रीतम (परमात्मा) ऋषभ देव ! तूं ही मेरा प्रीतम प्राणनाथ है। अब तेरे बिना मैं किसी अन्य को अपने कन्त के रूप में नहीं चाहूंगा। हे साहिब ! आप यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो संग कभी छूटेगा नहीं। पत्नी भाव में भक्ति करते हुए योगी महात्मा ने अपनी अटल श्रद्धा को परमात्मा के प्रति खूब भाव भरे शब्दों को व्यक्त की है। जैसे पति-पत्नी का प्रेम मृत्यु पर्यन्त होता है। वैसा ही प्रभु आपका साथ, आपकी भक्ति मैं कभी नहीं छोडूंगा। बिना श्रद्धा के ये भाव संभव नहीं है तथा जिस भाव से भक्ति की

जाती है उसकी कोई विकृत असर मन पर बिल्कुल नहीं है । शुद्ध भाव बने हुए हैं । किसी भी बहाने से लोग अपने भाव अभिव्यक्त कर सकते हैं । प्रेम विशुद्धि में ही टिकता है । विकृति विकारों में खत्म हो जाता है । सामान्य लोग प्रेम का विशुद्ध स्वरूप समझ ही नहीं पाते हैं । उनकी दृष्टि विकारों से भरी हुई होने के कारण विशुद्ध प्रेम की अनुभूति नहीं कर पाते हैं ।

अत: यदि हमें प्रेम का विशुद्ध स्वरूप देखना हो, विशुद्ध अनुभूति करनी हो तो वीतराग जिन परमात्मा से प्रेम करने लगो । वीतरागी भगवन्तों से प्रेम भरी भक्ति भावना करके देखिए । निर्विकारी पूर्ण पुरुष वीतरागी के साथ प्रेम और भक्ति करते-करते विकार भाव अपने आप दूर होते जाएंगे । अवरोधक अशुद्धियां सब दूर होती जाएगी और विशुद्ध प्रेम के स्वरूप में साधक पहुंचता जाएगा । याद रखिए ! परमात्मा के प्रति की जाने वाली भक्ति प्रेम से सराबोर होनी चाहिए । प्रेम के भावों से भक्ति ऊंची कक्षा की होती जाएगी और एक कक्षा ऐसी आएगी जहां प्रेम और भक्ति के बीच की भेद रेखा ही मिट जाएगी । अभेद की कक्षा आ जाएगी । दोनों एक रूप हो जाएंगे । उसमें से निकलता हुआ विनम्र भाव नमस्कार के रूप में प्रगट होगा । तब वह नमस्कार कितना शुद्ध होगा । यह प्रक्रिया दूध से दहीं, छाछ और मक्खन की कक्षा के क्रम से आगे बढती है । मक्खन में कितनी सुकोमलता है वैसे विनम्रता के भाव में भी पूर्ण सुकोमलता है । सच देखा जाय तो प्रेम और भक्ति से भरा हुआ साधक नम्र हुए बिना रह ही नहीं सकता है । उसे नम्रता लानी नहीं पड़ती है । सहज भाव से प्रगट होती जाती है । अत: नमो भाव साहजिक है, स्वाभाविक है, वास्तविक है । इसमें कृत्रिमता टिक ही नहीं पाती ।

मातृ स्वरूपा भक्ति—

प्रेम और भक्ति, आदर और पूज्य भाव, नम्रता और पूज्यता सब एक साथ आ सकें, ऐसा कोई स्थान या प्रबल निमित्त हो तो वह एक मात्र परमात्मा के प्रति एवं माता के प्रति प्रगट हो सकता है । माता का स्थान आदर और पूज्यभाव अभिव्यक्त करने के लिए ऊंचा आदर्श स्थान है । तथा लोकोत्तर कक्षा का ऊंचा स्थान परमात्मा का है । जहां प्रेम और भक्ति, आदर और पूज्यभाव नम्रता और प्रभुता सबका एक साथ प्रयोग हो सकता है ऐसा स्थान विशेष परमात्मा का है । जैसे माता के प्रति प्रेम और भक्ति इतनी विशुद्ध होने के कारण विकार राग, द्वेष के भाव सर्वथा लुप्त हो जाते हैं । निर्विकार भाव व्यक्त होते हैं । क्योंकि पुत्र भाव की भावना में रहने से प्रेम में पवित्रता आती है । भक्ति सेवा रूप धारण कर लेती है । पूज्यभाव नम्रता में परिवर्तित हो जाता है । परिणाम स्वरूप माता का हृदय गद्‌गद् होकर आशीर्वाद बरसाने लगता है । बाल स्वरूप लघु होने से प्रेम के प्रगटीकरण की प्रक्रिया भिन्न रहती है तथा बालक बड़ा... कितना भी बड़ा हो जाएगा फिर भी वह बालक ही है । अर्थात् लघु है । लघु भाव लघुता में रखता है और यही लघुता का भाव नम्रता की विशुद्धि बढ़ाता है । इसी लघुता की वृत्ति साधक में रहने पर परमात्मा के प्रति पूज्यभाव बढाती है । प्रभु की प्रभुता का दर्शन कराती है । अत: "लघुता से प्रभुता मिले" की उक्ति सार्थक लगती है ।

पुत्र तुल्य बनकर प्रभु की भक्ति करते समय प्रभु को मातृ स्वरूप में देखने की कोशिस करें । माता में प्रभु स्वरूप देखने पर प्रेम भक्ति के साथ पूज्य भाव प्रगट हो जाएगा और परमात्मा में मातृ स्वरूप देखने से पूज्य भाव के साथ-साथ प्रेम और भक्ति भाव प्रगट हो जाएगा । इस तरह दोनों भावों का आविर्भाव भक्त के हृदय में होता जाएगा । इसलिए सही लगता है कि...संसार के लौकिक व्यवहार में जो माता को भगवान तुल्य मानकर पूजता है, भक्ति और आदर व्यक्त करता है उसी में भगवान को सही अर्थ में भगवान मानने की पूज्यभाव से भक्ति करने की भावना आकार लेगी । जो घर संसार में माता को पूज्यभाव से नहीं देख सका, इतना ही नहीं जो मात्र तिरस्कार ही करता रहा उसके कठोर-निष्ठूर दिल में तीन लोक के नाथ तीर्थंकर परमात्मा के प्रति पूज्य भाव बढना बहुत कठिन लगता है । इसलिए यदि हमें परमात्मा के प्रति पूज्यभाव अहोभाव बढाना है, बढाते हुए भक्ति व्यक्त करनी है तो निश्चित रूप से आज से ही घर में माता को उस ऊंचे आदर्श स्थान पर दिल में बैठाकर पूज्यभाव और नम्रता भक्ति को सक्रिय रूप में आचरण में लाते जाइए । फिर देखिए... भविष्य में परमात्मा के प्रति कितना ऊंचा पूज्यभाव सद्‌भाव अहोभाव प्रगट होता है । नम्रता प्रगट होती है ।

परमात्मा का मातृ-पितृ स्वरूप—

संसार में जितना ऊंचा आदर्श स्थान माता पिता का है । आराधना के जगत् में उतना और उससे भी ऊंचा आदर्श स्थान परमात्मा का है । सर्वज्ञ शासन में अरिहन्त और सिद्ध ये परमात्मा के दो स्वरूप है । दोनों भगवान है । नवकार में दोनों का ऊंचा स्थान है । अरिहन्त परमात्मा को नवकार के प्रथम पद में स्थान दिया है और नमो भाव से नमस्कार किया है । इसी तरह दूसरे पद में सिद्ध भगवान का ऊंचा स्थान है । "नमो" नमस्कारवाची शब्द का प्रयोग करके प्रथम नमस्कार किया गया है । संसार के व्यवहार में भी माता-पिता आदि को दूर से देखते ही प्रथम नमस्कार किया जाता है । ठीक उसी तरह अरिहंत सिद्ध भगवान आदि का स्मरण करते ही, नामोच्चारण करते ही सबसे पहले नमस्कार का भाव प्रगट होता है । अन्तर में भाव रूप से नम्रता नमोभाव प्रगट होता है और व्यवहार रूप में उसी का आचरण नमस्कार की क्रिया से अभिव्यक्त

किया जाता है । सबसे पहले अन्तर की भावात्मक उर्मियों में भी नमो भाव, विनम्रता का भाव उत्पन्न होता है उसी का बाह्य क्रियात्मक रूप से नमस्कार की क्रिया अभिव्यक्त होती है अत: नवकार में भी "नमो" शब्द पहले रखा गया है ।

अरिहन्तादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के पास या सन्मुख जाते समय भक्त साधक को क्या ले जाना चाहिए ? बाह्य व्यवहार से द्रव्य की प्रधानता आती है और आभ्यन्तर भूमिका में भाव की प्रधानता आती है और भाव की अभिव्यक्ति का प्रथम निमित्त नमस्कार है । नम्रता के भाव से नमस्कार की क्रिया प्रगट होती है । इसलिए अरिहन्तादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के सन्मुख जाते समय... नमो भाव को दिल में साथ ले जाना चाहिए । इसी की आवश्यकता है । यही उपयोगी है ।

अरिहन्त जनक स्वरूप और सिद्ध जननी स्वरूप है । संसार के व्यवहार में माता का कार्य पुत्र को जन्म देने का है । पुत्र का उदर में धारण करना और जन्म देकर अवनितल पर भेजना । इतने से जन्मदातृ जननी का कार्य पुत्र पर उपकार के रूप में स्मृति पटल पर सदा रहता है । यह उपकार भाव की स्मृति पुत्र के मानस को प्रेम भक्ति पूज्यभावों से भरते रहेंगे । पिता जनक है । जन्म देने तक माता की जिम्मेदारी है । जन्म होने के बाद पिता की जिम्मेदारी एवं कार्यक्षेत्र शुरु हो जाता है । यद्यपि इस जिम्मेदारी के दो विभाग बनते हैं । देह के विभाग की जिम्मेदारी माता निभाती है और पुत्र के बौद्धिक विकास, ज्ञान प्रदान एवं कुशल कर्ता आदि कुछ बनाने का कार्य जनक के रूप में पिता का है । विकास करके उसे आगे बढ़ाना, कुछ बनाना आदि की जिम्मेदारी पिता की है । ठीक यही बात अरिहन्त और सिद्ध भगवान में घटाते हुए उनका स्वरूप देखना है ।

संसार में जन्म देने का कार्य सिद्ध माता का—

पास के चित्र को देखिए 14 राजलोक के इस चित्र में अनेक गोले बने हुए हैं । इनको "निगोद" के गोले की संज्ञा दी गई है । ये गोले समस्त लोक में असंख्य की संख्या में है । अदृश्य है । इन गोलों में एक-एक में अनन्त अनन्त जीव है । ये संसार की अन्तिम कक्षा की सूक्ष्मता को धारण कर एक-एक गोले में रहे हुए हैं । जैसे डिब्बी में काजल भरी हुई रहती हैं वैसे ही इन असंख्य गोलों में एक-एक प्रत्येक में अनन्त अनन्त जीव भरे हुए हैं ।

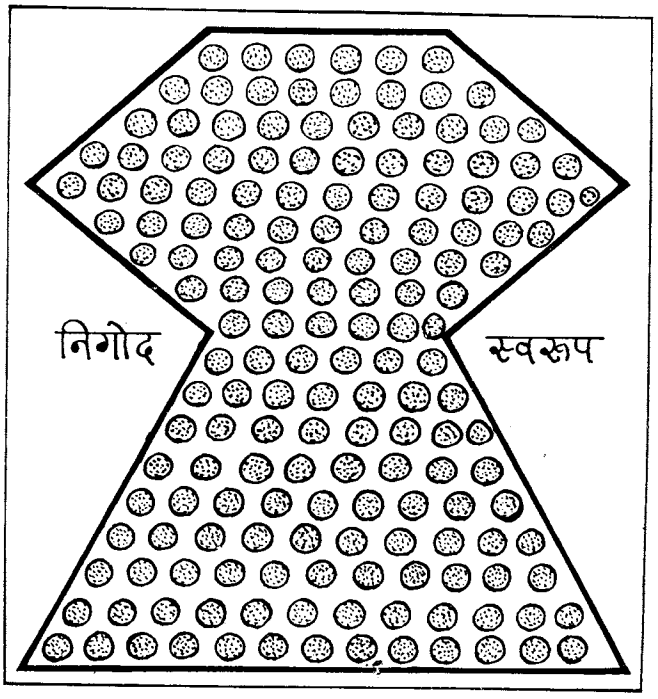

समस्त निगोद के इन अदृष्ट गोलों में अनन्त की संख्या में रहने वाले इन जीवों को गोलों में रहते रहते अनन्त काल बीत गया है । आप कल्पना करिए ! अनन्त काल किसे कहते हैं ? जहां अंश मात्र भी सुख की कोई संभावना नहीं है । ऐसे 1 गोले में अनन्त जीवों को एक साथ रहना पड़े और वह भी अनन्त काल तक ? संसार में दु:ख वेदना की अन्तिम अवस्था निगोद में है । शायद केवलज्ञानी को भी पूछें तो वे बताएंगे कि... निगोद में जीवों को जितने अनन्त गुने दु:ख का अनुभव करना पड़ता है उतना संसार में अन्यत्र कहीं भी नहीं है । सातवीं नरक का दु:ख निगोद के दु:ख के सामने कुछ भी नहीं है । यहां तक कि माता के गर्भ में भ्रूण को जो दु:ख, वेदना है, या जन्म के समय भी जितनी अकल्प्य वेदना का अनुभव करना पड़ता है उससे भी अनन्त गुनी वेदना दु:ख निगोद के जीवों को प्रतिक्षण अनुभव करनी पड़ती है । क्योंकि निगोद में जीवों को प्रतिक्षण जन्म मरण धारण करने ही पड़ते हैं । गोला वही है । वही शरीर स्वरूप है और उसी में बार-बार जन्म लेना और बार-बार मृत्यु धारण करना । यही क्रम अनन्त काल तक अखण्ड रूप से निरन्तर चलता ही रहता है । इतने लम्बे अनन्त काल में एक क्षण भर के लिए भी विश्रान्ति नहीं, शान्ति नहीं । शायद निगोद के स्वरूप की एवं दु:खादि की कल्पना करना भी हमारी बुद्धि क्षमता के बाहर की बात है ।

थोड़ी देर के लिए मानस चित्र उपसा कर कल्पना करिए माता के गर्भ में बालक को साडे नौ महिने के ऊपर 1 दिन भी ज्यादा रहना पड़े तो माता और बालक दोनों के लिए शायद वह दिन सातवीं नरक जैसा बन जाये और यदि 10 महीने— 11 महीने या 12 महीने बालक को गर्भ में हो जाय तो... क्या परिस्थिति हो सकती है ? क्या यह आप सोच भी सकते हैं ? माता और पुत्र दोनों के लिए कितने कष्टदायी वे दिन हो सकते

हैं ? उसे सोचने पर शायद हमारे होश खोश सब उड़ जाये । तब गर्भ से भी ज़्यादा अनन्तगुनी दु:खभरी वेदना जिस निगोद में प्रतिक्षण गुजरती हो, वहां की दास्तान के बारे में कौन सोच भी सकता है ? सर्वज्ञ केवली के बिना इस जगत् में अन्य किसी की जानने की क्षमता भी नहीं है । प्रतिक्षण जन्म-मरण के चक्र में फंसा हुआ जीव 1 क्षण मात्र के लिए भी सुख शान्ति या शाता का अनुभव भी कहां से करें ? कैसे करें ?

दूसरी तरफ निगोद के इस गोले में से बाहर निकलना भी उसके हाथ में कहां है ? जब चाहे तब कोई भी निकल जाय ऐसी कुछ व्यवस्था या नियति होती तो भी आज दिन तक बीते अनन्त काल में अनन्त जीव निगोद में से निकल भागते और समस्त गोले खाली हो जाते । इस तरह निगोद की जीव सृष्टि का अन्त आ जाता । अस्तित्व भी नहीं बचता । लेकिन ऐसा होता नहीं है । सर्वज्ञ केवलज्ञानी परमात्मा यहां तक फरमाते हैं कि... अनन्तानन्त काल बीत जाने के बावजूद भी अनन्तानन्त जीव निगोद के गोलों में रहेंगे ही रहेंगे । इस तरह अनन्तानन्त काल में भी निगोद के अस्तित्व का अन्त नहीं आएगा । यदि आता होता तो आज ही आ चुका होता । क्योंकि अतीत को अनन्तकाल तो जीत चुके हैं । अत: आज भी निगोद का अस्तित्व बराबर बरकरार है । इसी तरह भविष्य में भी बना ही रहेगा । ऐसा निगोद का स्वरूप शास्त्रों में से पढकर, अच्छी तरह जानकर हम शायद मूर्छित हो जाएं । जब हम साढे नौ महीने के गर्भकाल एवं गर्भावस्था तथा गर्भस्थ जीव की वेदना एवं जन्म समय की वेदना आदि की भी कल्पना नहीं कर सकते हैं । यद्यपि हमारी आंखों के सामने गर्भावस्था का काल एवं स्थिति हम देखते हैं फिर भी हमारे लिए असंभव लगती है दु:खादि की जानकारी । तब सोचिए निगोद के विषय में हमारी क्षमता कहां है ? सर्वज्ञ बनने के सिवाय कोई चारा नहीं है ।

शास्त्र सम्मत शाश्वत नियम एवं व्यवस्था—

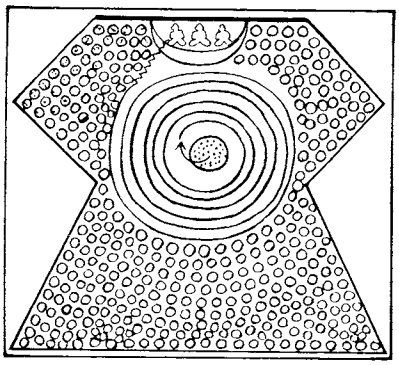

शास्त्रकार भगवन्तों ने फरमाते हुए एक शाश्वत नियम एवं शाश्वत व्यवस्था बताते हुए कहा है कि... जब एक जीव इस संसार से मुक्त होकर मोक्ष में जाता है तब एक जीव निगोद के गोले में से बाहर निकलता है । यद्यपि एक गोले में भी अनन्त जीव है । उनमें से कौन सा जीव बाहर निकलेगा ? इसके उत्तर में कहते हैं कि जिस जीव की जितनी ज्यादा अकाम निर्जरा होगी वह जीव विशेष पहले बाहर निकलेगा । निगोद के जीव असह्य वेदना को सहन करते हैं । लेकिन जीव मात्र अपने अपने स्वरूप में है । ज्ञानादि गुण उनके अपने स्वतंत्र है । अत: सभी जीव अपने-अपने राग द्वेषानुसार अकाम निर्जरा करते हैं तथा इससे अपना तथा भव्यत्व परिपक्व करके गोले से बाहर निकलते हैं ।

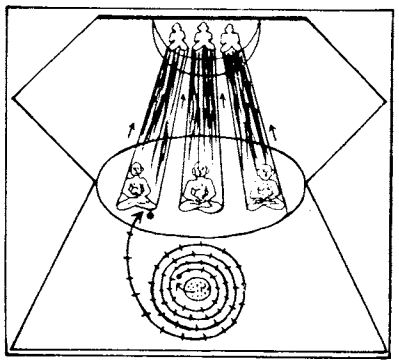

क्रमात्मक नियम यही प्रचलित है कि एक जीव संसार चक्र में अपना परिभ्रमण जो कर रहे हैं वे कब कितनी जल्दी अपनी सम्पूर्ण कर्म निर्जरा करें, और कब वे मुक्त हो उस पर एक-एक जीव के क्रमश: बारी-बारी से निगोद से बाहर निकलने का हो । सिद्ध बनने वाले जीव की संसार से मुक्ति... संसार चक्र से छुटकारा होता है । अनन्त जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा मिलता है । ठीक इसी तरह निगोद के गोले से बाहर निकलने वाले जीव के लिए भी यह मुक्ति है । निगोद मुक्ति है । अब इतने ज्यादा प्रतिक्षण होने वाले जन्म मरण के चक्र से इनका भी छुटकारा हो गया । यद्यपि कोई इतनी बड़ी मुक्ति नहीं हुई है । क्योंकि अभी तो मात्र सूक्ष्म निगोद से बादर निगोद में ही आना हुआ है, अर्थात् एक गोले में से मात्र आलु-प्याज, लहसून, गाजर, मूला आदि में ही आना हुआ है । निगोद की जाति साधारण वनस्पतिकाय की वही है । वह नहीं बदली है । इस जन्म के बाद प्रत्येक वनस्पति के जन्म में आगे बढेगा । आगे-आगे के जन्म धारण करता ही जाएगा । चारों गतियों में पुन: अनन्त काल तक परिभ्रमण करेगा ।

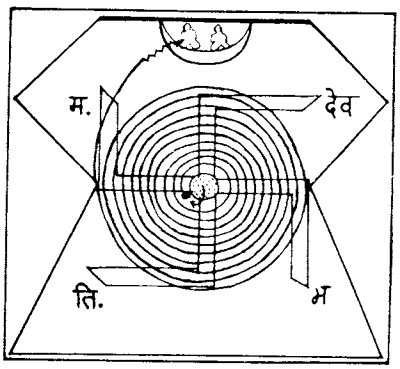

माता स्वरूप सिद्ध का उपकार—

संसार के व्यवहार में मात्र साढे नौं महीने के गर्भावास से जन्म देने वाली जननी का इतना उपकार पुत्र के लिए बताया जाता है कि... पुत्र अपने शरीर की पुरी चमड़ी उतारकर उसके जूते बनाकर आजीवन पर्यन्त माता को पहनाए तो भी पुत्र माता के उपकार का ऋण नहीं चुका सकता हैं। जब मात्र साढे नौं महीने के छोटे से काल के गर्भावास से छुटकारा देने वाली माता का इतना बड़ा उपकार बताया जाता है, तो कल्पना करिए कि अनन्त काल के गर्भावास रूप सूक्ष्म गोले में से इस संसार में जन्म देने में निमित्त कारण रूप मुक्त होने वाले सिद्ध भगवान के उपकार के प्रमाण की हम कल्पना ही कैसे कर सकते हैं ? कितना गुना बड़ा यह उपकार होगा ? बस हमारी भाषा का अन्तिम शब्द है— "अनन्त"। यहां भाषा का अन्त आ गया। अनन्त गुना उपकार है यह। इसलिए अनन्तकालीन इस निगोदवास से जीवों को जन्म देकर गोले से बाहर भेजने वाले सिद्ध भगवन्तों का यह अनन्त गुना उपकार है। अत: सिद्ध भगवान मातृ स्वरूप है। जननी तुल्य है। सोचिए। सिद्ध भगवन्तों का कितना बड़ा उपकार है हमारे जीवों पर।

संसार से जो मुक्त होते हैं— देह छोड़ते समय वे भी मृत्यु पाकर मरते ही हैं। अत: मृत्यु के दु:ख का अनुभव वे भी करते ही हैं। लेकिन वे केवलज्ञानी सर्वज्ञ वीतरागी है। सर्व कर्म मुक्त है। अत: उनके अनन्त गुने सुख के सामने वह दु:ख अनन्तवें भाग मात्र का भी नहीं है। नहींवत् है, और निगोद के जीवों को इतना अपार सुख प्रदान किया है जिसकी कल्पना ही नहीं कर सकते हैं हम।

निगोद यह जीवों की खान है। निगोद में अनन्तानन्त जीव खान में पत्थरों की तरह भरे पड़े हैं। जैसे खान में से एक-एक पत्थर बाहर निकाला जाता है। वह बाहर आकर मूर्ति या मकान आदि में लगता ही जाता है। ठीक उसी तरह संसार में जीव कहां से आते हैं ? इसके उत्तर में यह स्पष्टिकरण किया है कि... संसार चक्र के व्यवहार में जीव निगोद रूप खान में से सतत आते रहते हैं। क्यों और कैसे आते हैं ? का उत्तर यही है कि संसार चक्र में से एक जीव मोक्ष में जाता है तब एक जीव निगोद के गोले में से संसार के व्यवहार में आता हैं।

किसके सिद्ध होने से कौन मुक्त हुआ ?

इस नियमानुसार यह निश्चय होता है कि मैं... मेरा जीव किसके मोक्ष में जाने के समय बाहर निकला ? क्या मैं भगवान महावीर स्वामी के मोक्ष में जाने के समय बाहर निकला ? या फिर क्या मैं आदिनाथ भगवान या मरुदेवी माता के मोक्ष में जाने से बाहर निकला या कब किसके निर्वाण से निगोद से मेरा छुटकारा हुआ है ? यह तो सिवाय सर्वज्ञ भगवान के अन्य कौन बता सकेगा ? संभव ही नहीं है। हां, मुझे व्यक्तिगत रूप से किसी सिद्ध होने वाले का मेरे संबंध में नाम का पता लग जाय तो मैं विशेष अनुराग पूर्वक उनकी भक्ति उपासना कर लूं। लेकिन संभव ही नहीं लगता है। क्योंकि आज न तो कोई केवलज्ञानी सर्वज्ञ यहां है, और न ही कोई आज यहां से मोक्ष में जाते हैं। सिद्ध यहां से नहीं बन रहे हैं। भूतकाल में अनन्त जीव मोक्ष में जा चुके हैं। सिद्ध बन चुके हैं और उनके निमित्त अनन्त जीव निगोद के गोले में से बाहर निकल चुके हैं। अब इस अनन्त के महासागर में से (मैं) मेरे समय के सिद्ध कौन ? कैसे ढूंढ पाउं ? कहां पत्ता लगाने जाउं ? इसके बजाय "नमो सिद्धाणं" के जाप ध्यान आदि द्वारा अनन्त सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार कर लुं। सिर्फ 5 अक्षर के इस छोटे एक पद के मंत्र से अनन्त सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार किये जाएं तो कितना अच्छा होगा ? मंत्र एक, और वह भी मात्र 5 अक्षर का छोटा सा और उससे एक साथ अनन्त सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार हो इससे बड़ा और क्या मंत्र हो सकता है ? क्यों निरर्थक प्रयत्न करना ढूंढने का ? अनन्त काल में हुए अनन्त सिद्धों को नमस्कार मात्र 5 अक्षर के इस छोटे से मंत्र से जब हो जाता है तब इसी में अपना हित कल्याण समझकर साधना उपासना करने में लाभ है।

उपकारियों का उपकार मानना—

कुछ उपकार प्रत्यक्ष होते हैं, कुछ उपकार परोक्ष होते हैं। लेकिन सिद्ध भगवन्तों का उपकार अत्यन्त परोक्ष है। प्रत्यक्ष न होने से हमें ख्याल भी नहीं आ सकता है। फिर भी हमारी आत्मा पर इस संसार में सर्वप्रथम उपकार यदि किसी का है तो वह एक मात्र सिद्ध परमात्मा का ही है। अरे ! जहां तक हम अरिहन्तों के उपकार क्षेत्र में आए भी नहीं थे, अर्थात् जब हम सूक्ष्मतम निगोदावस्था की, जीव की सर्वप्रथम पर्याय में थे तब से हमें मालूम न होते हुए भी हमारी आत्मा पर जो इतना बड़ा उपकार सिद्ध भगवन्तों ने किया है वह कितना बड़ा महान् उपकार है ? आज उस उपकार कार्य का स्मरण करना, प्रतिदिन नित्य ध्यान में चिन्तन करते हुए उपकार का स्मरण करना इसमें हमारी कृतज्ञता है। ऐसा कृतज्ञता का भाव हमारे मन में उपकारी ऐसे सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करने का नम्रता का भाव जागृत करेगा। कई बार लोग कहते हैं कि... न तो सिद्ध दिखाई देते हैं, न ही दृष्टिगोचर होते हैं, न ही उनके उपकार कार्य की अनुभूति होती है। सिद्ध स्वरूप का कुछ भी ख्याल न आने के कारण सिद्धों को मात्र काल्पनिक मानने की भूल भी हमें नहीं कर लेनी चाहिए। यदि हम ध्यान में, स्वाध्याय में, चिन्तन का विषय बनाकर भी सिद्धों का स्वरूप तथा उनका उपकार कार्य आदि सर्वज्ञ भाषितार्थानुसार मानकर आगे बढ़े और उनके प्रति कृतज्ञता का भाव बढाकर "नमो भाव" की गुणवत्ता बढाने की कोशिस करें तो निश्चित रूप से सिद्ध भगवन्तों को किया गया नमस्कार हमें सिद्धों के समीप ले जाने में अत्यन्त सहायक बनेगा।

सिद्धों के उपकार का ऋण कैसे चुकाएं ?

एक जन्मदाता जननी माता के उपकार का ऋण चमडी के जूते पहनाकर भी चुकाया जा सकता है । लेकिन निगोद के गोले में से जन्म देने वाले सिद्ध भगवन्त के असीम उपकार का ऋण कैसे चुकावें ? क्या सिद्धों को नमस्कार करने मात्र से ऋण चुकाना संभव है ? जी नहीं । नमस्कार तो मात्र उपकार के स्मरण या उपकार को जानने मानने की प्रारम्भिक कक्षा की प्रतिक्रिया मात्र है । इससे उपकार का ऋण चुका कर जीव स्वयं ऋण मुक्त नहीं हो सकता है । यह तो तब संभव होगा जब... साधक स्वयं "सव्व पावप्पणासणो" अर्थात् सब पाप कर्मों का समूल सर्वथा नाश करके, कर्म रहित होकर मुक्ति को प्राप्त करके सिद्ध बने । साधक के सिद्ध बनने से पुनः एक जीव निगोद की राशि में से बाहर निकलेगा और संसार के व्यवहार में आएगा । तब सही अर्थ में उपकार का ऋण चुकाकर हम ऋण मुक्त हो सकेंगे ।

सिद्ध भगवन्तों का संदेश-आदेश—

हम जो सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करते हैं । जाप द्वारा स्मरण, ध्यान, चिन्तन मननादि जिस रूप में भी साधना करते हैं उसके प्रत्युत्तर के रूप में सिद्ध भगवन्तों की तरफ से आदेश-संदेश इस प्रकार होता है कि... हे जीव ! जिस तरह, जिस मोक्ष मार्ग पर चलकर मैं सिद्ध बना हूं वैसे ही तूं भी सिद्ध बन जा । जैसे मैंने सिद्ध बनते ही किसी निगोद के जीव को उसके अनन्त कालीन बन्धन और दुःख में से मुक्ति दी है वैसे ही तूं भी मुक्त-सिद्ध बनकर इस अनन्त निगोदिया जीवों में से किसी 1 को छुटकारा दे दें । मुक्ति दे दें । बस, मेरा सन्देश समझो या आदेश समझो जो भी कुछ समझो यही कहना है । इतना ही कहना है ।

हमारे जैसे साधकों को सिद्ध भगवन्तों के इस आदेश को आज्ञा के रूप में लेकर पालन करना चाहिए । सर्वप्रथम जीवों को और उनके स्वरूप को, चेतनात्म तत्त्व को पहचानना चाहिए । सिद्ध और निगोद के उभय स्वरूप को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए । सिद्धों के प्रति अपार प्रमोद भाव बनाएं और निगोदिया जीवों के प्रति असीम करुणा भावना बढाएं । भाव दया के रूप में निगोदिया जीवों की अन्तिम दुःखावस्था को देखकर अत्यन्त करुणा बढाने से पता चल सकता है कि... किस तरह मैं इन जीवों का भला कर सकता हूं ? इनके दुःख वेदना को दूर करने के लिए इनको इससे छुटकारा दिलाने के लिए मैं मेरी तरफ से क्या भोग दूं ? बस, एक ही... रास्ता है, एक ही विकल्प है कि हे जीव ! तुं खुद इस संसार से मुक्त हो जा । सिद्ध बन जा । जब तक तूं स्वयं मुक्त नहीं होगा तब तूं जान बूझकर किसी एक जीव को निगोद में फंसाकर-दबाकर रखेगा । किसी 1 जीव को बाहर न निकलने देने में तूं कारण रूप बनेगा । अतः हे साधक ! यह पाप तेरे सिर पर क्यों ले रहा है ? क्यों किसी जीव को निगोद में और ज्यादा दुःखी कर रहा है ? वह असहाय बेचारा जीव... निगोद में अटककर फंसा हुआ है । बाहर निकल नहीं पा रहा है तेरे कारण । अतः एक जीव को बाहर न निकलने देने में तूं कितना अन्तरायरूप अवरोधक बन रहा है ? यह तूझे स्वीकारना ही पड़ेगा । समझना ही पड़ेगा ।

जब हम ये और ऐसे संदेश-आदेश के शब्द सुनेंगे तब अचानक चौकन्ने हो जाएंगे । आश्चर्य में गरकाव हो जाएंगे । क्योंकि हमने कभी ऐसा सोचा ही नहीं है । निगोद के जीवों के बारे में ऐसा कभी विचार मात्र भी नहीं किया अतः कल्पना भी नहीं कर सकते हैं, परन्तु सम्यक्त्वी जीव सम्यग् ज्ञान को प्राप्त करते समय जब निगोद के सूक्ष्म स्वरूप का गहन ज्ञान गहराई में जाकर प्राप्त करेंगे तब यह सच्चाई सामने आएगी । उसके पश्चात् दया, करुणा की भावना को जब हम घूंटते जाएंगे तब करुणा के घनीभूत भावों में निगोद के जीवों की करुणा शायद साधक के मन में खलबली मचा दे । वह सत्य समझ जाय और इस संसार से मुक्त होने की तमन्ना हो जाये । याद रखिए... कि आप स्वयं मुक्त बने बिना निगोदस्थ जीव को बाहर निकालने की क्रिया कर ही नहीं सकते हैं ।

वाह ! निगोद के जीव को तारने में, बाहर निकालने में अपना भी कल्याण साथ में है । एक पंथ दो काज । खुद आप पहले मुक्त बनो, सिद्ध बनो फिर निगोद के जीव को निगोदावस्था में से मुक्त करो । इसलिए निगोद के अनन्त जीव अपनी मूक भाषा में प्रतिदिन हमारे जैसे जीवों को अपनी करुणाभरी आरजू करते हैं, दुःख, दर्दभरी दास्तान सुनाते हुए स्पष्ट कहते हैं कि हे जीव ! तू जल्दी मुक्त बन जा । सिद्ध बन जा । जब तक तूं मुक्त नहीं होगा तब तक हमें और शायद कितने जन्म-मरण इसी निगोद में करते ही रहना पड़ेगा । हो सकता है कि ये भव अनन्त हो जाये ? यह भी तेरे निमित्त । तेरे कारण ।

इसलिए हमारा उद्धार-कल्याण करने के लिए कारणभूत सबसे पहले तूं तेरा कल्याण कर ले । यथाशीघ्र कर ले । जितना जल्दी तूं इस संसार से मुक्त हो जाएगा उतना हमको फायदा होगा । हमारे में से एक-एक जीव जो निगोद में फंसा हुआ अनन्त गुने दुःख से त्रस्त है उसे निगोद में से छुटकारा पाने का अवसर मिलेगा । अतः निगोद के जीवों की इतनी दुख दर्द भरी दास्तान मूक आरजू सुनकर सबसे पहले शीघ्र ही हमें हमारा कल्याण करना चाहिए । स्व दया में पर दया समाई हुई है । पर दया के आधार पर भी स्वदया का आधार बना हुआ है । निगोद

के जीवों के बारे में कल्पना करो कि... वे प्रतिक्षण हमारे लिए प्रार्थना करते होंगे । हमें यह संदेश दे रहे होंगे कि... हे जीव ! हमारे खातिर भी सही तूं इस संसार को खाली कर दें । छोड़ दें । संसार छोड़कर मुक्त बन जा । हमारे लिए रास्ता खुल्ला करके हमें भी मुक्त बनने का अधिकार दें ।

जब किसी के मुक्त होने से तूं निकल गया है तो फिर अब तू क्यों जगह रोक के बैठा है ? हमारा रास्ता क्यों बन्द किया है ? हमें भी मुक्त बनने के लिए रास्ता दें । हमारे लिए किसी भगवान से भी ज्यादा आवश्यकता तेरी मुक्ति की है । सज्जनों ! साधकों ! हमारे इन बहेरे कानों को अब कहना ही पड़ेगा कि इन मूक निगोदिया जीवों की आरजू सुननी ही चाहिए । इसी में दोनों का कल्याण है । हित है । सिद्धों की आज्ञा का पालन करने का परम लाभ है । इसमें हम जितना विलम्ब करेंगे या जितने भव करेंगे उसमें निगोद के जीव को इतने भव (जन्म) और करते ही रहने पड़ेंगे । लेकिन यह मत भूलना कि... निगोद के जीव को आप 1 श्वास लो इतनी देर में तो साढे सत्रह ($17\frac{1}{2}$) भव करने पड़ते हैं । अब आप सोचिए कि... आप आगे जितने भव ज्यादा करेंगे उतने ज्यादा लम्बे काल तक संसार चक्र में जन्म मरण धारण करते रहना पड़ेगा । उसमें 1 श्वास में $17\frac{1}{2}$ भवों के आधार पर गिनती कर लो कि... कितने भव होंगे ? पुनः अनन्त भव मेरे कारण वह ओर करेगा । उसमें कितना दुःखी होगा ? अतः इन सब बातों का विचार करके एक ही विकल्प जो बचा है उसके अनुसार आप अन्तिम निश्चय (निर्णय) कर लो कि मुझे मेरी मुक्ति जल्दी करनी चाहिए । साथ-साथ अन्यों को भी मुझे यह रहस्य समझाते हुए संसार से मुक्त होने के लिए प्रेरित करना है । उन्हें मोक्ष मार्ग पर लाकर आरुढ करना चाहिए । बस, एक बार आप अन्धे को चढाते हैं वैसे किसी जीव विशेष को और अपने आप को भी मोक्ष मार्ग पर चढा दो । लगा दो... फिर वह अपने आप चलेगा, और चलते-चलते वह भी सिद्ध बन जाएगा और परिणाम स्वरूप निगोद से किसी जीव का छुटकारा भी हो जाएगा ।

पिता स्वरूप अरिहन्तों का कार्य—

संसार के व्यवहार में जैसा कि आप देखते ही है कि माता ने बालक को जन्म दे दिया... उसके पश्चात् अब बालक के लालन, पालन, पोषण एवं विकासादि में पिता की जिम्मेदारी भी शुरु हो जाती है । प्रत्यक्ष रूप से माता कारणभूत एवं जिम्मेदार होते हुए भी परोक्ष रूप से पिता एवं बाद में प्रत्यक्ष रूप से भी पिता जिम्मेदार बनते हैं । अतः अब पिता का कार्य सामने आता है । शुरु होता है । ठीक इसी तरह सिद्ध भगवान ने माता कि जिम्मेदारी निभाई और सिद्ध बनकर किसी सिद्धात्मा ने निगोद में से किसी जीव को जन्म दिया... संसार के व्यवहार में लाया... अब पिता के स्वरूप में रहे अरिहन्त परमात्मा का कार्य क्षेत्र प्रारम्भ हो जाता है । अरिहन्तों की जिम्मेदारी बढ़ गई । अब अरिहन्तों का कार्य है कि... वे उस जीव को मोक्ष तक पहुंचाएं ।

इसलिए सबसे पहले अरिहन्त परमात्मा ने "अहिंसा" धर्म का उपदेश दिया । जीव रक्षा, प्राणी मात्र की रक्षा, समस्त जीवों पर दया, करुणा, आदि का उपदेश दिया । आदेश दिया । अहिंसा मूलक धर्म की स्थापना, प्रतिष्ठा की । **"पढमं नाणं तओ दया" "पहले ज्ञान और फिर दया"** इस सिद्धान्त के अनुसार सर्वप्रथम जीवों को जीव तत्त्व का, संसार के समस्त जीवों का ज्ञान दिया । अपने अनन्त ज्ञान से पूरी समझ दी । अहिंसा के धर्म को ही आचरण में लाना सिखाया । व्रत नियम और महाव्रत का स्वरूप बताया । धर्म का आचरण करने लगे, लोग ऐसे जीवों की रक्षा करने लगे । हिंसा छोड़ने लगे । ताकि छोटे-छोटे जीवों की भी रक्षा हो सके । सर्वज्ञ तीर्थकरों ने इसीलिए ही अनन्तकाय, जमीनकन्दादि के भक्षण का भी निषेध किया । अतः आलू, प्याज, गाजर, मूला, शक्करकंद, अद्रकादि खाने पीने का निषेध किया । सर्वथा न खाने के लिए उपदेश दिया । क्योंकि आलू प्याजादि ये भी निगोद स्वरूप ही है । सिर्फ गोले के रूप में सूक्ष्म निगोद के रूप में जो अदृश्य थे वे स्थूल (बादर) निगोद के रूप में बड़े आकार प्रकार के रूप में दृश्य बन गए हैं । परन्तु जाति रूप से निगोद की समान जाति ही है । अरिहन्त परमात्मा अनन्तज्ञानी सर्वज्ञ है अतः उन्होंने निगोद के स्वरूप को जाना इसलिए अपने उपदेश में जगत् को बताया । जिससे आचरण करने पर ऐसे जीवों की रक्षा हो सके । अभी निगोद के गोले में से बाहर आकर पहली बार पहला स्थूल जन्म लिया कि लोग मारने लग जाएंगे तो उस जीव का शीघ्र आगे के जन्मों में विकास कैसे होगा ? अतः अहिंसा, दया से उस जीव की रक्षा हो और वह आगे बढता बढता 2, 3, 4 इन्द्रिय वाले विकलेन्द्रियों के कृमि, कीट एवं पतंग आदि के भव करता करता पंचेन्द्रियों के जन्मों में पहुंचेगा ।

फिर वही अहिंसा का सिद्धान्त अपनाना चाहिए । ताकि कहीं ऐसा न हो कि तिर्यंच पंचेन्द्रिय में पशु पक्षी के भवों में भी मारा जाय । कट न जाय और किसी का भक्षण न बन जाये । आज लाखों करोड़ों पशुओं की बेरहम कत्ल जो मानवी के भक्षण के लिए की जा रही है । वह कितनी गलत है ? कितना हीन कृत्य है सोचिए ! फिर स्वकृत कर्मानुसार सुख-दुःख के रूप में देव-नारक के भव करके जब अन्त में मनुष्य स्वरूप में सामने आएगा तब तीर्थंकर भगवन्तों के प्रत्यक्ष उपकार क्षेत्र में आएगा । भगवान के उपदेश से वह जीव धर्म पाए, समझे । इसमें प्रभाव रूप में प्रभु के अतिशय प्रातिहार्यादि भी काफी सहायक उपयोगी बनते हैं ।

भगवान जानते हैं कि... मेरे आयुष्य काल में यदि इस जीव की भवितव्यता परिपक्व नहीं होगी, और मेरा आयुष्य समाप्त हो जाएगा तो क्या होगा ? अत: परमात्मा धर्मतीर्थ की स्थापना करते हैं । साधु, साध्वी श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध संघ की स्थापना करते हैं । अपने समकक्ष आचार्य भगवन्तों की व्यवस्था करते हैं । उपाध्याय पद की भी व्यवस्था करते हैं । सर्व जीव कल्याणकर जिन शासन को प्रवर्तमान करते हैं । ताकि मेरे निर्वाण के पश्चात् भी हजारों वर्षो तक जीवों का कल्याण होता रहे । जीव धर्म प्राप्त करके मोक्ष मार्ग पर आरुढ़ होते जाय और क्रमश: मोक्ष में पहुंचते जाये । आप कभी परमात्मा के उपकार के विषय में चिन्तन करिए... सोचिए... तब आपको आनन्द आएगा... अहो भाव... पूज्य भाव जागृत होगा तथा अन्तर गद्‌गद् होगा... और मन, वचन, काया तीनों प्रभु के चरणों में अपने आप झूक जाएंगे । यही नमस्कार स्वयंभू होगा । सहज होगा ।

द्रव्य उपकार—

अब जब कोई जीव सर्वज्ञ परमात्मा के दीक्षा प्रसंग पर वर्षीदान आदि ग्रहण करने आएगा तब द्रव्य उपकार से वह भर जाएगा । दीक्षा भगवान को लेनी है । संसार का त्याग करना है परन्तु परमात्मा स्वार्थी नहीं है । सब से ऊंचे महान परमार्थी परोपकारी है । ज्ञानी प्रभु जगत् के जीवों की आवश्यकता जानते हैं... समझते हैं अत: 1 वर्ष = 365 दिन तक संसार के लाखों जीवों को यथेच्छ वर्षीदान देते हैं । धन, धान्य, वस्त्र, पात्र, जगह-जमीन, हीरा, मोती, सोना, चांदी आदि जिस जीव को जो चाहिए और जितना चाहिए उससे भी ज्यादा पर्याप्त मात्रा में देते हैं । इतना ज्यादा देते हैं कि लेने वाले जीव तृप्त हो जाते हैं । बाह्य स्वरूप से द्रव्य से भी जगत् के जीवों का कल्याण हित होना चाहिए । क्योंकि जीव इस पर निर्भर रहते हैं । अत: भगवान जो स्वयं अनन्त करुणा के स्वामी हैं वे देने में कोई कमी नहीं रखते हैं । यह भी याद रखिए कि... जगत् में इस प्रकार ऐसा वर्षीदान भी जैन तीर्थंकर भगवानों के सिवाय अन्य किसी भी धर्म के भगवानों ने दिया हो यह आज दिन तक नहीं सुना है । न किसी अन्य भगवानों के जीवन चरित्रों में मिलता है ।

भाव उपकार—

संसार के किसी भी जीव की हिंसादि न हो, किसी भी जीव को मेरे निमित्त या मेरी तरफ से भी राग द्वेष का निमित्त बनना न पड़े इसके लिए स्वयं ने गृहस्थाश्रम छोड़ा । पत्नी, पुत्र, परिवार सब छोड़कर त्याग हेतु महाभिनिष्क्रमण किया । दीक्षा ग्रहण करके अणगार-साधु बने । महाव्रतों का स्वीकार करके मृत्यु की अन्तिम श्वास पर्यन्त ऐसा उत्कृष्ट आचरण किया कि... पृथ्वी, पानी, अग्नि आदि के किसी भी जीव की विराधना नहीं की । उत्कृष्ट कक्षा की तपश्चर्या, जंगलों में विहार और ध्यानादि की साधना करके चारों घनघाती कर्मो को खपाएं । केवलज्ञान, वीतरागतादि पाकर समवसरण में देशना दी । भाव दया का चिन्तन करके **"सवि जीव करुं शासन रसी"** की भावना से भगवान बने । तीर्थंकर बनकर जीवों को देशना देकर धर्म मार्ग समझाया । आत्म कल्याण का मोक्ष मार्ग दिखाया । कई जीवों की अंतरात्मा में बोधिबीज बोए । परिणाम स्वरूप अनेक आत्माओं ने सम्यग् दर्शन पाया । मोक्ष का बीज सम्यग् दर्शन की प्राप्ति के दिन बोया गया, अर्थात् अरिहन्तों ने सबसे पहले जीवों को मोक्ष स्वरूप समझाया और ऐसे मोक्ष की प्राप्ति हेतु रत्नत्रयी, तत्त्वत्रयी के मार्ग की सच्ची श्रद्धा जगाई । इस तरह अरिहन्तों ने जीवों को सिद्धों का उपकार कार्य याद दिलाने के लिए पहले मोक्ष की पहचान कराके मोक्षलक्षी बनाए । मोक्ष मार्ग के 14 गुणस्थानों के 14 सोपानों के चौथे सोपान पर जीवों को चढाया ।

उनमें से जो जीव व्रत नियम पच्चक्खाण ग्रहण कर सकते थे उन्हें विरति धर्म समझाकर 12 व्रत देकर श्रावक, श्राविका बनाए । सर्वथा संसार छोड़ने में समर्थ जीवों के लिए 5 महाव्रत का साधु धर्म समझाकर देकर साधु, साध्वी बनाए । इस तरह चतुर्विध श्री संघ की स्थापना की । तत्त्व स्वरूप बताया । संसार का चरम कक्षा का अन्तिम सत्य एवं सत्य ज्ञान भगवान आजीवन पर्यन्त देते ही गए । ज्ञान में परिपक्व किया । मोक्ष प्राप्ति की दिशा में सभी जीव शीघ्रता से आगे बढ़ सकें इसके लिए 8वें गुणस्थान से क्षपक श्रेणी आदि पर आरुढ होने की प्रक्रिया सिखाई । अनेक जीव इस तरह क्षपक श्रेणी का अभ्यास करके आगे बढ़े और क्रमश: 13वें गुण स्थान पर सर्वज्ञ वीतराग बनाए और 14वें गुणस्थान की प्राप्ति करके जीव जाकर मोक्ष में सिद्ध बने । बस, मोक्ष में जाने के बाद जीव का संसार समाप्त हो जाता है । पूरा हो जाता है । बस, अब अरिहन्तों का या किसी का काम नहीं रहता है ।

इस तरह सिद्ध माता है और अरिहन्त पिता के रूप में अनन्त गुने उपकारी हैं । अरिहंत की उपकार कार्यता का विस्तार काफी ज्यादा है इसलिए सिद्ध से छोटे होते हुए भी अरिहंत का स्थान नवकार महामंत्र में पहले पद (स्थान) पर रखा है । दोनों भगवानों का विशुद्ध स्वरूप समझकर, माता-पिता के रूप में उपकारी मानकर सम्यग् आराधना करनी चाहिए । सबका कल्याण हो ।

14 गुणस्थानों में "नवकार" की साधना

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

सर्वज्ञ संस्थापित आर्हत् शासन में आध्यात्मिक विकास की साधना के पथ को गुणस्थान साधना की संज्ञा दी गई है । संख्या में ऐसे गुणस्थान 14 होने के कारण 14 गुणस्थानक ऐसे संख्यावाची शब्द संयुक्त अभिधान ही प्रचलित है । 14 गुण स्थानों का अपर नाम "मोक्ष मार्ग" भी अपने आप में सार्थक एवं सुसंगत है । मोक्ष शब्द साधक के गन्तव्य चरम साध्य स्वरूप स्थान विशेष का नाम है । जो साधक के लिए प्राप्तव्य-प्राप्त करने योग्य, गन्तव्य-जाने योग्य स्थान विशेष है । समग्र संसार में यही एक स्थान ऐसा है जहां जाने के बाद जीव पुनः संसार में कभी भी नहीं लौटता है । बस, मोक्ष प्राप्ति के बाद जीव के संसार परिभ्रमण का अन्त सदा के लिए आ जाता है ।

अनन्तानन्त काल तक जन्म-मरण धारण करते हुए यह जीव अनन्तानन्त भव करते हुए जो परिभ्रमण निरन्तर करता रहता था, उसका सर्वथा अन्त आ चुका है । जीव में अन्तिम कक्षा की स्थिरता एक मात्र मोक्ष में बैठने या पहुंचने के बाद ही आती है । मोक्ष के सिवाय समस्त संसार में, समस्त लोक में अन्य एक भी स्थान क्षेत्र ऐसा नही है कि जहां जाकर जीव वापिस न लौट सकें ? अर्थात् समस्त 14 राजलोक के किसी भी कोने में जाय या 84 लक्ष योनियों में से किसी भी योनि में जाकर जीव उत्पन्न हो जाये, तो भी उसे वहां से वापिस लौटना ही लौटना है । इस तरह 14 राज लोक के विराट क्षेत्र में एक छोटे से छोटा परमाणु जितना भी कोई स्थान नहीं है कि जहां पहुंचकर वापिस न लौटे । शास्त्रकार महर्षी यहां तक फरमाते हैं कि अनन्त जीव सूक्ष्म एकेन्द्रियों के भवों में जन्म-मरण धारण करते हुए अनन्त बार सिद्धशिला के ऊपरी लोकान्त भाग में भी जन्म लेकर आए हैं । **"पत्तेय तरु मुत्तुं, पंच वि पुढवाइणो हुंति सयल लोए"** —प्रत्येक वनस्पतिकाय के पेड़ पौधों को छोड़कर पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय के जीव एकेन्द्रिय की कक्षा में सूक्ष्म भव करते हुए सम्पूर्ण 14 राजलोक के समस्त क्षेत्रों में रहते हैं । त्रस नाडी के अन्दर एवं त्रस नाडी के बाहर समग्र लोक में सर्वत्र रहते हैं एवं जन्म-मरण धारण करते हुए लोक के एक कोने से दूसरे कोने तक आने-जाने रूप आवागमन करते रहते हैं । इस तरह लोकान्त या लोकाग्र क्षेत्र में सिद्धशिला पर जाने का भी उसे कोई आनन्द या अनुभव कुछ भी नहीं है । क्योंकि वह अपने एकेन्द्रिय के सूक्ष्मभव में जन्म धारण करके देहधारी बना हुआ है । ऐसी स्थिति में भले ही लोकान्त में सिद्धों का स्पर्श करके वहां रहे या आए-जाए तो भी न किसी प्रकार का आनन्द न किसी प्रकार की अनुभूति आदि कुछ भी नहीं । क्योंकि वह एकेन्द्रिय की जाति में सूक्ष्म देह धारण कर सशरीरी संसारी बनकर बैठा हुआ है । सकर्मी है । इसलिए मात्र ऐसा मत मानीए कि... स्थान क्षेत्र विशेष की प्राप्ति या स्पर्श मात्र से मुक्ति हो जाये, ऐसा नहीं है । परन्तु सही अर्थ में मोक्ष की प्राप्ति कर्म रहित एवं जन्म मरण रहित होने पर ही संभव है । अन्यथा नहीं ।

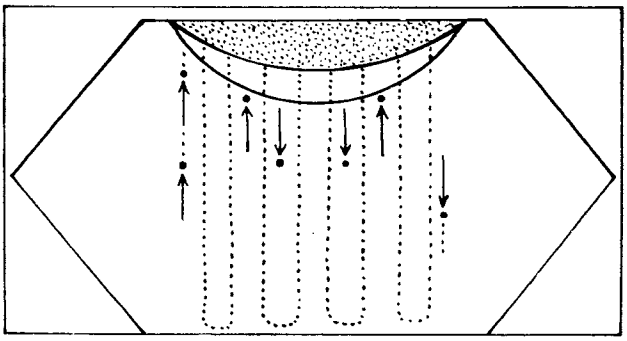

मोक्ष के अनुरुप एवं अनुकूल धर्म—

धर्म तत्त्व की विचारणा करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि जो धर्म मोक्ष के साथ संलग्न हो, अर्थात् मोक्ष के साथ जुड़ा हुआ हो वही धर्म सही अर्थ में धर्म है एवं ऐसा ही धर्म श्रेष्ठ धर्म स्वरूप है । ठीक इससे विपरित जो धर्म मोक्षलक्षी नहीं है उसे धर्म कहना ही उचित नहीं है । जिस धर्म ने न तो मोक्ष का यथार्थ स्वरूप समझाया, तथा न ही मोक्ष प्राप्ति का सही उपाय समझाया उसे धर्म दर्शनादि कुछ भी नहीं कह सकते हैं या फिर ऐसे को भी धर्म कहना या संज्ञा देना या मानना भी मिथ्यात्व है । सर्वज्ञोपदिष्ट इस आर्हत् धर्म में सर्वप्रथम मोक्ष का स्वरूप स्पष्ट किया गया है । सबसे श्रेष्ठ कक्षा की व्यवस्था इस आर्हत् धर्म में सर्वज्ञ वीतरागी भगवन्तों की है । अनन्तगुना उपकार सर्वज्ञ वीतरागी भगवन्तों का है कि... जिन्होंने सत्य की चरम कक्षा का यथार्थ स्वरूप बताया मोक्ष जैसे अदृश्य तत्त्व का सम्पूर्ण सत्य जो अन्तिम कक्षा का होता है वह

बतायां और समस्त लोक के समस्त पदार्थों और तत्त्वों का अन्तिम सत्य उन्होंने बताया । सिद्धान्तों की अन्तिम सच्चाई बताते हुए त्रैकालिक शाश्वतता एक मात्र सर्वज्ञों ने ही बताई है । अत: ऐसे सर्वज्ञों का अनन्तगुना उपकार मानें तो भी कम है ।

सर्वज्ञ भगवन्तों ने स्वयं ने अपने अनन्तज्ञान से जानकर एवं केवल दर्शन से प्रत्यक्ष रूप में सब कुछ देखकर और वीतराग भाव से जगत् के जीवों के सामने स्पष्ट रूप से यथार्थ स्वरूप वर्णन किया है । जिसमें जीव-अजीव से लेकर मोक्ष तक के समस्त तत्त्वों का यथार्थ एवं अन्तिम सत्य स्वरूप बताया है । मोक्ष यह पदार्थ या प्रदेश समूहात्मक पिण्ड रूप द्रव्य विशेष नहीं है । यह मात्र अवस्था स्वरूप पर्याय है तथा पर्याय कभी भी बिना द्रव्य के होती ही नहीं है । निश्चित रूप से किसी न किसी द्रव्य की ही पर्याय होती है । अत: चेतन आत्मा द्रव्य की ही अन्तिम स्थिर स्थायी शाश्वत रूप से अपरिवर्तनशील पर्याय ही मोक्ष है ।

ऐसे मोक्ष में मुक्तावस्था में चेतन आत्मा सर्व कर्मावरण से सर्वथा रहित शुद्धात्मा गुणयुक्त ही होती है । जिसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि सभी गुण अनन्त की कक्षा के पूर्ण रूप में प्रगट रहते हैं । आत्मा का अपना सम्पूर्ण एवं पूर्ण शुद्ध गुण युक्त स्वरूप जानना हो तो एक मात्र सिद्धावस्था से ही जाना जा सकता है । अन्यथा नहीं । वर्तमान में आज हम सिद्ध, बुद्ध मुक्त नहीं है । अत: संसारी है । संसारी, सकर्मी, जन्म, मरणधर्मी, सुख, दु:खानुभवी है । अत: ऐसी संसारी अवस्था में हम अपना सर्वथा शुद्ध स्वरूप नहीं देख सकते हैं । संभव नहीं है ।

अत: हमारी ही सजातीय (समान जातीय) आत्मा मोक्ष में है । अर्थात् मोक्ष में जितनी भी अनन्त आत्माएं है वे सब हमारी आत्मा के समान ही है । यह समानता मात्र द्रव्य की दृष्टि से हैं । जैसा आत्मद्रव्य हमारा है ठीक वैसा ही आत्म द्रव्य उनका भी है । अत: समान जातीय या सजातीय कहा जा सकता है । जैसे संसार में हम किसी का आदर्श हमारे लक्ष्य के सामने रखते हैं ठीक उसी तरह आत्मोत्थान एवं आत्म कल्याण के आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में **"सिद्ध भगवन्तों"** का आदर्श स्वरूप दृष्टि समक्ष लक्ष्य में रखना चाहिए और तदनुरूप धर्माराधना करते हुए उसी शुद्ध सिद्ध स्वरूप एवं अवस्था को पाने के लिए ही यहां आचरणादि युक्त धर्म करना चाहिए ।

ऐसे धर्म का आधार भूत केन्द्र बिन्दु एक मात्र **"सिद्ध"** एवं मोक्ष ही होना चाहिए । अत: मुक्तावस्था में आत्मा के ज्ञानादि गुण जो पूर्ण विशुद्ध स्वरूप में प्रगट है उसी के अनुरूप आचरण वाला ज्ञानाचारादि आचार प्रधान धर्म अपनाना चाहिए ।

1. ज्ञान गुण के अनुरूप ज्ञानाचार धर्म है ।
2. दर्शन गुण के अनुरूप दर्शनाचार धर्म है ।
3. चारित्र गुण के अनुरूप चारित्राचार धर्म है ।
4. तप गुण के अनुरूप तपाचार धर्म है ।
5. अनन्त वीर्य गुण के अनुरूप वीर्याचार धर्म है ।

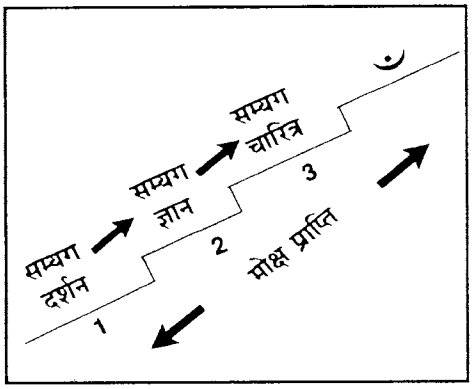

इस तरह ये पंचाचार प्रधान धर्म है । धर्म आचार विचार उभय प्रधान है । अत: ज्ञानाचारादि पंचाचार प्रधान धर्माचरण करने पर ही आत्मा मोक्षावस्था को प्राप्त कर सकती है । आत्मा पर लगे हुए ज्ञानावरणीयादि कर्म जो आत्मा के ज्ञानादि गुणों को ढकने वाले ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि रूप है । उनका क्षय (नाश) ज्ञानाचारादि पंचाचारात्मक धर्म से ही संभव होगा और ऐसे धर्म से ही सर्व कर्म क्षय होकर ज्ञानादि गुणों की पूर्ण प्राप्ति वाली सिद्धावस्था मोक्ष में प्राप्त होगी । इसलिए धर्म हमेशा मोक्ष के अनुरूप एवं अनुकूल ही होना चाहिए । तो ही वह धर्म धर्म है । अन्यथा नहीं । जैसे सुवर्ण की परीक्षा के लिए कसौटी का पाषाण है । इस पर कसे जाने के बाद सोने को जैसे हम खरा या सही शुद्ध कहते हैं । ठीक उसी तरह मोक्ष की कसौटी पर कसने पर जो खरा सही सिद्ध हो उसे सही सम्यग् सच्चा धर्म कहा जा सकता है । अन्य को नहीं ।

सम्यग् दर्शन यह दर्शनाचार धर्म का स्वरूप है जो दर्शनगुण को पूर्ण जगाता है । सम्यग् ज्ञान जो ज्ञानाचार धर्म का स्वरूप है जो आत्मा के ज्ञानगुण का साधक है । इसी तरह सम्यग् चारित्र यह चारित्राचार का धर्म स्वरूप है । जो आत्मा के यथार्थ चारित्र का पूर्ण स्वरूप प्रगट करता है । तत्त्वार्थ सूत्र के प्रथम सूत्र **"सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग:"** इस सूत्र में चारित्राणि में "आणि" जो प्रत्यय है वह अवशिष्ट रहे हुए तप वीर्यादि की तरफ संकेत करता है । अत: वे भी ग्राह्य है । इसे तपाचार और वीर्याचार भी आत्मिक धर्म है । कर्म नाशक धर्म है । इनसे आत्मा के ऊपर लगे हुए अन्तराय कर्म का (साथ ही अन्यों का भी) क्षय होगा और अनन्तवीर्यादि गुण प्रगट होंगे । इस तरह मोक्षार्थी के लिए मोक्ष पाने हेतु यही पंचाचार प्रधान मोक्षानुकूल-मोक्षानुरूप धर्म उपयोगी सिद्ध होगा । अन्य कोई भी नहीं ।

मोक्ष की सीढि रूप 14 गुण स्थान—

यह एक ऐसी सीढ़ी है जिसके 14 सोपान है । इसका प्रथम सोपान संसार का है और अन्तिम सोपान मोक्ष से लगा हुआ है । जैसे बहुमंजिले मकान में प्रथम मंजिल से दूसरी मंजिल पर जाने के सीढ़ी बनी हुई होती है उस पर चढ़कर आसानी से जीव दूसरी मंजिल तक जा सकता है ठीक उसी तरह इन 14 गुणस्थान रूपी सीढ़ी पर चढ़कर जीव संसार में से मोक्ष में जा सकता है ।

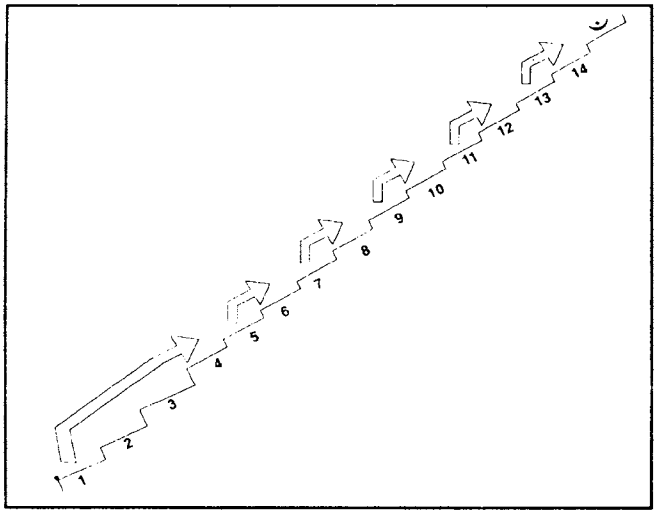

सर्वज्ञ भगवन्तों ने जब मोक्ष का स्वरूप बताया है, वहां सिद्धात्मा का कितना विशुद्ध, कर्मादि दोष रहित एवं कैसा पूर्ण स्वरूप है वह बताया, अनन्त सुख का धाम, सच्चिदानन्द परमानन्द स्वरूप मोक्ष का वर्णन किया और यदि उसकी प्राप्ति का उपाय रास्ता न बताए तो फिर लोमड़ी जैसे अंगूर खट्टे है इतना कहकर निकल जाती है, ठीक वैसे ही हमारे जैसे संसारी जीव मोक्ष का सर्वज्ञ कथित सुन्दर स्वरूप समझ लेंगे, जान लेंगे लेकिन प्राप्ति के उपाय के अभाव में मुंह बिगाड़कर खिसक जाएंगे और ऊपर से लोगों को मोक्ष का ऐसा स्वरूप मात्र काल्पनिक शब्दजाल वाला ही लगेगा । जो अविश्वसनीय बन जाएगा । अत: ऐसा न करते हुए सर्वज्ञ भगवन्तों ने मोक्ष का स्वरूप बताते हुए उसकी प्राप्ति के अनुरूप सही उपाय रूप धर्म का विशुद्ध स्वरूप भी बताया ही है । इसी धर्म का नाम पंचाचारात्मक धर्म है । इसी मोक्ष की प्राप्ति के लिए या मोक्ष तक पहुंचने के लिए जो सीढ़ी विशेष या मोक्ष मार्ग रूप है इसे ही 14 गुणस्थान कहते हैं । इन्हीं 14 गुणस्थानों के सोपानों पर क्रमश: चढ़ता हुआ जीव अन्त में मोक्ष में पहुंचता है । चढ़ने में सहायक माध्यम एक मात्र धर्म ही है और पंचाचार प्रधान आत्म धर्म है ।

मिथ्यात्व की कक्षा में नवकार की साधना—

14 गुण स्थानों के सोपानों में प्रथम सोपान मिथ्यात्व का है । संसार के अनन्त जीव इस मिथ्यात्व के गुणस्थान पर है । समस्त जीवों की प्रथमावस्था ही मिथ्यात्व की रहती है । निगोद के अनन्त जीव अनन्तकाल से मिथ्यात्व की ही अवस्था में पड़े हैं । संसार के व्यवहार के चक्र में आने के बावजूद भी एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय जीव भी मिथ्यात्व की कक्षा में ही रहते हैं । मिथ्यात्व से बाहर निकल कर जब जीव चौथे सम्यक्त्व के गुणस्थान पर आता है तब मोक्ष की सही दिशा में उसका प्रयाण होता है । तब जीव मोक्ष सन्मुख होता है । अन्यथा मिथ्यात्व की अवस्था में मोक्ष की दिशा से सर्वथा विपरीत रहता है ।

मिथ्यात्व की अवस्था में ऐसे ही सम्यक्त्व की कक्षा प्राप्त होती है । अत: इस मिथ्यात्व की कक्षा में बैठा हुआ जीव ऐसा क्या करें कि जिसके कारण सम्यक्त्व की प्राप्ति की दिशा में आगे बढ़ सके और मोक्ष सन्मुख हो सके । सारा प्रयत्न जीव को मिथ्यात्व के घर में बैठकर ही करना पड़ता है । अत: जीव जब मिथ्यात्वी होता है तब पंचेन्द्रिय की संज्ञी कक्षा में चारों गतियों में कहीं न कहीं देव, गुरु, धर्म का संयोग प्राप्त करता है । देव गुरु की संगत में उनके सत्संग में आता है । सर्वप्रथम उन्हें नमस्कारादि करता है । भले ही अनिच्छा से क्यों न हो ? किसी मित्रादि के साथ ही क्यों न हो ? वह सम्पर्क में आकर नमस्कार आदि करने लगता है । कार्यवश भी वह उनके साथ जुड़ता है और आशीर्वाद आदि के रूप में भी वह नवकार महामंत्र प्राप्त करता है या देव गुरु को नमस्कारादि करता है ।

इस विषय में नयसार, धन सार्थवाह आदि अनेकों के उदाहरण मौजूद हैं । जैन चरित्र ग्रन्थों में तीर्थंकर भगवन्तों के चरित्रादि अनेक चरित्र ऐसे हैं जिनकी गहराई में आद्य कारण भूत स्वरूप ऐसा ही मिलेगा । कोई ऐसे प्रबल निमित्त स्पष्ट प्रतीत होंगे जिनमें मिथ्यात्वी जीवों का देव-गुरु के सम्पर्क में आना, उन्हें नमस्कारादि करना तथा उन जीवों को देव गुरु की तरफ से नवकार मंत्रादि की प्राप्ति होना इत्यादि है । उदाहरणार्थ भगवान महावीर प्रभु के जो 27 भव हुए हैं उनमें सर्वप्रथम भव नयसार का था । महाविदेह क्षेत्र में एक लकड़हारे के रूप में वह गांव का मुखिया भी था । मिथ्यात्व की कक्षा में गृहस्थाश्रम में अपना जीवन गुजारता था । योगानुयोग एक दिन जंगल में लकड़ियां काटने के समय पथ भूले साधु, मुनिराजों के सत्संग में आया । नैतिकता के गुणों की सज्जनता दिखाते हुए नयसार ने जंगल में साधुओं को देखते ही नमस्कार किया । थके हुए एवं ताप में तप्त मुनियों को वृक्ष की छाया के भाग में लाकर विश्राम कराया । आहार दान किया । नैतिकता, सज्जनता, नम्रतादि गुणों का समुचित व्यवहार देखकर साधु, मुनिराज ने धर्मलाभ का कल्याणकारी आशीर्वाद दिया ।

ऐसे समय में धर्म शब्द को सुनते ही धर्म के विषय में जानने की जिज्ञासा से नयसार ने पुन: पूज्यश्री को पूछा और मुनि भगवंत ने अरिहंतादि देव, आचार्यादि गुरु ऐसे पंच परमेष्ठी भगवन्तों का परिचय दिया तथा उन्हें नमस्कार करने का धर्म बताया तथा देव गुरु धर्म तीनों के संयुक्त स्वरूप वाले महामंत्र नवकार की पाप नाशकता एवं महा मांगलिकता समझा कर नवकार मंत्र नयसार को दिया । नयसार ने जपादि किया । बस, मिथ्यात्व की ही भूमिका में रहकर महामंत्र को प्राप्त करके, सम्यग् दर्शन प्राप्ति की प्रक्रिया में आगे बढ़े । यथाप्रवृत्तिकरणादि की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई और राग, द्वेष की निबिड ग्रन्थी का भेदन करके सम्यग् दर्शन प्राप्त करता है । इस सम्यक्त्व के बीज का वपन हो जाने से जीव का मोक्ष भी निश्चित हो जाता है । अब जीव मोक्षाभिमुख हो गया । अर्थात् पहले मिथ्यात्व के गुणस्थान से आगे निकलकर चौथे सम्यक्त्व के गुणस्थान पर जीव पहुंचता है । पहुंचने की इस प्रक्रिया में सम्यग् दर्शन की प्राप्ति में देव, गुरु धर्ममय नवकार महामंत्र की भूमिका कितनी आधार भूत लगती है ?

नयसार का चरित्र एक दृष्टान्त रूप है । इसी तरह संसार के समस्त जीवों के बारे में है । ऐसा ही क्रम समझना चाहिए । निमित्त कुछ भी अलग-अलग प्रकार के हो सकते हैं । बदल भी सकते हैं । उन निमित्तों में जंगल में मुनि महात्माओं का मिलना हो या मुनिराजों को भिक्षा देना हो, या अन्य भी कोई निमित्त हो सकता है । लेकिन प्रासंगिक घटना के निमित्त बदलते रहने के बावजूद भी आंतरिक यथाप्रवृत्तिकरणादि की प्रक्रिया समान रूप ही है । सभी आत्माओं के लिए समान रूप होने से यह सिद्धान्त रूप से सबके लिए है । इस तरह मिथ्यात्व के गुणस्थान पर रहकर अनेक जीव नवकार महामंत्र प्राप्त करते हैं और उससे आगे बढ़ते हैं ।

मिथ्यात्व के घर में रहते हुए भी महामंत्र नवकार की प्राप्ति कई जीवों को हो जाती है । परन्तु इस कक्षा में सच्ची श्रद्धा नहीं बन पाती है । बिना सम्यग् दर्शन की प्राप्ति के सच्ची श्रद्धा का होना संभव ही नहीं है । मिथ्यात्व के घर में ज्ञान भी विपरीत और मिथ्या रहता है और श्रद्धा भी मिथ्या विपरीत कक्षा की होती है । ऐसे समय में दु:ख, दर्द, संकटादि को टालने का और सुख सम्पत्ति आदि प्राप्त करने का लक्ष्य रहता है । आखिर मिथ्यात्वी भी है तो मनुष्य ही । घरबारी गृहस्थी है । पारिवारिक, शारीरिक, आर्थिक आदि अनेक प्रकार के कर्मजन्य दु:ख, दर्द, संकटादि सबके जीवन में रहते ही है । सिर्फ उनको किस तरह सहन करना ? किस स्वरूप में समझना ? किस तरह दूर करना आदि विषयों में सम्यक्त्वी और मिथ्यात्वी दोनों के भिन्न-भिन्न रवैये होते हैं । ऐसी स्थिति में दु:ख, दर्द, संकटादि को टालने की प्रबल इच्छा के आधीन होकर कई जीव अन्ध श्रद्धा के कारण नवकार महामंत्र तथा देव, गुरु, धर्मादि का भी अनुचित उपयोग करता रहता है । अत: मिलने की कोई सार्थकता सिद्ध नहीं होती है । लेकिन ऐसा करते-करते भी जब सही सत्य स्वरूप समझने पर जीव "सव्व पावप्पणासणो" की दिशा में आगे बढता है तब जाकर देव, गुरु, धर्म का सही उपयोग होता है । आत्मा पर से कर्मावरण के स्तर कम होते हैं और जीव आगे बढ पाता है । इस तरह मिथ्यात्व के गर्त में से जीव को बाहर निकालने में और सम्यक्त्व प्राप्त कराने में नवकार महामंत्र तथा देव गुरु धर्मादि की उपयोगिता काफी अच्छी सिद्ध होती है ।

सम्यग् दर्शन के चौथे गुणस्थान पर नवकार—

मिथ्यात्व के गर्त में से जीव चौथे सम्यग् दर्शन के गुणस्थान पर आया हुआ सम्यक्त्वी श्रद्धालु बना हुआ जीव अब देव, गुरु, धर्म का आलंबन लेकर, उनकी भक्ति, पूजा, दर्शन, उपासना, आराधनादि करता हुआ ही सम्यग् दर्शन को टिका सकता है । निर्मल कर सकता है । सुरक्षित रख सकता है । अन्यथा सम्यक्त्व वापिस चला जा सकता है । इसलिए सम्यग् दर्शन प्राप्त करने के पश्चात् इसे संभालकर रखना अत्यन्त आवश्यक है । इसकी हिफाजत करना अनिवार्य है । अनन्त जन्मों और अनन्त काल के बाद पाए सम्यग् दर्शन रूपी रत्न को प्राणों से भी ज्यादा संभालना चाहिए । यहां तक कि प्राण भले ही चले जाय लेकिन सम्यक्त्व नहीं ही जाना चाहिए । बाहरी रत्न जो हीरे मोती आदि होते हैं उनकी सुरक्षा अलमारी, तिजोरी में रखकरभी की जा सकती है । लेकिन ये जो सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्र रूपी रत्नत्रयी है इनकी सुरक्षा अन्तर आत्मा के भावों-शुभ अध्यवसायों से ही हो सकती है ।

नित्य नमस्कार महामंत्र का जप, स्मरण, ध्यान आदि में देव, गुरु और धर्म इन तीनों तत्त्वों का सुन्दर स्मरण होता है । देव, गुरु के प्रति हम नत मस्तक होते रहते है । तत्त्वों का चिन्तन होता रहता है । आत्म दर्शन की अनुभूति होती रहती है । सबसे बड़ा विशेष फायदा यह भी है कि देव, गुरु, धर्म के प्रति अहोभाव, पूज्यभाव बढ़ता रहता है । अभाव या दुर्भाव नहीं होता है । सम्यक्त्व के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है । नमो भाव यह अहोभाव, पूज्यभाव का द्योतक है । निमित्त कारण रूप है । इसलिए नमस्कार बढ़ती हुई श्रद्धा एवं बढ़ते हुए अहोभाव पूज्यभाव पूर्वक ही होना चाहिए । इस तरह सम्यग् दर्शन का आधार नमस्कार और नमोभाव है । अरे ! पूर्ण नवकार है । यदि सम्यक्त्वी इस प्रकार नवकार का जप-ध्यान स्मरणादि न करे, देवाधिदेव अरिहंतादि का दर्शन वंदन, पूजन, नमन, स्मरणादि एवं गुरु भगवन्तों के प्रति वंदना, प्रवचन श्रवण, आहार प्रदान आदि न करे तो सम्यग् दर्शन टिकेगा कैसे ? स्थिर रूप से रहेगा कैसे ? घड़ी के लोलक जैसा यह चला जाने की संभावना पूरी रहती है । अत: जिन देव, गुरु धर्मादि पर आधार है उनका ही विस्मरण संभव है कि पुन: मिथ्यात्व के घर में ले जाये । इस तरह चौथे गुणस्थान पर नवकार

महामंत्र की आराधना, देव, गुरु और धर्मादि का स्मरणादि होता रहता है । यह चौथा गुणस्थान श्रद्धा का है । यहां नवकार की आराधना भक्ति सब करते रहते हैं । नित्य दर्शन, पूजा, पाठ, माला, जापादि ये श्रद्धा के प्रतीक है । चौथे गुणस्थान की क्रिया प्रवृत्ति है ।

पांचवें गुणस्थान पर नवकार—

चौथे गुणस्थान अविरत सम्यक् दृष्टि में श्रद्धा प्रधान है । पांचवें गुणस्थान में देशत: विरति है । अर्थात् 4थे गुण स्थान में से जो सम्यक् श्रद्धा थी वह 5वें गुण स्थान पर आचरण में परिणत हो गई । क्रियान्वित हो गई । देव, गुरु वे ही है । धर्म की आराधना का प्रमाण बढ़ता गया तथा मोक्षार्थी का सबसे प्रथम आचरण पाप निवृत्ति का है । मोक्ष का प्रथम सोपान यहां 5वें गुण पर शुभारम्भ होता है । थोड़े प्रमाण में ही सही जीव पापों की प्रवृत्ति छोड़ने लगता है । सव्व पावप्पणासणो में जहां सब पाप कर्मों का क्षय-नाश करना है वहां नए पाप क्यों बांधे ? यदि रोज पाप करते ही जाएंगे और कर्म बढ़ाते ही जाएंगे तो भविष्य में कितने ज्यादा प्रमाण में कर्म खपाने पड़ेंगे ? इसकी अपेक्षा सबसे अच्छा तो यही है कि आज से नए पाप कर्म न बढ़ाएं । आज से ही पाप कर्म छोड़ने लग जाएं । ताकि पाप होंगे ही नहीं तो कर्म बंधेंगे कहां से ? और कर्म बंधे हुए ही नहीं होंगे तो क्षय-नाश करने का सवाल ही खड़ा नहीं होगा । इसलिए भविष्य में कर्मों को खपाने की मेहनत करने की अपेक्षा आज यदि हम पापों की प्रवृत्ति करना ही छोड़ दें तो कितनी समझदारी होगी ? इसी में बुद्धिमता है । इसलिए पांचवें गुणस्थान वाला साधक धीरे-धीरे पाप प्रवृत्तियों का त्याग करता हुआ, उन्हें छोड़ता हुआ, अपनी आत्मा का नियमन करता है । लेकिन वह गृहस्थी है । अत: पत्नी, पुत्रादि परिवार की एवं आजीविका की प्राधान्यता एवं जिम्मेदारी आदि सिर पर रहने के कारण कुछ थोड़े प्रमाण में ही पाप प्रवृत्ति छोड़ पाता है । सम्पूर्ण रूप से सब पापों से सर्वथा निवृत्त नहीं होता है ।

धर्म प्रवृत्ति, निवृत्ति उभय प्रधान है । क्या-क्या करना है यह प्रवृत्ति प्रधान धर्म है तथा क्या-क्या नहीं करना है यह निवृत्ति प्रधान धर्म है । 5वें गुण. पर देश अर्थात् कुछ कम प्रमाण में विरति धारण करता है । वह साधक श्रावक बनता है । देव, गुरु, धर्म की आराधना प्रधान प्रवृत्ति करता है और हिंसा, झूठ, चोरी आदि पाप कर्मों की निवृत्ति करता है । नवकार की साधना यहां चौथे की अपेक्षा 10 गुनी ज्यादा बढ जाती है । 12 व्रतधारी बना हुआ श्रावक नवकार के प्रति एवं अरिहन्तादि पंच परमेष्ठी भगवन्तों के प्रति समर्पित बन जाता है और नवकार जपते-जपते वह भी परमेष्ठी बनने की भी भावना रखता है ।

छट्ठे गुण स्थान पर परमेष्ठी बनना—

आज दिन तक 4थे और 5वे गुण स्थान पर मात्र देव गुरुओं को नमस्कार करता रहा... लेकिन भावना के तीव्र उछाले के आधार पर साधक स्वयं परमेष्ठी बनने की भूमिका निर्माण करता है । आखिर कहां तक ? कितने जन्मों और कितने लम्बे काल तक नमस्कार करते ही रहना ? आध्यात्मिक साधना भेद से अभेद की तरफ ले जाती है । नमस्कारकर्ता अर्थात् नमस्कार करने वाला ही बने रहने में नमस्कारणीय परमेष्ठी से भिन्न-भिन्न अलग रहना पड़ता है । अत: 6ट्ठे गुण. पर कर संसार का त्याग करके साधु बन जाता है । पंच परमेष्ठियों में बनने का क्रम नीचे से अर्थात् सार्धु पद से हैं । कोई भी साधु बनकर ही परमेष्ठी की कक्षा में प्रवेश कर सकता है । आज दिन तक स्वयं अन्यों को नमस्कार करता था । लेकिन अब स्वयं ही साधु स्वरूप में नमस्कारणीय बन गया । अत: दुनिया उन्हें नमस्कार करेगी तथा स्वयं भी नमस्कार करता रहेगा । इस तरह नमस्करणीय एवं नमस्कारकर्ता की दोनों कक्षा प्राप्त कर ली है छट्ठे गुण. के साधक ने ।

साधु नवकार को समर्पित हो चुका है । देव गुरु के चरणों में जीवन समर्पित करके पाप प्रवृत्तियों के त्याग के लक्ष्य को चरितार्थ कर लिया है । मृत्यु की अन्तिम श्वास पर्यन्त नाम मात्र भी कोई पाप न करने की भीष्म प्रतिज्ञा छट्ठे गुण. के साधक की रहती है । सव्व पावप्पणासणो अर्थात् समस्त पाप कर्मों का समूल नाश करने के लिए इस साध्य को साधने के लिए कमर कसने वाला साधु दुहेरी साधना करता है । एक तरफ से नए पाप कर्म नाम मात्र भी नहीं करना इसमें आश्रव का निरोध करने रूप संवर धर्म का पालन करता है तथा साथ ही साथ दूसरी तरफ निर्जरा-कर्म क्षय करने के लिए "सव्व पावप्पणासणो" के साध्य को चरितार्थ करता है । क्योंकि साधक सम्यग् दर्शन और ज्ञान से यह अच्छी तरह जानता है कि... यही मोक्ष का मार्ग है । इसी पर क्रमश: आगे बढने पर मोक्ष की प्राप्ति होगी । अन्यथा संभव ही नहीं है ।

छट्ठे गुण. का मालिक साधु स्वयं भी नमस्कार महामंत्र का जप, ध्यान, स्मरणादि करता रहता है । अपने से ऊंचे अनेक हैं । अरिहन्तादि परमेष्ठी महान कक्षा पर बिराजित है । उन्हें नमस्कार करता है । सांसारिक कक्षा में पद-पदवियां और उपाधि, प्रतिष्ठादि जो प्राप्त करते हैं उसमें मान अहंकारादि खूब बढ़ते हैं । राग, द्वेष, कषायादि की काफी वृद्धि होती है । उस पद की स्थिरता सदा संशयास्पद रहती है । सत्ता की खींचातानी में पद सत्ता हाथ से चली जाती है । लेकिन इसके सामने आध्यात्मिक कक्षा में एक-एक पद जो प्राप्त होते हैं वे अन्तरंग शुद्धि के बल पर होते हैं । कर्मक्षय जन्य है वे, अत: ऐसे पदों पर राग, द्वेष, कषायों की मात्रा क्षीण होती ही जाती है । अत: पुन: उनके प्रादुर्भाव का कोई प्रश्न ही नहीं

उठता है । स्वयं साधु के पद पर रहते हुए भी अन्य साधुओं को नमस्कार करता रहे तथा आगे के आचार्य उपाध्याय, पद पर रहकर भी अपने से छोटे होने पर भी साधुओं को नमस्कार नवकार के पद स्मरण से करते हैं । यद्यपि लोक व्यवहार की तरह आचार्य महाराज, साधु मुनिराज को नमस्कार-वंदन नहीं करते हैं । लेकिन आचार्य आदि भी नवकार महामंत्र का स्मरण जपादि करते समय "नमो लोए सव्व साहूणं" पद बोलते हुए साधु मुनिराजों को नमस्कार करते हैं ।

यहां साधु व्यक्ति विशेष का विचार नहीं है । साधु पद की गरिमा है । यहां वह प्रश्न नही है कि... आचार्य बड़े हैं और साधु छोटे हैं अत: बड़े छोटे को नमस्कार क्यों करें ? नहीं कर सकते हैं । ऐसा भी नहीं है । बड़े पद पर पहुंचने पर नम्रतादि के गुण भी बड़े प्रमाण में बढ़ते हैं । मान, अभिमानादि कषाय तो पाप कर्म है । इनके बढने से अनर्थ अहित होता है । जबकि नम्रतादि के गुण बढने पर आत्मा को अनेक गुना लाभ होता है । अत: आचार्य, उपाध्यायादि जो साधु से काफी बड़े हुए हैं, बड़ा पद प्राप्त करते हैं अत: उनके गुण भी काफी बड़े बन जाते हैं । अत: आचार्यादि साधु पद पर रहे हुए अनेक महान आत्माएं है उनको नमस्कार करते हैं । यह नमस्कार महामंत्र-नवकार के स्मरण से होता है ।

सातवें अप्रमत्त गुणस्थान पर साधना—

आध्यात्मिक विकास यात्रा पर क्रमश: एक-एक सौपान आगे बढ़ते हुए छट्ठे गुणस्थान का मालिक साधु सातवें गुण पर आकर साधु की साधुता में और चार चांद लगाता है । वह अप्रमत्त बनता है । बात भी सही है कि... प्रमाद खतरनाक है । कर्म बंध का हेतु है । कारणभूत है । काफी कर्म बंधाता है तथा कर्म बंध पाप प्रवृत्ति करने से ही होगा । अत: छट्ठे गुण पर रहे हुए साधु मुनिराज ने यह अनुभव कर लिया है कि प्रमाद अनेक गुना कर्म बंधाता है । पाप कराता है । मोक्ष के समीप जाने में पाप कर्म अवरोधक बाधक बनता है । इसलिए साधक साधु प्रमाद छोड़ता है और अप्रमत्त बनता है । जैसे ही अप्रमत्त बनता है कि तुरन्त 7वां गुणस्थान प्राप्त होता है । बाह्य प्रवृत्तियों से अलिप्त रहता है । अनुप्रेक्षात्मक चिन्तन, भावनाएं भाना तथा जाप से आगे बढ़कर ध्यान में स्थिर होने की कक्षा प्राप्त करता है । अब द्रव्य नमस्कार या बाह्य नमस्कार मात्र ही नहीं रहता है । आभ्यन्तर कक्षा का भाव नमस्कार ऊंची कक्षा का बन जाता है तथा अरिहन्तादि पंच परमेष्ठीमय स्वरूप सामने आता है ।

आठवें गुण स्थान से मुक्ति का निश्चय—

मोक्ष प्राप्ति की दिशा में आगे बढ़ता हुआ मोक्षार्थी साधक कुछ ऐसी प्रबल आत्मशक्ति का स्फुरण करता है जिसके कारण वह 8वें अपूर्वकरण गुणस्थान पर आरूढ होता है । नवकार को चरितार्थ करने वाला साधक "सव्व पावप्पणासणो" के 7वें पद को लक्ष्य-साध्य बनाकर विशेषकर "सव्व पाव" शब्द पर ज्यादा ध्यान देता है । समस्त पाप कर्मो का समूल नाश करने का एक मात्र लक्ष्य लेकर आगे बढ़ता है । इसी 8वें गुणस्थान पर श्रेणी के श्रीगणेश करता है और क्षपक श्रेणी प्रारम्भ करता है । क्षपक श्रेणी का सीधा अर्थ एवं तात्पर्य मात्र "सव्व पावप्पणासणो" का ही है । सब पाप कर्मो का समूल सर्वथा नाश करना है । इसके लिए अरिहंतादि देव और गुरु आदि का ध्यान में पूरा आलंबन लेता है । साधक भारी अग्नि की ज्वाला के समान बलवत्तर ध्यान की अग्नि प्रदिप्त करता है । इस ध्यानानल से भारी अनेक कर्मो का विपुल प्रमाण में क्षय करता हुआ आगे बढ़ता है । 2 घड़ी-48 मिनटों का यह खेल है ।

आगे 9वें, 10वें गुणस्थानों पर पहुंचकर ध्यान की धारा में और तीव्रता लाता है । कर्म निर्जरा का प्रमाण भी उसी हिसाब से बढ़ता जाता है । कषाय मुक्त बन जाता है । कर्मो को शमाने या राख के ढेर के नीचे छिपाने की वृत्ति न होने से क्षपक श्रेणी वाला साधक 11वां गुणस्थान छोड़ कर सीधा 12वें गुण स्थान पर जाता है । 12वें गुण स्थान के अन्त में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तरायादि कर्मो की समस्त प्रकृतियों का समूल क्षय करके 13वें गुणस्थान पर पहुंचकर साधक स्वयं वीतराग सर्वज्ञ बन जाता है । साध्य रूप अरिहन्तादि का जो स्वरूप होता है वह साधक खुद प्राप्त कर लेता है । 13वें गुण स्थान पर तीर्थंकर भगवान भी होते हैं और यह साधक भी 13वें गुण स्थान पर पहुंच गया । वहां दोनों समकक्ष हो गये । मात्र तीर्थंकर नामकर्म की पुण्य प्रकृति ही तीर्थंकर भगवान के जीवन में विशिष्ट कक्षा की है । उसके उदय से समवसरणादि की रचना होती है । सामान्य साधक जो 13वें गुण स्थान पर पहुंचा है । उसको वह प्राप्त नहीं होगा । परन्तु आत्मा के अन्दर के आत्मिक गुण वैभव में कहीं किसी भी प्रकार की न्यूनता नहीं रहती है । आगे 14वें गुण स्थान पर योग निरोध शैलेशीकरण करके देह छोड़कर निर्वाण पाकर मोक्ष में जाकर सिद्ध बन जाते हैं । साधक साधना के बल पर साधन की सहायता से स्वयं सिद्ध बन जाता है ।

इस तरह 14 गुणस्थान जो मोक्ष मार्ग तक पहुंचने का राज मार्ग है । इस साधना के पथ पर नवकार महामंत्र की साधना कितनी उपयोगी एवं उपकारी सिद्ध होती है यह प्रस्तुत लेख से समझकर साधना को धारदार बनाना हितावह है । नवकार गिनना, गुणना और नवकारमय बनना तथा आगे पंचपरमेष्ठी के पदों पर साधक स्वयं बिराजमान हो सकता है । नवकार की साधना साध्य को साधने में कितनी सहायक बनती है यह इससे समझकर आगे बढना श्रेयस्कर है ।

"लोए" शब्द से अभिप्रेत—"मनुष्य लोक"

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

— श्री नमस्कार महामंत्र के नौं पदों में बीच का पद पांचवां "नमो लोए सव्व साहूणं" है । अन्य ऊपर के 4 पदों में "लोए" और "सव्व" शब्द का प्रयोग नहीं करके सिर्फ एक पांचवें पद में ही है । जिससे पुनरावृत्ति न रहे । फिर भी पश्चानुवृत्ति के आधार पर पांचवें पद के शब्दों की अनुवृत्ति पहले के 4, 3, 2 और पहले पद में भी करके अर्थ का विस्तार किया जाता है । लोए और सव्व शब्दों का निवेश सभी पदों में बीच में किया जा सकता है । तब नवकार के पदों का स्वरूप एवं अर्थ इस प्रकार होगा—

1. नमो लोए सव्व अरिहंताणं — लोक में रहे हुए सभी अरिहन्तों को नमस्कार हो ।
2. नमो लोए सव्व सिद्धाणं — लोकान्त में रहे हुए सभी सिद्धों को नमस्कार हो ।
3. नमो लोए सव्व आयरियाणं — लोक में रहे हुए सभी आचार्यों को नमस्कार हो ।
4. नमो लोए सव्व उवज्झायाणं — लोक में रहे हुए सभी उपाध्यायों को नमस्कार हो ।
5. नमो लोए सव्व साहूणं — लोक में रहे हुए सभी साधुओं को नमस्कार हो ।

ध्यान में साक्षात्कार—

जप करते समय सुन्दर एकाग्रता आ जाय और इसी तरह ध्यान करते समय स्थिरता आने पर नवकार महामंत्र के जप, स्मरण किसी रूप में उपयोग करते समय पद के अर्थ से अभिप्रेत जो क्षेत्रादि होते हैं वहां तक आंतर दृष्टि पहुंचाने से सारा दृश्य दृष्टि समक्ष प्रत्यक्ष उपस्थित होता है । तब जाकर सबका साक्षात्कार होता है । सब कुछ स्पष्ट होता है । मानस चित्र में उपसता है । ऐसे समय में ध्याता, साधक अपने आप का विस्मरण कर देता है । ध्यान की धारा में स्थिर हो जाता है । जिस मंत्र या तत्त्व या पदार्थ का आलंबन लिया होता है उनका साक्षात्कार करने लगता है । मानस चित्र आन्तर पटल पर उपस्थित होता है । ध्याता साधक उन्हें इस तरह देखता है मानों आखों के सामने खड़ा हो और बाते कर रहा हैं । यह ऐसी तल्लीनता है जिसमें साधक स्वयं सब कुछ खो बैठता है । विस्मृत हो जाता है बाह्य जगत् । आत्म साक्षात्कार में अपनी आत्मा ध्येय के तदाकार बनती है, अर्थात् आत्मा तद् ज्ञेयाकारता धारण करती है । उपयोग साध्य विषय के अनुरूप उपयोग से तदाकार बनती है आत्मा । यही सच्चा ध्यान है । अपने रागादि भावों के विकार यहां बीच में आ ही नहीं सकते हैं और व्यवधान डाल ही नहीं सकते हैं । ऐसे साक्षात्कार का अप्रतीम आनन्द आता है । यह आनन्दानुभूति शब्दों में अभिव्यक्त करना असंभव सा होता है । अवर्णनीय होता हैं । ध्यान की धारा बढ़ती ही जाय और प्रतिक्षण विशुद्धि बढ़ती जाय तब दृश्य विषय के अनेक तत्त्व स्पष्ट होते जाते हैं । खुलते जाते हैं ।

लेकिन यह तब संभव होता है जब ध्यान का आधार भूत ज्ञान सम्यग् हो । बिल्कुल सही हो । अन्यथा अनर्थ होगा । मोहनीय कर्म के राग द्वेष से अभिभूत ज्ञान असत्य, अतत्त्व का होगा तो आर्त-रौद्र ध्यान हो जायेगा । जो भारी कर्म बंध भी कराएगा । अत: ज्ञान का सही सम्यग् तात्त्विक होना यह अत्यन्त आवश्यक है । मूलभूत अनिवार्यता है । इसीलिए ज्ञानी ही ध्यान कर सकता है । अज्ञानी जो ध्यान करेगा वह मोहाभिभूत राग-द्वेषात्मक आर्त रौद्र ध्यान करके कर्म बांधेगा ।

जी हां, ज्ञानी अनेक प्रकार के होते हैं । अनन्त ज्ञानी भी होते हैं और अनन्तवे भाग के पदार्थ के ज्ञान वाले ज्ञानी भी होते ही है । ज्ञान चाहे कम हो, ज्यादा हो लेकिन सम्यग् सही ही होना चाहिए । तिल का एक दाना भले छोटा सा हो लेकिन वह रेती कंकड़ का कण नहीं होगा तो उसमें से जरुर तेल निकलेगा और 1 दाना, 10 दाने, 1000 तिल, 1 लाख तिल, 1 करोड़ तिल भी होंगे तो बराबर तेल उतने प्रमाण में निकलेगा । ठीक उसी तरह 1 तत्त्व का सम्यग् ज्ञान हो या अनेक तत्त्वों का ज्ञान हो, परन्तु वह विशुद्ध कक्षा का सर्वज्ञ कथित तत्त्व का सम्यग् सही ही होगा तो ज्ञाता को ध्यान की कक्षा में ध्यान में शुभ ध्यान सही होगा । यदि नहीं होगा या मिथ्या विपरीत होने पर मोह ग्रस्त हो जाएगा और राग, द्वेष कारक बन जायेगा । परिणाम स्वरूप आर्त रौद्र का अशुभ ध्यान हो जाएगा । जो भारी कर्म बंध कराएगा । शुभ ध्यान में मात्र धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान की गणना होती है ।

पंच परमेष्ठियों के निवास स्थान—

किसी को नमस्कार भले दूर से ही करना हो तब भी उनका निवास क्षेत्र कौनसा है ? कहां है ? का ध्यान रहना चाहिए । यदि हम यहां से कुछ वस्तु या पत्र या संदेशादि किसीको भिजवाना है तो हमें उनका निवास स्थान या क्षेत्रादि मालूम होना जरुरी है । अत: क्षेत्र की दृष्टि से नमस्करणीय पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के स्थान क्षेत्र विशेष का ख्याल नमस्कारकर्ता साधक को हो तो वह अपने क्षेत्र में रहकर भी दूर, सुदूर क्षेत्र में रहे हुए अरिहन्तादि परमेष्ठी भगवन्तों का अवलोकन दर्शन सही कर पाएगा । अन्यथा मानस पटल पर चित्र उपस्थित कैसे होगा ? नमो अरिहन्ताणं मंत्र पद बोलने पर अरिहंत भगवान कहां हैं ? कहां विचर रहे हैं ? कहां बिराजमान है ? इत्यादि स्थान निर्देश से मन वहां तक पहुंच सकता है । अरिहन्त भगवन्तों का विचरण क्षेत्र कौन सा है ? उत्पत्ति क्षेत्र कौन सा है ? इसी तरह सिद्ध भगवन्तों का क्षेत्र कौन सा है ? सिद्ध कहां रहते हैं ? क्योंकि लोक बहुत बड़ा है ।

'लोक' 14 राजलोक के विस्तार वाला है । जो 3 विभाग में विभक्त है । ऊर्ध्व... अधो और तिर्छा लोक अनादि अनन्तकालीन शाश्वत स्वरूप वाला है । इसका विस्तार असंख्य योजनात्मक है । जीवों की निर्धारित क्षेत्रों में रहने आदि की भी शाश्वत व्यवस्था है । कालातीत को शाश्वत कहते हैं । अनुत्पन्न अविनाशी अवस्था शाश्वत कहलाती है । आज भी वही क्रम और वही व्यवस्था वही चल रही है । भिन्न-भिन्न जीवों के निश्चित् एवं निर्धारित स्थान क्षेत्र होते हैं । 14 राज लोक के ऊर्ध्व लोक में मात्र देवताओं के ही रहने की व्यवस्था है । ऊर्ध्व लोक जो 7 राज लोक प्रमाण है । जिसमें कल्पोपपन्न के 12 देव लोक है और कल्पातीत में 9 ग्रैवेयक के और 5 अनुत्तर के मिलाकर 14 देवलोक है । अनादि अनन्त काल से इन 26 देवलोकों में एक मात्र वैमानिक निकाय के देवता ही रहते हैं तथा अनन्त भविष्य में भी इसी तरह रहेगा । 7 राज लोक प्रमाण अधो लोक में 7 नरक पृथ्वियां है । इन सातों में एक मात्र नारकी जीव ही रहते हैं । 3 नरक तक परमाधामी देवता रहते हैं वे भवनपति की जाति के देवता है । यह भी उनकी शाश्वत व्यवस्था है बीच के मध्यवर्ती लोक को मनुष्य लोक या तिर्यग् लोक नाम दिया गया है । क्योंकि वह मनुष्यों तथा तिर्यंच पशु-पक्षी का निवास क्षेत्र है । मात्र ढाई द्वीप समुद्र तक ही मनुष्यों का वास है । असंख्य द्वीप समुद्रों में तिर्यंच पशु-पक्षियों का वास है । यह भी शाश्वत व्यवस्था है । इसी तरह समस्त चौदह राज लोक के ऊपरी अग्र भाग पर जिसे हम लोकान्त कहते हैं या लोकाग्र भी कहते हैं । वहां ढाई द्वीप मनुष्य क्षेत्र के 45 लाख योजन के माप प्रमाण बराबर 45 लाख योजन विस्तार वाली सिद्धशिला है । इस सिद्धशिला के ऊपर लोकान्त अर्थात् जहां से अलोक का प्रारम्भ होता है उसे ऊपरी भाग से स्पर्श करके अनन्त सिद्ध भगवन्तों का वास है ।

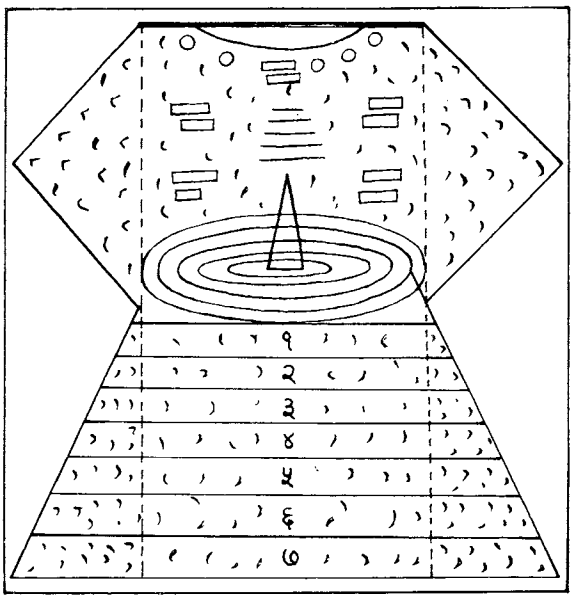

छोटे से क्षेत्र में अनन्त सिद्ध—

अनन्त ज्ञानी सर्वज्ञ भगवन्तों ने अपने केवलज्ञान से बताया कि वैसे समस्त 14 राज लोक के सम्पूर्ण लोक में निगोद के असंख्य गोले हैं । इसमें प्रत्येक में अनन्त अनन्त जीव रहते हैं । सूक्ष्म से स्थूल बादर बने हुए आलू, प्याज आदि में भी अनन्त जीव एक साथ एक शरीर में रहते हैं । यहां शरीर एक है, क्षेत्र भिन्न-भिन्न है और अनन्त जीव पिण्डीभूत होकर एक साथ रहते हैं । जीते हैं । लेकिन क्षेत्र की दृष्टि समस्त 14 राज लोक में एक मात्र लोकान्त का वह भी सिर्फ 45 लाख योजन का ही सीमित परिमित क्षेत्र है जहां अनन्त सिद्धात्मा एक साथ रहती हैं । ये अशरीरी अकर्मी है । अत: एक शरीर में रहने का प्रश्न नहीं है । परन्तु एक क्षेत्र में जरूर रहते हैं । वह भी लोक के अन्तिम लोकान्त भाग में है । जहां से अलोक का प्रारम्भ होता है वहां क्षेत्र की दृष्टि से अनन्त सिद्धों का क्षेत्र जो 45 लाख योजन के विस्तार वाला है वह काफी बड़ा विशाल है । जबकि स्थूल (बादर) होते हुए भी आलू, प्याजादि काफी छोटे हैं । उसमें एक शरीर बनाकर सभी सकर्मी सशरीरी जीव एक साथ पिण्डीभूत होकर रहते हैं तथा इससे नीचे उतरने पर... 1 सूक्ष्मतम अदृश्य निगोद के गोले में अनन्त जीव एक साथ रहते हैं । इस तरह अनन्त जीवों के एक साथ रहने के विषय में ये 3 ही स्थान विशेष है । बस, इनके सिवाय और कहीं भी अनन्तों का एक साथ मिलकर रहने का कोई स्थान नहीं है । अन्य कोई स्वरूप नहीं है ।

अत: साधक को ज्ञान योग में बराबर स्पष्ट ख्याल में रहना ही चाहिए । निश्चित रूप से लोकान्त क्षेत्र में ही है । अन्यत्र कहीं नहीं । बस, उसी का स्मरण करते हुए... मानस प्रत्यक्ष करते हुए मानस चित्र उपसाते हुए नमस्कार करना चाहिए तथा ध्यान जाप, स्मरणादि करना चाहिए । सिद्धों का यही लोकान्त निवास स्थान अनादि अनन्तकालीन शाश्वत व्यवस्था है । भले ही सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव सिद्धशिला पर पहुंचतें रहे । इतने मात्र से वे सिद्ध नहीं बन जाते हैं । एकेन्द्रिय जीव लोक में अनन्तानन्त की संख्या में सदा ही रहते हैं । क्षेत्र में निवास करने की दृष्टि से

इनकी शाश्वत व्यवस्था ऐसी है कि ये त्रस नाड़ी के अन्दर और बाहर, सिद्धशिला पर और ऊर्ध्व अधो के सम्पूर्ण 14 राज लोक में सर्वत्र रहते हैं। सर्वत्र जन्मते-मरते हैं। परन्तु त्रस जीव एक मात्र त्रस नाडी में ही रहते हैं। त्रस नाड़ी के बाहर कहीं भी त्रस जीव नहीं रहते हैं। त्रस जीवों के रहने की बहुलता के कारण त्रस नाड़ी नाम पड़ा है। यह बिल्कुल शाश्वत व्यवस्था है। इस तरह समस्त लोक ही जब शाश्वत है। अत: उसकी क्षेत्रादि की व्यवस्था भी स्वयंभू शाश्वत है। अत: किसी व्यवस्थापक या नियन्तादि की आवश्यकता ही नहीं है।

दो के बीच का पुल "नमो" है—

नवकार के पांचों मंत्र पदों में आगे प्रयुक्त किया गया "नमो" नमस्कारकर्ता और नमस्करणीय दोनों को जोड़ने वाला, मिलाने वाला पुल है। इसी का नाम "योग" है। 'युज्' धातु से जोड़ना अर्थ में बना हुआ "योग" शब्द दो की सत्ता, अस्तित्व को स्वीकारता हुआ दोनों को जोड़ने का काम "योग" कहलाता है। योग से दो का मिलना होता है। इसलिए योग साधना की प्रक्रिया है। ऐसा मिलान कराने में "नमो" की आधार भूत मुख्य भूमिका है। अत: नमो भाव युक्त नमस्कार यौगिक कक्षा का होना चाहिए। कौन किसे मिलने जाएगा ? इस प्रश्न के उत्तर में स्पष्ट ही है कि... सिद्ध तो लोकान्त में सदा काल स्थिर है, स्थायी है। अत: वे तो नीचे आ नहीं सकते। अशरीरी है। अत: नमस्कार करने वाले नमस्कार कर्ता साधक को ही सिद्धों को मिलने जाना चाहिए। लेकिन यहां से मृत्यु लोक का मानवी 7 राज लोक ऊपर कैसे जाएगा ? अपने शरीर के साथ कोई जीव 7 राज लोक लोकान्त तक जाकर देखकर सिद्धों को मिलकर वापिस आ ही नहीं सकता है। बीते हुए अनन्त भूतकाल में जितने भी अनन्त जीव मोक्ष में गए हैं उनमें से 1 भी जीव मोक्ष को, सिद्धों को देखने नहीं गया ? कोई देखकर अनुभव करके नहीं आया, फिर भी अनन्त जीव मोक्ष में गए हैं। जी हां, मानस प्रत्यक्ष में या आत्मज प्रत्यक्षीकरण की साधना करने के अवसर में ध्यानादि से जरुर मोक्ष के सिद्ध स्वरूप का ज्ञान कर सकता होगा। इसमें माध्यम सहायक नमो भाव बीच में आता है। इस तरह हम साधक सशरीरी अवस्था में सिद्धशिला के ऊपर सिद्ध क्षेत्र को न तो देख सकते हैं। न ही देखकर वापिस आ सकते हैं।

जी हां, सिर्फ नमो के नमस्कार भाव के बीच इतनी प्रबल आकर्षण शक्ति है कि वह जीवों को ऊपर खींचता है। चुम्बक का काम करता है। नमस्कारकर्ता को नमस्करणीय परमात्मा से मिला सकता है। अरिहन्तादि पंच परमेष्ठी के साथ जोड़ सकता है। यह गूढ रहस्य समझकर साधक को यौगिक एवं आध्यात्मिक कक्षा की गुणवत्ता वाला ऊंचा नमस्कार करना चाहिए। ऐसा नमस्कार ही लाभदायी बन पाएगा। "सव्व पावप्पणासणो" सब पाप कर्मों का नाशकर्ता नमस्कार बन सकेगा तब किया हुआ नमस्कार सार्थक लगेगा। अत: नमो भाव हमारी आत्मा को अरिहन्तादि परमेष्ठी भगवन्तों तक ले जाता है। उनके पास पहुंचाता है, जोड़ता है। उनसे मिलाता है। कितना बड़ा लाभ एक मात्र "नमो भाव" से होता है ? इससे बड़ा लाभ और क्या हो सकता है ? इस प्रकार का नमो भाव नमस्कार का स्वरूप समझकर हमें नमस्कार की गुणवत्ता बढ़ानी चाहिए। यौगिक आध्यात्मिक कक्षा का नमस्कार ही ऊंची कक्षा का नमस्कार होगा।

लोक में अरिहन्तों का क्षेत्र—

जिस तरह सिद्ध भगवन्तों के लिए "लोए" शब्द से अभिप्रेत लोक मात्र लोकान्त है या लोकाग्र है। इसी कारण स्तुति स्तवना में 'लोअग्गमुवगयाणं' विशेषण पदों का पाठ में प्रयोग किया गया है।

परन्तु अरिहन्त भगवान् लोकान्त या लोकाग्र में नहीं रहते हैं। अत: "नमो लोए सव्व अरिहन्ताणं" के पद का अर्थ करते समय "लोए" शब्द का क्या अर्थ करेंगे ? जैसा कि—लोगस्स सूत्र में पाठ मिलता है— "लोगस्स उज्जोअगरे" लोक में उद्योत करने वाले अर्थात् जब परमात्मा तीर्थंकर भगवन्त का जन्मादि कोई भी कल्याणक होता है तब सातों अंधेरी नरकों में भी 2 घड़ी के लिए उजाला-उजाला फैल जाता है। आनन्द-आनन्द छा जाता है। अत: "लोए" शब्द से "लोक" में ऐसा अर्थ बैठाकर "लोए" शब्द की सार्थकता समझनी चाहिए।

इसी तरह नमुत्थूणं सूत्र में लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोग हियाणं, लोग पइवाणं, लोग पज्जोअगराणं आदि 5 विशेषणों का प्रयोग किया गया है। इसमें भी लोक शब्द कैसे अर्थों में है यह देखना है— जिसमें 1. सकल भव्य लोक में उत्तम, 2. चरमावर्त प्राप्त लोगों के योग क्षेम करने वाले नाथ, 3. पंचास्तिकायात्मक समस्त 14 राजलोक के हितकर्ता, 4. प्रभु से ज्ञान प्राप्त करे वैसे लोगों के लिए दीपक समान और 5 उत्कृष्ट 14 पूर्वी गणधरादि लोगों को प्रद्योत प्रकाश देने वाले। इस प्रकार "लोए" "लोग" शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं।

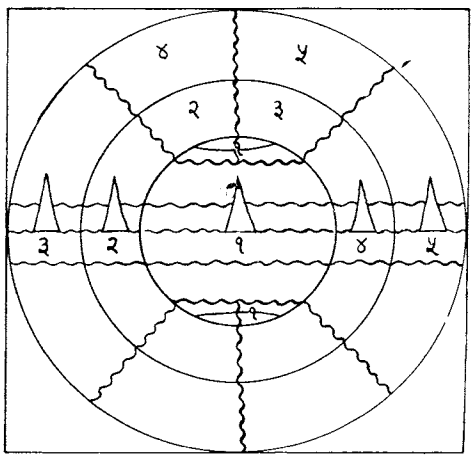

याद रखिए...तीर्थंकर अरिहन्त परमात्मा एक मात्र मनुष्य लोक के ढाई द्वीप क्षेत्र की मात्र 15 कर्मभूमियों में ही जन्म धारण करते हैं। स्वर्ग नरक में तीर्थंकर भगवान अन्तिम भव में कदापि जन्म नहीं लेते हैं। वे एक मात्र ढाई द्वीप के मनुष्य क्षेत्र की 15 कर्म भूमियों में ही होते हैं। अनन्त काल में कभी भी एक भी भगवान स्वर्ग नरक में नहीं हुए हैं। अनन्तकाल में अनन्त तीर्थंकर भगवान मात्र इसी 15 कर्म भूमियों के क्षेत्र में ही हुए हैं। अत: "लोए" शब्द से मनुष्य लोक अर्थ ही लिया जा सकता

है । अन्य नहीं । इन 15 कर्म भूमियों में 5 भरत क्षेत्र + 5 ऐरावत क्षेत्र + 5 महाविदेह क्षेत्र मिलाकर कुल 15 होते हैं । इसीलिए "जगचिंतामणी सूत्र" में— "कम्मभूमिहिं कम्मभूमिहिं" का पाठ बिल्कुल सही सूचक है ।

गुरु भगवन्तों का लोक क्षेत्र—

नवकार महामंत्र में गुरु तत्त्व के द्योतक 3 पद है । 3रा, 4था और 5वा ये तीन पद हैं जिनमें क्रमश: आचार्य, उपाध्याय और साधु इन 3 गुरुओं को नमस्कार किया गया है । अनामी बिना नाम का यह मंत्र होने के कारण किसी के भी नाम का इस महामंत्र में उल्लेख भी नहीं है । पदवाची शब्द रखे गए हैं और आगे नमस्कार सूचक "नमो" शब्द है । पदवाची नाम होने के कारण इन-इन पदों पर जो भी कोई आए वे नमस्करणीय हो ही जाते हैं । इन पदों पर आने का एक मात्र रास्ता है "गुणों" का । 12 गुण अरिहन्त परमेष्ठी के, + सिद्ध भगवान के 8 गुण, आचार्य परमेष्ठी के 36 गुण, 25 गुणों से उपाध्यायजी सुशोभित होते हैं और साधु मुनिराज 27 गुणों के धारक होते हैं । पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के कुल मिलाकर 108 गुण होते हैं । इन गुणों के आधार पर एवं गुणों का क्रमश: स्मरण करने की दृष्टि से 108 मणकों की माला बनाई गई है । पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के ये 108 गुण जो बताए हैं वे शाश्वत है । इस संख्या में हानि वृद्धि भी होने वाली नहीं है । कदापि कभी भी घट बढ़ संभव ही नहीं है । अत: न तो 106 या 107 होंगे । या न ही 109, 110 होंगे । गुण भेदक व्यावर्तक है । गुण ही लक्षण रूप बनते हैं । गुण ही आधारभूत है । आज हम जगत् के सामने नमस्करणीय की कक्षा में नहीं हैं ? क्यों नहीं है ? वैसा गुणात्मक स्वरूप नहीं धारण किया अत: नहीं है । यदि हम भी गुणों को साधने लग जाये तो अवश्य ही एक दिन गुणवान् गुणी बनकर वंदनीय नमस्करणीय बन सकते हैं । अत: गुणोपासना यही सर्वोत्कृष्ट धर्म है ।

देव, गुरु, धर्म के क्षेत्र—

इस विश्व का भौगोलिक दृष्टि से विचार करें । वर्तमान विज्ञान को जितना उपलब्ध हुआ है उतना ही आज स्वीकारा जा रहा है । उसी के आधार पर विश्व का मानचित्र बना हुआ है । लेकिन जितना उपलब्ध एवं प्राप्त हुआ है भू-भाग शायद उससे भी हजारों गुना भूमि का भाग अभी अदृष्ट है । आखिर यन्त्राश्रित वर्तमान विज्ञान की अपनी सीमाएं-मर्यादाएं है । अन्तरात्मा के केवलज्ञान की कोई सीमा मर्यादा नहीं होती है । इसीलिए सीमातीत, मर्यादातीत ज्ञान को केवलज्ञान कहा है उसी को अनन्तज्ञान नाम भी दिया है । इसके धारक सर्वज्ञ भगवान ने शास्त्रों में असंख्य द्वीप समुद्र इस तिर्यग् लोक में बताए हैं । समस्त 14 रज्जु लोक में मध्यवर्ती प्रदेश में... तिर्यग् फैले हुए असंख्य द्वीप-समुद्र जो वलयाकार स्थिति में वृत्त है । वे क्रमश: एक द्वीप के बाद पुन: समुद्र और फिर द्वीप, इसी क्रम से फिर समुद्र फिर द्वीप, फिर द्वीप फिर समुद्र... इस तरह एक के बाद एक ऐसे असंख्य की संख्या में द्वीप समुद्रों का शाश्वत अस्तित्व बताया है तथा क्रमश: माप में ये एक के बाद एक दुगूने माप के विस्तार वाले है, अर्थात् पहला जंबूद्वीप 1 लाख योजन का है तो उसके चारों तरफ लवण समुद्र 2 लाख योजन वाला है । फिर आगे का द्वीप धातकी खण्ड 4 लाख योजन विस्तार का है तो इसके आगे का समुद्र कालोदधि समुद्र 8 लाख योजन का है ।

फिर उसके भी आगे का पुष्कर द्वीप 16 लाख योजन का है । इस तरह इसी दुगूने के क्रम से आगे बढ़ते ही जाइए और असंख्य द्वीप समुद्रों को दुगूने क्रम से देखते ही जाइए । मात्र एक रज्जु प्रमाण त्रस नाडी की चौड़ाई के क्षेत्र में ये असंख्य द्वीप समुद्र विस्तार में आए हुए हैं । तिर्यंच गति के पशु पक्षियों के अनन्त जीव इन द्वीप समुद्रों में रहते हैं ।

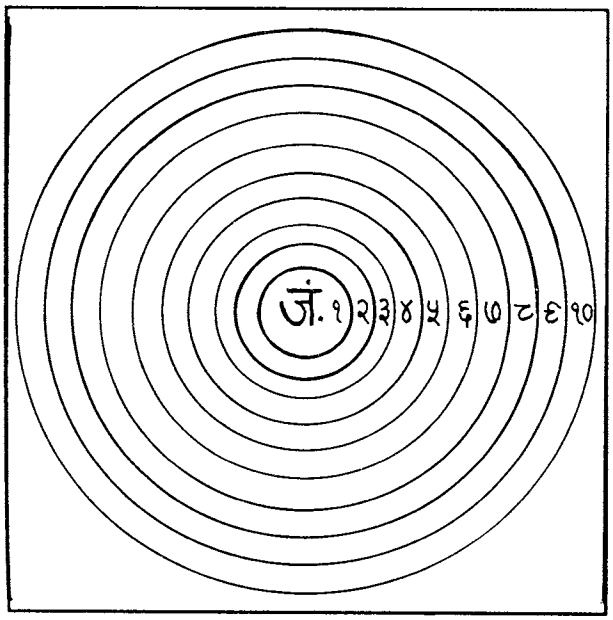

मनुष्य मात्र प्रथम में ढाई द्वीपों तक के क्षेत्र में ही रहते हैं । 1. जंबूद्वीप, 2. लवण समुद्र, 3. धातकी खण्ड, 4. कालोदधि समुद्र फिर पुष्करवर द्वीप । इनमें से 1ला जम्बूद्वीप पूरा और घातकी खण्ड भी पूरा लेकिन पुष्करवर द्वीप आधा ही लिया गया है अत: 1 + 1 + 1/2 = ढाई द्वीप ही मनुष्य क्षेत्र के रूप में ग्राह्य है । पुष्करवर द्वीप जो कि 16 लाख योजन के विस्तार वाला चौड़ा है । उसके मध्य में अर्थात् बीचों बीच 8 लाख योजन की सीमा पर मध्य में पूर्ण वलयाकार लम्बा पर्वत है । इसका नाम मानुषोत्तर पर्वत है । बस, मनुष्यों की बसति जिसके उत्तर में (पीछे) नहीं है उसे मानुषोत्तर पर्वत कहते हैं ।

माप प्रमाण की दृष्टि से पूर्व एवं पश्चिम दोनों तरफ गणना करने पर 45 लाख योजन है । (पुष्करार्ध द्वीप 5 (कालोदधि समुद्र 4 (धातकी खण्ड 3 (लवण समुद्र 2 (जम्बूद्वीप 1 (लवण समुद्र 2 (धात की खंड 3 (कालोदधि समुद्र 4 (पुष्करार्ध द्वीप 5) = माप — 8 लाख योजन + 8 लाख योजन + 4 लाख + 2 लाख + 2 लाख + 1 लाख योजन + 2 लाख + 4 लाख योजन + 8 लाख योजना + 8 लाख योजन = 45 लाख योजन

वृत्त वलयाकार स्थिति में होने के कारण आधा भाग पूर्व की तरफ आएगा और उतना ही आधा भाग पश्चिम की तरफ भी आएगा । इस तरह कुल

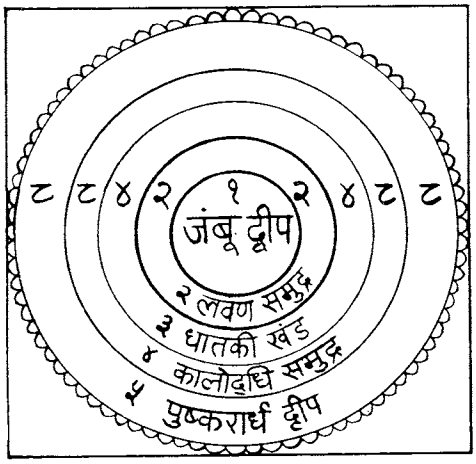

मिलाकर 45 लाख योजन का क्षेत्र होता है । बस, यही और इतना ही क्षेत्र समस्त मानव जाति के लिए है । इतने 45 लाख योजन के मनुष्य क्षेत्र में ही मानव जाति के सभी मनुष्यों की उत्पत्ति मृत्यु होती रहती है । समस्त मानव जाति के मनुष्यों के जन्म मरण एवं निवासादि के ये क्षेत्र हैं । बस, इनके बाहर नहीं है ।

इस सम्पूर्ण मनुष्य क्षेत्र के ढाई द्वीपों में मनुष्यों के रहने योग्य अनेक क्षेत्र विशेष अर्थात् देश विशेष है । जिनका विभाजन इस प्रकार किया है— 15 कर्म भूमियां + 30 अकर्म भूमियां, + 56 अन्तर्द्वीप = ये कुल मिलाकर 101 भूमियां (या देश या क्षेत्र विशेष) है । बस, इतने 101 प्रदेशों में ही मनुष्य रहते हैं । समस्त मानव जाति के मनुष्यों के निवास के लिए ये 101 ही क्षेत्र है । इनमें से 56 अंतर्द्वीप जो जम्बूद्वीप के पर्वतों की हाथी के दांत की तरह बाहर निकली हुई 8 दाढाओं के रूप से लवण समुद्र में आए हुए हैं । द्वीप अर्थात् जिसके चारों तरफ पानी होता है और बीच में भूमि होती है । जिसको । Land भी कहते हैं । यहां पर मनुष्यों की वसति काफी ज्यादा है । लेकिन यहां पर देव, गुरु, धर्म का नाम निशान भी नहीं है । 101 प्रदेशों से आधे के ऊपर ये 56 अन्तर्द्वीप चले गए जहां देव, गुरु और धर्म का नाम निशान भी नहीं है ।

इसी तरह हरि वर्ष, रम्यक क्षेत्रादि ऐसे 5-5 क्षेत्र ढाई द्वीप में मिलाकर कुल 30 है । इनको अकर्म भूमि की संज्ञा दी गई है । इनमें भी भगवान, गुरु और धर्म का कोई नाम निशान भी नहीं होता है । इस तरह 56 + 30 = 86 क्षेत्र ऐसे चले गए जो सर्वथा देव, गुरु, धर्म तत्त्व से रहित है । ब 101-86 = 15 ही क्षेत्र सिर्फ बचे हैं । ढाई द्वीप में कुल मिलाकर 5 भरत क्षेत्र + 5 मध्यवर्ती महाविदेह क्षेत्र और + 5 ऐरावत क्षेत्र = 15 है । इनको 15 कर्मभूमि की संज्ञा दी गई है । इनमें देव, गुरु, धर्म सब कुछ रहता है । अब आप सोचिए ! समग्र विश्व के ढाई द्वीप के मानचित्र मनुष्यों की वसतिवाले कुल 101 विशाल क्षेत्रों में से मात्र 15 ही क्षेत्र ऐसे हैं जहां भगवान होते हैं, गुरु होते हैं, और धर्म होता हैं तथा इनके सिवाय के 86 क्षेत्र धर्म रहित अधर्म भूमि के क्षेत्र हैं । वे अर्थ और काम प्रधान भूमियां है । जहां असि, मसि और कृषि की प्रधानता हो उसे कर्मभूमि कहते हैं ।

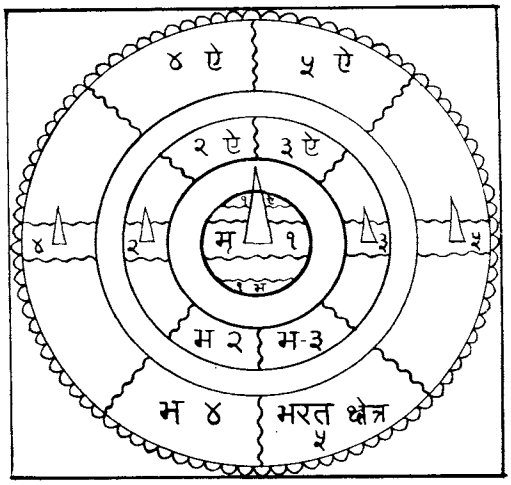

हम अपनी भाषा में कर्मभूमिज क्षेत्र को धर्म भूमि कह सकते हैं और अकर्म भूमिज क्षेत्र को अधर्मभूमिज क्षेत्र कह सकते हैं । जंबूद्वीप के नक्षे में देखिए केन्द्र में मेरु पर्वत के दाएं-बाएं दोनों तरफ लवण समुद्र की सीमा तक फैला हुआ महाविदेह क्षेत्र है । इसी तरह धातकी खण्ड के क्षेत्र में पूर्व में एक और पश्चिम में एक इस तरह दो महाविदेह क्षेत्र है । ठीक इसी तरह पुष्करार्ध द्वीप में भी 2 है । ऐसे कुल 5 महाविदेह क्षेत्र है । इनमें शाश्वत काल 4था आरा ही सदा रहता है । ये सभी त्रैकालिक शाश्वत क्षेत्र है । अत: 15 कर्म भूमियों में धर्मादि की भी शाश्वत व्यवस्था है । मोक्ष प्रापक प्रायोग्य धर्म इनमें उपलब्ध है ।

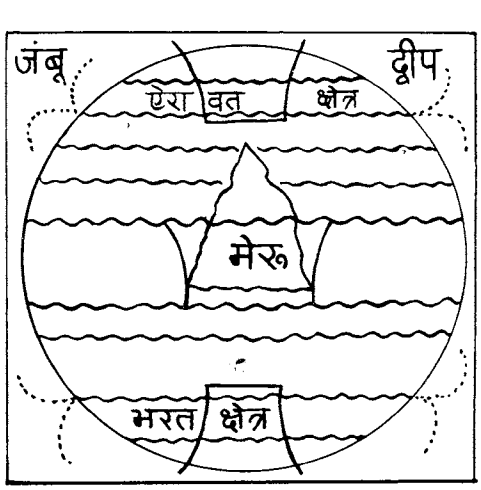

अरिहन्त एवं गुरुओं तथा धर्म का क्षेत्र—

अरिहन्त तीर्थंकर भगवान सिर्फ इन 15 कर्मभूमियों में ही होते हैं । बस, इन 15 के सिवाय समस्त ब्रह्माण्ड स्वरूप लोक के किसी भी अन्य क्षेत्र में कहीं भी नहीं होते हैं । इन 15 कर्मभूमियों में भी मात्र 5 महाविदेह क्षेत्र में सदा होते हैं । यहां हमेशा 20 विचरमान तीर्थंकर भगवन्त विद्यमान रहते हैं । परन्तु शेष 10 (5 भरत क्षेत्र + और 5 ऐरावत क्षेत्र) क्षेत्रों में सदा काल नहीं होते हैं । मात्र 3रे और 4थे आरे में ही होते हैं । 3रे आरे के अन्तिम भाग में 1 तीर्थंकर भगवान होते हैं अत: 1 तीर्थंकर के आयुष्यकाल से थोड़ा ज्यादा काल ही शेष रहता है तब प्रथम भगवान होते हैं और शेष 23 तीर्थंकर भगवान चौथे आरे में होते हैं तथा चौथे आरे में हुए अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर भगवान द्वारा संस्थापित जैन शासन पांचवें आरे में भी सुव्यवस्थित ढंग से चलता रहता है ।

जब अरिहंत तीर्थंकर परमात्मा होते हैं तब उनके द्वारा संस्थापित चतुर्विध श्री संघ के साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकादि सब होते ही हैं। साधु वर्ग में गणधर, आचार्य, उपाध्याय आदि के पदों की व्यवस्था है। अत: आचार्य, उपाध्याय भी रहते ही है। इस तरह अरिहन्त भगवान एवं तीनों गुरुओं के लिए लोक में क्षेत्र समान ही है, एक ही है। अलग-अलग नहीं है।

अरिहन्त परमात्मा भी इन 15 कर्मभूमियों में ही होते हैं और उनके आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि सभी गुरु भी इन्हीं क्षेत्रों में होते हैं। इसके बाहर क्षेत्र भूमियां भले ही अनेक हो परन्तु किसी भी क्षेत्र में न तो भगवान है, न ही गुरु है और न ही धर्म है। इस तरह छोटे से क्षेत्रों में देव गुरु धर्म है।

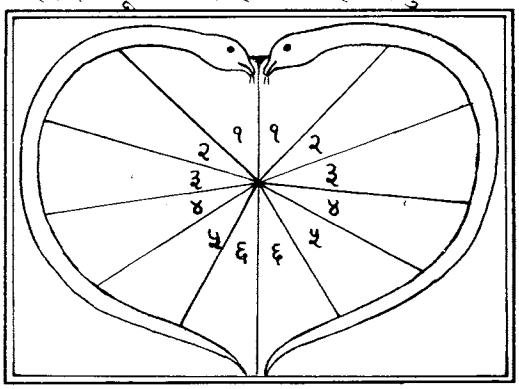

इसमें भी काल की दृष्टि से विचार करने पर... 5 भरत क्षेत्र + 5 ऐरावत क्षेत्र में कालचक्र के सभी बारह आरों में सदाकाल तीर्थंकर भगवान और गुरु एवं धर्म मौजूद नहीं होता है। यद्यपि ये कर्मभूमि के ही क्षेत्र है। फिर भी काल बदल गया है। कालिक शाश्वत व्यवस्था भी कुछ अलग ही प्रकार की है। सभी पांचों महाविदेह क्षेत्रों में सदाकाल चौथा एक ही आरा होता है। वही हमेशा चलता है। अत: महाविदेह क्षेत्रों में अपरिवर्तनशील स्थायी शाश्वत काल है। इसी तरह अकर्म भूमियों में भी क्षेत्रों में 1 ला दूसरा आरा जो सदाकाल रहते हैं। वैसा काल है। लेकिन भरत और ऐरावत के 5 + 5 कुल क्षेत्रों में परिवर्तनशील काल है। इनमें कोई निश्चित स्थायी स्थिर आरा या काल नहीं है। एक काल चक्र के 12 आरे होते हैं। इनमें 6 आरे अवसर्पिणी काल के होते हैं तथा दूसरे 6 आरे उत्सर्पिणी काल के होते हैं। आरों की दृष्टि से उत्सर्पिणी के छहों आरे अवसर्पिणी के आरों जैसे ही होते हैं। वर्ष प्रमाण आदि काल मान सब कुछ समान ही होते हैं। अन्तर सिर्फ इतना ही है कि अवसर्पिणी में सब कुछ तत्त्वादि घटते हुए हैं। क्योंकि यह काल विभाग उतरती हुई कक्षा का है। ठीक इससे विपरीत उत्सर्पिणी काल के सभी आरों में क्रमश: सब कुछ चढ़ते हुए मान की कक्षा का है। काल मानादि समान है। ये उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल घूमते हुए चक्र की तरह घूमते ही रहते हैं। एक के बाद एक इस क्रम से बदलते हुए सभी आरे आते हैं और चले जाते हैं। इस तरह 5 भरत और 5 ऐरावत इन दोनों के 10 क्षेत्रों में उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के बदलते हुए आरों के काल की शाश्वत व्यवस्था है। अत: यहां शाश्वत व्यवस्था ही परिवर्तनशील काल की है।

इसलिए मात्र भरत-ऐरावत क्षेत्र की कर्मभूमियों में ही जन्म लेना पर्याप्त नहीं है। इतने मात्र में से ही देव, गुरु, धर्म मिल जाएंगे और कल्याण हो जाएगा। ऐसा मत सोचिए। मान लो कि... आपका यहां आकर जन्म लेना हुआ और उस समय यदि इन 10 क्षेत्रों में 6ट्ठा आरा जो कि 21000 वर्षों के माप का है वह चलता होगा तो आप क्या करेंगे ? देव, गुरु, धर्मादि कुछ भी नहीं पा सकेंगे। सबसे आप वंचित रह जाओगे और दु:ख की यातना भुगतने के सिवाय कोई चारा नहीं रहेगा। जैसा काल भरत क्षेत्र में रहता है ठीक वैसा ही ऐरावत क्षेत्रों में बिल्कुल समान काल आरादि रहते हैं। पांचों भरत क्षेत्रों की पांचों ऐरावत क्षेत्रों की इस विषय में समानता पूरी है।

भाव विषय में भी एवं देव, गुरु, धर्मादि विषयों में भी इन पांचों भरत क्षेत्रों और पांचों ऐरावत क्षेत्रों की समानता बराबर है। आज वर्तमान में 5वां आरा चल रहा है। यहां हमारे भरत क्षेत्र में भी कोई भगवान नहीं है। कोई एक भी केवलज्ञानी सर्वज्ञ नहीं है। कोई गणधर भी नहीं है। ठीक यही स्थिति सभी पांचों भरत क्षेत्रों की एवं सभी पांचों ऐरावत क्षेत्रों की भी यही समान स्थिति है।

नमो-नमस्कार उन क्षेत्रों तक पहुंचाता है—

"नमो" अरिहंताणं या नमो आयरियाणं आदि नवकार के मंत्र पदों का प्रयोग करने पर... नमस्कार करते समय मन, भावपूर्वक उन-उन स्थानों तक पहुंचना चाहिए। तब तो भावपूर्वक का नमस्कार होगा। योगज नमस्कार होगा। अन्यथा काय योग की क्रिया का नमस्कार मात्र रहेगा। मनोयोग को उन 4 परमेष्ठी भगवन्तों तक ले जाने के लिए उनके निवास स्थान क्षेत्रादि लोक में कहां है ? इत्यादि का बोध करने के लिए प्रस्तुत लेख उपयोगी सिद्ध हो सकता है। धर्मध्यान के संस्थान विचय के चौथे प्रकार के ध्यान में अरिहन्तादि चारों परमेष्ठी भगवन्तों का निवास स्थान विशेष क्षेत्र कौन-कौन से हैं ? कहां-कहां, किन-किन क्षेत्रों में ये रहते हैं ? आदि का क्षेत्रीय, कालीय ज्ञान हो जाय और साधक अपना मनोयोग आसानी से वहां पहुंचा सके इसके लिए इस प्रकार का चिन्तन करना अत्यन्त आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है। "जावंति चेइयाइं" सूत्र में "इह संतो तत्थ संताइं" की पंक्ति जो चौथा चरण है इसका अर्थ इस प्रकार की चिन्तन धारा से ही संभव हो सकता है।

"पुक्खरवरदी वड्ढे" सूत्र की प्रथम गाथा नवकार के "लोए" शब्द का भौगोलिक क्षेत्रीय अर्थ बताने में पर्याप्त गाथा है। इसी तरह "अड्ढाई-ज्जेसु सूत्र" बोलते हैं तब सूत्र के शब्द हमारे मनोयोग के वाहक माध्यम बराबर बनते हैं और मन को ठीक उन क्षेत्रों में ले जाने के लिए सहायक बनते हैं। दृश्य श्राव्य संयुक्त पद्धति की तरह मानस चित्र उपसाते हैं। "जावन्त के वि साहु" शब्दों से जितने भी साधु आदि जिन-जिन क्षेत्रों में जहां भी हो वहां तक मन को एवं हमारे नमस्कार को पहुंचाने में, उस क्षेत्र का साक्षात्कार कराने में काफी सहायक है। इस महामंत्र नवकार में प्रयुक्त "लोए" शब्द का अर्थ व्याख्या लक्षणादि को अनेक सूत्र स्पष्ट करते हैं। इस तरह "लोए" शब्द किस परमेष्ठी के साथ जोड़ते हैं फिर उसका कितना अर्थ विस्तार है ? वहां तक मनोयोग ले जाइये, भाव की भूमिका में उन परमेष्ठी भगवन्तों का साक्षात्कार करिए। मानस प्रत्यक्ष करिए। इससे मन को एकाकार करके साधिये और निर्जरा करके मोक्ष पाइए। इस साधना में यह लेख सहयोगी उपयोगी बने यही शुभेच्छा।

गुणात्मक एवं धर्मात्मक — "नमो भाव"

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

— श्री नमस्कार महामंत्र में सर्वप्रथम प्रयुक्त शब्द "नमो" है । इसी के आधार पर इस मंत्र को महामंत्र का दर्जा मिला है । मंत्रात्मकता का सम्पूर्ण आधार नमो शब्द पर है । अगर नमो शब्द न हो, या इसे हटा दिया जाये तो मांत्रिकता नहीं रहेगी । लेकिन नमस्कार के आधार भूत एवं प्रयोजन भूत जो हैं वे एक मात्र अरिहंतादि पांच परमेष्ठी भगवान् है । अत: अरिहन्तादि परमेष्ठी वाचक शब्दों का प्रयोग भी न हो तो अकेला नमो क्या करेगा ? किसको नमस्कार करेंगे ? इस तरह दोनों पदों की सार्थकता सिद्ध होती है । नमो शब्द का प्रयोग न रहने पर भी अरिहन्तादि की मांगलिकता में कहीं कोई कमी नहीं आएगी । वे महान मांगलिक महापुरुष ही है । यह निर्विवाद है । लेकिन इस पूरे महामंत्र की मांगलिकता तो "नमो" के कारण ही है । इसीलिए अरिहन्तादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने से इस महामंत्र की महामांगलिकता सिद्ध होती है । तब जाकर इस अर्थ में **"मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं"** की संपदा सार्थक सिद्ध होगी । अरिहन्तादि मांगलिक महापुरुष थे, अत: उन्हें नमस्कार करने से नमस्कार भी मंगल रूप बन गया तथा नमस्कार करने से सम्पूर्ण मंत्र को भी मांगलिकता प्राप्त होती है । तब जाकर **"पढमं हवइ मंगलं"** पद में पढमं शब्द का प्रथम कक्षा का, श्रेष्ठ कक्षा का, सर्वोच्च सर्वोपरि कक्षा का अर्थ सार्थक सिद्ध होता है । इस तरह नमो नमस्कार केन्द्र में आता है । आधार भूत बनता है ।

केन्द्रीभूत आधार—"नमो"—

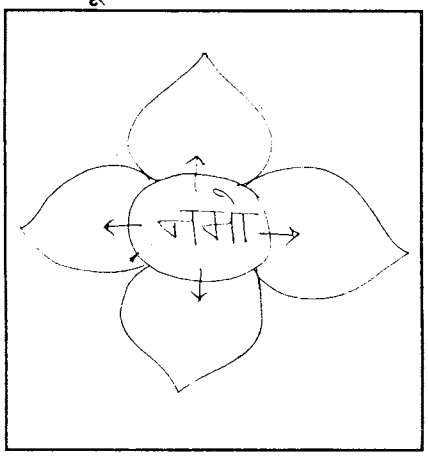

पंच दल कमल के केन्द्रस्थ कर्णिका भाग में केन्द्र-में नमो— नमस्कार को रखकर पांचों कमल पत्र या पंखुड़ियों में अरिहन्तादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों की स्थापना करें तो जैसा कि... चित्र में प्रदर्शित किया गया वैसा स्वरूप बनता है । यहां केन्द्रीभूत नमो होने से सबका आधार नमो पर रहेगा । सबकों जितने नमस्कार किये जाएंगे उतने साधक के पाप कर्मों का क्षय होगा और जितने प्रमाण में पाप कर्मों का क्षय-नाश होगा । उतने प्रमाण में अपवर्ग स्वरूप मोक्ष की समीपता बढेगी । सान्निध्यता में वृद्धि होगी । साधक अपने साध्य के समीप उतना ही ज्यादा जाएगा । केन्द्र में रहने से यह निश्चय हो जाता है कि अरिहन्तादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करना ही करना है । अत: नमस्करणीय महापुरुष अरिहन्तादि के आधार पर नमस्कार का आधार निर्धारित होता है और नमो से नमस्कार का अधिकारी नमस्कारकर्ता साधक निश्चित होता है । नमो भाव नमस्कार की उभय पक्षी सार्थकता सिद्ध होती है । इस तरह अन्योन्य आश्रय आश्रयी भाव सम्बन्ध है ।

नमस्कार क्या है ? गुण या धर्म ?

उपरोक्त विचारणानुसार नमस्कार की आवश्यकता स्पष्ट सिद्ध होती है । अब हमें यह देखना है कि... नवकार में सर्वप्रथम प्रयुक्त "नमो" शब्द का आधार भूत नमस्कार यह क्या है ? यह गुण है ? या धर्म ? या मात्र क्रिया है ? या फिर क्या तीनों में से किसी एक स्वरूप है ? या फिर तीनों स्वरूप है ? इसे स्पष्ट करने के लिए पहले हम गुण और धर्म के बीच के भेद एवं सम्बन्ध को ही अच्छी तरह समझ लें । गुण और धर्म में क्या कार्य-कारण भाव सम्बन्ध है ? या फिर जन्य जनक भाव सम्बन्ध है या नहीं ? यदि है तो किस तरह है ?

एक बात तो निश्चित ही है कि गुण कभी भी गुणी अर्थात् गुणवान् द्रव्य के आधार के बिना स्वतंत्र अलग से रहता ही नहीं है । इसी तरह जगत् का कोई भी द्रव्य बिना गुण के भी कभी रहता ही नहीं है । अत: दोनों का सर्वथा स्वतंत्र अस्तित्व संभव ही नहीं है । तत्त्वार्थकार ने द्रव्य का लक्षण करते हुए सूत्र लिखा है कि... **"गुण पर्यायवद् द्रव्यम्"** अर्थात् गुण और पर्याय वाला जो होता है वही द्रव्य कहलाता है । इस नियमानुसार "नम्रता" को यदि गुण के रूप में निश्चित करते हैं तो इस गुण का आधार भूत द्रव्य कौन सा होगा ? समस्त संसार में जड़ और चेतन मात्र दो

ही द्रव्य है । इनके अतिरिक्त तीसरे किसी स्वतंत्र द्रव्य का अस्तित्व ही नहीं है । जड़-अजीव द्रव्य के अवान्तर भेद जरुर पांच है । अत: वे भी द्रव्य ही कहलाते हैं । इस तरह एक मूल द्रव्य के अवान्तर भेदों के विस्तार के साथ जीव को जोड़ने पर षड् द्रव्य बन जाते हैं । लेकिन इनमें से ऐसा द्रव्य कौन-सा है जिसका नम्रता गुण हो ? इसके उत्तर में स्पष्ट है कि जड़-अजीव द्रव्य में तो हो ही नहीं सकता है । अब बचा एक मात्र चेतन द्रव्य । सच ही है कि... नम्रता चेतन जीव द्रव्य का ही गुण है । अत: यह आत्म गुण के रूप में है । गुण के रूप में "विनय गुण" है । नम्रता इसका धर्म है और नमस्कार इसकी क्रिया है ।

आत्मा-परमात्मा का मिलन "नमो" भाव से—

"नमो" शब्द यह विनय गुण का द्योतक है और विनय गुण से गुणी गुणवान् या गुण के अधिष्ठाता आत्म द्रव्य की सिद्धि होती है । अत: आत्म द्रव्य के अस्तित्व की सिद्धि प्रतीति करने के लिए विनय गुण आधार भूत है । इसका वाचक शब्द "नमो" नवकार में सर्वप्रथम रखा है । अत: मात्र नमो शब्द के उच्चारण या स्मरण करते समय सबसे पहले अपने आपको अर्थात् आत्मा को पहचानिए । आत्मानुभूति एवं आत्म साक्षात्कार करिए । आत्म गुण के अवलोकन से ही आत्म प्रतीति संभव है । न कि आत्मा का चाक्षुष प्रत्यक्ष । अरुपी अवर्णी निरंजन निराकार रूप यह आत्मा द्रव्य इन्द्रिय ग्राह्य नहीं है । अत: चक्षु आदि इन्द्रियों का विषय बन ही नहीं सकता है । आत्म प्रतीति करने के लिए गुणों का आधार भूत होना आवश्यक है । गुण से तथा गुणों के धर्मों के आचरण की क्रिया से भी गुणाश्रय स्वरूप आधार भूत द्रव्य का परिचय, बोध एवं प्रतीति अनुभूति संभव है ।

इस तरह नमो शब्द के प्रथम प्रयोग से इसके आधार भूत विनय गुण एवं नम्रता धर्म के व्यवहारात्मक आचरण रूप नमस्कार की क्रिया विधि करते हुए आत्म प्रतीति-आत्मानुभूति करके अब आगे अरिहन्तादि पंच परमेष्ठी भगवन्तों को मिलना है । इस तरह अरिहन्तादि परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने के निमित्त स्वात्मदर्शन स्वात्मानुभूति भी होती है । अत: यह दुष्कर कार्य एक मात्र नमो भाव से सरल बनता है ।

"नमो" से आत्मानुभूति—

आत्म प्रत्यक्षीकरण या आत्मानुभूति एवं प्रतीति एक तरफ नमो भाव से सर्वप्रथम होती है और साथ ही साथ पद में आगे परमेष्ठीवाचक जो अरिहन्तादि है उनको नमस्कार किया जाता है । अत: यही "नमो" अरिहन्त आदि परमात्मा की भी पहचान सही अर्थ में कराता है । क्योंकि उनको ही नमस्कार किया जाता है । प्रथम अपनी आत्मानुभूति हुई, अब अरिहन्तादि परमात्मा की भी पहचान होगी । स्वरूप दर्शन होगा । स्व से अपनी आत्मा-चेतन द्रव्य और उसका रूप अर्थात् गुणात्मक स्वरूप का दर्शन, अनुभव तथा अरिहन्तादि परमात्मा का भी दर्शन... इस तरह उभय दर्शन कारक "नमो" भाव है । इतना ही नहीं अपनी आत्मा को पहचान कर— परमात्मा को भी अच्छी तरह पहचान कर दोनों का जोड़ान मेल कराना... यह एक उत्तम 'योग' है । जो नमो भाव नमस्कार की क्रिया से हुआ । इस नमस्कार से एक सुन्दर उत्तम कक्षा का श्रेष्ठ 'योग' हुआ । अत: योग साधना के बीज स्वरूप में 'नमो' की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है ।

यौगिक नमस्कार—

"मोक्खेण जोयणाओ जोगो" —"मोक्षेन सह योजनात् योगो" इस तरह की योग की व्याख्या के आधार पर... मोक्ष के साथ जोड़ने वाले को योग कहा है । इससे योग शब्द का मात्र लौकिक ही नहीं अपितु लोकोत्तर कक्षा का यह श्रेष्ठ अर्थ करना सबसे अच्छा है तथा ऐसे लोकोत्तर कक्षा के योग का आधारभूत माध्यम यहां नवकार में "नमो" शब्द सूचक है । अत: यह गूढार्थ समझकर हमारा नमस्कार भी कैसी कक्षा का हो ? कितनी ऊंची गुणवत्ता वाला हो ? यह विचार हमें करना है । याद रखिए— अरिहन्तादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों की कक्षा एवं गुणवत्ता सर्वोपरि उच्च श्रेणी की ही है एवं स्थिर-स्थायी स्वरूप वाली उत्कृष्टता है । उसमें कभी न्यूनता या कमी आने वाली ही नहीं है । परन्तु नमस्कारकर्ता हम है । हमारी न ऊंची कक्षा है और हमारे द्वारा किये जा रहे नमस्कारों की गुणवत्ता भी इतनी ऊंची कक्षा की नही है । "सव्व पावप्पणासणो" के 7वें पद में जो सब पाप कर्मों का क्षय करना है उसमें "सव्व" शब्द का जो प्रयोग किया गया है वही सूचित करता है कि यदि आपको "सव्व" अर्थात् सर्व-सब पाप कर्मों का प्रकृष्ट नाश करना हो ? प्रकृष्ट नाश का तात्पर्य है कि... समूल सर्वथा सम्पूर्ण रूप से सब पाप कर्मों का क्षय-नाश करना हो तो साधक के द्वारा किये जाते नमस्कार की कक्षा एवं गुणवत्ता काफी ऊंची कक्षा की ही होनी आवश्यक है, तो ही निर्धारित परिणाम आएगा । अन्यथा नहीं । इसलिए सातवें पद में दोनों बातों का लाक्षणिक संकेत है । 1. "सव्व" से संख्या एवं प्रनाशनं (प्पणासणो) से प्रकृष्टता, उत्कृष्टता एवं समूल सर्वथा तथा सम्पूर्णता का लक्ष्य रखकर सब पाप कर्मों का नाश करना है । अत: जितने प्रमाण में परिणाम लाना चाहते हो उतने प्रमाण में वैसी कक्षा का नमस्कार साधक कर सकते हैं । जैसे जितनी जल्दी खिचड़ी पकाना चाहते हो उस हिसाब से उतने प्रमाण में नीचे कारण रूप अग्नि का कम ज्यादा प्रमाण रखिए ।

ठीक इसी तरह यहां भी जितने प्रमाण में आप अपने पाप कर्मो का क्षय करना चाहते हो ? या अन्य किसी प्रकार का फल चाहते हो तो फिर उस हिसाब से उतनी गुणवत्ता का या उस कक्षा का नमस्कार आप करिए । जी हां ! बिल्कुल कम गुणवत्ता का सामान्य कक्षा का नमस्कार कुशलानुबंधी पुण्य उपार्जन कराता है और यही नमस्कार यदि सर्वोच्च कक्षा का एवं सर्वोत्कृष्ट कक्षा की गुणवत्ता वाला हो तो सब पाप कर्मो का समूल सम्पूर्ण सर्वथा नाश कराके मुक्तिदाता भी बनता है । जैसे एक ही कक्षा में एक विद्यार्थी अनुत्तीर्ण होता है, दूसरा उत्तीर्ण होता है, तीसरा प्रथम श्रेणी में पास होता है, चौथा 90% गुणांक प्राप्त करता है, पांचवा शत् प्रतिशत गुणांक प्राप्त करके पूरी कक्षा में प्रथम क्रमांक पर आता है । छट्ठा विद्यालय में प्रथम क्रमांक पर आता है और कोई पूरे राज्य भर में प्रथम क्रमांक पर सन्माननीय बनता है और कोई इससे भी ऊंची कक्षा में समूचे देशभर में प्रथम कक्षा में प्रथम क्रमांक पर आरूढ होकर राष्ट्रपति से पुरस्कार प्राप्त करता है ।

ठीक इसी तरह एक नमस्कारकर्ता नमस्कार करके मात्र सामान्य व्यवहार निभाता है । दूसरा शुभ पुण्य उपार्जन करता है । तीसरा और कोई पापों का अवरोधन रूप संवर साधता है । कोई और ऊंचा नमस्कार करके थोड़े बहुत कुछ पाप कर्म धोता है । कोई और नमस्करणीय और अपने नमस्कारों का ऊभय कक्षा की गुणवत्ता को काफी ऊंची श्रेणी में ले जाकर "सव्व पावप्पणासणो" का लक्ष्य लेकर सब पापों का नाश करता है । कोई इसी नमस्कार से "कृत्स्न कर्मक्षयो मोक्षः" का सिद्धान्त चरितार्थ करते हुए मोक्ष भी प्राप्त करता है । इस तरह घटिया-बढिया सब प्रकार के नमस्कारों का अस्तित्व जगत् में हैं । भिन्न-भिन्न प्रकार के जीव संसार में है तथा उनके भी भिन्न-भिन्न प्रकार के भाव अध्यवसाय, साध्य हेतु तथा गुणवत्तादि भिन्न-भिन्न कक्षा की होने पर उस हिसाब से ही फल प्राप्त करते हैं ।

नमस्कार की गुणवत्ता और संख्या—

गुणवत्ता और संख्या की दृष्टि से नमस्कार की चतुर्भंगी होती है जो इस प्रकार है—

1. नमस्कार की संख्या ज्यादा है परन्तु गुणवत्ता नहीं है ।
2. नमस्कार की गुणवत्ता है परन्तु संख्या बिल्कुल ही नहीं है ।
3. नमस्कार की गुणवत्ता और संख्या दोनों का सर्वथा अभाव है ।
4. नमस्कार की गुणवत्ता अच्छी है और साथ ही संख्या भी काफी अच्छी है ।

1. इन चार भंगों की चतुर्भंगी में... प्रथम प्रकार वाले जीव भी संसार में लाखों है । जो नमस्कार करते हैं । संख्या जरुर है । लेकिन गुणवत्ता का नाम निशान नहीं है । क्योंकि भाव अध्यवसायों की विशुद्धि ही नहीं है तथा न ही इसके आधारभूत ज्ञान का प्रमाण भी है । सामान्य रूप से या व्यवहार की प्रचलितता के आधार पर संख्या की दृष्टि से नमस्कार की क्रिया करते रहते हैं ।

2. दूसरा प्रकार प्रथम प्रकार से सर्वथा विपरीत है । इसमें ऐसे साधक हैं जो गुणवत्ता को साधने का लक्ष्य जरुर रखते हैं, परन्तु संख्या की आवश्यकता महसूस ही नहीं करते हैं । कभी महीने भर में या वर्ष भर में भी 1 बार कर लिया तो ठीक । गुणवत्ता जरुर बढ़ती हुई कक्षा की हो लेकिन आगे संख्या नहीं होने से पुनः वैसी गुणवत्ता का नमस्कार भाव लाने में काफी लम्बा समय बीत जाता है ।

3. तीसरे प्रकार के उदाहरण रूप जीव भी इस संसार में काफी ज्यादा तादात में है । जैसे समुद्र में हर किस्म की मछलियां है ठीक उसी तरह संसार में भी सब किस्म के... हर प्रकार के जीव है । कई जीवों को न तो नमस्कार की गुणवत्ता की आवश्यकता महसूस होती है और न ही संख्या की । क्योंकि न ही श्रद्धा है, न रुचि है, और न ही कोई वैसे भाव है, न शुद्धि है, न कोई लक्ष्य है, कुछ भी नहीं है । उपेक्षा भी काफी है ।

4. चौथे प्रकार के ऐसे भी जीव अनेक है जिनमें दोनों का प्रमाण अच्छा है । नमस्कार की संख्या भी काफी अच्छी बढाई है और उसी तरह नमस्कार की गुणवत्ता भी काफी ऊंची बढाई है । याद रखिए—संख्या का प्रमाण श्रद्धा के बल पर, रुचि इच्छा एवं फल प्राप्ति की आकांक्षा तथा नियमों के आधार पर निर्भर रहता है । जबकि गुणवत्ता का आधार श्रद्धा के साथ ज्ञान की मात्रा भी काफी हो, भक्ति हो, नमस्करणीय महापुरुषों के प्रति पूज्य भाव, ऊंचा अहो भाव हो, भावों-अध्यवसायों की विशुद्धि एवं सब पाप कर्मो का सर्वथा नाश करने की वृत्ति पक्की हो, उस साध्य रूप फल को हांसिल करने या परिणामों में सफलता प्राप्त करने के लक्ष्य की टेक पर है । अब साधक यह अच्छी तरह समझ लें कि... नमस्कार भाव की गुणवत्ता बढाने के बावजूद भी निर्धारित सफलता नहीं प्राप्त होती है तो फिर उसे संख्या का प्रमाण बढाना चाहिए । अर्थात् बार-बार ऐसे ही ऊंचे भाव वाले ऊंची गुणवत्ता वाले नमस्कार करते रहना चाहिए ।

नमस्कार मात्र क्रियात्मक कायिक ही होगा तो संख्या ही मापी जाएगी । परन्तु वही नमस्कार यदि मानसिक कक्षा का ज्ञान श्रद्धा युक्त भावों वाला बन जाये तो दोनों का मेल अच्छा बैठ जाता है । जरुरी नहीं है कि... आपने 1-2 नमस्कार आज किये और आज ही सब पाप कर्मो

का सम्पूर्ण क्षय हो जायगा । जी नहीं । यद्यपि "इक्कोवि नमुक्कारो" की बात सिद्धाणं-बुद्धाणं सूत्र में काफी अच्छी की है । अत: एक नमस्कार मात्र से भी सब पाप कर्मों का समूल सम्पूर्ण नाश करके मोक्ष में गए हुए जीव अनेक हैं । फिर भी वैसा एक नमस्कार आज के इस कलियुग में होना या वैसा भाव आना बहुत मुश्किल लगता है । अत: नमस्कार के लिए संख्या का आधार भी लिया गया है । कब तक नमस्कार करते रहें ? इसके उत्तर में सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि... जब तक समस्त पाप कर्मों का समूल सर्वथा सम्पूर्ण क्षय न हो जाय वहां तक... गुणवत्ता का प्रमाण बढाते हुए संख्या की मात्रा भी बढाते रहना चाहिए ।

चौथे प्रकार में तरतमता के अनेक भेद—

गुणवत्ता और संख्या में हानि-वृद्धि तथा निरन्तर दोनों में हानि या निरन्तर दोनों वृद्धि ही होती रहे ऐसे तरतमता के अनेक भेद होते हैं—इसे हम यहां प्रतिशत की संख्या से समझाने की कोशिस कर सकते हैं—

अ विभाग-हानि—

गुणवत्ता का प्रमाण	संख्या का प्रमाण
80%	50%
60%	40%
50%	35%
40%	30%
30%	25%
20%	20%
15%	20%
10%	15%
5%	10
2%	5%

ब विभाग-वृद्धि—

गुणवत्ता का प्रमाण	संख्या का प्रमाण
10%	15%
20%	20%
30%	40%
40%	30%
50%	40%
70%	50%
80%	60%
90%	50%
100%	20%

इसमें गुणवत्ता की मात्रा बहुत जल्दी ज्यादा घटती गई, जबकि संख्याबल धीरे-धीरे घटा है ।

ब विभाग में गुणवत्ता के प्रमाण में निरन्तर वृद्धि होती गई । जबकि तुलना मे सामने संख्या की मात्रा कम बढी तथा वृद्धि भी हुई और हानि भी हुई है । इसी तरह संभव है कि गुणवत्ता और संख्या दोनों में वृद्धि का प्रमाण बढ़ता ही जाय तो एक दिन परिणाम आ भी सकता है । यह प्रतिशत की मात्रा दोनों विभागों में कब तक बढ़ाएं ? कहां तक बढ़ाएं ? जी हां, इसका कोई निर्धारित माप-प्रमाण या सीमा नही है । अत: जहां तक साध्य की सिद्धि न हो वहां तक वृद्धि के क्रम को जारी रखना चाहिए, अर्थात् जहां तक समस्त पाप कर्मों का समूल सर्वथा सम्पूर्ण नाश (क्षय) न हो जाय वहां तक तो अवश्य ही... अखण्ड रूप से जारी रखना चाहिए । वृद्धि की कक्षा में काफी शीघ्रता से साध्य सिद्धि की संभावना रहती है । श्री कृष्ण ने भी यही किया । एक तरफ अपने नमस्कार (साधु वंदन) की गुणवत्ता बढाई और दूसरी तरफ संख्या का प्रमाण 18000 साधुओं को वंदन करना था । नरकें एक-एक टूटती जा रही थी एवं पाप कर्मों का प्रमाण भी घटता जा रहा था । लेकिन वीरा सालवी के थक जाने के कारण श्रीकृष्ण की गुणवत्ता अपने अहंकार भाव में घट गई । और परिणाम की धारा भी टूट गई । संख्या भी पूरी नही हो पाई और ऊपर से 3 नरक तो बची । आखिर जाना ही पड़ा । परन्तु इस उपाय को देने वाले परमात्मा नेमिनाथ भगवान ने इतनी संख्या के ऐसे वंदन से इतने ही पाप कर्म नष्ट होगा और इतनी ही नरक टूटेगी ऐसी कोई बात नहीं की थी । इसका आधार साधक पर है ।

साधक के नमस्कार की गुणवत्ता एवं संख्या पर निर्भर करता है । अत: दोनों का प्रमाण बढाना सुधारना साधक के हाथ में है । "सव्व पावप्पणासणो" के लक्ष्य-साध्य पद पर पूरा ध्यान रखना चाहिए । इस साध्य में यदि गिरावट आएगी तो निश्चित ही गुणवत्ता और संख्या में भी गिरावट आएगी तथा इन दोनों में निरन्तर वृद्धि ही लानी हो तो साध्य पद की धारणा भी सतेज रखिए और... उसके अनुरूप ज्ञान, श्रद्धा, भाव अध्यवसाय आदि सब भावों की वृद्धि जो आधार भूत है उसे भी बढ़ाते रहिए ।

योगज नमस्कार—

एक योग है— मन, वचन और काया का । इन तीनों के स्वतंत्र एवं सम्मिलित दोनों प्रकार के स्वरूप है । अकेला मनो योग, वचन योग तथा काय योग इस तरह तीनों योग स्वतंत्र रूप से हैं । कार्य क्षेत्र में कभी मिलकर कार्य करते हैं तथा कभी स्वतंत्र भी कार्य करते है या कई

वार एक दूसरे के विरुद्ध विपरीत भी काम करते हैं। कई बार मन कुछ और ही सोचता रहता है और काया अपनी तरफ से कुछ और ही क्रिया करती रहती है। इसी तरह कई बार दम्भ के कारण मन के विचार अन्दर कुछ और ही चलते रहते हैं और वचन योग की भाषा कुछ और ही प्रकार की रहती है। इसी तरह वचन के अनुरूप भी काया की क्रिया भी अलग ही चलती रहती है। आखिर ये तीनों आत्मा के लिए माध्यम है, साधन है, ये जड़ है। स्वयं कोई ज्ञानी नहीं है। ज्ञाता तो एक मात्र चेतन आत्मा ही है। याद रखिए— मन, वचन, काया के इन तीनों योगों से शुभाशुभ कर्मों का आश्रव भी होता है, और कर्मों का बंध भी होता है। अत: कर्म बंध के हेतु रूप भी ये साधन है। ठीक इसी तरह ये ही मन, वचन, काया मिलकर एवं अकेले कर्मों की निर्जरा भी ढेर सारी करा सकते हैं। आखिर ये जड़ है। इनकी पूरी चाबी चेतन आत्मा के पास है।

हम देखते भी हैं और अनुभव भी करते हैं कि... कई बार हम काया से नमस्कार की क्रिया जरुर करते हैं परन्तु मन अन्य विचारों में भटकता ही रहता है जिसके कारण भावों की विशुद्धि का अभाव ही रहता है। अत: निर्जरा-कर्मक्षय का परिणाम नहीं आता है। कई बार इससे विपरीत भी होता है, मन शुभ अध्यवसायों वाला जब बनता है तब... काया रोगादि कारणवश नमस्कार की क्रिया विशुद्ध रूप से करने में साथ नहीं निभाती। यदि इसी तरह नमस्कार करने में भी इनका कोई तालमेल नहीं बैठेगा तो परिणाम कैसे आएगा ? इसलिए माला में पिरोए गए मणकों की तरह इन तीनों योगों को एक सूत्र में पिरोकर त्रिकरण योग का नमस्कार करना चाहिए। ताकि कर्मक्षय हो।

यौगिक नमस्कार—

योग साधना के विषय में योग की मौलिक व्याख्या पर काफी ज्यादा आधार रहता है। आजकल कई योग के भिन्न-भिन्न मतों ने इस व्याख्या के विषय में भी अपनी-अपनी व्याख्याएं बैठा दी है। परिणाम स्वरूप धर्म और दर्शन की तरह योग के विषय में भी मत, मतान्तर, मतभेद और स्वतंत्र सम्प्रदाय खड़े हो चुके हैं और सभी अपनी अपनी दुकानदारी चला रहे हैं। आज अधिकांश लोगों ने योग को मात्र शारीरिक ही बना दिया है। अब आप ही सोचिए इससे बड़ी भूल और क्या हो सकती है ? योग साधना सम्पूर्ण आध्यात्मिक थी। आत्म कल्याणार्थ थी। उसे देह सौष्ठव, तनाव मुक्ति मानसिक शान्ति के मोहक नाम एवं आकर्षक लुभाने वाले सूचक विशेषण एवं नामादि देकर दु:खी अन्जान लोगो को लुभाया जा रहा है। परिणाम स्वरूप योग की साधना का स्तर नीचा गिरता ही जा रहा है। इसीलिए योग विषयक आध्यात्मिकता, आत्मिकता का ह्रास होता जा रहा है। अत: योग दर्शन के योगशास्त्र, योग विंशिका, योग शतक, ध्यान शतक, अष्टांग योग आदि मौलिक ग्रन्थों के अध्ययन से अष्टांग योग का सर्वांगीण अभ्यास करके योग साधना को समाधि तक पहुंचाकर निर्जरा साधक बनाना चाहिए।

मोक्षेण सह योजनात् योग: (मुक्खेण जोयणाओ जोगो) इस शास्त्रीय व्याख्या के आधार पर अपनी आत्मा को मोक्ष के साथ जोड़ने को योग कहा है। शायद आप सोचेंगे कि... यह कैसे संभव होगा ? आत्मा सर्व कर्म मुक्त होकर देह छोड़कर मोक्ष में जाएगी तभी योग सही हो सकता है। जी नहीं, ऐसा नहीं है। मोक्ष का जो स्वरूप जैसा है वैसा है ही। अनन्त सिद्ध आत्माएं मोक्ष में बिराजमान है। हम यहां से "नमो सिद्धाणं" का मंत्र पद बोलकर जब सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करते है तब-काया पंचांग प्रणिपात द्वारा नमस्कार करने रूप कायिक क्रिया करे। वचन योग भाषाकीय शब्दोच्चारण में लगे। और उसी समय मनोयोग मानसिक भावों को 14 गुणस्थान की श्रेणी के सोपानों पर चढ़कर क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होकर क्रमश: कृत्स्न कर्म क्षय करके लोकाग्र या लोकान्त भाग में कैसे पहुंची ? सिद्धशिला के ऊपर लोकान्त में किस तरह स्थित है ? इत्यादि सिद्ध स्वरूप तक अपने भावों को पहुंचाएं और मन की द्रुत गति में मानस चित्र उपसने लगे और उनको सिद्धों को हम अपने सामने प्रत्यक्ष ही है ऐसा साक्षात्कार करते हुए नमस्कार करते जाएं। तब ऐसा नमस्कार या स्मरण आल्हादक बनेगा। चिरस्थायी आनन्द उत्पन्न होगा।

इस तरह क्षण मात्र में मोक्ष का यहीं प्रत्यक्षीकरण हो जाएगा। हमारा यहां बैठे-बैठे उनके साथ योग हो गया। यद्यपि हम नीचे है, सिद्ध 7 राजलोक ऊपर है। दोनों के बीच में 7 राजलोक का इतना लम्बा अन्तर होने के बावजूद भी योग साधना 1 क्षण भर में ही यहां अनुभूति करा देता है। मोक्ष में साक्षात् तो हम कब जाएंगे ? पता नहीं है। न मालूम कितने भव बीतेंगे ? और कितना काल लगेगा ? पता नहीं। लेकिन आज ही योग ध्यान साधना की प्रक्रिया से मोक्ष का साक्षात्कार कर सकते हैं। कल वहां जाकर जो और जैसे सिद्ध स्वरूप को आप स्वयं पाएंगे या देखेंगे, और जैसी अनुभूति आप भविष्य में करेंगे वैसे अनुभूति और दर्शनादि आप ध्यान योग की साधना के बल पर आज कर सकते हैं। अभी कर सकते हैं। याद रखिए कोई पहले मोक्ष में जाकर सब कुछ देखकर वापिस आकर... कि हां अब मुझे बहुत अच्छा लगा, पंसद आया। अब मैं जाने के लिए तैयारी करूंगा। जी नहीं ऐसी कोई बात ही नहीं है। ऐसी कल्पना करनी भी व्यर्थ है। भूतकाल में अनन्त आत्माएं मोक्ष में जाकर सिद्ध बनी है। सबने ध्यान योग की साधना का आश्रय लिया है। नमस्कारादि का आलंबन लिया है। सर्व कर्मों का क्षय किया है। गुणस्थानों के सोपानों पर आरुढ़ हुए हैं और क्षपक श्रेणी पर चढ़कर अन्त में मोक्ष में गए हैं। यही समस्त जीवों के लिए राजमार्ग है। इसलिए

हमें भी इसी मार्ग पर चलना है । चाहे जब भी चलें... मार्ग यही रहेगा । अनन्त काल के पश्चात् भी मार्ग यही और ऐसा ही रहेगा । अत: यह मोक्ष मार्ग शाश्वत है तथा मोक्ष मार्ग के ही एक घटक रूप में "श्री नमस्कार महामंत्र" भी शाश्वत रहेगा ।

बिना नमस्कार के कभी कोई भी जीव मोक्ष में गया ही नहीं है । मोक्ष में जाने वाले एक-एक जीव ने पंच परमेष्ठी अरिहन्त सिद्धादि भगवन्तों को एक-एक नमस्कार भी किया है, इतना भी यदि मानों तो भी बीतें हुए अनन्त काल में जो अनन्त जीव मोक्ष में गए है । उनके आधार पर अनन्त नमस्कार तो हो चुके हैं । जबकि एक-एक जीव ने सम्यग् दर्शन की प्राप्ति करके मोक्ष प्राप्त करने तक के काल में अगणित असंख्य नमस्कार भी किये होंगे ? या नमस्कार महामंत्र का जपादि स्मरण या माला जापादि संख्या में अगणित अनगणित गिने होंगे । असंख्य भी गिने होंगे । अत: उनका आदर्श समझकर हमें भी इस राजमार्ग को अपनाना होगा ।

याद रखिए ! गुरु बनकर जितने मोक्ष में नहीं गए हैं उनसे असंख्य गुने जीव शिष्य बनकर मोक्ष में गए हैं । आचार्य, उपाध्याय अपने शिष्यों के गुरु अवश्य ही है । आचार्यों के लिए तथा उपाध्यायों के लिए शिष्य होने अनिवार्य है । परन्तु साधु के लिए शिष्य होने आवश्यक नहीं है । साधु स्वयं ही शिष्य है । जरुरी नहीं है कि... खुद के शिष्य हो तो ही साधु-साधु कहलाते हैं, नहीं । आज स्वयं दिक्षा लेने वाला साधु ही कहलाता है जो स्वयं शिष्यरूप है । परन्तु आचार्य, उपाध्याय के विषय में वैसा नहीं है । उनके लिए अलग ही नियम की व्यवस्था है । वे शिष्य रहित इन पदों पर आरुढ नहीं हो सकते । उनके खुद के शिष्य होने ही चाहिए । अर्थात् अपने शिष्यों के वे गुरु हो तो ही वे आचार्य, उपाध्याय पद पर आरुढ हो सकते हैं अन्यथा नहीं । अत: स्वाभाविक ही है कि इन दोनों की संख्या साधुओं की संख्या की अपेक्षा तुलना में सदा ही कम रही है और भविष्य में भी कम ही रहेगी । साधु स्वयं शिष्य रूप है, हो सकता है कि... किसी-किसी साधु के खुद के भी शिष्य हो, और वे गुरु हो... या मात्र शिष्यरूप में ही रहे हुए हो... साधुओं की संख्या काफी बड़ी होती है । उसमें भी साध्वियों की सारी संख्या साधु पद में समाती है । क्योंकि साध्वी संस्था में आचार्य, उपाध्यायादि किसी प्रकार के पदादि की व्यवस्था नहीं है । इसलिए भी साधु पद पर संख्या का बाहुल्य बना रहेगा और इसी कारण साधु पद से अनन्त मोक्ष में गए हैं । लेकिन आचार्य, उपाध्याय पद से उतने नहीं ।

इसी तरह आपको कोई नमस्कार करे या न करें... इससे आपका मोक्ष कभी भी रुक नहीं सकता है । परन्तु आप स्वयं यदि किसी को नमस्कार न करो तो आपका मोक्ष निश्चित रूक जाएगा । कभी भी नहीं होगा । अत: यदि आप अपनी मुक्ति मोक्ष प्राप्ति की आकांक्षा तीव्र तमन्ना रखते हो तो आपको आज से ही अरिहन्तादि पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करना प्रारम्भ कर ही देना चाहिए । किसी को भी नमस्कार न करने से दिल में अहंकार की मात्रा, मान अभिमान का प्रमाण बढता है । इसी कारण मोक्ष रुकता है । अत: ये मान अभिमान, अहंकारादि मोक्ष प्राप्ति में बाधक है । अवरोधक तत्त्व है । ये कर्म रूप है । अत: कभी भी अपनी उपस्थिति में ये मोक्ष प्राप्ति होने ही नहीं देंगे ।

गुण-दोष स्वरूप—

जबकि नमस्कार गुण है । आत्म गुण है । ये मोक्ष के अनुकूल धर्म है । अंत: जिन्होंने भी मुक्ति प्राप्त की है उनको हम नमस्कार करते रहेंगे तो हमारे में से मान कषाय मोहनीय कर्म की प्रकृति का क्षय होगा । नमो भाव एवं अरिहन्तादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के प्रति पूज्यभाव, अहोभाव प्रगट होता रहेगा तथा नमस्कार कर्मनाश कराते हुए हमें मोक्ष के समीप लेता ही जाएगा । हम आगे बढ़ते ही जाएंगे । याद रखिए गुण हमेशा विकास कराते हुए आगे बढाता है । जबकि दोष (कर्म) हमेशा विनाश कराते हुए पीछे फेंकता है । मोक्षार्थी मुमुक्षु जीवों के दृष्टि समक्ष प्राप्तव्य आदर्श रूप साध्य मोक्ष का ही रहता है । अत: इसके अनुरूप एवं अनुकूल धर्म नमस्कार का है । यही बीजभूत धर्म है । बस, इसीके विकास के सहारे आत्मा का विकास होता जाएगा । आत्मा का चाहे कोई भी गुण हो ? आप चाहो उस गुण को आधारभूत धरातल बनाते हुए विकास के श्री गणेश करिए । गुण एक दूसरे से संलग्न रहते हैं ।

अत: एक गुण दूसरे गुण को खिंचकर लाता है । इकट्ठे होते हैं । एक गुण दूसरे गुण की अपेक्षा रखता है और मिलकर आगे बढ़ाते रहते हैं आत्मा को । परिणाम स्वरूप आत्मा का विकास होता है तथा ठीक इसके विपरीत दोष आत्मा का विनाश करते हैं । क्रोध, मान, माया, लोभ, कामादि एवं राग-द्वेष ये दोष स्वरूप है । कर्म स्वरूप है । आत्मा को दुर्गति के गर्त में डाल देते हैं । जिस तरह गुणों के घर में एक गुण दूसरे गुण का सहयोगी बनता हुआ उन्हें खींचकर लाता है वैसे ही दोषों के घर में एक दोष दूसरे दोष को, फिर दूसरा तीसरे दोष को खींचकर लाता है । परिणाम दोषों का मेला लग जाता है और जीवात्मा को विनाश की दिशा में दुर्गति के गर्त में ले जाते हैं । जैसे मान, अभिमान एक दोष अपने साथ क्रोधादि कषाय के दोष को खींच लाएगा । फिर क्रोध झूठ बोलाने में भी सहयोग करेगा और झूठ बोलने में फिर माया-कपट भी करनी पड़े तो करेगा । इस तरह दोषों का झूण्ड जमने लगता है । जीवात्मा जाल में मछली की तरह फंसकर आखिर दोषों की शिकार बन जाती है ।

गुणों के घर में नम्रता, समता, क्षमा, सरलता, संतोष, करुणा, मैत्री, प्रमोद आदि अनेक गुण है । इनमें केन्द्र में बीजभूत गुण नम्रता, विनय गुण कहलाता है । नमो भाव इसकी अभिव्यक्ति का केन्द्र है और नमस्कार की क्रिया इसे प्रगट करने का साधन मात्र है । नम्रता गुण रूप से रहने पर नमस्कार की क्रिया के रूप में व्यक्त होता ही जाएगा । नमस्कार करने वाला नमस्करणीय महापुरुषों पर क्रोधादि कषाय नहीं करेगा । क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है कि... क्रोध करके कुछ भी जैसा-तैसा बोलने पर बड़ों का अनादर होगा । उनके प्रति अभाव दुर्भाव बढ़ेगा । इससे भारी कर्म बंध होगा । आत्मा का अहित-अनर्थ होगा । फिर आगे के और दूसरे भी दोष आते ही जाएंगे । वे आत्मा को और अपनी जाल में फसाते ही जाएंगे । इस तरह आत्मा का अध: पतन हो जाएगा । इससे विपरीत यदि आत्मा गुणों का विकास करती जाय तो अनेक गुण बढ़ते जाएंगे ।

गुणात्मक - चरण धर्म—

— उपरोक्त चित्र और तालिका को देखते हुए यह समझना है कि... आत्मा चेतन द्रव्य प्रमुख रूप से ज्ञान-दर्शनादि गुणमय द्रव्य है । गुणों का पिण्ड है । गुणों से परिपूर्ण है, भरा हुआ है । गुणों को प्रगट होने के लिए माध्यम धर्म का है तथा धर्म को व्यवहार में लाने वाली क्रिया है ।

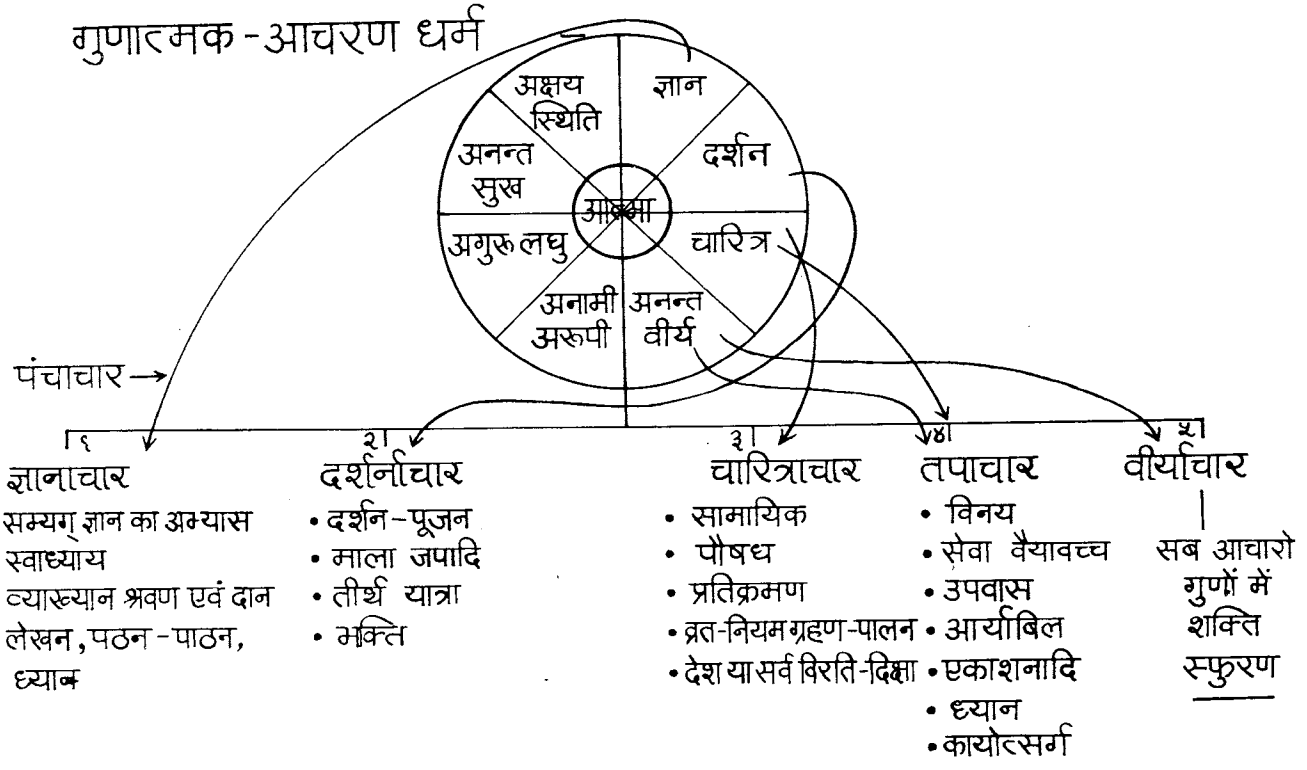

गुण-गुणी में रहेंगे । आचार धर्म उन गुणों को बाह्य व्यवहार में लाने का परम माध्यम है तथा क्रिया साधन ादि साधन है । प्रस्तुत विषय नमस्कार महामंत्र का है । अत: नमस्कार पंचाचारात्मक कैसे है यह देखना हैं । इससे नमस्कार अपने आप में एक पूर्ण सम्पूर्ण धर्म है ऐसा बोध होना चाहिए । जैसे दूध अपने आप में पूर्णाहार है । क्योंकि सभी तत्त्व दूध में मिल जाते है । पोषक तत्त्वों की भरमार है । शक्ति का खजाना है । अत: कोई व्यक्ति जन्म से मृत्यु पर्यन्त और किसी भी प्रकार का शाकाहार, फलाहार, अन्नाहार आदि कुछ भी न ले और सिर्फ दूध पर ही

रहे तो भी आसानी से जी सकता है । यहां तक कि... जलाहार पानी भी अलग से पीने की आवश्यकता नहीं रहती । दूध सब प्रकार के प्रोटीनादि जीवन सत्व एवं पोषक तत्त्व प्रदान करता है ।

अत: दुग्धपान करने वाले में किसी भी प्रकार की कमी महसूस नहीं होगी । प्राचीन काल में सैंकड़ों ऋषि मुनि इस तरह जी चुके हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि दूध अपने आप में पूर्णाहार है तथा सात्विकता सत्व शुद्धि भी प्रदान करता है । जन्म से 1-2 साल तक का बाल शिशु अपनी माता के दूध पर ही जीवित रहता है । पानी की भी अलग से कोई आवश्यकता महसूस नहीं होती है और शिशु बराबर जीवन जीता है । अपने शरीर का बहुत अच्छी तरह विकास करता है । जब हम 2 वर्ष जी सकते हैं तो 100 साल भी जी सकते हैं ।

ठीक इसी तरह समस्त गुणों का राजा विनय गुण, नम्रता के धर्म का नमो भाव भी एक ऐसा गुण है, एक ऐसा धर्म है कि जिसके आधार पर साधक पूर्ण धर्मी बन सकता है । मोक्ष में जा सकता है । जैसे सब प्रकार के आहार के पोषक तत्त्व दूध में उपलब्ध है वैसे ही सब प्रकार के गुणों के अंश भी विनयगुण में रहते हैं । एक विनय गुण जीवन में आया, वह बढ़ता रहे तो दूसरे समता, क्षमा, सरलता आदि के अनेक गुण विनय गुण के साथ स्वयं विकसित होते ही जाएंगे । अर्थात् विनय गुण के साथ समतादि अपने आप पनपेंगे । उदाहरणार्थ शिष्य के गुरु के प्रति पूर्ण विनम्रता का नमो भाव बना हुआ है और ऐसे में गुरु ने कभी आक्रोश में या क्रोधावेश में कुछ कह दिया, भला-बुरा सुना भी दिया तो विनय गुणवान नम्रता से उसे सुन लेगा और हितकारी, उपकारी मानेगा । लेकिन पुन: सामने क्रोध करके गुरु को दो बात नहीं सुनाएगा । गुरु का अनादर, अपमान नहीं करेगा तथा गुरु की आशातना भी नहीं करेगा । वैसा ही यदि पुत्र भी विनय गुण सम्पन्न होगा तो वह पिता के प्रति भी शिष्य की तरह ही रहेगा ।

ज्ञानादि गुणात्मक विनय धर्म—

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तपादि आत्मा के मूलभूत गुण है तथा इन गुणों को प्रगट करने वाला, बाहर लाने वाला या गुणात्मक आचरण कराने वाला पंचाचार प्रधान धर्म है । इसीलिए धर्म का आधार गुणों पर रखा है । अत: गुणानुरूप एवं गुणाचरण, गुणवर्धक धर्म होना चाहिए । ज्ञान गुण का ज्ञानाचार धर्म बनाया है । ज्ञान की प्राप्ति विनय के बिना असंभव है । अत: ज्ञानाचार के व्याख्यान, पाठ, अभ्यास, स्वाध्यायादि सबको विनयाचार से मंडित किया है । पहले विनय धर्म का पालन करो फिर ज्ञान प्राप्त होगा । लौकिक क्षेत्र में श्रेणिक जैसे सम्राट ने चोर के सामने विनयाचार पूर्वक नम्रता का आचरण किया तब चोर से भी विद्या मिली । लोकोत्तर क्षेत्र में देव गुरु के सामने तो लाखों गुणा ज्यादा विनयाचार का आचरण करना ही है ।

दर्शनाचार में देव गुरु की पूजा, भक्ति, तीर्थ यात्रा, दर्शनादि में भी पहले विनय गुण का आचरण है । नम्रता की प्रथम आवश्यकता है । नमस्कार तो सबसे पहले करना है । मन्दिर में भगवान के सामने गुरुओं के समक्ष सर्वप्रथम क्या दिखाओंगे ? नमो भाव ।

इसी तरह चारित्राचार में आत्मा का चारित्र गुण सन्निहित है । चारित्र संवर प्रधान है । पापों के आश्रव को रोकने वाला है । मान, अभिमान, क्रोधादि कषाय आत्मा में कर्मों का आश्रव करने वाले हैं । नम्रता पूर्वक गुरु भगवन्त के पास सामायिक पौषध लेकर बैठने में समतादि गुणों का आचरण होता है । सामायिक लेना पारना यह चारित्राचार की क्रिया है । लेकिन उसमें गुण समता का है । क्रोध कषाय को शान्त करने में समता गुण की साधना का सामायिक धर्म है । लेना, बैठना, पारना क्रिया है । प्रतिक्रमण जो षडावश्यकमय है उसमें भी वंदनादि नमो भाव के धर्म से भरे हुए हैं । तपाचार के बाह्य आभ्यंतर के 12 भेदों में आभ्यन्तर तप विनय का स्वतंत्र अलग से विभाग रखा है । विनयाचार काफी अच्छे प्रमाण में निर्जरा कराता है । इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि... नमो भाव पूर्वक नमस्कार की क्रिया कर्मक्षय कारक-सब पाप नाशक-निर्जरा कारक है । जो निर्जरा कारक धर्म है वही मोक्ष दायक है । अन्तिम पांचवा आचार वीर्याचार का है । यह शक्ति द्योतक है । पुरुषार्थ प्रधान है । अप्रमत्त भाव का द्योतक है । नमस्कार करने की क्रिया विधि में काया की शक्ति का प्रयोग करना है । 108 या 1008 खमासमणे देने में, श्री कृष्ण ने 18000 साधुओं को वंदन किया । कितनी शक्ति खर्ची ? मनोबल, उत्साह, उल्लासपूर्वक खमासमणे देना आदि आचरण वीर्याचार से होता है । ज्ञानाचारादि चारों आचारों में अपनी शक्ति का स्फुरण वीर्याचार है । इस तरह एक नमस्कार धर्म... नमो भाव का धर्म विनय गुण का आचरण गुणात्मक एवं धर्मात्मक उभय स्वरूप है । इसका सुयोग्य आचरण कर विनीत नम्र बनें तथा कर्मक्षय कर मोक्ष साधें ।

नमस्कार से दुःख—दुर्गति का नाश कैसे ?

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

चिट्ठउ दूरे मंतो, तुज्झ पणामो वि बहुफलो होई ।
नर-तिरिएसुवि जीवा, पावंति न दुक्ख-दोगच्चं ॥

— श्री उपसर्गहर (उवसग्गहरं) स्तोत्र में मंत्र की अपेक्षा भी प्रणाम का विशेष फल दर्शाते हुए रचयिता पूर्वधर महापुरुष श्री भद्रबाहुस्वामी महाराज उपरोक्त श्लोक में फरमाते हैं कि... हे परमात्मा ! आपके नाम का बना हुआ बड़ा लम्बा चौड़ा मंत्र तो दूर रहो लेकिन... आपको मात्र प्रणाम भी किया जाय तो अनेक गुना बड़ा फल देता है । जिससे नर-नारी तो क्या तिर्यंच पशु-पक्षी के जीव भी दुःख और दुर्गति नहीं पाते हैं । इस श्लोक के उपरोक्त अर्थ में देखिए... परमात्मा को प्रणाम करना भी कितना लाभकारी है ? अच्छी तरह नमस्कार करने वाले नर-नारी जो समझदार मनुष्य है वे तो शुभ फल पाते ही है । लेकिन... जो तिर्यंच गति के पशु-पक्षी जैसे अबुध जीव है वे भी नमस्कार करके संसार में दुःख और दुर्गति नहीं पाते हैं । अर्थात् इससे बचते हैं ।

उत्कृष्ट नमस्कार ही प्रणाम है—

'नम्' धातु नमन करने-नमस्कार करने अर्थ में है । इसके आगे 'प्र' उपसर्ग लगने से प्रणाम शब्द बनता है । यहां 'प्र' प्रकृष्ट-उत्कृष्ट वाची है । अतः उत्कृष्ट कक्षा का नमस्कार करने को प्रणाम कहते हैं । काया से सामान्य रूप से किया जाता नमस्कार मनोभाव की भावना जुड़ने पर उत्कृष्ट कक्षा का बनता है । अतः श्लोक में नमस्कार नहीं प्रणाम "पणामो" शब्द का प्रयोग किया है । ऐसा परमात्मा को किया गया एक नमस्कार—"बहुफलो" अनेक प्रकार का फल प्रदान करता है । एक से ज्यादा होने पर अनेक शब्द का प्रयोग किया जाता है । इसके लिए यहां वाचक 'बहुफलो' शब्द है । जिसमें दो फल स्पष्ट लिखे हैं श्लोककार पूज्यश्री पूर्वधर महापुरुष ने । 1. दुःख और 2. दुर्गति नमस्कार प्रणाम करने वाला नहीं पाता है ।

नवकार, दुःख नाशक कैसे ?—

निषेधवाची 'न' शब्द रखकर दुःख और दुर्गति के फल का निषेध किया है । अतः नमस्कार दुःखों का नाश कैसे करता है ? इस पर विचार करें । नमस्कार पुण्यकारक भी है । नौं प्रकार से पुण्य बांधने के विषय में नौंवा अन्तिम प्रकार नमस्कार का लिया है । नमस्कार शुभ पुण्यात्मक है । पुण्य उपार्जन कराता है । इसके आचरण से शुभ पुण्य बांधकर देवलोक में अच्छी देव गति में जाएगा या ऊंची मनुष्य गति में जाएगा । वहां वह पुण्य के उदय में सुख ही भोगेगा । नियम ऐसा है कि... "दुःखं पापात् सुखं धर्मात्" अर्थात् पाप कर्म के उदय से दुःख आता है और पुण्यात्मक शुभ धर्म करने से सुख मिलता है । इस तरह शुभ-योग से शुभ अनुष्ठान स्वरूप नमस्कार करने से पुण्य बंधता है और उसके उदय में सुख मिलता है । नमस्कारादि करने के समय निरर्थक पाप कर्म नहीं करने के कारण दुःख आएगा कहां से ? क्यों आएगा ? इस तरह नमस्कार दुःख नाशक है । दुःख को दूर करता है । दुःख से हमें अच्छी तरह बचाता है ।

दुर्गतिनाशक नमस्कार कैसें ?

श्लोक में दुःख के साथ-साथ दुर्गति का भी नाश होता है ऐसा लिखा है । यह कैसे सिद्ध होता है ? यह भी अच्छी तरह समझना है । साफ स्पष्ट है कि... दुर्गति कारक जो-जो पाप कर्म है उनमें क्रोधादि कषाय, विषय, अनाचार, हिंसादि पापाचार आदि 18 पाप स्थानों का सेवन प्रधान कारण रूप है । इन 18 में से एक-एक पाप व्यक्तिगत रूप से तथा सामूहिक रूप से भी दुर्गति में घसीटकर जीव को ले जाने वाले है । यह निश्चित है कि... नमस्कार भाव जिसमें नहीं है ऐसे लोग जिनमें क्रोधादि मान-अभिमान आदि कषाय होते हैं उनमें ही ये पाप ज्यादा होते हैं । ऐसे विषय, कषाय की तीव्रता वाले जीव ही दुनिया भर के पाप कर्म ज्यादा करते हैं । इसीलिए ऐसे जीव दुर्गति में जाते हैं ।

जबकि नमस्कार का साधक जीव... क्रियात्मक कायिक नमस्कार करते समय मानसिक रूप से पूज्यभाव... अहोभाव आदर भाव रखता है । अत: विनय गुण की नम्रता से अभिभूत होकर "नमो भाव" को अभिव्यक्त करते हुए नमस्कारमय ही बन जाता है । जिससे क्रोध, मान, मायादि कर्मज दोषों को पास भी नहीं आने देता है । इस तरह निरन्तर नमस्कारादि की क्रिया एवं नमो भाव आदि के विनय गुण के कारण जीव पाप-अशुभ कर्म उपार्जन ही नहीं करता है । अत: दुर्गति अपने आप दूर हो जाती है । नरक और तिर्यंच की 2 गतियों को दुर्गति की संज्ञा दी है । जो अशुभ पाप-कर्म के कारण उपार्जित होती है । अत: नमस्कार का साधक ऐसे पापों से बचा हुआ रहता है इसलिए दुर्गति में भी जाने से बचता है । इस तरह नमस्कार हमें सद्गति में ले जाता है । नमस्कार शुभ भाव कारक है । निमित्तक है । अत: शुभ पुण्य उपार्जित कराए या निर्जरादि भी काफी अच्छी कराता है । अत: पुण्य सुख और सद्गति दाता है । जबकि पाप दुःख और दुर्गति-दाता है । इनमें कारणभूत नमस्कार पुण्योत्पादक बनकर सुख सद्गति कारक बनता है । जबकि नमस्कार से ठीक विपरीत मान-अभिमान अहंकार पाप कर्मोत्पादक होकर दुःख और दुर्गति दायक बनता है । परम्परा में यह लम्बी अवधि में मिलने वाले फल है । लेकिन आज जो दुःख उदय में आया है और मैं आज ही नवकार गिन लूं, नमस्कार कर लूं जिससे मेरा दुःख और दुर्गति मिट जाये और सुख सद्गति जल्दी मिल जाये ऐसी वृत्ति के अनुरूप फल कैसा मिलेगा ? इसकी अपेक्षा नमो भाव के नमस्कार धर्म में विनय गुण में सदा लीन रहे । विनीत-विनम्र बन कर ही रहें जिससे पाप प्रवृत्ति हो ही नहीं । पाप कर्मों का बंध ही न हो और दुःख दुर्गति प्राप्त ही न हो । ऐसा समझकर नवकार के प्रति समर्पित होकर नमो भाव और विनय गुण लाने के लिए, जागृत करने के लिए पुरुषार्थ करें यही शुभेच्छा ।

जैन धर्म के चौवीशवें-चरम तीर्थाधिपति श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी की .....
रेती-वालु-चुने के अनोखे संमिश्रण से बनी हुई —
विक्रम की चौथी शताब्दी — वि. सं. ३६० की साल में निर्मित्त करीब १७०० वर्ष पुरानी प्राचीन-ऐतिहासिक ५३" की विशाल ..... समग्र विश्व की एकमात्र अत्यन्त प्रभाविक — महान चमत्कारिक आकर्षक मनोहर लाल (राता) रंगवाली रंगीन मूर्ति

श्री राता महावीरस्वामी भगवान

मूल नायक के रूप में जिस तीर्थ में सुप्रतिष्ठित है — ऐसे —

श्री हथूण्डी तीर्थ

राजस्थान राज्य की सुप्रसिद्ध अरावली पर्वमाला की उत्तरी तलहटी में पहाडियों के बीच स्थित — बहती नदी के किनारे चारों तरफ हरियाली के बीच मनोरम शान्त वातावरण वाले विस्तार में — गांव और शहरों की धमाल से सर्वथा दूर — संपूर्ण प्रदुषण मुक्त परिसर में — शुद्ध-हवा-पानी के हवा खाने के स्थल स्वरूप —

अत्यन्त प्राचीन ऐतिहासिक श्री हथूण्डी तीर्थ है ।

जी ..... हां ..... धर्मशाला, भोजनशाला, आधुनिक अतिथिगृह की सब सुविधाएं यहां सुलभ है । पधारिए.. तीर्थ यात्रा करने जरुर पधारिए —

पता — श्री हथूण्डी राता महावीर स्वामी तीर्थ पी.ओ. बीजापुर वाया — बाली जिला पाली — स्टे. फालना — राजस्थान — ३०६७०७ फोन नं. .....

एक भी नमस्कार निष्फल नहीं जाता है

-- पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

समग्र विश्वभर में महामंत्र नवकार का लाखों, करोड़ों की संख्या में जाप होता है। जाप करने वालों की संख्या भी करोड़ों की है। आबाल-गोपाल बच्चे से बूढ़ों तक तथा सभी स्त्री-पुरुष इस मूलमंत्र का स्मरण जपादि हमेशा करते हैं। जैन धर्म का यह मूलभूत प्राण मंत्र है। सदियों से इसकी परम्परा चली आती है। माता-पुत्र को, पिता अपने पुत्र-पौत्रों को जन्म से यह मंत्र सिखाते हैं। बच्चा जब बोलने लगता है तब से उसे संस्कारों में नमो... नमो बोलना सिखाया जाता है। संस्कार डालने वाले बहुत अच्छे सजग हो और प्रत्येक संस्कार को यदि अच्छी तरह समझकर डालते जाएंगे तो बच्चों में ये संस्कार रूढ होते हैं और इनकी जड़ें इतनी गहरी जाकर मजबूत बनती है कि... मृत्यु तक ये संस्कार बराबर बने रहते हैं। इनमें सर्वप्रथम संस्कार नवकार महामंत्र का जाप करने का है। प्रात: नींद में से उठते, रात्रि में सोते समय हमेशा नियत संख्या में नवकार स्मरण करना ही करना है। इस तरह मृत्यु की अन्तिम श्वास पर्यन्त नवकार की आराधना चलती रहनी चाहिए।

नवकार के संस्कार—

जब 14 पूर्व का सारभूत, जैन धर्म का प्राणभूत, जिन शासन का मूलभूत यह एक मात्र महामंत्र है तब फिर इसके स्मरण के बिना जैन मात्र को रहना ही नहीं चाहिए। जैसे हिन्दुओं में संध्या की विधि एवं गायत्री मंत्र का जप अनिवार्य है। अवश्य करना ही पड़ता है। ईस्लाम में नमाज, इसाई धर्म में प्रार्थना, बुद्ध धर्म में ध्यान जैसे अनिवार्य है ठीक उसी तरह जैन धर्म में प्रत्येक जैन मात्र के लिए षडावश्यक के साथ श्री नवकार महामंत्र का जाप-स्मरण अनिवार्य है। नवकार महामंत्र के जाप-स्मरण के बिना जैन को रहना ही नहीं चाहिए। वैदिक परम्परा में हिन्दु, ब्राह्मण मात्र के लिए जैसा कहा जाता है कि... यह संध्या न करे तो उसका ब्राह्मणत्व चला जाता है। ठीक उसी तरह जैन धर्म के प्राणभूत महामंत्र नवकार का स्मरण जापादि न करने पर हमारा जैनत्व भी चला जाता है। फिर धर्म से उसका जैनत्व नहीं रहता है। हां जन्म उसने जैन कुल में लिया है अत: जनम से जातिगत जैन वह जरुर गिना जाएगा। लेकिन जिस धर्म में जन्म लिया है उसके भी संस्कार वह अपने जीवन में जीवित न रखे तो धर्म के नाम का जैनत्वपना कैसे रहेगा? अत: श्रद्धालु सज्जनों को प्रण, प्रतिज्ञा अनिवार्य रूप से रखनी ही चाहिए कि... आहार, पानी की अपेक्षा भी नवकार स्मरण को प्राथमिकता देनी ही चाहिए। ऐसा मानस और भाव बनाना चाहिए कि भोजन के बिना चल सकता है लेकिन नवकार के बिना नहीं चल सकेगा। अरे! पानी पिये बिना चल सकता है लेकिन नवकार स्मरण के बिना नहीं चलेगा। इस तरह ऐसे श्रद्धालु जीवों के भाव बनते हैं और प्रत्येक श्वास के साथ नवकार गिनने का उनका प्रयास रहता है। इतने भावनाशील एवं दृढ़ श्रद्धा के भाव बने रहते हैं।

शास्त्रकार महर्षियों ने खाते-पीते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते जीवन की किसी भी क्रिया को करते हुए भी मानस स्मरण मन में नवकार का अवश्य कर सकते हैं। शरीर-शरीर है। अशुचि का घर है। अपवित्र ही रहने वाला है। ऐसे शरीर हेतु खाने, पीने, उठने, बैठने, चलने, फिरने, आहार, विहार, सोने, जागने, स्नान शुद्धि आदि की शारीरिक क्रियाएं रहने ही वाली है। ये भी प्रतिदिन चलने ही वाली है। इसमें कहां कमी आने वाली है? निरन्तरता जो बनी है वह बन चुकी है। अत: हम मात्र देहधारी मनुष्य है, इतना ही पर्याप्त नहीं है। सर्वप्रथम हम एक चेतन आत्मा हैं। जैन धर्म के अनुयायी पालक जैन हैं। अत: हमारा आत्म कल्याण करने का तथा धर्म का अनुसरण करते हुए धार्मिक बने रहना भी अनिवार्य है। हम मात्र देह का कल्याण करने ही नहीं आए हैं। देह तो जड़ है। देह का क्या कल्याण होने वाला है? संभव ही नहीं है। कितना भी खिलाओ, पिलाओ, सजाओ, संभालों या संवारो... कितना भी हष्ट, पुष्ट करो फिर भी यह देह वृद्ध होता है। शक्ति क्षीण होता है। इन्द्रियों की शक्ति भी क्षीण होती है और अन्तत: मृत्यु के शरण होकर, इस मृत शरीर को जलाकर राख कर दिया जाता है। कितना भी रूप सौन्दर्य से भरा हुआ सुन्दर देह हो फिर भी मृत्यु के पश्चात् न तो साथ आता है और न ही उसे सजाकर रखा जाता है। जी नहीं, यह पंच भौतिक तत्त्व उसी में विलीन हो जाता है।

आत्मार्थी बनिए—

जड़ शरीर से चेतन-आत्मद्रव्य सर्वथा भिन्न है । यह मृत्यु के समय देह छोड़कर चला जाता है । कर्म, धर्म, पुण्य, पापादि सब कुछ आत्मा के साथ जाते हैं । सुख-दुःख का अच्छा बुरा फल उसे ही भुगतना है । अतः हमें आत्म कल्याण का लक्ष्य प्रतिक्षण रखना ही चाहिए । याद रखिए... शरीर के लिए जीने वाले देहलक्षी जीव अपनी आत्मा का भोग चढाकर भी शरीर का साधने के लिए रात दिन प्रबल पुरुषार्थ करते हैं । उन्हें आत्मा की अंश मात्र भी चिंता नहीं है ऐसे जीव सर्वथा नास्तिक अधर्मी कहलाते हैं । जबकि शरीर का भोग देकर भी हर हालत में आत्मा का जो पहले साधते हैं, भले ही शरीर को आहार पानी न भी देना पड़े, उपवासादि तपश्चर्या भी करनी पड़े तो भी मैं करते हुए काया को कृश करके भी आत्म कल्याण जरुर साधूंगा । ऐसे जीव आस्तिक है । सच्चे धार्मिक है । ऐसे जीवों का ही कल्याण होता है । देहजीवी "इतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट" होते हुए न तो आत्मा का कल्याण कर पाते हैं और न ही शरीर का । दोनों तरफ से वंचित रहते हैं और अत्यन्त कींमती दुर्लभ ऐसा मानव जन्म वे निष्फल गंवाते हैं । एक मात्र अज्ञानता एवं अश्रद्धा का यह दुष्परिणाम है । अतः धार्मिक एवं आत्मार्थी बनने वाला मूर्ख नहीं है ।

शंका से नाश और श्रद्धा से लाभ—

कई लोगों का मन नवकार की आराधना करते समय फल के विषय में संदिग्ध रहता है । शंकाशील रहता है । अरे ! मैं इतना जाप कर रहा हूं । इतने लम्बे समय से कर रहा हूं । लेकिन आज दिन तक कोई लाभ नहीं मिला । कोई फल प्राप्त नहीं हुआ । कितने वर्ष बीत गए हैं नवकर गिनते-गिनते ? फिर भी कुछ भी लाभ नहीं हुआ । अतः अब धीरज टूटती जा रही है । बिना किसी प्रकार के लाभ के कहां तक गिनते जाएं ? श्रद्धा की भी सीमा होती है । अब हमारी श्रद्धा नहीं रही । ऐसे अज्ञानी चंचल, चपल मनोवृत्ति वाले जीव नवकार मंत्र की साधना करने में अव्वल, अचल नहीं रह सकते हैं । वे एक छोड़कर दूसरा मंत्र, दूसरा छोड़कर तीसरा मंत्र इस तरह एक के बाद एक कई मंत्र बदलते रहते हैं । कई भगवान बदलते रहते हैं । परिणाम शून्य का आता है ।

लेकिन कभी गौर करके शान्त चित्त से सोचा नहीं । नवकार जैसा महामंत्र फलीभूत नहीं हुआ । आखिर क्यों नहीं हुआ ? क्या नवकार में कहीं कमी है ? या नवकार में अधिष्ठित देव गुरुओं के स्वरूप में कहीं कमी है ? क्या बात है ? शंकाशील होने का कारण क्या हुआ ? कमी और क्षति देखने वाला अपने आप में देखने के लिए तैयार ही नहीं है । जब नवकार जैसे मंत्र में भूल या कमी लग रही है । लेकिन अपने आप में कहीं कोई भूल क्यों नहीं दिखाई देती ? यह सबसे बड़ा आश्चर्य है । अरे ! महाशयजी ! थोड़ी देर सोचिए कि... जब नवकार महामंत्र में हेतु के रूप में "सव्व पावप्पणासणो" अर्थात् सब पाप कर्मों का क्षय-नाश करने का स्पष्ट उल्लेख किया है । फिर भी आप मात्र संतान हेतु, कोई व्यापार हेतु, कोई विघ्न, संकट दूर करने के लिए, कोई इच्छित की प्राप्ति के लिए, कोई सुख, सम्पत्ति प्राप्ति हेतु, कोई राग निवृत्ति हेतु, कोई शत्रु नाश हेतु, कोई विजय प्राप्ति हेतु इस तरह अनेक दृष्टि से अनेक लक्ष्यों से यदि नवकार का जप स्मरण करते रहो और ऐसे क्षुद्र हेतु सिद्ध न हो, इच्छाएं पूर्ण न हो, मनोरथों की सिद्धि न हो फिर नवकार में शंका करनी कहां तक उचित है ? एक तरफ 24 घंटे के दिन भर दुनिया भर के पाप करते रहें, और फिर उन किये हुए तथा भूतकाल के पूर्व जन्म के किये हुए पाप कर्मों के उदय में वैसे फल न मिले, दुःख सामने न आए और यदि दुःख सामने आ जाय तो उससे बचने के लिए नवकार का आश्रय लेना और भारी प्रबल पाप कर्मों के उदय का दुःख जब न टले तब नवकार को निरर्थक एवं निष्फल कहना कहां तक उचित है ?

यदि कोई व्यक्ति विरेचन लेता है जिससे दिन भर दस्तें लगती ही रहे और फिर डॉक्टर, वैद्य से दस्त बन्द करने की गोलियां खाते रहें । परन्तु दस्त बन्द न होने पर डॉक्टर, वैद्य खराब है, मूर्ख है । इसकी दवाई किसी काम की नहीं है बेकार है तथा इस कम्पनी या फार्मसी की दवाई बेकार है । इत्यादि बातें करने वाला कितना समझदार है ? यह हमें सोचना चाहिए । आग में मिट्टी के तेल को पानी समझकर डालते ही जाएं और फिर कहें कि... अरे ! आग बुझती क्यों नहीं है ? जी हां ! इससे बड़ी अज्ञानता, मूर्खता और क्या हो सकती है ? यही बात नवकार के विषय में भी है । झूठ, चोरी के पाप करके जेल में जाने के बाद अब कहते हैं कि जेल में रोज लाखों नवकार गिने लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ । कांच के टुकड़ों पर रंग चढ़ाकर उसे रत्न कहकर बेचने वाला जब पकड़ा जाये और सजा भुगतनी पड़े तब नवकार गिनना और फिर कहना कि... अरे ! कोई लाभ नहीं हुआ । यह व्यर्थ निरर्थक मंत्र है । क्या फायदा ऐसे मंत्र के जाप से ? क्यों गिनना ?

इस प्रकार के अनेक अंधे भक्त है । न तो वे नवकार मंत्र को समझ पाए हैं न ही श्रद्धा सच्ची पक्की कर पाए हैं । कुछ भी नहीं । याद रखिए ! अज्ञानता और अंधश्रद्धा इन दोनों के मिलने पर क्या परिणाम आएगा ? सोचिए । फिर तो नवकार में शंका होगी ही होगी ? नीतिकार साफ कहते हैं कि... **"श्रद्धावान् लभते फलं, संशयात्मा विनश्यति"** अर्थात् जो श्रद्धा वाला है वह पूरा फल प्राप्त करता है और शंकाशील स्वभाव

वाला अपना विनाश करता है । क्योंकि स्वभाव ही वैसा शंकाशील बना रखा है । कदम-कदम पर हर बात में शंका ही रखता है । अत: जीवन के व्यवहार में भी कई प्रश्न उपस्थित होते रहते हैं ।

फल चयन में सावधानी—

फल पाने की अपेक्षा और आशा पर भी निर्भर रहता है । कैसा फल अपेक्षित है ? लोग सबसे पहले फल का निश्चय मानसिक स्तर पर कर लेते हैं—फिर नवकार का जपादि करते हैं । संसारी जीवों की फल विषयक आकांक्षाएं कैसी रहती है ? दून्यवी-भौतिक साधन-सामग्रियों की प्राप्ति, दु:ख दर्द का नाश, शत्रुनाश, विघ्न-संकट टालना, सुख-सम्पत्ति एवं संतति की प्राप्ति आदि विषयक याचनाएं संसार में शत प्रतिशत् रहती है । संसार के सुख भी सीमित है और दु:ख भी सीमित है । ये कर्म जन्य है । कर्म पाप जन्य है । गत जन्म या विगत काल के पापों से बने हुए अशुभ कर्म उदय में आकर जीव को दु:ख, दर्द, विघ्नादि सब कुछ खड़े करते हैं और ऐसे समय मनुष्य जब विचलित हो जाता है, दु:ख से घबराकर बैचेन बन जाये तो, सैंकड़ों बाह्योपचारों को करके निराश हो जाता है तब सोचता है चलो नवकार महामंत्र का जप कर लें ।

जिन्दगी भर कभी न तो नवकार का स्मरण किया, नहीं परमात्मा का स्मरण किया... कुछ भी तप, जप भी नहीं किया और अब मात्र दु:ख की असह्यावस्था में नवकार को याद किया और उसमें भी आज ही नवकार का स्मरण जापादि करना और आज ही फल की आकांक्षा रखना कहां तक उचित है ? आज ही आम की गुटली बोना और आज ही आम के मीठे फल खाने की इच्छा रखना जैसे असंभव है ठीक उसी तरह दु:खों के उदय में तुरन्त फल की आशा रखना कहां तक उचित है ?

सबसे पहले हमें फल का चयन करते समय सही सोच समझकर चयन करना चाहिए । अरे ! जब नवकार महामंत्र में 7वां पद "सव्व पावप्पणासणो" का है । उच्चारण करते समय बराबर बोलते हैं । लेकिन मन में विचारणा "सव्व दुक्खप्पणासणो" । सब दु:खों का नाश हो जाये ऐसी स्थिति रहती है । सर्वथा अर्थान्तर ही कर दिया अब कैसे लाभ होगा ? दु:ख, दर्द, संकटादि की तीव्रता एवं असहिष्णुता के कारण निवारण की फलाकांक्षा करके नवकार का जपादि किया और तुरन्त सब प्रकार के दु:ख दूर हो जाये ऐसी इच्छा रखना, सब सुख मिल जाय ऐसी भावना रखना कहां तक उचित है ? अभी तो कर्म का उदय बड़ा भारी है । तीव्र है । तभी तो दु:ख दर्द भी तीव्र है और ऐसी परिस्थिति में दु:ख, दर्द, संकट, विघ्न के न टलने पर नवकार पर दोषारोपण करना कहां तक सुसंगत है ? अभी कर्म की बंध स्थिति कितनी लम्बी है ? कर्म कितने भारी हैं ? तीव्रता कितनी है ? उदय का काल कितना लम्बा है ? इत्यादि कुछ भी विचारणा किये बिना ही बस अपना कार्य नहीं हुआ । दु:ख दर्दादि नहीं टले इसलिए नवकार निष्फल ऐसा कहकर आशातना के भागीदार बनना कहां तक उचित हैं ?

धर्म की आवश्यकता कब ?

नवकार की आराधना देव, गुरु की उपासना, या धर्म की आचरणादि की कब आवश्यकता है ? पाप की प्रवृत्ति करते समय या फिर कर्मों के उदय के समय ? या फिर तीसरा समय मध्यावकाश का अर्थात् पाप प्रवृत्ति करते समय उसके पश्चात उदय हो इन दोनों के बीच के काल में ? इन 3 काल में हमें विचारणा करनी है कि कब धर्माचरण करें ? कब मंत्राराधनादि धर्म करें ? यदि पाप प्रवृत्ति के समय ही धर्माराधना, देव, गुरु की उपासना या नवकार की साधना करने लग जाये तो सबसे उत्कृष्ट है । क्योंकि पाप की प्रवृत्ति से होने वाले तीव्र अशुभ कर्मबंध के पहले ही धर्माराधना होने पाप की विचारधारा ही टल सकती है या अध्यवसायों की अशुभता अत्यन्त कम हो सकती है ? आर्त, रौद्र की परिणति बदल सकती है ? लेश्याएं जो अत्यन्त अशुभ होती है वे बदलकर शुभ होने की संभावना काफी ज्यादा है । कषायों की धारा मन्द होने की संभावना रहती है । अत: सर्वोत्कृष्ट कक्षा और धर्माराधना का समय पाप-प्रवृत्ति करने के समय का है । ताकि पापों से बचा जा सकता है और उससे होने वाले भारी कर्मों के बंध से बचा जाने की संभावना है । भारी कर्मों का बंध ही नहीं होगा तो फिर कालान्तर में उदय कहां से होगा ? और उदय के अभाव में फिर दु:ख, दर्द, विघ्नादि आएंगे कहां से ? इस तरह अनेक फायदे क्रमश: है । लेकिन यह उत्कृष्ट कक्षा की प्रथमावस्था कब आ सकती है ? जीव निरन्तर धर्माराधना करने वाला हो तब । हमेशा ही जीवन में धर्म रहे, आराधना सदा होती रहे तो ही पापों से बचना संभव है । फिर आप कहेंगे कि नहीं-नहीं रोज धर्म करते रहने से क्या लाभ ? जब कोई पाप कार्य सामने आएंगे तो देख लेंगे । जी हां... ऐसा संभव नहीं होगा । इसकी अपेक्षा निरन्तर धर्ममय जीवन होगा तो पाप आएंगे ही नहीं । होंगे ही नहीं । अत: कर्म बंध का कोई अवकाश ही नहीं रहेगा ।

दूसरा समय है मध्यावकाश का । पाप की प्रवृत्तियों से अशुभ पाप कर्म काफी बांध चुके हैं । लेकिन अभी उन कर्मों का उदय नहीं हुआ है । पाप प्रवृत्ति और कर्म के उदय के बीच का काल भी काफी है, क्योंकि पाप प्रवृत्ति करते समय जीवों की कषाय लेश्याध्यानादि जन्य जैसी अध्यवसायों की तीव्रता मन्दता रहेगी उसके आधार पर ही कर्मों की जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट कक्षा की बंधस्थिति का आधार रहेगा तथा जघन्य

मध्यम एवं उत्कृष्ट कक्षा की कैसी कितनी बंध स्थिति है उसके आधार पर अबाधाकाल का आधार रहेगा । अब बीच के मध्यावकाश में यदि सुन्दर धर्माराधना महामंत्र जप, तप-तपश्चर्या, देव गुरु की उपासना तथा व्रत नियम पालन आदि की ऊंची धर्माराधना की जाय तो कई कर्मों का क्षय बिना उदय में आए ही हो सकता है । सत्ता में पड़े-पड़े कर्म बिना उदय में आए ही क्षय किये जा सकते हैं । काफी प्रबल कक्षा की उदीरणा करने पर कर्म बहुत पहले ही नष्ट होने की संभावना रहती है ।

एक बात निश्चित समझिए कि... कर्म बंध के समय सभी कर्म निकाचित की कक्षा के नहीं होते हैं । अनिकाचित की कक्षा के सामान्य कर्म भी कई होते हैं । इसलिए सामान्य कक्षा के अनिकाचित कर्मों का क्षय मध्यावकाश के समय प्रबल कक्षा की धर्माराधना, निर्जराकारक तपादि धर्म की उत्तम उपासना करने से कई कर्मों की सत्ता में पड़े-पड़े ही निर्जरा हो जाती है । क्षय होकर परमाणु बिखर जाते हैं । फिर उदय में आने का प्रश्न ही नहीं उठता है और उदय के अभाव में अब दुःख, दर्दादि का भी कोई प्रश्न ही नहीं रहेगा । इस तरह धर्माराधना दोनों समय कामयाब हुई । पाप प्रवृत्ति के समय और मध्यावकाश में उदीरणा करने दोनों समय धर्माराधना काफी उपयोगी सिद्ध हुई । प्रथम कक्षा की पाप प्रवृत्ति के समय संवर धर्म काम में आया । जिससे पाप रोके गए और दूसरे मध्यावकाश के समय उदीरणा प्रधान निर्जरा कारक धर्म हुआ । इस तरह दोनों समय हुई धर्माराधना क्या नवकार महामंत्र के बिना हुई ? क्या देव, गुरु, अरिहन्तादि पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार के बिना हुई ? जी नहीं, संभव ही नहीं है ।

अब रहा प्रश्न... तीसरी अवस्था का । तीसरी अवस्था है— कर्मों के उदयकाल की । स्थिति बंध के समय का काल परिपक्व हो चुका है, और कर्म उदय में आ चुके हैं । जैसे बांध फूटा और पानी की बाढ़ आ चुकी है या हिमपात से शीतलहर तैजी से फैल चुकी है ऐसे समय क्या आप असरग्रस्त होंगे या नहीं ? इस तरह कर्मों के उदय से जीव प्रभावित हो जाता है । अशुभ कर्मों का उदय हो जाने पर दुःख, दर्दादि सब सामने आएंगे ही आएंगे । यद्यपि ये कर्म निकाचित नहीं भी है । परन्तु हमारी उपेक्षा के कारण बराबर सत्ता में बने रहे और काल-स्थिति की परिपक्वता के समय सामने आकर उपस्थित हुए । अब जब दुःख, दर्द, संकटादि सामने आए तब हम घबराकर विचलित हो जाये और देव, गुरु, धर्म की और नवकार महामंत्र की शरण लें और दुःख आए ही नहीं ऐसे सैंकड़ों उपाय करने लगें... दुःख, दर्द, विघ्नादि का तुरन्त निवारण करने के लिए लगे रहते हैं । क्या परिणाम आ जाएगा ? घर में आग लगने के समय आप कुआं खोदने जाएं जैसी बात है । अब कब कुआं खोदा जाये ? और कब पानी निकाले तथा कब आगे बूझे ? लेकिन विनाशक अग्नि चन्द मिनिटों में ही सब कुछ जलाकर खाक कर देगी..... तब तक तो कूएं का खुदना संभव ही नहीं है । ठीक इसी तरह यहां भी समझिए किए हुए पाप कर्मों के उदय से आए हुए दुःख, दर्द, विघ्नादि के समय धीरज रखें । सहिष्णुता एवं समभाव बनाएं रखें । बड़ी अच्छी समता रखें । मानस भावना बनाइये... उदय के ये दिन भी टल जाएंगे । एक दिन निकल जाएंगे । कर्म क्षीण हो जाएंगे ।

याद रखिए... कर्म अच्छे हो या खराब, शुभ हो या अशुभ, सुखदायी हो या दुःखदायी... आखिर औदगिक भाव से उदय में आए हैं तो निश्चित ही चले जाएंगे । न तो सदा रहने वाले हैं और न ही रुकने वाले हैं । सुखदाता देने वाले पुण्य कर्म भी उदय में आकर चले जाएंगे, और दुःख, दर्द देने वाले अशुभ पाप कर्म भी जो उदय में आए हैं वे भी काल अवधि पूरी हो जाने पर चले जाएंगे । कोई सदाकाल रुकने वाले नहीं है । हां... अक्सर जीव सुख देने वाले शुभ पुण्य कर्मों के उदय में आने पर हमेशा ऐसी आकांक्षा करते हुए चाहते हैं कि...बस... बस... मेरे ये शुभ पुण्यात्मक कर्म वापिस चले न जाये । ये दिन मेरे बीत न जाये और सुख-शाता और शान्ति नष्ट न हो जाये । चली न जाय इसकी हम प्रार्थना करते हैं । जीव आशावादी स्वार्थांध बना हुआ है इसलिए... ऐसी मनोवृत्ति रखता है । परन्तु अपनी इच्छानुसार होता कहां है ? आकाश में बादल जिस तरह पवन के आधार पर निरन्तर गतिशील रहते हैं । वे आते हैं और चले जाते हैं । चाहे वे बरसते जाय या चाहे ऐसे ही चले जाये लेकिन जाते जरुर हैं । यह संभव है कि... मन्द गति से या तीव्र गति से आवागमन होता रहे । सुख के अच्छे बरसते बादल हो या दुःख के अशुभ मात्र तापमान बढाने वाले बादल हो... आखिर दोनों है तो बादल ही । जो आए हैं वे नहीं रुकेंगे । ठीक इसी तरह कर्म भी है । काल के साथ स्थिति बंध के कारण संलग्न है । अतः चलती फिल्म की तरह ये भी निरन्तर गतिशील है । रुककर बैठने वाले नहीं है । जिसकी जितनी बंध स्थिति होगी उतने काल तक रहेंगे, फिर चलते बनेंगे । इस तरह बादल की तरह कर्म भी आते है जाते हैं । तेज गर्मी के दिनों में आए हुए बादल थोड़ी देर छाया देते हैं, हमें शीतलता का अनुभव होता है और स्वल्प काल में चले जाते हैं या बरसते हुए आकर थोड़ी देर पानी बरसा कर चले जाते है । ठीक इसी तरह शुभ कर्म उदय में आकर सुख का फल देकर चले जाएंगे । हमारे चाहते हुए भी वे सदाकाल रुकने वाले नहीं है । ठीक इसी तरह दुःखदायी कर्म के बादल भी उदय में आकर दुःख देकर चले जाएंगे । वे भी सदाकाल रुकने वाले नहीं है । इस तरह सुख-दुःख का आधार कर्मों पर है ।

कर्मों के उदयकाल में भी यदि धर्माराधना अच्छी तरह चलती ही रहे तो समता-सहनशीलता-सहिष्णुता बढती ही जाएगी । जिससे पुनः नए कर्मों का भारी बंध नहीं होगा तथा समतादि गुणों की मात्रा के बढने पर दुःख-दर्द-विघ्नादि की असर कम होगी । हाय... हाय... की विचलितता

नहीं आएगी । सहन करने में सहिष्णुता, समतादि अच्छी तरह बढने के कारण निर्जरा का प्रमाण भी बढता जाएगा । जैसे अग्नि का तापमान प्रमाण कम होने पर खिचड़ी को पकाने में समय ज्यादा लगेगा, लेकिन अग्नि, ताप का प्रमाण बढ़ाने पर पकने का समय भी काफी घट जायेगा और ऐसे समय में जो आधे घण्टे तक पकने वाली थी वह खिचड़ी अब 10-15 मिनिट में भी पक जाये । ठीक इसी तरह अशुभ कर्मों के उदय में आने पर दु:खदायक स्थिति में समतादि धर्माराधना में मशगुल रहने पर उदय में आए हुए कर्मों की निर्जरा का प्रमाण भी बढ़ता ही जाएगा । फल स्वरूप निर्जरा तीव्र रूप से ज्यादा होगी और जल्दी होगी । नमस्कार महामंत्र की उपासना आदि करते-करते हमें बल ज्यादा मिलेगा । सम्बल बनकर प्रबलता से कर्मों को खदेड़ सकेंगे ऐसे सशक्त बन सकेंगे । इसलिए दु:ख नाश का हेतु बनाने की अपेक्षा कर्म क्षय का, पाप नाश का हेतु बनाना ज्यादा श्रेयस्कर है ।

नवकार की सफलता-निष्फलता—

महामंत्र नवकार की साधना अनेक श्रद्धालु आत्माओं की निरन्तर चलती है । कई भाग्यशाली प्रतिदिन हजारों नवकार गिनते हुए आराधना करते रहते हैं । 1 माला में 108 नवकार गिने जाते हैं । 20 माला गिनने पर 2160 नवकार हो जाते हैं । कई भाग्यशाली 1 दिन की 50 माला भी गिन लेते हैं । 5400 नवकार का जप हो जाता है । जप में संख्या गिनी जाती है । अब इतनी बड़ी संख्या में नवकार गिने जाये उस समय उनमें से कितने नवकार सफल और कितने नवकार निष्फल होंगे ? का हिसाब कोई भी कैसे लगाएंगे ? यदि सुव्यवस्थित विधिवत् जपादि किया गया है तो निष्फलता का प्रश्न कहां रहता है ?

एक दृष्टान्त पूर्वक इस बात को समझने का प्रयत्न करें । यदि एक लड़का दूर खड़ा रहकर पेड़ पर पत्थर के ढेले फेंक कर आम गिराने के लिए प्रयत्न करता है तो कितने पत्थर फैंकने पर आम गिरेगा ? यह निश्चित रूप से कोई भी कैसे बता सकता है ? मान लो कि 27वें पत्थर के ढेले से आम गिरा, तो क्या हम 26 पत्थरों का फेंकना निष्फल कहेंगे ? जी नहीं । क्योंकि प्रत्येक पत्थर ने निशाना बनाने में काफी सहयोग दिया है । 10वां पत्थर काफी दूर चला गया, तब 11वां पत्थर थोड़ा धिरे से फैंका, तो वह बीच में ही गिर गया इस तरह करते-करते वह 27वें पत्थर तक निशाने साधता ही रहा । आखिर आम 27वें पत्थर से गिरा । लेकिन पत्थरों पर अंक संख्या लिखी हुई तो है नहीं । यदि कोई कहे कि... फिजुल में इतने 26 पत्थर फेंके । पहले ही वह 27वां पत्थर फैंकना था । बस, आम जल्दी मिल जाता और समय बचता । लेकिन यह कैसे पता चले कि इसी पत्थर से आम गिरेगा ?

जिस तरह प्रत्येक पत्थर ने निशाना साधने में भूमिका निभाई है ठीक उसी तरह किस नवकार से कब मुक्ति होगी ? कब सर्व पापों का नाश होगा ? पता नहीं है । लेकिन हम आज से नवकार का स्मरण करते ही जा रहे हैं । कोई चिन्ता नहीं है । अपनी जाप साधना में किसी भी प्रकार की शंका मत करिए । यह निश्चित ही है कि... प्रत्येक नवकार भावों को बनाने में, कर्म क्षय-पाप नाश में अपनी भूमिका अदा कर रहा है । जैसे अन्तिम बल्लेबाज ने एक छक्का मारा और विजय प्राप्त कर ली... लेकिन विजय उसके अकेले पर निर्भर नहीं है । पहले से सभी बल्लेबाजों ने इतने रन बना रखे थे तब अन्तिम बल्लेबाज के एक छक्के के सहयोग से विजय संभव हो पाई । ठीक इसी तरह हमें नवकार सतत गिनने चाहिए, थोड़े-थोड़े पाप कर्मों का क्षय होते-होते एक दिन सब पाप कर्मों का समूल सर्वथा सम्पूर्ण क्षय (नाश) हो जाएगा । अत: संशय न रखते हुए श्रद्धा भाव पूर्वक जाप साधना की गुणवत्ता सुधारते हुए नवकार गिनते जाइए ।

"सूत्रों-स्तोत्रों में निर्दिष्ट—"नमस्कार" से लाभ"

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

सामान्य जन मानस लाभ का विचार पहले करता है । मैं यह करुं, ऐसा करुं लेकिन इससे मुझे लाभ क्या होगा ? ये विचार पहले दिमाग में घूमते हैं । अर्थोपार्जन के क्षेत्र में व्यापार जहां सौदाबाजी का कार्य है वहां कुछ देना है और उसके बदले में कुछ लेना है । दाम लेकर माल लेना है । ऐसी स्थिति में सभी ऐसा विचार करते हैं कि... कम से कम दाम देना पड़े और अधिक से अधिक माल हमें मिले । यह वृत्ति मानव मन की आज की नहीं अनादि कालीन है । अनादि-अनन्त काल से कर्माधीन जीवात्मा में पड़ी हुई मोहनीय कर्म की प्रकृति के अन्तर्गत लोभ मोहनीय कर्म की प्रकृति भी साथ ही है । यह प्रकृति हमेशा कुछ भी प्राप्त करने के इन्तजार में हमें रखती है । इसमें भी अधिक से अधिक जितना भी मिले उतना हम चाहते हैं । फिर भी कितना ही मिल जाने पर संतोष कहां है ?

दूसरी तरफ सोचिए मिलेगा...तो...भी... मिल-मिल के क्या और कितना मिलेगा ? जो भी मिलेगा वह धन-माल मिल्कत आदि दृन्यवी भौतिक साधन सामग्री मिलती है । वह आखिर नश्वर नाशवंत है, क्षणिक है, अनित्य है । आखिर संसारी जीव अपने-अपने पुण्योदय के अनुसार ही प्राप्त करता है । लेकिन कर्म विज्ञान यह भी कहता है कि पुण्योदय के साथ-साथ यदि अंतराय कर्म का भी उदय प्रबल होगा तो यह अन्तराय कर्म पुण्योदय से प्राप्त होने वाली सामग्री को मिलने से पहले ही रोक देगा या मिल चुकी हो और बाद में अंतराय कर्म का उदय होगा तो मिली हुई सामग्री को भोगने नहीं देगा । अत: संसार में वस्तु मिलने पर भी जीव दु:खी है और न मिलने पर भी कई दु:खी है । दोनों तरफ आर्तध्यान से चिन्ता लगी रहती है । फिर भी लोभ की कर्म प्रकृति प्राप्ति की आशा नहीं छुड़ाती है । यही विडम्बना बड़ी भारी है ।

अनादि कालीन यही कर्म की आदत धर्म के क्षेत्र में हमें निष्काम बनने ही नहीं दे रही है । परिणाम स्वरूप आज भी हम निष्काम भक्ति, निष्काम नमस्कार नहीं कर पाते हैं । भगवान को नमस्कारादि करते समय भी याचना करते रहते हैं । याचना के समय जिस जीव के जैसे दु:ख होंगे वह उसे टालने के लिए विनती करता रहता है और ठीक उसके सामने वह सुख, साधन-सामग्री की प्राप्ति की याचना भी करता ही रहता है । यहां तक कि चाहे मिले या न मिले याचना नहीं टलती है ।

क्या भक्ति के प्रमाण में याचना है ?

भक्त भगवान के पास याचना जरुर करता रहता है लेकिन ऐसे भक्त को यदि पूछा जाय कि— हे भाग्यशाली ! तुमने जितनी भक्ति की है क्या उतने ही प्रमाण में याचना की है ? क्यों बाजार में माल खरीदते समय जितने हमारे पास पैसे होते हैं उतने ही प्रमाण में हम माल खरीदते हैं । यदि पैसे हमारे पास ज्यादा नहीं है तो हम ज्यादा माल खरीदने के हकदार भी नहीं है । ठीक इसी तरह भगवान के साथ याचना के समय सौदाबाजी करते समय क्या हमने हमारे भाव-भक्ति नमस्कार पूजा-दर्शन स्तुति जप आदि के प्रमाण में याचना की है ? क्या कभी भक्त ने यह भी सोचा है कि आज मैंने पूरी माला नहीं गिनी, सिर्फ 12 नवकार ही गिने हैं तो आज मैं सिर्फ इतने ही प्रमाण की याचना करुं । इससे अधिक नहीं ? आज मैंने मात्र दर्शन ही किये हैं अत: सिर्फ इतनी सी याचना करुं और आज मैंने पूजा की है तो याचना का प्रमाण बढा दूं और आज छुट्टी के दिन मैंने पूजा 2-3 घंटे की है अत: याचना थोड़ी और ज्यादा कर सकता हूं और आज तीर्थ भूमि में, यात्रा करते हुए मैंने और ज्यादा 4-6 घण्टे तक खूब अच्छी तरह पूजा भक्ति की है । इसलिए और ज्यादा याचना कर सकता हूं । लेकिन कभी कोई भक्त ऐसा करता नहीं होगा ?

भक्त हमेशा अपनी याचना के लिए भक्ति, प्रणाम, नमस्कार, दर्शन, पूजा को आधार रूप नहीं बनाता है । वह अपनी लोभ दशा के आधार पर याचना करता है । अपनी चिन्ता आर्तध्यान के आधार पर, अपनी आवश्यकता या अपनी इच्छानुसार याचना करता है । यदि गौर से देखा जाय तो ख्याल आएगा कि इनमें भी आवश्यकतादि का विचार करने वाले नाम मात्र होंगे, लेकिन इच्छानुसार मांगने वाले ज्यादा है । बात भी सही है कि... मानव की आवश्यकताएं सीमित है । परन्तु इच्छा असीम-अमाप है । यह लोभ दशा के अनुरूप है । कई बार वर्षों की आदत के आधीन होकर भी मांगा जाता है और कई बार अज्ञान बाल मानस माता आदि के कहने-सिखाने के अनुसार मांगते रहते हैं । बस, याचना—याचना

है । इसमें माप और ध्यान (विवेक) आदि कुछ भी नहीं रहता है । कई मत-संप्रदायों एवं धर्मों ने इसे "प्रार्थना" का दूसरा नाम दे दिया है । अत: प्रार्थना के बहाने भी याचना ही चलती रहती है ।

भिखारी की प्रतिज्ञा—

मंदिर के बाहर अनेक भिखारियों की भीड़ अक्सर लगी रहती है । प्रभु भक्त बड़े दयालु, करुणालु होते हैं । अत: दर्शन से निवृत्त होकर जब बाहर निकलेंगे तब भिखारियों को दान देते जाते हैं । एक नया भिखारी ऐसी प्रतिज्ञा करके आया कि... जो स्वयं भिखारी न हो, याचना न करता हो उसी के पास मैं मांगूगा । उसी का दान लूंगा । अन्य किसी का नहीं । भिखारियों की पंक्ति में बैठे हुए 3 दिन बीत गए । वह किसी से कुछ भी नहीं लेता है । किसी से कुछ भी नहीं मांगता है । देने वाला देता है तो भी साफ ना कहता है । भूखे रहते उसे 3 दिन बीत गए ।

चौथे दिन एक बड़ा राजा मंदिर दर्शन करने आया । हाथी पर सिंहासन पर बैठकर दान देता हुआ बड़े वैभवी ठाट से आया । लेने वालों की भीड़ जमी हुई थी । एक दूसरे पर गिरते हुए भी लोग ले रहे थे । लेकिन दृढ़ प्रतिज्ञा वाला वह भिखारी हाथ बांधकर दूर खड़ा रहा । कुछ भी नहीं लेता हुआ सिर्फ मन में सोचता ही रहा कि... देखने में यह राजा जरुर है लेकिन क्या भरोसा कि यह याचना नहीं करता होगा ? पहले निर्णय कर लूं, बाद में मांगु ताकि कहीं प्रतिज्ञा भंग न हो जाये ।

राजा मन्दिर में दर्शनार्थ गया । भगवान के सामने दर्शन करते समय स्तुति-स्तवना के पश्चात् याचना कर रहा था । भिखारी भी अन्दर जाकर एक कोने में खड़ा-खड़ा सब कुछ शान्ति से सुन रहा था । राजा भगवान के पास दुनिया भर की सम्पत्ति मांग रहा था । धरती सारी मुझे मिले, मैं समस्त पृथ्वी का अधिपति सम्राट चक्रवर्ती बन जाउं, सोना-चांदी, हीरा-मोती और दुनिया भर की सारी धन दौलत मुझे मिल जाये । यह सब सुनकर भिखारी बिचारा निराश हो गया । अब उसने आशा ही छोड़ दी । जब सुखी सम्पन्न राजा जैसे से कुछ भी संभावना ही नहीं है तब अन्य की आशा रखना ही व्यर्थ है । अब तो भूखे मर जाना ही अच्छा है । ऐसा विचार कर बाहर निकल गया ।

राजा मन्दिर से बाहर निकला, जाते समय भी दीन-दु:खी, अनाथों, भिखारियों को दान देता जा रहा था । उस भिखारी के पास भी राजा आए और 2-4 आने (पैसे) देने लगे । भिखारी ने अपने हाथ पीछे कर लिये, और दान लेने से साफ इन्कार कर दिया । राजा ने पूछा— क्यों ? भिखारी ने जवाब दिया— मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है मैं किसी भिखारी से दान नहीं लेता हूं । राजा को ये शब्द बड़े भारी अपमानजनक लगे । सैनिकों को हुकम दिया कि... ले जाओ इसे फांसी पर चढ़ा दो । सैनिक उस भिखारी को ले गए । वध स्तंभ पर चढ़ाने लगे । हंसते हुए गया भिखारी अपने सत्य पर अड़िग था । प्रतिज्ञा पालने में अटल था । बहुत दिन भूखे रहकर भूख से तड़पकर मरने की अपेक्षा आज ही हंसते-हंसते मरना ज्यादा अच्छा माना ।

राजा आए । नियमानुसार मरने वाले की अन्तिम इच्छा पूछी । ऐ भिखारी ! बोल तेरी भी कुछ अन्तिम इच्छा है ? भिखारी ने कहा— जी हां ! मैं सिर्फ इतना ही जानना चाहता हूं कि... भिखारी किसे कहते हैं ? राजा ने भृकुटी चढ़ाते हुए साश्चर्य पूछा— अरे ! तूं खुद भिखारी है और यह मुझे क्या पूछता है ? क्यों पूछता है ? भिखारी ने कहा— राजन् ! कोई लक्षण, व्याख्या, स्वरूप तो होगा भिखारी का ? राजा ने कहा— अरे ! जो दूसरों के पास याचना करता रहे, मांगता रहे वह भिखारी । बस ! तब भिखारी ने कहा राजन् ! आपने मन्दिर में भगवान के पास क्या किया ? क्या आपने कुछ भी याचना नहीं की ? क्या कुछ भी नहीं मांगा ? आपकी ही बताई हुई व्याख्या के आधार पर मेरी प्रतिज्ञानुसार मैंने भिखारी से दान नहीं लिया इसके लिए मुझे फांसी ? राजन् ! जब मैं मर ही रहा हूं अत: स्पष्ट कह रहा हूं कि मांगने की याचक वृत्ति में हम तो छोटे से भिखारी हैं जो मात्र 2-5-10 आने पैसों में ही संतोष मान लेते हैं । हम रिटेल में धंधा करने वाले हैं, लेकिन आप थोक विक्रेता के रूप में बड़े व्यापारी है । अन्तर इतना ही है कि अनेक भिखारी आपके पास मांगते हैं जबकि आप भगवान के पास मांगते हो, और मांगने में भी इतना सब कुछ मांगते हो कि कुछ भी शेष रखते ही नहीं हो । यदि मेरा वक्तव्य असत्य हो तो मुझे जरुर फांसी दीजिए ।

संसार में बुद्धिमान कई होते हैं । लेकिन ! जिनकी बुद्धि के द्वार खुले हुए हैं ऐसे अल्प होते हैं और बुद्धि होते हुए भी बुद्धि के द्वार बन्द हो ऐसे अनेक होते हैं । शायद बुद्धिमान लोग भी कभी-कभी ऐसे लोगों की बुद्धि के द्वार खोल देते हैं । राजा भिखारी की बात सुनकर चौकन्ना हो गया । बुद्धिमान तो था ही । अवसर पर बुद्धि के द्वार खुल गए । भिखारी के शब्दों में सच्चाई-वास्तविकता थी । वह राजा की समझ में आ गई और सोचा कि... अरे ! यह भिखारी मेरे लिए हितकारी है । मंदिर में भगवान के दर्शन-प्रभु पूजा भक्ति कैसे करनी ? याचना क्यों नहीं करनी ? या कैसी प्रार्थना करनी ? इत्यादि बहुत कुछ मुझे सीखा रहा है । मेरे हित में है । अन्यथा मैं राजा होते हुए भी भिखारी की गणना में ही आउंगा । ऐसे विचारों से राजा ने भिखारी को अभयदान देकर छोड़ दिया । यदि इस प्रसंग के तथ्य को समझकर हम भी अपनी अंतरात्मा को

टटोलने लगें तो शायद यह प्रतीत होगा कि हम भी ऐसे ही एक तो नहीं है ? क्या हमारी प्रार्थना-भक्ति भी ऐसी याचनाओं से भरी हुई तो नहीं है ? सोच समझकर परिवर्तन करना आवश्यक है ।

क्या मांगने मात्र से मिल जाता है ?

भक्तों की सबसे बड़ी भारी भूल यह है कि वास्तव में भगवान जैसे हैं, जिस प्रकार के हैं, जिस स्वरूप वाले हैं वैसे न मानकर भक्तों को जैसे चाहिए थे, जैसे अपेक्षित थे वैसे (हमने) मान लिये हैं । भगवान सब कुछ देने वाले हैं या नही है यह बिना जाने ही श्रद्धावश हमने मान ही लिया है कि भगवान सब कुछ देने वाले ही है । देने में भगवान के लिए परहेज रखने का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता है । क्योंकि भगवान सर्व शक्तिमान समर्थ है । सब कुछ और सबको देने वाला दाता वही एक है ।

शायद जिन्दगी भर भगवान की पूजा भक्ति करने के पश्चात् अब भी शास्त्रों का मंथन (दोहन) करने लगे तो भगवान का शास्त्रीय, आगमिक, सैद्धान्तिक तात्त्विक और वास्तविक रूप स्वरूप कुछ और ही सामने आएगा और शायद गतानुगतिक या अंधश्रद्धा के कारण या स्वार्थवश भक्त जो भगवान का स्वरूप मान रहे हैं वह शायद बिल्कुल अलग ही प्रकार का है ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है । आज भी सामान्य जनता के सामने भक्तों के द्वारा बनाया गया था निर्धारित किया गया भगवान का स्वरूप ही ज्यादा प्रचलित है । परन्तु भगवान का यथार्थ वास्तविक शास्त्रीय सैद्धान्तिक तात्त्विक स्वरूप सामने बहुत कम आता है और आम तौर पर भक्तों को कैसे भगवान चाहिए ? इसके उत्तर में सब कुछ देने वाले भगवान चाहिए ऐसी मान्यता वाले ही ज्यादा मिलेंगे ।

असत् कल्पना से भी यदि... समग्र विश्व के समस्त धर्मों के अरबों भक्तों के मानस का सर्वे करें और सबको यह प्रश्न पूछे कि... क्यों ? आपको कैसे भगवान चाहिए ? शायद 90% से भी ज्यादा प्रतिशत लोगों का एक ही उत्तर होगा कि... जो हमें सब कुछ दे सकें, और हमारे दुःख, दर्द, संकट, विघ्न टाल सकें और सुख, शान्ति, सम्पत्ति दे सकें बस, ऐसे भगवान चाहिए । वीतराग सर्वज्ञ अरिहंत स्वरूपी भगवान चाहिए ऐसा कहने वाले शायद वर्तमान विश्व की 600 करोड़ की जनसंख्या में 1% भी लोग नहीं मिलेंगे । 1 प्रतिशत की संख्या भी 6 करोड़ की होती है । इतनी जनता से भी ऐसा उत्तर मिलना संभव नहीं है कि भगवान देने वाले हो या न भी हो लेकिन सर्व कर्म रहित अरिहंत ही होने चाहिए । सर्वथा राग-द्वेष रहित वीतरागी ही होने चाहिए । समस्त लोकालोक के प्रत्यक्ष ज्ञाता, दृष्टा, सर्वज्ञ और सर्वदृष्टा ही होने चाहिए । इससे कम स्वरूप होना ही नहीं चाहिए । ऐसा दृढ़ स्वरूप मानने वालों की संख्या बहुत ही अल्प है । संख्या सर्वस्व देने वाले और दुःख, दर्द, संकट, विघ्न टालने वाले, सुख, सम्पत्ति देने वाले को ही भगवान मानने वालों की संख्या ही ज्यादा है । इससे यह स्पष्ट होता है कि वास्तव में भगवान जैसे हैं वैसे मानने वाले नगण्य मात्र है जबकि अपने को जैसे चाहिए वैसे मानने वालों की बोलबाला काफी ज्यादा है और यह मानवी लोभदशा के आधीन मान्यता है । मनुष्येच्छा के अनुसार है । जबकि यह लोभदशा और इच्छा मोहनीय कर्म के राग-द्वेष से बनी हुई है । ऐसे राग-द्वेष से जीव स्वयं ही कर्मग्रस्त रहता है और फिर अज्ञानता एवं अंधश्रद्धावश भगवान मान लेने मात्र से कैसे चलेगा ? एक तरफ अज्ञानता ने ज्ञान के द्वार बंद कर दिये । दूसरी तरफ अंध श्रद्धा ने सत्या-सत्य का विवेक ही खो दिया है । एक हो तो भी नुकशान होता है तो फिर दोनों की एक साथ मिश्रित अवस्था में क्या और कैसी स्थिति होती होगी ? कल्पना करीए ।

कर्ता, हर्ता, दाता मानना भी अनुचित है—

आशावादी एवं तृष्णावादी मानव ने भगवान का इतना विकृत स्वरूप कर दिया है कि जिसकी कोई सीमा ही नहीं है । कर्ता, हर्ता और दाता आदि का स्वरूप मानव कल्पना की नीपज है । अतः भगवान का यह और ऐसा स्वरूप काल्पनिक हो जाता है । काल्पनिकता यथार्थता से सर्वथा विपरीत है । क्योंकि इसमें सच्चाई का नामो-निशान भी नहीं है । किसी ने ईश्वर को शक्ति विशेष मानकर सर्व शक्तिमान मान लिया है । "सर्व" शब्द शक्ति के आगे विशेषण के रूप में जोड़ देने के कारण किसी भी प्रकार की शंका करनी ही नहीं चाहिए ऐसा मत बना लेते हैं और फिर ऐसे ईश्वर के विषय में जो भी कोई शंका करें उसे नास्तिक या मिथ्यात्वी कह देना, तथा ऐसा कहकर उसका बहिष्कार करना या बदनामी करनी यह सामाजिक रिवाज बना दिया है । जबकि सत्य तो यह है कि... सबसे बड़े मिथ्यात्वी तो वे हैं जो भगवान को जैसे नहीं हैं, वैसे हैं, ऐसी कल्पना कर मानते हैं । और फिर उस काल्पनिक स्वरूप को प्रसारित करते हैं फिर उसे जो न माने उसे मिथ्यात्वी कह देना बड़ी आसान बात हो जाती है ।

अतः मात्र भगवान को मान लेने मात्र से आस्तिकता या सम्यक्त्वता नहीं आ जाती है परन्तु वे जैसे हैं वैसे यथार्थ स्वरूप में मानने से ही सच्ची आस्तिकता और सम्यक्त्वता आती है । भगवान को सर्व शक्तिमान मानकर फिर उसे समस्त चराचर जीवाजीव सृष्टि का कर्ता मानना और फिर उसे ही हर्ता भी मानना फिर दाता भी मानना आदि मान्यताएं बैठाना । अरे ! भले इन्सान इतना भी नहीं सोचता है कि एक बार कर्ता

मान लेने के पश्चात् उसे ही हर्ता मानने से परस्पर विरोधाभास कितना आता है ? अरे ! ईश्वर एक तरफ सर्वज्ञ है, सब कुछ जानता है, फिर सर्वशक्तिमान होने के कारण सब कुछ बनाता है, तो फिर उस बनाई हुई सृष्टि में ऐसी त्रुटि और क्षति या विसंगति कहां से आ गई कि उसे ही वापिस हर्ता बनना पड़ा ? लौकिक व्यवहार में भी अपने संतान को जन्म देने वाली माता अपने ही संतान का नाश नहीं करती हैं । भले ही वह कैसा भी हो ?

हर्ता बनने के लिए ईश्वर को हन्ता बनना पड़ता है । तो ही वह हर्ता बन सकता है । भले आदमियों ने इतना भी विचार नहीं किया कि ईश्वर को हर्ता कहने से उसकी सर्वज्ञता और सर्व शक्तिमानपने में भारी विसंगति आएगी । विरोधाभास आएगा । ईश्वर के द्वारा ही बनाई हुई यदि सृष्टि है तो उसने ऐसी क्यों बनाई ? कि जिसका कालान्तर में नाश करना पड़े ? ईश्वर के रहते ऐसी विकृति कहां से आई ? क्या यह ईश्वर पहले से नहीं जानता था ? और जानता था तो क्यों सुधारणा नहीं की ? आप कहेंगे कि अधर्मीदुष्ट दुर्जनों का नाश करने के लिए ईश्वर को हर्ता-हन्ता बनना पड़ा । लेकिन पहले यह सोचिए कि अधर्मी दुष्ट-दुर्जनों को बनाया किसने ? कहां से आए ? क्या ईश्वर को पहले से ही यह मालूम नहीं था कि... ये दुर्जन होंगे ? या है ? बाद में ईश्वर को उनका हन्ता-हर्ता बनना पड़ा इसकी अपेक्षा पहले ही नहीं बनाए होते तो यह प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता ? मेरी सृष्टि भविष्य में ऐसी विकृति वाली होगी ऐसा यदि ईश्वर को मालूम नहीं था कहें तो सर्वज्ञता-त्रैकालिक ज्ञान में कमी आती है और मालूम था परन्तु फिर उसे सुधार नहीं पाए । फिर भी बनाना ही पड़ा इसलिए बनाया आदि कहें तो सर्व शक्तिमान पने में क्षति आती है । इस तरह अनेक विसंगतियों से भरा हुआ यह कर्ता-हर्ता मानने का पक्ष सर्वथा त्याज्य है ।

इसी तरह सृष्टा, कर्ता, हर्ता, नियन्ता, पालनहारा, विलय, प्रलयकर्ता, सर्वस्व दाता, धाता, विधाता तथा लीलाकर्ता आदि ईश्वर विषयक सारी धारणाएं अनेक विसंगतियों, दोषों से परिपूर्ण होने के कारण मानने योग्य ही नहीं है । अत: श्रद्धा के विषय बन ही नहीं सकती है । बनानी भी नही चाहिए । सृष्टि को बनाने वाले उत्पत्तिकर्ता ईश्वर को मानने के कारण अब नियन्ता, पालनहारा मानने के कारण उसे ही सर्वस्व का दाता भी माना गया । वह सब कुछ देता है । वही देने वाला है । "जो मांगो सो पावो" की धारणाएं प्रचलित कर दी है । एक तरफ ईश्वर को सर्वस्व का दाता निश्चित किया और दूसरी तरफ जीवों में राग-द्वेष तथा लोभ तृष्णा की वृत्तियां पड़ी ही है । बस, इन दोनों को जोड़ दिया गया है और हो गई ईश्वर की सारी धारणा तैयार । बस, अब जो माने वह आस्तिक और जो न माने वह नास्तिक ।

भक्त को तो चाहिए कि सब कुछ देने वाले भगवान और दूसरी तरफ भगवान को सर्वस्व दाता कह दिया है । बस, फिर तो चाहिए ही क्या ? भले ही जीव जीवनभर मांगता ही रहे, मिल जाये तो भगवान ने दिया और मांगने पर भी न मिले तो तुम्हारें में ही त्रुटी है । तुम्हारे भाग्य कमजोर है । अरे ! लेकिन भाग्य लिखे किसने ? वह भी ईश्वर पर ही आधारित है । मिले या न मिले तुम मांगते रहो । आखिर दाता वही है । जब भी देगा वही देगा । धीरज रखो । सब कुछ देगा । ऐसी धारणा मजबूत की जाती है । अनेक विसंगतियों से भरे हुए ईश्वर को अशुद्ध अवास्तविक स्वरूप मानने से मिथ्यात्वी बनने की अपेक्षा सर्वथा विसंगति रहित परमात्मा का वास्तविक शुद्ध स्वरूप मानकर सम्यक्त्वी बनना अनेक गुना ज्यादा श्रेयस्कर है ।

सर्वज्ञ महावीर द्वारा उपदिष्ट सत्य स्वरूप—

सर्वज्ञ, त्रिकालज्ञानी बने हुए परमात्मा महावीर ने जगत् को सत्य की राह बताते हुए ईश्वर वास्तविक यथार्थ सत्य स्वरूप बताते हुए कहा है कि... ईश्वर सृष्टि का कर्ता नहीं है । यह सृष्टी ईश्वर निर्मित या सर्जित नहीं है । समस्त लोकालोक और जीव-अजीव की सारी सृष्टि त्रैकालिक शाश्वत है । अनादि—अनन्तकालीन है । दूसरी तरफ जीव को कर्माधीन बताया है । जीव सृष्टि में अनन्तानन्त जीव अनादि-अनन्त कालीन शाश्वत है । वे भी अनादि कर्मबद्ध, कर्मग्रस्त है । सर्वज्ञ महावीर ने सुख, दु:ख, जन्म, मरण, विघ्न, संकट, रोग, दर्द आदि सब जीवों के कर्मों के आधीन बताए हैं । शुभाशुभ स्व कृत कर्मानुसार ही फल मिलता है । अत: मांगने मात्र से नहीं मिल जाता है । इसलिए ईश्वर मात्र मांगने के लिए स्थान विशेष नही है । इतना समझाकर स्पष्ट किया कि... हे जीव ! तुम अपने कर्मों के बंधन की जाल को तोड़ो, बंधन से मुक्त होना जरुरी है । कर्मक्षय की इसी शृंखला में क्रमश: आगे बढ़ता हुआ साधक 14 गुणस्थानों की श्रेणी में क्षपक श्रेणी प्रारम्भ कर कर्मक्षय करता हुआ जीव 13वें गुणस्थान पर पहुंच जाय । वही वीतरागता और सर्वज्ञता प्राप्त कर लें वह अरिहंत भगवान बनता है । वही सर्वज्ञ वीतरागी अरिहन्त भगवान है । भगवान महावीर ने साफ कहा कि भगवान इसी प्रक्रिया से बनते हैं । जबकि दुनिया के अन्य अनेक धर्मों का कहना है कि भगवान कोई बनता नहीं है । वे बने बनाए तैयार ही नीचे उतरते हैं । वे मात्र लीला करने के लिए आते हैं । ऐसा मानने में काल्पनिकता आती है । जबकि महावीर ने भगवान का स्वरूप बिल्कुल वास्तविक यथार्थ बताया । किसी भी प्रकार की काल्पनिकता को अवकाश ही नहीं दिया और कहा कि... सुख सम्पत्ति आदि मांगने की कोई आवश्यकता ही नहीं है । मांगने से नहीं मिलते हैं । ये अपने-अपने कर्माधीन है । अत: मांगने की अपेक्षा

शुभ पुण्य कर्म उपार्जन करो । वह भी दानादि धर्म प्रवृत्ति द्वारा ही संभव है । विघ्न-संकटादि अन्तराय कर्म के कारण है । इनको हटाने से विघ्नादि अपने आप हटेंगे ।

भगवान को मानने का अर्थ यह नहीं है कि... भगवान के पास मांगते ही रहो, तो ही आप भगवान को मानने वाले आस्तिक कहलाओगे अन्यथा नहीं । ऐसी मान्यता सर्वथा गलत है । मात्र भगवान को मान लेना ही पर्याप्त नहीं है । परन्तु सही यथार्थ स्वरूप मानना ही सम्यक् मान्यता है ।

सर्व शक्तिमान कि सर्व गुणवान् मानें ?

ईश्वर को सर्व शक्तिमान मानने के कारण शक्ति को क्रियान्वित मानने का मन होता है । फिर हमारे कुछ कार्य भगवान के पास कराने की इच्छा प्रबल होती है । हे भगवान् ! "ऐसा करो", "मेरे लिए वैसा करो", की याचनापूर्ण प्रार्थनाएं शुरु हो जाती है । ईश्वर को सर्व शक्तिमान मानना एक अलग बात है और सर्व शक्तियों का क्रियान्वित रूप मानकर अभिष्ट कार्य ईश्वर के पास कराना अलग बात है । आर्हत् धर्म के सिद्धान्त में भगवान अरिहंत या सिद्ध भगवान को सर्व शक्तिमान तो क्या अनन्त शक्ति के स्वामी माने है । आत्मा के अंतराय कर्म के सम्पूर्ण क्षय से अनन्त वीर्य गुण आत्मा में प्रगट होता है । यह आत्म शक्ति है । अत: अरिहंत या सिद्ध दोनों ही भगवानों ने कहीं इस शक्ति का उपयोग सृष्टि की रचना, प्रलय, संहार या सर्जन आदि किसी भी समय नहीं कीया । मिथ्यात्व की वृत्ति वश भक्त भले ही हजार बार कह दे कि हे भगवान मेरे लिए ऐसा करो— वैसा करो । लेकिन भगवान वीतरागभाव वाले हैं । अत: किसी का कुछ भी करने नहीं आते हैं । शत्रु-नाश करने आने का कोई कार्य कभी भी किसी भी भक्त के लिए भगवान नहीं करते हैं । कई धर्मों ने भक्त के आधीन भगवान को माना है । भक्त की इच्छा भगवान को पूरी करनी ही पड़ती है । यदि भक्त हठयोग से तपादि में डटकर जम जाय तो भगवान को भी भक्त की इच्छा के आगे आकर झुकना पड़ता है और उसका कार्य करना पड़ता है । ऐसा कई अन्य धर्म वाले मानते हैं । लेकिन वीतराग भगवान को मानने वाले जैन शासन में ऐसी बात को अंश मात्र भी स्थान नहीं है । यहां तो हमेशा भक्त भगवान को ही समर्पित रहता है तथा भगवान ने कर्म का सिद्धान्त इतना गहन एवं चरम कक्षा का बताया है कि प्रत्येक सम-विसमादि निमित्तों का यथायोग्य समाधान हो जाता है ।

सर्वशक्तिमान की अपेक्षा भी सर्वगुणमय भगवान को मानना यह तुलनात्मक दृष्टि से बहुत ऊंची महत्वपूर्ण बात है । सर्व शक्तिमान तो स्वर्ग के सैंकड़ों देवी-देवता भी होते हैं । व्यंतर, वाण व्यंतर जाति के तथा भवनपति एवं वैमानिक निकाय के इन्द्रादि भी सर्व शक्ति के मालिक होते हैं । वे भी अनेक प्रकार का सर्जन-विसर्जन का कार्य करने में समर्थ होते हैं । करते आए हैं । चरित्र ग्रन्थों में इतिहास इस बात का साक्षी है । लेकिन सर्व शक्तिमान होते हुए भी वे इन्द्रादि स्वयं स्वीकार करते हैं कि... हम सर्व गुण सम्पन्न नहीं है । सर्व गुण सम्पन्न एक मात्र वीतरागी अरिहंत सिद्ध परमात्मा ही है । ऐसे ही भगवान के सर्व कर्मों का क्षय हो चुका है और ऐसे आच्छादक- आवरक कर्मों से आच्छादित आत्मा के अनन्त गुण अब सम्पूर्ण कर्मों का सर्वथा क्षय हो जाने के बाद पूर्ण सम्पूर्ण स्वरूप में प्रगट हो चुके हैं । अत: ऐसे अरिहंत सिद्ध भगवान ही सर्व (अनन्त) गुण सम्पन्न है । इसी कारण सर्व शक्तिमान इन्द्रादि भी आकर अरिहंतादि के चरणों में वंदन नमस्कार करते हैं । उनको समर्पित रहते हैं । अत: इन दोनों के बीच का अन्तर एवं रहस्य समझकर भगवान को अनन्त (सर्व) गुण सम्पन्न मानना ही ज्यादा श्रेयस्कर है ।

सर्व शक्तिमान मानकर अपने कार्य साधने के लिए भक्त भगवान के पास अपने कार्य करावे, और उसमें भी शत्रु नाश आदि के हीन कार्य करावे इसकी अपेक्षा भगवान को सर्व गुण सम्पन्न मानकर गुण प्राप्ति हेतु प्रार्थना करें तथा गुणों को जीवन में लाने हेतु गुणोंपासना रूप धर्म का आचरण करे और स्वयं भक्त अपने गुणों के आच्छादक आवरक कर्मों का सम्पूर्ण क्षय करके स्वयं गुणवान बने । सर्व गुण सम्पन्न बने यही श्रेष्ठ है । सर्व शक्तिमान मानकर शत्रु क्षयादि कार्य करा लेने मात्र से भी भक्त महान या सर्वगुण सम्पन्न बन नहीं जाएगा । यह कदापि संभव नहीं है । साथ ही यह भी कदापि संभव नहीं है कि सर्व शक्तिमान भगवान अपने भक्त को अपनी अचिन्त्य कार्य शक्ति से सर्व गुण सम्पन्न कर देंगे । इसलिए अनेक दृष्टि से भी भगवान को सर्व गुण सम्पन्न मानना ही श्रेष्ठ है ।

गुणी के समक्ष गुणाचरण का धर्म—

सर्व गुण सम्पन्न भगवान को मानते हुए साधक भक्त गुणों को प्राप्त करने हेतु गुणवान के प्रति गुणानुरागी बनकर गुणों की उपासना करें और उसके लिए गुणों के आचरण का ही धर्म करें यही श्रेष्ठ स्वरूप है । भगवान तो सर्व गुणवान् है ही । अगुणी-गुणवान का आलंबन ले इससे गुणों के प्रति अनुराग आकर्षण अपने आप बढ़ेगा तथा इससे एक-एक गुण अपने जीवन में लाने की साधना जरुर शुरु हो जाएगी । भक्त को यह निश्चित रूप से लगेगा कि गुणों को जीवन में लाए बिना सब कुछ निरर्थक है । अत: गुणों को जीवन में लाने हेतु जो आचरण करना, जैसा आचरण करना वह गुणोपासना रूप श्रेष्ठतर धर्म है । याद रखिए गुण और गुणी का अभेद संबंध है । अत: गुणों की उपासना करने में आधार

भूत गुणी भगवान ही केन्द्र में रहेंगे और ठीक इसी तरह गुणी भगवन्तों की आराधना, उपासना करते समय गुण केन्द्र में रहेंगे । इस तरह अभेद रूप से, अभेद भाव से साधना होगी । याद रखिए भेद से अभेद की साधना में आगे बढने का ही नाम अध्यात्म साधना है । योग साधना है । ध्यान में साधक भेद स्वरूप को देखकर फिर अभेदावस्था की अनुभूति करें इसी में ध्यान की सार्थकता है । इस तरह गुणोपासना साधक को अभेद तक पहुंचाने में सक्षम समर्थ है ।

अनेक गुणों के बीच विनय गुण राजा है । महत्वपूर्ण गुण है । इस एक के रहने से अन्य सब गुणों की कीमत महत्व बढ़ जाता है । ठीक इससे विपरीत अन्य अनेक गुणों के होते हुए भी मुख्य राजा विनय गुण यदि नहीं होगा तो शेष सभी गुण अपना अस्तित्व भी शायद नहीं टिका पाएंगे । इसलिए सारी सेना के उपर जो स्थान राजा का होता है ठीक उसी तरह गुणों की समस्त सेना के ऊपर विनयगुण रूपी राजा का शोभायमानस्थान है ऐसे विनय गुण का बाह्य स्वरूप नमस्कार का है और आभ्यन्तर स्वरूप पूज्य भाव, अहो भाव का है । आभ्यन्तर कक्षा के वैनयिक भावों के अध्यवसायात्मक अनन्त प्रकार हो सकते हैं । लेकिन बाह्याचरण के नमस्कार में ज्यादा भेद संभव नहीं है । क्योंकि बाह्याचरण काया से होने वाला है । जबकि आभ्यन्तर कक्षा का आचरण मन पर, भावों और अध्यवसाय पर निर्भर रहता है इसलिए अनेक नहीं अनन्त प्रकार हो सकते हैं । गुण आन्तरिक है । क्रिया बाहरी है । गुण आत्मा के रहते हैं मन उसे प्रगट करने का माध्यम है । जबकि क्रिया कायिक है । अत: काया-शरीर उसका माध्यम है । इसलिए विनय गुण को व्यवहार में बाहर प्रगट करने के लिए नमस्कार क्रियात्मक साधन है । ऐसा भी नहीं होना चाहिए कि... बाहर दिखावे के लिए व्यवहार में क्रियात्मक रूप से नमस्कार का आचरण तो करते रहें और आन्तरिक भावों में विनय-विनम्रता का नाम निशान भी न हो । यह आत्मवंचना होगी । दंभ होगा । ऐसी क्रिया में आत्मा को लाभ के बजाय नुकशान ही होगा । कर्म का बंध होगा । याद रखिए ! अध्यवसायों के अनुरूप कर्म का बंध होता है । कर्म के बंध, मोक्ष का आधार जीवों के शुभ-अशुभ अध्यवसायों पर निर्भर रहता है । यदि अध्यवसायों की धारा विशुद्धतम कक्षा की होगी तो कर्म क्षय की मात्रा भी अनेक गुनी ज्यादा होगी तथा ठीक इससे विपरीत यदि अध्यवसायों की धारा अशुद्ध अशुद्धतर कक्षा की होगी तो कर्म बंध का प्रमाण भी उसके अनुरूप ज्यादा ही होगा । आर्त-रौद्र ध्यान भी ध्यान ही है, और धर्म शुक्ल ध्यान भी ध्यान ही है । विचारों की किसी भी विषय के अनुरूप स्थिरता को ध्यान कहते हैं । विषय पर आधार रखता है । आप किसी विषय पर और कैसे विषय पर अपने विचारों को स्थिर करते हो उस पर आधार रहता है । सांसारिक तथा राग द्वेष के विषय यदि होंगे तो आर्त रौद्र ध्यान ही होगा जो कर्म बंधकारक होगा । तथा विषय यदि आत्मा, परमात्मा, मोक्षादि तत्त्वों का हो और उस पर यदि कोई अपने विचारों को केन्द्रित करके स्थिर करे तो धर्म, ध्यान और आगे विषय की सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतमावस्था होती जाय और अध्यवसायों की स्थिरता भी चरम कक्षा पर पहुंचने लगे ऐसी शुक्ल ध्यान की कक्षा के अन्त में केवलज्ञान, वीतरागता, या आगे चलकर निर्वाण-मोक्ष की प्राप्ति अवश्य ही होती है ।

विनय गुण साधक को अत्यन्त विनम्र विनीत बनाता है तथा बाह्य व्यवहार में नमस्कार की क्रिया प्रवृत्ति कराता है । नमस्कार करने वाले नमस्कारकर्ता के सामने विषय के रूप में नमस्करणीय अरिहंत सिद्धादि पंच परमेष्ठी भगवन्त है तथा सिद्धों को जब भाव की कक्षा के उत्कृष्ट नमस्कार करेगा तब मोक्ष का स्वरूप आंखों के सामने स्पष्ट होता ही जाएगा । अत: परमेष्ठियों को नमस्कार करते समय तत्त्वों के विषय सामने स्पष्ट होते जाएंगे । अरिहंत परमेष्ठी को नमस्कार करते समय आत्म तत्त्व (जीव तत्त्व) स्पष्ट होता जाय और उस तत्त्व के विषय पर हमारी अध्यवसाय धारा स्थिर होती जाय तो कर्म निर्जरा का प्रमाण अनेक गुना बढ़ता जाएगा और मुक्ति की दिशा में काफी समीप पहुंच सकते हैं । अत: विचार करना मात्र महत्वपूर्ण नहीं है परन्तु किस और कैसे विषय पर विचार कर रहे हैं । उसका निर्णय पहले करना ज्यादा लाभकारी है । अत: विषय चयन प्रथम सही करिए । नमस्कार श्रेष्ठ कक्षा का विषय चयन कराने में काफी अच्छा सहायक एवं उपयोगी है । क्योंकि नमस्कार करते समय हमेशा अपने आप को लघु-तुच्छ या छोटा समझता है और जो नमस्करणीय अरिहंतादि परमेष्ठी महात्मा है उनको सदा महान्, ऊंचा, गुणवान, श्रेष्ठ समझता है । इसी कारण नमस्कारकर्ता के मन में सदा नमस्करणीय के प्रति आदर भाव, सद्भाव, पूज्यभाव, अहोभाव बना ही रहता है । अत: ऐसा नमस्कार विषय का सही सुयोग्य चयन करेगा तथा ऐसा सुयोग्य विषय पर अपनी विचारधारा भी काफी ऊंची, उत्कृष्ट कक्षा की चलाएगा । इससे कर्म क्षय का प्रमाण बढ़ता ही जाता है या फिर पुण्य बंध का प्रमाण भी बढ़ता ही जाता है ।

सूत्रों, स्तोत्रों और स्मरणों में सूचित नमस्कार फल—

सैंकड़ों सूत्रों, स्तोत्रों और स्मरण आदि है । इनमें मुख्य रूप से अरिहंतादि पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार प्रणामादि किया गया है तथा नमस्कार की महिमा बताते हुए साथ ही साथ फल का निर्देश भी रचयिता-कर्ता ने सूचित किया है । इन सूत्रों, स्तोत्रों में प्राचीन अर्वाचीन ऐसे सैंकड़ों है । इनमें से सर्वमान्य सूत्र षडावश्यक सूत्र है । जो हजारों वर्ष पुराने प्राचीन है । उनमें निर्दिष्ट नमस्कार के फल को समझने की कोशिस करें कि कहां किस प्रकार का कैसा फल दर्शाया गया है ।

1. नवकार महामंत्र में— चूलिका वाली दूसरी गाथा में—"एसो पंच नमुक्कारो,... सव्व पावप्पणासणो कहा है । अर्थात् अरिहन्तादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करने से सब पाप कर्मों का नाश होता है ऐसा फल बताकर ऐसे नमस्कार को (नवकार को) सब मंगलों में प्रथम कक्षा का सर्वश्रेष्ठ मंगल बताया है ।

2. चउवीसत्थय-नामस्तव-लोगस्स सूत्र जो गणधरों के काल का काफी प्राचीन सूत्र है । इसमें चौवीस भगवानों के नाम लेकर कीर्तन, वंदन, पूजन के तरीकों से नमस्कार किया गया है । वंदे और वंदामि के पाठ बार-बार उपयोग में लिये गए हैं । 5वीं गाथा में कहा कि... इस प्रकार मेरे द्वारा नाम लेकर स्तुति किये गए चौबीस ही भगवान जो कर्मो रूप रज-मल का त्याग कर चुके हैं, तथा जरा मरण से मुक्त है वे सभी जिनेश्वर मेरे उपर प्रसन्न हो तथा मेरे द्वारा कीर्तन, वंदन और पूजन करने पर मुझे कर्म रूपी रोग के अभाव का आत्मिक आरोग्य, बोधि बीज रूप सम्यग् दर्शन तथा श्रेष्ठ समाधि प्रदान करें तथा अन्त में ऐसे सिद्ध भगवान मुझे सिद्धि प्रदान करें ।

3. जगचिंतामणी सूत्र जो गुरु गौतम स्वामी द्वारा रचित बताया जाता है इसमें तीर्थो के प्रमुख तीर्थंकर भगवान एवं तीनों लोक में रहे हुए अरबों जिन चैत्यों में बिराजित भगवन्तों को संख्या के हिसाब से वंदन 'पणमामि' शब्द प्रयोग करके किया है लेकिन किसी प्रकार के फल का निर्देश नहीं है ।

4. सुप्रसिद्ध शक्रस्तव जो शक्रेन्द्र महाराजा द्वारा बना हुआ सूत्र है जिसे 'नमुत्थूणं' के प्रचलित नाम से पहचाना जाता है इसमें किसी भी भगवान के नाम का निर्देश नहीं किया है मात्र विशेषणों द्वारा ही नमस्कार किया गया है । सिद्धों को नमस्कार किया गया है । लेकिन अंश मात्र भी फल की आकांक्षा नहीं रखी है ।

5. श्री 14 पूर्वधारी भद्रबाहुस्वामी द्वारा विरचित श्री पार्श्वनाथ भगवान के स्तोत्र के रूप में श्री उवसग्गहरं स्तोत्र में **"तुज्झ पणामोवि बहुफलो होइ ।, नर, तिरिए सुवि जीवा, पावंति न दुक्ख-दोगच्चं"** श्री पार्श्वनाथ भगवान के चरणों में प्रणाम करने से मनुष्य गति के मानव तथा तिर्यंच गति के पशु पक्षी आदि दुःख और दुर्गति या दुर्दशा कभी भी प्राप्त नहीं करते हैं । ऐसे बहुत फल पाते हैं इस प्रकार लिखा है । चौथी गाथा में मोक्ष एवं 5वीं गाथा में बोधि लाभ की भी प्रार्थना की गई है ।

6. प्रणिधान सूत्र— जय वीयराय के सूत्र में— श्री वीतराग भगवान को नमस्कार करते हुए चौथी गाथा में स्पष्ट कह रहे हैं कि... **"तुह नाह ! पणाम करणेणं"** अर्थात् हे नाथ ! तुझे प्रणाम करने से मुझे प्राप्त हो— **"संपज्जउ मह एअं"** । क्या-क्या प्राप्त हो ? उसके लिए लिखते हैं कि... **"दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, समाहिमरणं च बोहिलाभो अ ।।"** दुःखों का क्षय, कर्मो का क्षय, समाधि मरण और बोधि लाभ सम्यग् दर्शन की प्राप्ति हो । इस तरह प्रणिधान सूत्र (जय वीयराय) और लोगस्स सूत्र (नामस्तव) दोनों में प्रणाम के लाभ के रूप में समानता काफी ज्यादा है ।

- » कल्लाण कंदं की स्तुति में— **"दिंतु सुइक्कसारं"** के पाठ से यह कहा गया है कि एक मात्र सार रूप मोक्ष को मुझे दो ।" मोक्ष प्राप्ति की प्रार्थना की गई है ।
- » "संसार दावा" की स्तुति की अन्तिम पंक्ति में— **"भव विरह वरं देहि मे देवि ! सारम्"** ।। हे श्रुत देवी भगवती सरस्वती ! मुझे भव संसार में विरह अर्थात् मोक्ष का श्रेष्ठ वरदान दें । इस तरह विनीत भाव से गुणगान एवं स्वरूप वर्णन करके मोक्ष की प्रार्थना की गई है ।
- » श्रुतस्तव (पुक्खर वरदी) सूत्र में— **"सिद्धे भो ! पयओ णमो जिण मए, नंदी सया संजमे"** चौथी गाथा में इस पंक्ति में जिन मत = जैन सिद्धान्तों को नमस्कार करके सदा शुद्ध चारित्र धर्म में वृद्धि हो ऐसी मंगल कामना व्यक्त की है ।
- » सिद्धस्तव—(सिद्धाणं बुद्धाणं) सूत्र में सब सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करके अन्त में— **"सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु"** परमार्थ से कृतकृत्य और सिद्ध हुए हे सिद्ध भगवन्तों ! मुझे भी मोक्ष (सिद्धि) दिखाने वाले (देने वाले) हो । यहां नमस्कार करके मोक्ष की याचना की गई है ।
- » कमलदल स्तुति में श्रुत देवता को प्रार्थना करते हुए कहा है कि... **"ददातु श्रुत देवता सिद्धिम्"** — हे श्रुत देवता ! मुझे सिद्धि दें ।
- » "लघु शान्ति स्तव" स्तोत्र के रचयिता पूज्य मानदेव सूरि महाराज ने शान्तिनाथ भगवान की मंत्र गर्भित स्तुति करके शान्ति पद (मुक्ति पद) की प्रार्थना की है । भक्त पाते हैं । अतः 'शान्तिपदं' शब्द 17वीं गाथा में रखा है । अर्थात् परम-चरम शान्ति जहां प्राप्त होती है । ऐसे मोक्ष पद को जीव प्राप्त करता है ।
- » चउक्कसाय सूत्र में श्री पार्श्वनाथ भगवान की स्तुति एवं नमस्कार करके **"सो जिणु पासु पयच्छउ वंछिउ"** ऐसे पार्श्वनाथ भगवान मुझे वांछित को देवें । कहा है ।
- » भरहेसर सज्झाय में—**"दिंतु सुहं गुणगणेहिं संजुत्ता"** के पाठ से कहते हैं कि अनेक गुणों से युक्त सभी महान संत एवं सतियां मुझे सुख देवें ।
- » स्नातस्या की स्तुति में— अन्त में— **"यक्षः सर्वानुभूतिर्दिशतु मम सदा सर्व कार्येषु सिद्धिम्"** अर्थात् सर्वानुभूति नामक यक्ष मुझे सब कार्यों में सिद्धि दो ऐसी प्रार्थना की गई है ।

मुख्य सूत्रों में नमस्कार करके उपरोक्त तरीकों से लाभादि सूचित किया है । आगे के नव स्मरणादि में अर्थात् भक्तामरादि में लगभग ऐसे ही भावों को अभिव्यक्त किये गए हैं, कहीं भी सांसारिक भौतिक वैषयिक सुखों की याचना नहीं की गई है । प्रत्येक साधक को पंच प्रतिक्रमण, नवस्मरणादि तथा अन्य अनेक स्तोत्रों के अर्थों का भलिभांति अध्ययन करके पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार, प्रणाम या वंदन पूजन, दर्शन,

कीर्तन, जप, ध्यानादि करते समय क्या मांगना ? कैसा मांगना ? कितना मांगना ? आदि का विवेक रखकर याचना, प्रार्थना करनी चाहिए। "नमस्कार से लाभ" समझकर सविशेष नमस्कार करने चाहिए।

महाराष्ट्र की राजधानी उद्योग नगरी मुंबई के समीप — मुंबई-पुना एन.एच. ४ के कात्रज — देहु रोड बाय पास हाइवे पर ..... पुना शहर के अत्यन्त समीप ..... दक्षिणी सीमावर्ती कात्रज घाट की सुरम्य पर्वतमाला की पहाडियों के बीच ऊंचाई पर प्राकृतिक सौंदर्य से सुशोभित ..... शुद्ध-स्वच्छ हवा पानी वाले ..... प्रदूषण मुक्त ..... शान्त वातावरण वाले MINI HILL STATION स्वरुप — **वीरालयम्** के ५० एकर विशाल जमीन के संकुल में विश्वस्तरीय विराट आयोजन

पू. पंन्यास प्रवर श्री अरुणविजयजी गणिवर्य महाराज

की प्रेरक — प्रेरणा — सदुपदेश — मार्गदर्शनानुसार एवं तत्वावधान में

SHREE MAHAVEER RESEARCH FOUNDATION – VEERALAYAM

आयकर विभाग से 80G नियमानुसार कर माफी पत्र प्राप्त ट्रस्ट रजिस्टर्ड नं. E-2683 पुणे

सेवा ..... शिक्षा ..... और साधना के त्रिवेणी संगम स्वरूप विराट आयोजन

* YOGA & MEDITATION CENTRE — योग-ध्यान साधना केन्द्र
* RESEARCH CENTRE [INSTITUTE] — संशोधन केन्द्र
* ALTERNATE THERAPY MEDICAL CENTRE — वैकल्पिक चिकित्सा केन्द्र
* RESEARCH LIBRARY — संशोधन योग्य ज्ञान भण्डार * HOSTEL
* विशाल धर्म सभागृह * प्रशेगशाला LABORATORY, * श्रवण साधनालय
* NATURAPATHIC CENTRE — प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र — HOSPITAL
* RESIDENTIAL SCHOOL — गुरुकुल — तपोवन शिक्षा केन्द्र
* शान्ति निकेतन — वडील सेवा केन्द्र * GUEST HOUSE — अतिथि गृह
* SENETORIYUM CUM — यात्रिकालयम् * ध्यान गुफाएं * साधना कुटिर
* STUDY CENTRE — अध्ययन कक्ष * विशाल भोजनालय * BLIND SCHOOL — अंधशाल
* SCHOOL FOR DUMB & DEEAF — मूक-बधिर शाला * निवास कक्ष
* विशाल गौशाला * प्राणी चिकित्सा केन्द्र * पक्षी कण क्षेत्र
* 108 घर एवं दुकानों सहित विशाल — **"साधर्मिक नगर"**
* वीरालयम् में — **"श्री महावीर समवसरण ध्यान प्रासाद"** — विशाल महाप्रासाद
* शुद्ध देशी कृषि * वृक्षारोपण * तीर्थंकर उद्यान * नक्षत्र उद्यान
* व्यसन मुक्ति केन्द्र * विकलांग विकास केन्द्र * श्रमण-श्रमणी सेवा केन्द्र

वीरालयम् के विशाल संकुल में विश्वस्तरीय विराट आयोजन हो रहा है .....

जी ..... हां ..... आइए .... पधारिए .... अभ्युदय .... अभ्युत्थान में सहयोग करीए .... बम्बई—पुना—मद्रास—बैंगलोर के अग्रगण्य उद्योगपति सेवा भावी कार्यकर्ता ट्रस्टी के रूप में अपनी सेवा द्वारा योगदान दे रहे हैं .....

बैंक द्वारा सारा व्यवहार, सुव्यवस्थित संचालन पद्धति, ... सुचारु कुशल संचालक ..... सक्रिय कार्यकर्ता ..... कुशल कमिटि ..... पींढ अनुभवियों की सलाह सूचन देश-विदेश के अनेक उदार दानवीर दान दाताओं का आर्थिक सहयोग .....

एक अनोखा ..... अद्‌भूत ..... उत्तम आयोजन क्रमशः आकार ले रहा है ।

आइए .... पधारिए ..... । तन-मन-धन से आप भी सहयोग करीए । योग दान दीजिए ।

आवागमन हेतू मार्गदर्शन — मुंबई—पुना—बैंगलोर के एन.एच. ४ पर — देहु रोड — कात्रज बाय पास हाइवे पर आंबेगांव खुर्द में दत्त नगर से कोलेवाडी रोड पर पोस्ट जांभुलवाडी ..... ता. हवेली, पुना ४११०४६ फोन नं. (०२०) ४३७७७५७ ।

कार्यालय — १. इन्द्रमल बोराणा, १०५६ शुक्रवार पेठ, तिलक रोड — पुना २ फोन ४४७७९१७, ४४७२१८१

2. M.M. Kothari - 1177 Shukrawar Peth, Subhash Nagar Street No. 2 Pune 2 Ph. 553437, 4491863

श्री नवकार में देव तत्त्व

— शौरीलाल नाहर
—चेन्नै

जैन धर्म के परम मंत्र श्री नवकार में देव, गुरु और धर्म तीनों को समाविष्ट किया गया है । आराधना मार्ग में तीनों का महत्वपूर्ण स्थान है । सामान्य परिभाषा में कहा जाता है कि देवे सो देव, दिखावे सो गुरु, चखावे सो धर्म अर्थात् आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अनुभव हो वह धर्म है ।

जैन धर्म सर्वज्ञ वीतराग द्वारा जगत के जीवों के कल्याणार्थ प्ररुपित मार्ग है । इसमें अंश मात्र भी वितथ का स्थान नहीं है परन्तु आज सामान्य जनता में इसके देव तत्त्व के बारे में काफी अज्ञानता छाई हुई है । जैन धर्म अठारह दोष रहित सर्वज्ञ वीतराग आत्मा को परमात्मा वर्णन करता है । श्री नवकार मंत्र के प्रथम पद में साकार परमात्मा अरिहंत को और द्वितीय पद में निराकार परमात्मा सिद्ध को नमस्कार कीया गया है ।

शरीर में जो स्थान आत्मा का है, विश्व में वही स्थान अरिहंत परमात्मा का है । तथा प्रकार की विशिष्ट योग्यता के बल से ही आत्मा अरिहंत पद प्राप्त करती है । उस योग्यता के बीज का नाम है—**विश्व वात्सल्य** । इस वात्सल्यता के आगे माता का वात्सल्य भी फीका-तेजहीन लगता है । माता के हृदयमें जो प्रेम जो वात्सल्यता स्व सन्तान के प्रति होती है, वैसी वात्सल्यता अन्य बालकों के प्रति नहीं होती है ।

अरिहंत परमात्मा में त्रिभुवन के समस्त जीवों के प्रति एक समान वात्सल्य भाव होता है । ऐसे परमात्मा की भक्ति का विचार भी पुण्योदय से आता है तो जो अत्यन्त भाव पूर्वक ऐसे परमात्मा को भजता है, उस के पुण्य की कोई सीमा नहीं है । परमात्मा की निष्काम भक्ति से मुक्ति सुख मिले, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है । अरिहंत परमात्मा की आत्मा मोक्ष में जाती है परन्तु उनका नाम व आकार तो यहां ही रहता है । अरिहंत परमात्मा अपने नाम, रूप, आदि से जगत् के जीवों को तारते हैं । सूर्य का स्वभाव ही प्रकाश देना है, उसे प्रकाश देने के लिए कोई चेष्टा नहीं करनी है वैसे ही परमात्मा का स्वभाव ही जगत् के जीवों को भवजलधि से तारणा है । इसके लिए उन्हें कोई क्रिया नहीं करनी पड़ती है । परमात्मा तो कृत्कृत्य है । जो कोई भी उन का आलम्बन लेता है उसका कल्याण हो जाता है ।

अनन्त शुद्ध आत्माओं का एकत्र मिलन हो तो एक स्थान है श्री नवकार और दूसरा स्थान है सिद्ध शिला । नमो अरिहंताणं के द्वारा अनन्त अरिहंतों को नमस्कार करने का पुण्य प्राप्त होता है । सिद्ध शिला तो अपने से सात राजलोक दूर है जबकि नवकार तो अपने पास ही है । बिल्कुल निकट है ।

अरिहंत परमात्मा परार्थ व्यसनी होते हैं अत: वे अपनी आत्मा के सच्चे सम्बन्धी है । उन से बढ़कर जगत् में अपना कोई हितैषी नहीं है । अरिहंत परमात्मा ही परम तारक, परम शरण्य है ।

जल की तारक शक्ति पर विश्वास रखते हुए भी व्यक्ति को जल में हाथ पैर हिलाने की क्रिया तो करनी पड़ती है । उसी प्रकार अरिहंत की तारक शक्ति में दृढ़ श्रद्धा रखने वाले व्यक्ति को भी अरिहंत की आज्ञा/आराधना रूप क्रिया करनी पड़ती है । इस जगत् में जो कुछ धर्म दिखाई देता है; दान, शील, तप, भाव धर्म की जो आराधना दिखाई देती है, उन सबके मूल में तारक श्री अरिहंत प्रभु ही है । अत: हमें जो शासन मिला, उसमें श्री अरिहंत परमात्मा की ही कृपा है । श्री अरिहंत प्रभु की कृपा मानने से कृतज्ञता भाव दृढ़ होता है और अहंकार का पोषण रुक जाता है ।

इस जगत में सिद्ध भगवान भी है और संसारी आत्माएं भी है । उन दोनों का विभाग श्री अरिहंत परमात्मा ही बताते हैं । उन्होंने यदि यह भेद नहीं बतलाया होता तो मुक्त बनने की इच्छा भी कहां से होती ? अत: हमारे मुख्य उपकारी श्री अरिहंत परमात्मा है । वे केवल आत्मा की पहचान ही नहीं कराते हैं अपितु आत्मा पर लगी हुई कर्मरज को भी बतलाते हैं तथा उसे किस प्रकार दूर किया जाए उसका मार्ग भी बतलाते हैं । सद् धर्म का उपदेश देकर जीव को शिव बनाने की समग्र सामग्री भी प्रदान करते हैं । श्री अरिहंत परमात्मा त्रिभुवन पूज्य हैं क्योंकि वे त्रिभुवन के समस्त जीवों के उद्धार की उत्कृष्ट भावना से परिपूर्ण होते हैं ।

श्री सिद्ध भगवान अनंत सुख के स्वामी है । सच्चा सुख उन्हीं के पास है क्योंकि वह शाश्वत है अव्याबाध है । उस सुख भोग के लिए किसी माध्यम या पर पदार्थ के आश्रय की आवश्यकता नहीं रहती है । संयोगजन्य सभी सुखों के साथ वियोगजन्य दु:ख जुड़ा हुआ है । लक्ष्मी के आगमन से जो सुख मानता है उसे लक्ष्मी के वियोग से अवश्य दु:ख होने वाला है । मोक्ष का सुख निरपेक्ष है । उस सुख के भोग के लिए इन्द्रियों की भी अपेक्षा नहीं है । दुनिया का सुख पर पीड़ाकारी भी है जबकि सिद्धों के सुख भोग में किसी भी जीव को लेश भी पीड़ा नहीं है । इस प्रकार के निरपेक्ष, अनन्त व अव्याबाध सुख को पाने की भूख सिद्ध भगवन्तों के नाम, स्मरण, जाप, ध्यान, कीर्तन, आदि के प्रभाव से जागृत होती है । सिद्ध भगवान का आराधक, नाशवंत पदार्थों का पुजारी नहीं हो सकता । अनादि के कुसंस्कारों के कारण प्रमादवश पर पदार्थों से राग हो जाये, उन का आकर्षण हो जाय, तो वह आराधक को अवश्य खटकता है । तत्पश्चात् वह आत्मा बहिर्भाव की वृत्तियों को तोड़कर अन्तर्मुख बनने का प्रयत्न करती है । सभी भौतिक सुख अल्पकालीन है । शरीर इन्द्रियों आदि के सुख अल्पकालीन है । इन अल्पकालीन सुखों की प्राप्ति के लिये कितने निर्दोष जीवों को दु:ख देना पड़ता है ।

इस प्रकार के सम्यक् विचार से आत्मा निरन्तर स्थिर करने से सिद्ध पद की प्राप्ति का संकल्प दृढ़ होता है । जैन शासन में प्रत्येक आत्मा परमात्मा पद प्राप्ति का अधिकारी है । हे सिद्ध प्रभो ! आप की कृपा भक्ति से हमारी आत्मा में शुद्ध स्वरूप प्राप्ति की भावना दृढ़ बनें ।

प्रणाम और नामस्मरण की महिमा

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

भक्ति के विषय में देव-गुरुओं के स्मरण, कीर्तन, उन्हें प्रणाम, नमस्कार, नमन, वंदन-पूजन आदि के अनेक तरीके हैं। आगे बढने पर जाप-ध्यानादि है। भेद से अभेद की अध्यात्म की दिशा में आगे तादात्म्यता, तदाकारता, तद् रुपता, तन्मयता आदि के अनेक स्वरूप है। संसार में सामान्य रूप से भिन्न-भिन्न रुचि वाले अनेक जीव हैं। किसी को जप करना ज्यादा पंसद है, किसी को भक्ति, किसी को वंदन नमस्कार प्रणाम ज्यादा रुचिकर लगता है। किसी को पूजा, पूजन विशेष प्रिय लगता है। ध्यान की कक्षा में पहुंचे हुए ध्याता को प्रभु का ध्यान करना ज्यादा श्रेयस्कर लगता है। आगे प्रभु के वचन श्रवण या गुरुओं द्वारा जिन वाणी के श्रवणादि का आनन्द भी अनेकों को होता है। बहुत कम जीव ऐसे होते हैं जिनको सुने हुए जिन वचन के अनुरूप आचरण करने का मन होता है। जो अपने जीवन में धर्म को प्राथमिकता देते हैं। मात्र सुनना ही नहीं, आचरण भी पूरा करना है।

नमस्कार मात्र क्रियात्मक कायिक ही नहीं है। जिनाज्ञा का पालन करना और आज्ञानुसारी धर्माचरण करना यह नमस्कार का या पूजा का सर्वोच्च प्रकार है। जिनेश्वर परमात्मा की प्रतिमा की पूजा चंदनादि से करना यह द्रव्य पूजा है जबकि जिनेश्वर प्रभु की आज्ञानुसार सम्पूर्ण जीवन ही सिद्धान्ताचरण में ढालना, अर्थात् आज्ञानुसार वैसा जीवन जीना यह श्रेष्ठ आभ्यन्तर कक्षा की भाव पूजा है। नमस्कार पूज्यभाव को पैदा करता है और प्रगट हुए पूज्यभाव को बाह्य व्यवहार में सक्रिय या क्रियान्वित करना यह पूजा पूजन है। लेकिन इसका जनक नमो भाव नमस्कार ही है। अत: जिनको भी ऐसा लगता हो कि मेरे पंच परमेष्ठी भगवन्तों के प्रति पूज्यभाव कम है उनको सबसे पहले नमस्कार करने का प्रमाण अत्यधिक बढ़ाना चाहिए। जैसे-जैसे नमस्कार करते जाएंगे वैसे-वैसे पूज्यभाव बढ़ता जाएगा, जैसे-जैसे नमस्कार बढ़ते जाएंगे वैसे-वैसे नम्रता विनम्रता बढ़ती जाएगी। जैसे औषधि विज्ञान में खरलीकरण की प्रक्रिया में भस्मादि की जितनी ज्यादा घूंटाई होती है उतनी ज्यादा उनकी गुणवत्ता बढ़ती जाती है। अग्नि पर दूध की घूंटाई करने पर मावा बनता है जो दूध से अनेक गुना शक्तिशाली बनता है। ठीक इसी तरह नमस्कार की अनेक बार की क्रिया से जगे नमो भाव की, विनम्रता की घूंटाई से विनयगुण बनता है। विनय गुण से पूज्यभाव प्रगट हो और पूज्य भाव क्रियान्वित होकर पूजा, पूजन की पद्धति हो। यह सर्वश्रेष्ठ प्रक्रिया है। इस तरह नमस्कार भी पूजा है और पूजा भी नमस्कार रूप है।

प्रभु पूजा से पहले अपना तिलक—

जिनेश्वर परमात्मा के मंदिर में आराधक जब पूजा करने जाते हैं, तब विधि नियमानुसार पहले अपने ललाट पर तिलक करते हैं फिर भगवान की पूजा करते हैं। कई महानुभावों को ऐसा लगता है कि... अरे ! पूजा करने के पहले अपनी खुद की पूजा क्यों ? यह अच्छा नहीं लगता है। अनुचित है। लेकिन ऐसे विचार वाले महानुभावों की भूल सिर्फ इतनी सी है कि... उन्होंने स्वयं के ललाट पर लगाए गए तिलक को अपनी पूजा मान ली है। अपनी पूजा मानने की आवश्यकता ही नहीं है। स्वयं को तिलक करने के हेतु-आशय समझने पर भ्रांति दूर हो जाएगी।

परमात्मा की पूजा करने के पहले हमें यह निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि.. जिसकी हम पूजा करने जा रहे हैं क्या उसकी आज्ञा हमें मान्य हैं ? क्या पूर्ण रूप से हम समर्पित हैं ? हे जिनेश्वर भगवान ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। स्वीकार्य है। मैं सदा ही आपकी आज्ञा का पालन करुंगा। आपकी आज्ञानुसार ही चलूंगा और आज्ञानुसार ही जीवन जीउंगा। ये आज्ञा के भाव प्रदर्शित करने के लिए ललाट पर तिलक एक प्रतीक के रूप में लगाया जाता है। जो दिन भर ललाट पर स्पष्ट रहता है। जैसे स्त्री के ललाट पर लाल बिन्दी "पर पुरुष को रुक जाओ" की लाल बत्ती दिखाता है अपने पति के द्वारा सेंध (मांग) भी लाल कंकु से भरी होती है यह सूचना दे रहा है कि... यह स्त्री एक पुरुष विशेष के साथ संलग्न हुई सति सन्नारी है। अत: अन्य किसी भी पुरुष को उसका विचार तक नहीं करना चाहिए। ठीक इसी तरह एक भक्त ने अपने ललाट पर केसर, चंदन का तिलक जो लगाया है वह परमात्मा के प्रति समर्पण भाव का सूचक है। बस, मैं एक भगवान विशेष को ही समर्पित हूं। जो कि सर्वज्ञ वीतरागी है। उनकी सर्व आज्ञाएं मैंने शिरोधार्य कर ली है। बस, अब अन्य किसी की कोई बात मानने की आवश्यकता ही

नहीं है । इस तरह इसमें सच्ची श्रद्धा-सम्यग् दर्शन की प्रतीति होती है । इन भावों का सूचक है यह तिलक । इसे इसी अर्थ में समझकर भावोल्लास बढाते रहना चाहिए । यही श्रेष्ठ है और इसी में लाभ है ।

वंदन से क्या लाभ—

श्री वीर प्रभु की अन्तिम देशना स्वरूप उत्तराध्ययन सूत्र के 25वें सम्यक्त्व पराक्रम अध्ययन में 10वां प्रश्न वंदन के विषय में करते हुए पूछा गया है कि... हे परमात्मा ! वंदन करने से जीव क्या लाभ उपार्जन करता है ? शब्द रचना इस प्रकार है—

वंदणएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उत्तर— वंदणएणं नीयगोयं कम्मं खवेइ । उच्च गोयं निबंधइ । सोहग्गं च णं अप्पडिहयं आणाफलं निव्वेत्तेइ दाहिण भावं च णं जणयइ ॥

उत्तर में स्पष्ट कहा है कि... वंदन—नमस्कारादि करने से जीव नीच गोत्र कर्म खपाता है और उच्च गोत्र कर्म बांधता है, उपार्जन करता है । सौभाग्य और अप्रतिहत आज्ञा का फल, निवर्तन एवं दाक्षिण्य भाव भी उपार्जन करता है । इस तरह वंदन नमस्कार से कितना बड़ा लाभ है ? नीच गोत्र कर्म का क्षय और उच्च गोत्र की पुण्य प्रकृति का उपार्जन यह वंदन नमस्कार से होने वाला कितना बड़ा लाभ है ? तथा कितनी अन्य सौभाग्यादि की पुण्य प्रकृति के उपार्जन का भी लाभ है ?

प्रणाम-नमस्कार से लाभ—

द्वादशांगी के सूत्र में स्पष्ट निर्देशन करते हुए कहा है कि... क्रमशः एक-एक सूत्र में देखने से स्पष्ट ख्याल आएगा—

लोगस्स सूत्र में—

कित्तिय-वंदिय-महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
आरुग्ग बोहिलाभं, समाहिवर मुत्तमं दिंतु ।।6 ।।

—लोगस्स यह नामस्तव सूत्र है । जिसमें 24 तीर्थंकर भगवन्तों का नाम लेकर स्तुति, स्तवना की है । स्तुति स्तवना के 3 प्रकार बताए हैं 1. कीर्तन, 2. वंदन और 3. पूजन । 1. कीर्तन-भजन यह वाचिक स्तुति है । वचन योग से भाषा के रूप में नामोच्चारण करते हुए, गुणगान करते हुए स्तुति-स्तवना की जाती है । 1. वंदन कायिक ज्यादा है । काया से नत मस्तक होकर पंचांग प्रणिपातादि पूर्वक वंदन नमस्कार प्रणाम किया जाता है तथा महिया से पूजा भक्ति की जाती है । याद रखिए... "अर्ह मह पूजायां" के धातुकोष गत अर्थ 'अर्ह' और 'मह' धातु स्पष्ट रूप से पूजा अर्थ में ही है । 'मह' धातु से बना हुआ रूप यहां "महिया" है । इतना स्पष्ट होते हुए भी व्याकरण एवं संस्कृत प्राकृत भाषा के अनभिज्ञ लोगों ने सांप्रदायिक मोह-ममत्व से अभिभूत होकर मन माने अर्थ करके उत्सूत्र प्ररुपणा करते हुए महिया से सीधा सच्चा अर्थ पूजा का हटाकर "महिमा" कर दिया है । क्योंकि लोगस्स जैसा द्वादशांगी का महत्वपूर्ण सूत्र तो सबको याहिए । इसके बिना चल ही नहीं सकता है और दूसरी तरफ अपना संप्रदाय मूर्ति, दर्शन, पूजा का निषेध करने वाला पूरा विरोधी है । अतः पूजा का निषेध, विरोध करने के लिए महिया से पूजा अर्थ हटाकर महिमा कर लिया ।

सूत्रों सिद्धान्तों का अपना अनुकूल अर्थ तोड़ मरोड़कर बैठा देने से क्या अपना सम्प्रदाय सच्चा हो जाएगा ? मृषावाद विरमण और अदत्तादान विरमण के महाव्रत उच्चरने वाले महात्माओं का क्या यह कार्य उचित है ? सराहनीय है ? कहां तक न्याय संगत है ? क्या इतने मात्र से पूजा, पूजन सर्वथा लुप्त हो गए ? जी नहीं । महिया का महिमा ऐसा मनमानी अर्थ बैठाने से अब आगे जहां जहां भी महिया शब्द आएगा क्या वहां सब जगह महिमा ही अर्थ बैठाएंगे ? कैसे संभव होगा ? दूसरी तरफ धातु कोष कैसे बदलेंगे ? महिमा के लिए 'मह' धातु को कैसे बैठाएंगे ? इस तरह उत्सूत्र प्ररुपणा करने से सिद्धान्तों की सम्यग् सेवा एवं सुरक्षा होनी संभव ही नहीं है । सिद्धान्त की हानि होती है ।

नामस्तव में चौबीसों भगवानों के नाम लेकर कीर्तन, वंदन, पूजन के तीनों प्रकार से स्तुति स्तवना करके फल, लाभ के रूप में आरोग्य, बोधि लाभ और समाधि की प्राप्ति बताई है । यहां आरोग्य से मात्र देह स्वास्थ्य ही सीमित अर्थ नहीं है । अपितु आभ्यन्तर अर्थ में... आत्मा को जो कर्म रोग लागू हुआ है, जिसके कारण चारों गति में 84 लाख जीव योनियों में जीव जन्म मरण धारण करता हुआ सुख दुःख प्राप्त करता रहता है । यह अनादि कालीन जो भारी कर्म रोग है— इस भव रोग रुप भाव रोग को दूर करके रोग के अभाव के रूप में आरोग्य प्राप्त करता है साधक । अतः इस गहन विशाल अर्थ के स्थान पर अपने स्वार्थाभिप्रेत वाले "स्वास्थ्य आरोग्य" अर्थ बैठाने से अर्थ में कितनी संकुचितता आएगी ? कितना अनर्थ होगा । लोक व्यवहार में आरोग्य शब्द बार-बार जो सुना है उसके हिसाब से यहां पर "आरुग्ग" पाठ के साथ सादृश्यता बैठाकर अर्थ बना लिया और व्यवहार में प्रचलित कर दिया । यह कहां तक सुसंगत है ?

अत: परमात्मा को वंदन नमस्कारादि करने से जीव आरोग्य कर्म रोग का अभाव, बोधि लाभ, श्रद्धा और ज्ञान की प्राप्ति तथा समाधि भाव की प्राप्ति होती है । इस तरह कीर्तन, वंदन, पूजन से लाभ होता है ।

तीर्थवंदना वाले सूत्र में— *"ताइं सव्वाइं वंदामि"— से सब तीर्थों के सब जिन बिम्बों को वंदन किया है ।*

नमुत्थुणं— शक्रस्तव सूत्र में— भगवान के अनेक विशेषण पूर्वक मात्र नमस्कार किया गया है । इस पूरे सूत्र में भगवान का एक भी नाम नहीं लिया गया है सिर्फ विशेषण ही रखे गए हैं । नवकार सूत्र के "नमो अरिहंताणं" के प्रथम पद का विस्तृत अर्थ समझना हो उसे "नमुत्थुणं" सूत्र अच्छी तरह समझना चाहिए और नमुत्थुणं सूत्र पर जो ललित विस्तरा टीका है उसका यदि अध्ययन किया जाये तो अरिहन्त परमात्मा का अद्‌भुत स्वरूप समझ में आ सकता है ।

» चेइयवंदण सूत्र— में भी तीनों लोक के समस्त जिन चैत्यों को वंदन किया है ।

» सव्व साहु वंदण सूत्र— में "पणओ" शब्द का प्रयोग करके ढाइ द्वीप में रहे हुए समस्त साधुओं को वंदन किया है ।

उपसर्गहर स्तोत्र में— "तुज्झ पणामो वि" के पाठ से परमात्मा पार्श्व प्रभु को प्रणाम करके मनुष्य और तिर्यंच दु:ख-दुर्दशा को नहीं पाते हैं । प्रणाम का महत्व बताया है ।

» प्रणिधान सूत्र—जय वीयराय में— "तुह नाह ! प्रणाम करणेणं" के शब्दों में नाथ— वीतराग भगवान को प्रणाम करने से— क्या-क्या लाभ होता है ? दु:ख क्षय, कर्म क्षय समाधि मरण और बोधिलाभ की प्राप्ति का लाभ बताया है । प्रणाम कितना लाभकारी है ?

» चैत्यस्तव में-वंदन-पूजन-सत्कार-सन्मान-बोधि लाभ आदि के निमित्तों को लेकर परमात्मा को समक्ष श्रद्धा पूर्वक कायोत्सर्ग करने की बात की है ।

» कल्लाण कंदं की स्तुति में—भी वंदे, नमामि आदि शब्दों से पांच जिनेश्वर परमात्माओं को तथा ज्ञान-आगमादि को नमस्कार किये गये हैं ।

» यही बात संसार दावानल की स्तुति में— "नमामि वीरं", नमामि जिनराज आदि शब्दों से की गई है ।

सुयधम्म-थुई—"श्रुतस्तव सूत्र" पुक्खरवरदीवड्ढे सूत्र में—"धम्माइगरे नमंसामि, "सीमाधरस्स वंदे", "णमो जिणमए" आदि शब्दों से विशेष रूप से नमस्कार किया गया है ।

» सिद्धस्तव सूत्र— में "नमो सया सव्व सिद्धाणं", "सिरसा वंदे महावीरं", "इक्कोवि नमुक्कारो", "अरिट्ठनेमिं नमंसामि", "वंदिआ जिणवरा" आदि शब्दों से काफी अच्छी तरह नमस्कार किया गया है । साथ ही नमस्कार का फल भी दिया गया है ।

» सुगुरु वंदण में— "वंदिउं" से वंदन किया गया है ।

सावग पडिक्कमण सूत्र में (वंदित्तु सूत्र में)— प्रथम ही "वंदित्तु" सव्व सिद्धे पाठ से पहले समस्त सिद्ध भगवन्तों को वंदन नमस्कार किया गया है ।

» गुरु खामणा (अब्भुट्ठिओ) सूत्र में— "विणए" एवं "विणय" आदि के पाठ है ।

» वर्धमान स्तुति— ("नमोऽस्तु वर्धमानाय") सूत्र में "नमोऽस्तु" का पहले ही प्रयोग किया है और भगवान वर्धमान स्वामी (महावीर स्वामी) को नमस्कार किया गया है ।

» प्राभातिक स्तुति— (विशाल लोचन) में "नौमि, नमस्कृतम्" के पाठ हैं ।

» साहु वंदण-(अड्ढाइज्जेसु) सूत्र में— "ते सव्वे-सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि" उन सब साधुओं को सिर झुकाकर (काया से) तथा मन (भाव) से मस्तक नमाता हुआ नमस्कार करता हूं ।

» वरकनक-सूत्र में— "वन्दे" के पाठ से 170 जिन को वंदना की है ।

» शान्ति स्तव (लघु शान्ति) में— कई बार "नमो नमो", नमस्तस्मै, नमस्ते, नमोऽस्तु आदि नमस्कारवाची शब्दों का प्रयोग श्लोकों में करके शान्तिनाथ भगवान से शान्ति की प्रार्थना की गई है ।

» भरहेसर सज्झाय ("भरतेश्वर बाहुबली") सूत्र में प्राचीन काल के महान अनेक संत महात्मा और अनेक सतियों का नामोल्लेख करके, नाम की महिमा ही इतनी ज्यादा बताई है कि... "जेसिं नाम ग्गहणे-प्पव पबंधा विलयं जंति" । अर्थात् जिनका नाम लेने मात्र से हमारे (नाम लेने वालों का) पाप के बंधन पिघल जाते हैं । कर्म क्षय होता है । सोचिए ! कितनी गजब की शक्ति होगी ऐसे महापुरुषों के नामों में ? तथा नाम लेने वालों के अध्यवसायों में भी कितनी विशुद्धि होगी ? भावना कितनी पवित्र होगी ?

» "सकल तीर्थ" सूत्र में शुरुआत ही वंदन नमस्कार से की गई है । सकल तीर्थ वंदु कर जोड—अर्थात् हाथ जोड़कर सभी तीर्थों को वंदन नमस्कार करता हूं, का भाव अभिव्यक्त किया गया है । भले ही तीर्थ तीनों लोक में कहीं भी हो, कितने भी हो ? और सब तीर्थों में शाश्वत अशाश्वत प्रतिमाएं कितनी भी करोड़ों की संख्या में मन सब जगह पहुंचाते हुए मानस दर्शन करते हुए यहां बैठे-बैठे भी भक्त भगवान को वंदन-नमस्कार करता है । इस तरह मन पूर्वक भाव से भरा हुआ वंदन-नमस्कार-नमस्करणीय और नमस्कारकर्ता के बीच का असंख्य योजनों का अन्तर दूर करता है । दोनों को समीप लाता है । मिलाता है । इस सूत्र की प्रथम गाथा में "नमुं निश दिश" शब्दों का प्रयोग करके यह सूचित किया है कि इस तरह तीनों लोकों में रहे हुए सभी तीर्थों की वंदना प्रतिदिन करनी ही चाहिए ।

» रात्रि में शयन करने के पहले विरतीधर महात्मा "संस्तारक-पौरुषी" के पाठ का उच्चारण करते हैं । उसमें शान्त चित्त से "नमो खमासमणाणं" का पाठ बोलते हुए सहवर्ती सभी साधुओं को वंदन-नमस्कार करते हैं । जिसमें गौतमस्वामी आदि सभी महान मुनि महात्माओं को नमस्कार होते हैं । फिर उनसे आज्ञा मांगी जाती है । अत: यह पाठ ऐसा स्पष्ट सूचित करता है कि... आज्ञा मांगने के पहले नमस्कार करना चाहिए । नमन-नम्रता का भाव नमस्कार से प्रदर्शित करते हुए विनीत भाव से ही आज्ञा मांगनी चाहिए ।

» श्री वर्धमान स्वामी की स्नातस्या की स्तुति में श्री बालचंद्र सूरि महाराज ने— "तेषां नतोऽहं क्रमान्" के शब्दों का प्रयोग करके भगवान के चरणों में नतमष्तक होकर नमस्कार करते हैं ।

» सकलार्हत् स्तोत्र में चैत्यवंदन करते समय श्री हेमचन्द्र सूरि महाराज ने प्रत्येक श्लोक में भगवान का नामोल्लेख करके नमस्कार किया गया है । प्रणाम किया गया है ।

» अजित शांति स्तव स्तोत्र में— व्यक्तिगत रूप से श्री अजितनाथ और श्री शान्तिनाथ भगवान का नाम लेकर संयुक्त रूप से स्तवना की है । इसमें आप देखेंगे कि... कदम-कदम पर नमस्कार, प्रणाम किया गया है ।

» "संतिकर" स्तोत्र में शान्तिनाथ भगवान की स्तवना करते समय पूज्य श्री मानतुंगसूरि महाराज ने कदम-कदम पर नमस्कार किया है । "संति नमुक्कारो" तथा सौं ह्रीं नमो" के मंत्राक्षर पाठों में नमो जोड़कर मंत्र रचना की गई है । नमस्कार करके मुनिसुंदरसूरि ने रक्षा की याचना की है ।

» महाप्रभाविक तिजय पहुत्त स्तोत्र में— अष्ट महाप्रातिहार्यों से सुशोभित ऐसे तीर्थंकर भगवन्तों को नमस्कार किया है । 170 जिन भगवन्तों को नमस्कार करके यन्त्र स्थापना की है और सब प्रकार के भयों का अपहरण होता है ऐसा बताया है ।

» नमिउण स्तोत्र में मानतुंग सूरि ने ये भाव प्रदर्शित किये हैं कि... श्री पार्श्वनाथ भगवान को जो भक्तिभाव से वंदन नमस्कार करते हैं उनके सब प्रकार के भय और व्याधियां भी दूर होती है । यहां तक कि 108 भय तथा व्याधियां आदि एक मात्र पार्श्वनाथ भगवान को नमस्कार और स्मरण मात्र से दूर होते हैं ।

» सुप्रसिद्ध श्री भक्तामर स्तोत्र में भी पू. मानतुंग सूरि महाराज ने युगादिदेव श्री आदिश्वर भगवान को भाव पूर्वक प्रणाम किया है । 44 गाथा में से प्रत्येक श्लोक में कहीं प्रभु के चरणों में प्रणाम, कहीं स्मरण, कहीं कीर्तन, कहा वंदन, कहीं ध्यान, कहीं गुणगान आदि का अनोखा अलंकारिक वर्णन किया है । प्रथम श्लोक में ही "सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं" शब्दों का प्रयोग करके भगवान के दोनों चरणों में नमस्कार, प्रणाम करने को ही संसार समुद्र से पार उतरने, तैरने का साधन माना है ।

» इसी तरह कल्याण मंदिर स्त्रोत में पू. तार्किक शिरोमणि पार्श्वनाथ भगवान को अत्यन्त विनीत भाव से कदम-कदम पर नमस्कार, प्रणाम, स्मरण, कीर्तन, वंदन आदि किये गये हैं तथा भाव काफी ऊंचे चढाए हैं । 44 गाथा में अधिकांश रूप से नमस्कार, प्रणाम, स्मरणादि की ही प्रधानता है । शरण भी स्वीकारी है ।

» श्री बृहद् शान्ति स्तोत्र में भी कदम-कदम पर प्रणाम, नमस्कार करते हुए सर्वत्र शान्ति की प्रार्थना की गई है ।

» इस तरह अनेक सूत्र, स्तोत्र, स्मरण आदि हैं इनमें प्राय: सर्वत्र नमस्कार, प्रणाम तथा नाम स्मरणादि की तथा आगे बढ़कर जप, ध्यान आदि की एवं शरण स्वीकारने आदि का विधान है । नमस्कार, प्रणाम की महिमा अपरंपार है तथा लाभ भी साधक को इसी से है । परमात्मा तथा परमेष्ठी सामने है । साधक के हाथ में मात्र नमस्कार, नामस्मरण, प्रणाम, जप, ध्यानादि है । अत: हमें यदि विशेष लाभ चाहिए तो हमारी तरफ से किये जाते नमस्कार, प्रणाम, जप, ध्यान, नामस्मरण, समर्पण, शरण स्वीकार, गुणगान आदि की आराधना विधि में गुणवत्ता का प्रमाण निरन्तर बढ़ाना ही चाहिए । यह जितना बढ़ता ही जाएगा उतना साधक का लाभ का प्रमाण भी बढ़ता ही जाएगा । अत: जितना ज्यादा लाभ आपको चाहिए उतनी साधना उत्कृष्ट करते जाइए । लाभ निश्चित ही है । यह भी नि:संदेह है । अत: शंका रहित होकर श्रद्धा के ऊंचे भाव पूर्वक की जाती साधना, कर्मक्षय, पाप नाशादि का लाभ अनेक प्रकार से प्रदान करती है ।

पंच परमेष्ठी का वाचक बीज मंत्र—ॐकार

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

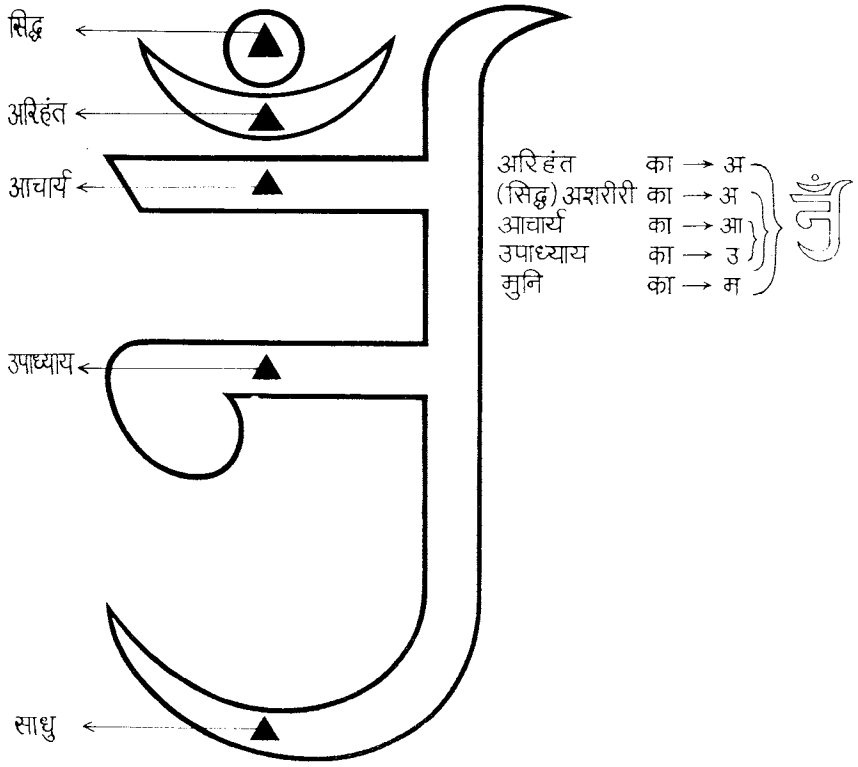

अरिहंता असरीरा आयरिया उवज्झाया मुणियो ।
पंचक्खर निप्पन्नो ॐकारो पंच परमेष्ठी ॥१ ॥

—"तत्त्वनिर्णय प्रासाद" ग्रन्थ के उपरोक्त श्लोक में ॐकार की उत्पत्ति रचना की प्रक्रिया बताते हुए फरमाते हैं कि— अरिहंतादि पंच परमेष्ठी परमात्मा जो है उनके वाचक प्रसिद्ध नाम के आद्य (प्रथम) अक्षरों की सन्धि होने से ॐकार शब्द की उत्पत्ति होती है । वह इस प्रकार है— 'अरिहन्त'— शब्द का प्रथम अक्षर है— "अ", सिद्ध के लिए यहां श्लोककार ने "अशरीरी"— अर्थात बिना शरीर के, इस शब्द का प्रयोग किया है । इसका प्रथम अक्षर है— "अ" । आचार्य शब्द का प्रथम अक्षर है— "आ", तथा उपाध्याय का आद्याक्षर है— "उ", और

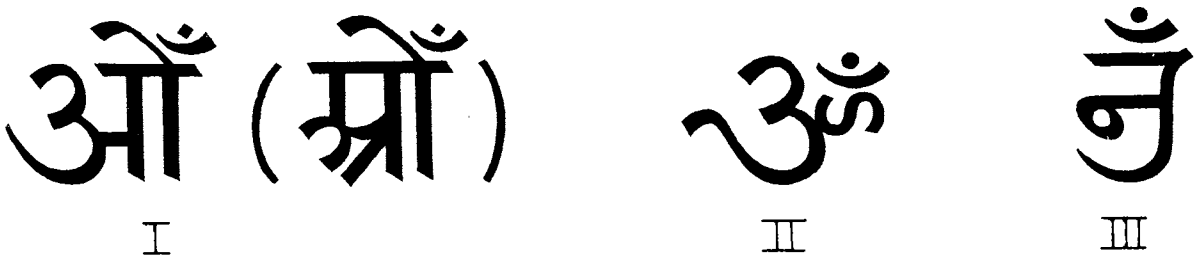

I II III

"मुनि" शब्द का प्रथम अक्षर है— "म्"। संस्कृत व्याकरण के सन्धिगत नियमानुसार— अ + अ = आ, आ + आ = आ, आ + उ = 'ओ', ओ के उपर म् का वाचक अनुस्वार चढा देने पर— "ओं" बनता है। जैसे "ओं" की तीन प्रकार की आकृतियां बनती है—

(I) – प्रचलित लिपि में "ओं" इस प्रकार लिखा जाता है। वर्तमान लिपि की प्राचीन कालीन लेखन शैली में इस प्रकार 'अ' अक्षर लिखा जाता था। अत: मात्रा और अनुस्वार जोड़ने पर 'ओंकार" बनता है।

(II) – हिन्दु धर्म- और शास्त्रों में प्रसिद्ध और प्रचलित परम्परा में "उ" की आकृति वाला ॐकार प्रसिद्ध है। एवं प्रचलित है। बात वही है।

(III) – जैन धर्म में प्राग् ऐतिहासिक काल से पंचपरमेष्ठी परमात्मा का वाचक संयुक्ताक्षर नुँ इस आकृति विशेष में लिखा जाता है। मन्त्र शास्त्र में इसे प्रणवाक्षर कहा है। यह पंचपरमेष्ठी का वाचक बीज मंत्र है। जैसे विशाल वटवृक्ष सारा एक छोटे से बीज में समा जाता है। संक्षिप्त रूप से बीज में पूर्णरूप से निहीत है। ठीक उसी तरह पंच परमेष्ठी भगवन्तों का विशाल अगाध स्वरूप संक्षिप्त रूप से नुँकार के एक अक्षर में सन्निष्ठ है। अत: यह एक अक्षर नुँ पांचों परमेष्ठियों का संयुक्तरूप से वाचक बनता है। इसकी रचना में संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया है। पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के अलग-अलग स्वतंत्र नामोच्यार करने में काफी समय लगेगा। चूंकि उनमें अक्षरों मात्राओं की संख्या काफी ज्यादा है। जबकि इनकी तुलना में ॐ के एक अक्षर के उच्चार में अल्प समय लगता है। एक ही मात्रा लगती है। तथा एक बार के उच्चार मात्र में पांचों परमेष्ठी भगवन्तों का स्मरण हो जाता है।

जाप के लिए मन्त्र आवश्यक है। जबकि जाप से ध्यान की कक्षा में प्रवेश करते हैं तब लम्बे मन्त्र के उच्चारण की आवश्यकता वहां नहीं रहती है। जाप में मन्त्र के शब्दों का उच्चार रहता है। जबकि ध्यान में मन्त्र के जो अधिष्ठाता देव-गुरू होते हैं उनका मानसिक स्पष्टीकरण-दर्शन प्रधान रहता है। उच्चारण प्रधान नहीं परन्तु स्मरण प्रधान बन जाता है। जाप अवस्था में मन की स्थूल गति होती है, ध्यान में जाने पर मन की सूक्ष्म गति बन जाती है। हो सकता है कि— मन को इतना सूक्ष्म होना पड़े कि— सूंई के छिद्र में से भी पसार होना पड़े। यद्यपि इतने बड़े हाथी के लिए एक छोटे से सूंई के छिद्र में से पसार होना असंभवसा लगता है परन्तु सूक्ष्मीकरण करके हाथी भी सूंई के छिद्र में से पसार हो सकता है। हमारा यह मन असंख्य विषयों-पदार्थों के विचारों को इकट्ठे करके बहुत ही बड़ा, हाथी से भी ज्यादा स्थूल बन चुका है। इतने बड़े स्थूलकाय मन के लिए ध्यान करने की प्रक्रिया में सूंई के छिद्र में से पसार होना असंभवसा लगता है। परन्तु यही मन यदि असंख्य विषयों और पदार्थों के विचारों को एक तरफ छोड़कर मात्र एक ही विषय के एक ही विचार को लेकर सूक्ष्मीकरण करके सूंई के छिद्र में से पसार हने का प्रयास करें तो बहुत ही आसान प्रक्रिया है। तात्पर्य यह है कि— अनेक विचारों को छोड़कर एक विषयक—एक विचार पर स्थिर होना यह ध्यान है। अत: महापुरुषों ने नुँ कार की रचना ध्यान साधना के लिये की है। जाप साधना के लिए महामन्त्र नवकार पूरा है। नौं पद का है, 68 अक्षरों के विस्तारवाला बड़ा है। इस बड़े लम्बे मन्त्र का जाप करने में समय भी लम्बा लगेगा। जबकि नुँ कार की रचना संक्षिप्त है। पांचों परमेष्ठियों का संक्षिप्त रूप से सारा ही स्वरूप एक बीजाक्षर नुँ में समा जाता है। अत: ध्याता साधक जब नुँ का स्मरण करेगा तब एक साथ पांचों परमेष्ठी भगवन्तों का संयुक्त रूप से स्मरण होगा। तथा मात्र स्मरण ही नहीं... ध्यान की तीव्रता और मन की अत्यन्त ज्यादा एकाग्रता के आधार पर पंचपरमेष्ठी भगवन्तों का साक्षात्कार, मानस दर्शन भी शीघ्र ही होगा।

योगियों की ध्यान साधना के लिए ॐकार—

ॐकार बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं-मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमोनमः ।।

—उपर बिन्दु—अनुस्वार से युक्त ऐसे ॐकार का योगी महापुरूष नित्य ध्यान करते हैं । यह ॐकार इच्छित एवं अन्त में मोक्ष पद का दाता है, ऐसे ॐकार को नमस्कार हो । योगी जो ध्यान साधना करने वाले साधक ध्याता है, वे प्राणायाम की प्रक्रिया के साथ ॐ का ध्यान करते हैं तब पांचों परमेष्ठियों का साक्षात्कार करते हैं, ॐकारमय ही बन जाते हैं । ऐसी तल्लीनता आती है जिसके कारण तन्मयता अद्‌भुत कक्षा की आती है । ऐसे प्राणों के आधार पर मन को साधकर स्थिर करनेवाला योगी नित्य ही ॐकार के ध्यान में तल्लीन रहने वाला ध्याता इच्छित-अभिप्सित मोक्ष पद को प्राप्त करता है । ॐकार मोक्ष-इच्छित देता है, देने वाला दाता है । यहां पर दा-धातु देने अर्थ में होते हुए भी साधक साधना करके स्वयं पाता है । मोक्ष साध्य है । साधना करनेवाला साधक है । साधक को कैसा होना— बनना चाहिए । इसके लिए स्पष्ट निर्देश श्लोककार ने दिया है— ध्याता योगी बनना चाहिए । वह भी कैसा बने ? इसके लिए कहा है नित्य—सतत ॐकार का ध्यान करता हुआ योगी जब तन्मयता-तल्लीनता आ जाती है फिर तो योगी ॐकारमय ही बन जाता है । यहां 'नित्य' शब्द का प्रयोग करने का तात्पर्य यह नहीं है कि—ॐ....ॐ का उच्चार करता हुआ जाप करता रहे । नहीं । यहां ध्यान की साधना है अतः जाप नहीं है । जाप में उच्चारण करने की प्रक्रिया का महत्व जरूर है । परन्तु ध्यान साधना में मानसिक स्मरण, अनुभूति करना हैं ।

ॐ के उच्चारण की प्रक्रिया—

जब अ + अ + आ + उ + म् इन पंचपरमेष्ठी के वाचक पांच अक्षरों के सम्मिश्रण पूर्वक बना है । अतः योग साधना की प्रक्रिया में इसके उच्चारण करने की भी अद्‌भुत- अनोखी पद्धति है । जिससे उच्चारण के समय में एक तो विशिष्ट कक्षा का उच्चार होता है । गूंजन होती है । रणकार होता है । ध्वनि श्रवण का भी आह्लाद् होता है । तथा दूसरी तरफ ध्यान की एकाग्रता के कारण एक-एक परमेष्ठी का स्मरण भी होता है । हमारे शब्दों में स्मरण और योगियों की भाषा में अनुभूति होती है । उच्चारण की प्रक्रिया में कंठ-तालु-जीभ-होठ आदि का जो हलन-चलन होता है इसे आस्य प्रयत्न कहते हैं । आस्य शब्द मुख के अर्थ में प्रयुक्त है । आस्य प्रयत्न 8 प्रकार का होता है । तद्‌नुसार पांचो अक्षरों की उत्पत्ति होती है उसे ही उच्चार कहते हैं । इन 5 अक्षरों में 4 स्वर है और 1 व्यंजन है । 'अ' के उच्चारण का आस्य प्रयत्न स्थान कण्ठ है । कण्ठ में से 'अ' के उच्चार की ध्वनि निकलती है । इसके पश्चात् जैसे-जैसे स्वरों के उच्चारण में आ-इ-उ.... आदि क्रमशः आगे बढ़ते हैं वैसे ही आस्य-प्रयत्न का स्थान भी कण्ठ से ऊपर-ऊपर उठता हुआ आगे आता है । 'अ' कण्ठ में से उठता है फिर 'आ' का उच्चार होते होते फैलता है । 'उ' का उच्चार होते-होते कण्ठ से ऊपर उठता है । अ के उच्चारण में होठ और जीभ को हिलने की भी आवश्यकता नहीं रहती है । सीधी कण्ठ में से ध्वनि उठती है । फिर 'आ' की ध्वनि बनते-बनते दोनों होठों को उपर-नीचे की तरफ फैलना पड़ता है । अधर कमल खिलने-विकसित होने की प्रक्रिया में 'आ' की ध्वनि निकलती है । अब आगे 'उ' आने पर दोनों होठों के किनारों का समीप की तरफ संकुचन होता है, और 'उ' का उच्चार होता है । तब 'उ' की ध्वनि निकलती है । अब 'आ' और 'उ' मिलकर जब 'ओ' का उच्चार होता है । तब कण्ठ के अन्दर से आने वाली ध्वनि जीभ के कुछ ऊपर उठने और होठों के किनारों के संकुचन होकर ऊपर-नीचे की तरफ फैलने-खुलने पर 'ओ' की ध्वनि निकलती है । अन्त में 'मुनि' जो साधु का वाचक शब्द है उसमें से आद्याक्षर 'म्' लिया । यद्यपि 'उ' स्वर सहित 'म्' व्यंजन है अतः 'मु' है । इसमें से स्वर के निकल जाने पर मात्र व्यंजन के रूप में सिर्फ आधा 'म्' रह जाता है । यह 'प' वर्ग का पंचम वर्ण है । अनुनासिक है । पवर्ग ओष्ठ्य है । अतः दो होठों के आपस में टकराने से इसकी ध्वनि उत्पन्न होती है । इसमें भी उपर का होठ स्थिर रहता है और नीचे का होठ आकर उपरवाले के साथ टकराता है । इस बीच में से वायु का निस्सरण होता है तब जाकर 'प, फ, ब, भ, म्' इन पांचों की ध्वनि की उत्पत्ति होती है । अन्तिम अनुनासिक जो म् है, इसमें दोनों होठ मिलकर बन्द हो जाने पर 'म्' की ध्वनि नाक से निकलती है । यदि हम नाक बन्द कर दें या मान लो सर्दी-जुकाम के कारण यदि कफादि का नाक में जमाव हो चुका हो तो— मकार का ध्वनि का निकलना मुश्किल हो जाता है । ऐसे व्यक्ति की ध्वनि सुनने पर हमें भी अजीबसा लगता है । इस प्रकार इन पांचों वर्णो की उत्पत्ति आस्य प्रयत्न के विशिष्ट पुरुषार्थ पूर्वक- या प्रयत्न विशेष से होती है । इसका भी बहुत बड़ा विज्ञान है । ध्वन्यालोकादि ग्रन्थों में भी प्राप्य है । तथा कलिकाल सर्वज्ञ पू. हेमचन्द्राचार्यजी म. ने भी स्वरचित "सिद्ध-हैम व्याकरण शास्त्र में काफी अच्छी तरह लिखा है । यहां तो संक्षिप्त रूप से 5 अक्षरों के बारे में ही विचारणा की है । लेकिन 52 अक्षरों के समस्त अक्षरों की उत्पत्ति का सबका अपना-अपना विशिष्ट उत्पत्ति स्थान है । आस्य प्रयत्न के ध्वनि उत्पत्ति विज्ञान से सविशेष जानना चाहिए ।

तीन प्रकार के जाप—

आस्य प्रयत्न द्वारा शब्दों की उत्पत्ति तो हो जाएगी, परन्तु वायु का गमनागमन, प्रवाह तथा फोर्स आदि भी इसमें काफी महत्व रखता है। यदि वायु का गमनागमन नहीं होगा तो ऐसी अक्षरों की उत्पत्ति ध्वनि रहित होगी जिसका श्रवण बोलने वाले को अपने अन्दर ही होगा। जैसा कि जाप करते समय साधक को उपांशु जाप के समय होता है। भाष्य जाप की प्रक्रिया में ध्वनि बाहर निकलती है जो पड़ोसी के लिए भी श्राव्य बनती है। परन्तु उपांशु जाप में ध्वनि रहित जाप होता है। अत: ध्वनि के बाहर निकलने का कोई प्रयोजन ही नहीं रहता है। और जाप करने वाला साधक स्वयं श्रवण कर सकता है। अन्दर ही अन्दर यह ध्वनि श्राव्य बनती है। अन्त में साधक जब तीसरी कक्षा में चला जाता है तब— मानस जाप बन जाता है। इस मानस जाप की प्रक्रिया में होठ-जीभादि कोई भी अंग हिलता ही नहीं है। अत: आस्य प्रयत्न का कोई प्रश्न ही नहीं खड़ा होता है। साधक ने भटकते मन को स्थिर करने के लिए भाष्य से उपांशु और अन्त में मानस जाप की कक्षा में जानबूझकर प्रवेश कर लिया है। भाष्य में मन का बाहर भटकना बहुत ही आसान था, और उपांशु जाप में भी मन हमको हाथ-ताली देकर भाग जाता है। हम भ्रमणा में ही रह जाते हैं कि शायद जाप ही चल रहा है, लेकिन मन दुनियाभर में भटकता ही रहता है। इसी कारण मानस जाप में प्रवेश करना मन को स्थिर रखने के लिए श्रेष्ठ उपाय है। मानस जाप में होठ जीभादि का हलन-चलनादि पूर्वक का आस्य प्रयत्न सर्वथा बन्द है। अत: साधक को मन को ही पकड़ना पड़ता है। और माला के मणके के स्थान पर मनरूपी मणके को ही पकड़कर मंत्र पर स्थिर कर लेना चाहिए। अब मन को ही जाप करनेके लिए बोलिए। जब मन स्वयं जाप करने लग जाएगा तब वह कहां भागेगा ? बराबर स्थिर रहकर उसे करना ही पड़ेगा। इस तरह मानस जाप द्वारा स्थिरता पूर्वक जाप काफी अच्छी तरह किया जा सकता है। लेकिन सामान्य जीवों के लिए यह प्रक्रिया बड़ी कठिन पड़ती है। भाष्य जाप की सबसे आसान लगती है। फिर उपांशु जाप की भी सरल लगती है। लेकिन पहले की अपेक्षा थोड़ी कठिन जरूर लगती है। और तीसरी मानस जाप की तो सबसे ज्यादा कठिन लगती है। कठिन जरूर है लेकिन अन्य विचारों से बचकर स्थिर रूप से जाप करने का आनन्द मानस जाप में जरूर आता है। अन्त में मानस जाप करते-करते ध्यान की भूमिका में पहुंचना सबसे ज्यादा सरल-आसान रहता है।

प्राणायाम पूर्वक ॐकार का उच्चार—

ध्वनि में उत्पत्ति में प्राणवायु का पूर्णरूप से आधार रहता है। बिना प्राणवायु के ध्वनि की उत्पत्ति संभव ही नहीं है। दूसरी तरफ प्राणवायु का तथा प्रकार की मात्रा में ग्रहण करना और फिर आस्य प्रयत्न करके ध्वनि का उच्चारण करना यह स्वाभाविक प्रक्रिया होने के कारण किसी को ख्याल ही नहीं आता है। कौन इसके लिए प्रयत्न विशेष करने की प्रक्रिया की आवश्यकता भी समझेगा ? यदि जोर से चिल्लाते हुए बोलने की आवश्यकता जीव समझे तो पहले से ही वह दीर्घ श्वास लेकर उच्च स्वर से ही बोलेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि यह स्वाभाविक प्रक्रिया है जिसे सभी जानते ही है। तो फिर इसमें साधना की आवश्यकता ही कहां है ?

लेकिन योग विषयक सभी शास्त्रों ग्रन्थों ने प्राणायाम की साधना पर भार दिया है। प्राणायाम की साधना में सिद्धि प्राप्त करने वाला साधन मन को जीतने में अर्थात् वश करने में सफलता हांसिल कर सकता है। प्राणायाम शब्द में स्पष्ट है कि— प्राण + आयाम = प्राणायाम। प्राण शब्द यहां प्राणवायु के अर्थ में है। आयाम = विस्तार लम्बा-दीर्घ फैलना, यह विस्तार करने की प्रक्रिया है इसे आयाम कहते हैं। अत: यहां प्राणों-प्राणवायु का विस्तार करना-प्राणायाम कहलाता है। जो श्वास हम लेते हैं, और छोड़ते है इसमें विस्तार करना है। प्राणवायु अन्दर लेते समय भी पूरी लेनी और लम्बे समय तक लेनी है। फिर ली हुई श्वास छोड़ते समय भी लम्बे समय तक दीर्घ काल तक श्वास थोड़ी-थोड़ी छोड़ते जाना। इस तरह प्राणायाम होगा।

प्राणायाम में— 1) पूरक, 2) रेचक और 3) कुंभक की ये 3 प्रक्रिया है। इनमें सर्वप्रथम जिस नासिका से श्वास अन्दर आती हो उससे क्रमश: धीरे-धीरे एक ही समान मात्रा में सप्रमाण प्राणवायु समानरूप से निर्धारित सैकण्डों तक लेते ही रहें। उस समय में उदर फूलाने की अपेक्षा फेफड़ों में श्वास भरती जाय और छाती फूलती जाय इसके पश्चात् उदर में भरती जाय। इसमें उदर पूर्ति होती जाती है। भरता जाता है। अत: पूरक नाम दिया गया है। लेने की क्रिया समाप्त हो जाने पर कुछ देर तक श्वास को न छोड़ते हुए अन्दर ही रोककर रखें। जितनी क्षमता हो उतनी देर तक रोक रखें। इस स्थिति में पेट ऐसा फूलकर रहता है जो कुम्भ घड़े की तरह दिखाई देता है। इसे कुम्भक कहते हैं। शरीर प्रत्येक अंग को प्राणवायु की आवश्यकता रहती है। जिससे कोष जीवित रहते हैं। यदि संभव हो तो कुम्भक की स्थिति में काल अवधि बढ़ानी चाहिए। यदि पूरक की अपेक्षा दुगुनी हो जाय तो और भी अच्छा। ऐसा न हो कि श्वास रोकने में घूंटन हो। अब तीसरी प्रक्रिया में श्वास छोड़ना है। लेकिन एकदम से मुंह खोलकर श्वास छोडनी नहीं चाहिए। जितना समय लेने में लगा था उतना ही समय छोड़ने में लगाने की कोशिस करनी चाहिए। लेकिन छोड़ते समय दूसरी नासिका से जहां से आसानी से श्वास स्वाभाविक रुप से निकलती है, वहां से छोड़नी

चाहिए। इस तरह 1 पूरक, 2 कुम्भक, और 3 रेचक की एक परिक्रमा पूरी करने को 1 श्वासोश्छवास या 1 प्राणायाम कहा जाता है। इस तरह साधक प्राणायाम का अभ्यास चालू रखते हुए 10, 20, 30, 40, 50 भी करता जाय तो मन को साधने में-स्थिर करने में काफी अच्छी प्रगति होती है।

प्राणायाम में ॐ की ध्वनि—

मन को मात्र निर्विचार ही नहीं करना है, अपितु उसे शुद्धतम विचारों में स्थिर करना है। क्यों कि विचारशून्य स्थिति में लाना जरूर संभव है परन्तु दीर्घकाल तक उसी विचारशून्य स्थिति में टिक नहीं सकता है। दूसरी तरफ शुभ अध्यवासयों में लगाने पर अशुभ से बचकर शुभ में स्थिरता बढ़ती जाने पर कर्मक्षय की मात्रा बढ़ती जाती है। प्राणायाम की प्रक्रिया में प्रथम दीर्घकालिक पूरक कर लेना चाहिए, फिर कुम्भक करना चाहिए। अन्त में रेचक करते समय ॐ की ध्वनि लम्बे समय तक निकलती रहे, ॐ बोलते समय प्रथम कण्ठ में से 'अ' की ध्वनि कुछ देर तक निकलती रहे और इस 'अ' की ध्वनि पर ध्यान केन्द्रित करते हुए अकार से अरिहन्त परमात्मा की आकृति सामने उपस्थित करते जाइये। फिर एक बार क्षण भर 'अ' की ध्वनि को बीच में तोड़कर फिर से 'अ' की ध्वनि को शुरू करिए इस बार 'अरिहंत' से सीधे-ऊपरी सीधी दिशा में सिद्धशिला पर सिद्ध भगवन्तों को ध्यान का विषय बनाइये। अपनी चेतना को वहां स्थिर करिये। सिद्ध स्वरूप की अनुभूति होगी। यह साक्षात्कार दोनों 'अ' की ध्वनि के उच्चारण के समय साथ-साथ करते जाएं। इस समय लोक क्षेत्र की आकृति भी उपस्थित होती जाए।—लोक के मनुष्य लोक में अष्टप्रातिहार्यादि युक्त अरिहंत दिखाई दें। फिर उपर निरंजन-निराकार आकार स्वरूप मात्र सिद्धों का स्वरूप दिखाई दें। साक्षात्कार हों। गले में ध्वनि का क्रम उपर ऊठता हुआ आस्य प्रयत्न आगे आएगा और नीचे का जबड़ा थोड़ा सा नीचे जाकर फैलेगा ध्वनि कण्ठ में थोड़े उपर से 'आ' की ध्वनि को लेकर श्वास निकलेगी। आ के उच्चारण के समय आचार्य भगवंतों को स्मरण होना चाहिए। फिर दोनों होठों को किनारों से संकुचित करते हुए 'उ' की ध्वनि निकालिये, तब उपाध्याय का स्मरण हो। यहां 'आ' और 'उ' की संधि ध्वनि उच्चार में ही होने पर 'ओ' बन जाता है। 'ओं' की ध्वनि का लम्बे काल तक उच्चारण करते जाना चाहिए और इसमें आचार्य—उपाध्याय दोनों का संयुक्तरुप से स्मरण करते जाएं। इतने में खुले हुए होठों को धीरे-धीरे बन्द करते जाएं और अनुनासिक 'म्' का उच्चार नासिका से करते जाएं। पहले म् को 'ओ' पर लगाकर 'ओं' का उच्चारण करते रहना चाहिए। फिर संपूर्ण होठ बन्द कर नासिका से म् के अनुस्वार की ध्वनि निकालते रहना चाहिए दीर्घकाल तक। इस 'म्' की ध्वनि के उच्चारण के समय 'मुनि' संसार के त्यागी-तपस्वी साधु-संतों का साक्षात्कार करते रहें।

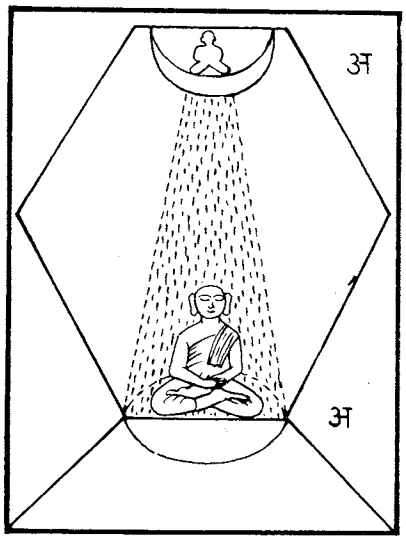

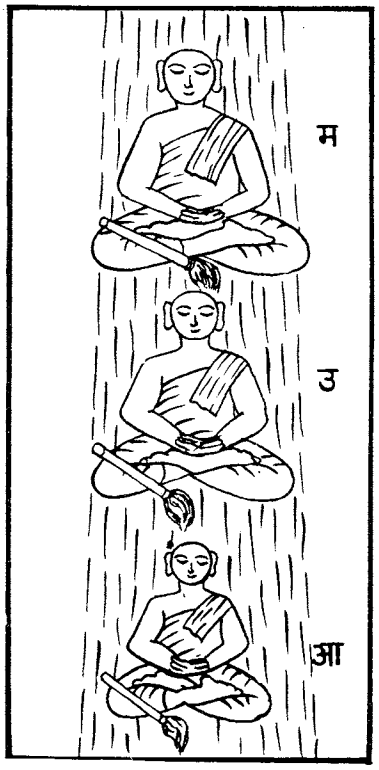

इस तरह 'प्राणायाम' की प्रक्रिया में श्वास उच्छवास के साथ ॐकार का ध्वनि के रूप में आस्यप्रयत्न पूर्वक विशेषरूप से उच्चारण करते हुए पंचपरमेष्ठी का साक्षात्कार करते जाना चाहिए। इस साधना में मन कहीं भी नहीं भटकेगा, स्थिर रहेगा। दूसरे विचारं भी नहीं उठेंगे। और पंचपरमेष्ठीयों की अनुभूति साक्षात् दर्शन का आनन्द आएगा। गुरूगम से सीखकर अभ्यास निरन्तर करते रहने से सब कुछ साध्य हैं।

॥ॐकाराय नमो नमः ॥

"मोक्ष की प्राप्ति के शाश्वत पदों का मार्ग"

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

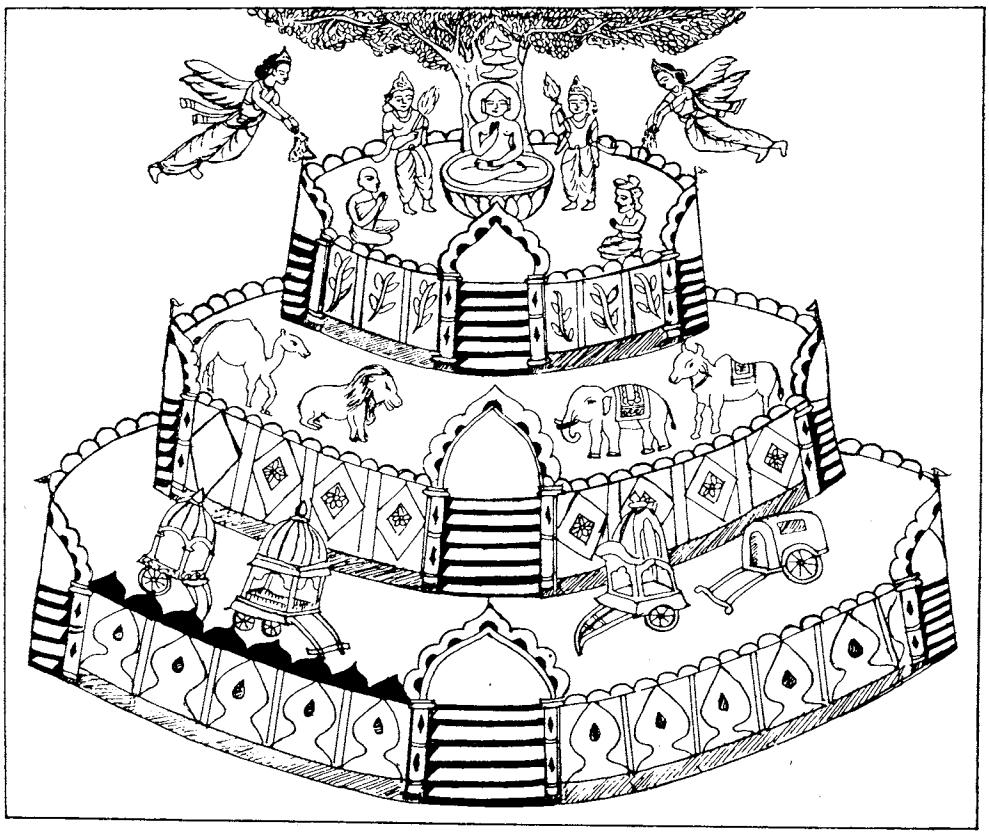

नौं पदों में पांच परमेष्ठीयों के 5 पद हैं और 4 पद दर्शन-ज्ञान चारित्र-तप के हैं । इस तरह 5 + 4 = 9 नौं पदों की व्यवस्था है । इन नौं पदों की चक्राकार स्थिति में जो व्यवस्था है वह इस प्रकार है । सिद्ध पद सबसे ऊपर है । केन्द्र की कर्णिका के स्थान में प्रथम अरिहंत पद है । अरिहंत के ठीक ऊपर और सीधी दिशा में ऊपर सिद्ध पद है । या सिद्ध पद के ठीक नीचे अरिहंत पद है । अरिहंत जो हमारे सन्मुख मुख कर बिराजमान है उनके बांई ओर (बांए हाथ की तरफ) आचार्य पद की स्थापना है । और अरिहंत के दांई ओर साधु पद की व्यवस्था है । इस तरह एक फुल जिसकी पंखुड़ियां प्रसरी हुई हो उस स्वरूप में पंच परमेष्ठीयों की व्यवस्था है । शेष 4 विदिशा में क्रमशः सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चार पदों की स्थापना है । इस तरह गुण-गुणी के स्वरूप को "नवपद" संज्ञा दी गई है । इन नौं पदों में मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग दर्शाया गया है । भूतकाल के अनन्त काल में अनन्त आत्माएं मोक्ष में गई है । उनमें से कौन कब, किस पद से मोक्ष में गये है उनका विचार करना है । नवकार महामंत्र के छट्ठे पद में "एसो पंच" जो शब्द दिये गए हैं उनमें साफ स्पष्ट कर दिया गया है कि- "ये ही पांच" या "इन्हीं पांच" को "नमुक्कारों" शब्द से नमस्कार किया गया है ।

आज दिन तक जो जो मोक्ष में गए है वे किन-किन पदों से गए हैं ? उसके लिए छट्ठे पद के "एसो पंच" के इन 2 शब्दों से समझना चाहिए। निश्चित रूप से इन्हीं पांच पदों की व्यवस्था है। इन पांच पदों में सिद्ध पद साध्य पद है। क्योंकि जो मोक्ष पा चुके हैं सिद्ध बन चुके है उनको ही सिद्ध कहते हैं। और जो सिद्ध बननेवाले हैं- मोक्ष में जाने वाले हैं वे किस पद से मोक्ष में गए ? या जाते है यह समझाने के लिए सिद्ध व्यतिरिक्त शेष 4 पद है। (1) अरिहंत, (2) आचार्य, (3) उपाध्याय और (4) साधु। ये 4 जने मोक्ष में जाने वाले है। इन चारों में अरिहंत ऐसे परमेष्ठी है कि जो उसी जन्म में निश्चित रूप से मोक्ष में जानेवाले ही है। अवश्य ही सिद्ध बनेंगे। लेकिन शेष 3 गुरु पद के अधिकारी आचार्य-उपाध्याय और साधु चाहे उसी जन्म में या फिर आगामी 2-4-10-20 कुछ जन्मों में मोक्ष में जा सकेंगे। अतः इस शाश्वत पदों के आधार पर सिद्ध बनने की शाश्वत व्यवस्था निम्न प्रकार है-

(1) अरिहंत पद से-अरिहंत बनकर मोक्ष में जा सकते हैं।

(2) आचार्य बनकर - आचार्य पद पर आरुढ होकर मोक्ष में जा सकते हैं।

(3) उपाध्याय बनकर - उपाध्याय पद पर आरुढ होकर मोक्ष में जा सकते हैं।

(4) साधु बनकर - साधु पद पर आरुढ होकर मोक्ष में जा सकते हैं।

(5) साधु बनकर - पुनः सीधे उपाध्याय बनकर आचार्य न होते हुए भी मोक्ष में जा सकते हैं।

(6) साधु बनकर - सीधे आचार्य होकर भी मोक्ष में जा सकते हैं।

(7) साधु होने के पश्चात् सीधे अरिहंत बनकर मोक्ष में सिद्ध बन सकते हैं।

(8) इसी तरह साध्वी बनकर भी सीधे मोक्ष में जा सकते हैं।

याद रखिए कि - पुरुष प्रधानता की दृष्टि से यहाँ पर साधु शब्द का प्रयोग है। स्त्रीलिंगी-स्त्री देहधारी होने के कारण वह साध्वी कहलाती है। परन्तु धर्म और पद की दृष्टि से तो साधु धर्म और साधु पद ही है। वैसे ही अरिहंत पद पर मल्लीनाथ भगवान स्त्री शरीरधारी थे और अरिहंत बनकर ही मोक्ष में गए हैं। अतः वे भी अरिहंत बनकर सिद्ध बने है यही सत्य स्वरूप हैं। मुक्ति आत्मा की होती है न कि शरीर की। शरीर तो माध्यम मात्र है। लेकिन मोक्ष में जानेवाली आत्मा अन्त में जिस प्रकार के स्त्री या पुरुष देह में रहेगी उसी की पहचान से वह पहचानी जाएगी। संसार के व्यवहार में भले ही वह किसी भी नाम या शरीरधारी होगी तो भी मुक्ति की प्राप्ति में कुछ भी बाधक नहीं बनता है। चाहे वह स्त्री शरीरधारी हो, या पुरुष शरीरधारी हो, या ले ही नपुंसक शरीरधारी हो तो भी मोक्ष में जा सकता है। इसी तरह मोक्ष पाने वाला मुमुक्षु जीव भले ही जैन धर्मी हो, या अन्य धर्मी हो, सन्यासी तापस हो या श्रमण साधु हो, इसी तरह तीर्थंकर अरिहंत बना हुआ हो या न भी बना हुआ हो तो भी मोक्ष में जा सकते हैं।

15 *प्रकार से सिद्ध बन सकते हैं—*

तित्थयर 1, अतित्थयरा 2, तित्थ 3, सलिंग 4, अन्नलिंग 5, थी 6, पुरिसा 7 ।
गिहिलिंग ८, नपुंसक ९, अतित्थसिद्ध १०, पत्तेयबुद्धा ११, य ॥ ४७३ ॥

एग 12, अणेग 13, सयंबुद्ध 14, बुद्धबोहिय 15, पभेयओ भणिया ।
सिद्धं सिद्धाणं भेया पन्नरससंखत्ति ॥ ४७४ ॥

(1) तीर्थंकर सिद्ध- तीर्थंकर अरिहंत बनकर जो मोक्ष में जाते हैं- वे तीर्थंकर सिद्ध हैं।

(2) अतीर्थंकर सिद्ध-बिना तीर्थंकर बने जो मोक्ष में जाते हैं-वे अतीर्थंकर सिद्ध हैं।

(3) तीर्थ सिद्ध- जिन शासन में जो सिद्ध बने वे तीर्थ सिद्ध कहलाते हैं।

(4) स्वलिंग सिद्ध- ओघा (रजोहरण)- मुहपत्ति आदि जैन धर्मी साधु सिद्ध बने वे।

(5) अन्यलिंग सिद्ध- अन्य धर्मी सन्यासी-तापसादि जो सिद्ध बनते हैं वे।

(6) स्त्रीलिंग सिद्ध- स्त्री शरीर धारी कोई स्त्री मोक्ष में जाए वह।

(7) पुरुष लिंग सिद्ध- पुरुष शरीरधारी- जो पुरुष मोक्ष में जाते हैं वे।

(8) गृहलिंग सिद्ध- गृहस्थवेश में रहकर ही जो मुक्ति पाते हो वे।

(9) नपुंसक लिंग सिद्ध- जो अपने शरीर की दृष्टि से नपुंसक स्वरूप है फिर भी मुक्त होता है ।

(10) अतीर्थ सिद्ध- शासन की स्थापना के पहले या शासन के बाहरी काल में मोक्ष में जाते हैं ।

(11) प्रत्येक बुद्ध सिद्ध-संध्या के रंग, वृद्धत्व आदि निमित्त पाकर जो मोक्ष में जाते हैं वे ।

(12) एक सिद्ध- 1 समय में अकेले 1 ही सिद्ध हो वे एक सिद्ध ।

(13) अनेक सिद्ध- 1 समय में एक साथ 1 से ज्यादा अनेक सिद्ध होते हैं वे ।

(14) स्वयंबुद्ध सिद्ध- जो अपने आप स्वयं ही बोध पाकर सिद्ध बन जाय वे ।

(15) बुद्ध बोधित- जो आचार्यादि अन्यों से बोध पाकर मोक्ष में जाय वे ।

इस तरह मोक्ष में जाकर सिद्ध बनने वाले जीव उपरोक्त 15 प्रकार के हैं । किसी भी प्रकार से मुक्त बन सकते हैं ।

15 *प्रकार से सिद्धों के दृष्टान्त-*

जिण सिद्धा- अरिहंता, अजिण सिद्धा य पुंडरिअ - पमुहा ।
गणहारि तित्थ सिद्धा, अतित्थ - सिद्धा य मरुदेवा ॥56 ॥
गिहिलिंग सिद्ध भरहो, वक्कलचिरि य अन्नलिंगम्मि ।
साहु सलिंगसिद्धा, थी सिद्धा चंदणा पमुहा ॥57 ॥
पुंसिद्धा गोयमाइ, गांगेयाइ नपुंसया सिद्धा ।
पत्तेय सयंबुद्धा, भणिया करकंडु-कविलाई ॥58 ॥
तह बुद्धबोहि गुरु बोहिया य, इग समये इग सिद्धा य ।
इग समये वि अणेगा, सिद्धा तेऽणेग सिद्धा य ॥59 ॥

(1) जिन- अरिहंत तीर्थंकर भगवान बनकर जो मोक्ष में जाते हैं वे जिन सिद्ध कहलाते हैं ।

(2) अजिणसिद्धा के भेद में- जिनेश्वरों के गणधर, सामान्य केवली, आदि जो भी मोक्ष में जाते हो-अर्थात् बिना अरिहंत भगवान बने, अन्य आचार्य-उपाध्याय या साधु बनकर जो मोक्ष में जाए उन्हें अजिन मुक्त कहते हैं । यदि सच देखा जाय तो इन 2 भेदों में शेष सभी भेदों का समावेश हो सकता है । तीर्थंकर अरिहंत भगवान बनकर जो मोक्ष में जाते हैं वे जिन सिद्ध, और जो जिन अरिहंत भगवान बने बिना अन्य किसी भी स्वरूप से मोक्ष में जाते हो उनको अजिन सिद्ध कहेंगे । फिर भी स्पष्टीकरण हेतु अन्य उदाहरण दिये हैं । अजिन सिद्ध पुंडरिक स्वामी या गौतमस्वामी आदि अनेकों के उदाहरण आते हैं जो बिना जिन भगवान बने मोक्ष में गए हैं ।

(3) गणधर भगवान पुंडरिक स्वामी- गौतम स्वामी आदि भगवान के शासन काल में ही मोक्ष में गए हैं तथा वे तीर्थ सिद्ध कहलाते हैं ।

(4) मरुदेवी माता शासन स्थापना के पहले ही मोक्ष में चली गई इसलिए अतीर्थ सिद्ध के भेद में नाम आया है ।

(5) गृहस्थलिंग के रूप में अर्थात् शीशमहल में गृहस्थवेश में ही केवलज्ञान पाकर अन्त में देवदत्त वेश ग्रहण करके मुक्ति पद को पाए इसलिए उनका नाम गृहस्थलिंग सिद्ध के भेद में समाया है ।

(6) जैन शास्त्रों में सुप्रसिद्ध प्रसन्नचंद्र राजर्षि के माता-पिता ने तापसी दीक्षा ली और उसके पश्चात् भी एक सन्तान की उत्पत्ति हो गई । अतः प्रसन्नचंद्र राजर्षि के छोटे भाई वल्कल चीरी था । वल्कल = वृक्ष की छाल का चीर = वस्त्र पहनने के कारण वल्कल चीरी नाम पड़ा । उन्हें जातिस्मरण ज्ञान होने से ख्याल आ गया अतः वे देखने लगे कि अरे ! मैं पिछले जन्म में जैन साधु बना था, चारित्र का सुंदर पालन किया था । यह सब कुछ अपने जातिस्मरण ज्ञान में देखते-देखते खूब आनन्द होता गया और वे चिन्तन की धारा में चढ गए । बस, इस चिन्तन में उत्कृष्ट अनुप्रेक्षा की धारा में ध्यान में स्थिर हो गए । गतजन्म के चारित्र पालन से काफी कर्मों की निर्जरा करके बिल्कुल लघुकर्मी बन चुके थे । अतः जैसे ही चारों घनघाती कर्मों का क्षय हुआ कि तुरन्त केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई । अतः वे अन्य धर्म के तापस कहलाए । इसलिए मोक्ष की प्राप्ति के लिए परिव्राजक-सन्यासी-तापस- भगवावेषधारी हो या वृक्षों की छाल के वस्त्रों को धारण करने वाले, भभूति लगाए हुए बावा हो या जो भी कोई किसी भी प्रकार के जोगी-बावा-फकीर आदि भी ध्यान की विशुद्धधारा में गुणस्थानों की श्रेणी पर आरुढ होकर घनघाती कर्मों का क्षय करके केवलज्ञानादि प्राप्त करके मोक्ष में जा सकते हैं । जैन धर्म ने इस विषय में ना नहीं कहा है । यह जैन धर्म की उदारता का गुण है ।

बाह्य परिवेष चाहे जो भी कोई हो लेकिन आन्तरिक साधना आत्मसाधना के गुणोपासना धर्म की ही आ जाती है । अतः कोई भी कैसा भी वेषधारी मोक्ष में जा सकता है ।

(7) स्वलिंगसिद्ध- जिनेश्वर सर्वज्ञ परमात्मा ने उपदेश द्वारा जैसा साधु धर्म बताया है, वैसा श्रमण जीवन बाह्य परिवेष रजोहरण-मुहपत्ति आदि, एवं आभ्यन्तर रूप से रत्नत्रयी की साधना के मार्ग को धारण करने वाले साधु-मुनिराज जो मोक्ष में जाते हैं । उन्हें स्वलिंगसिद्ध कहते हैं । जैसे जंबुस्वामी, आदि ।

(8) स्त्री सिद्ध- स्त्री शरीरधारी हो और कोई स्त्रीशरीरी ही मोक्ष में जाए उस भेद की गणना यहाँ स्त्रीसिद्ध के रूप में की गई है । भगवान महावीर के पास दीक्षा लेने वाली दधिवाहन राजा की पुत्री चन्दनबाला (वसुमति) ने कर्मक्षय किया और मोक्ष में गई । मृगावतीजी साध्वीजी भी मोक्ष में गई । इतना ही नहीं आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि... चौबीसों तीर्थंकर भगवंतों के चतुर्विध संघ में हुई लाखों साध्वीयों में से अनेकों ने गुणस्थान की क्षपक श्रेणी पर आरुढ होकर चारों घनघाती कर्मों का क्षय करके केवलज्ञानादि की चतुष्ट्यी प्राप्त की, अन्त में सर्वकर्मों से मुक्त होकर मोक्ष में गई है । विशेषावश्यक भाष्य में गणना करके दर्शाया गया है कि... चौबीसों तीर्थंकर भगवन्तों के जितने साधु मोक्ष में गए हैं उनसे प्रायः दुगुनी संख्या में साध्वीजीयां मोक्ष में गई है । आदिनाथ भगवान की भी और महावीर स्वामी भगवान की भी । कल्पसूत्र आदि में यह पाठ मिलता है । इसलिए निन्हवरूप सर्वज्ञ के सत्य सिद्धान्त का लोप करनेवाले दिगम्बर मतवादी कहते हैं कि... स्त्री मोक्ष में जा ही नहीं सकती है । इसलिए साध्वी-श्रमणी संस्था की व्यवस्था ही संघ में से हटा दी है । सिर्फ दिगंबर अवस्था की नग्नता को महत्व देकर पुरुष जो नग्न रह सकते हैं वे ही मोक्ष में जाने के अधिकारी होते हैं । और स्त्रीयां नग्न न रह सकने के कारण दीक्षा ही नहीं ले सकती, साध्वी बन ही नहीं सकती । अतः वे मोक्ष में जा ही नहीं सकती । पुनः पुरुष का जन्म धारण करके दूसरे भव में दीक्षा लेकर नग्न होकर मोक्ष में जाएंगे । इस तरह की अपनी स्वमान्य मान्यता को आगे करके सर्वज्ञ के चरम सत्य सिद्धान्त को सर्वथा सदा के लिए तिलांजली देकर सर्वथा अव्यवस्था खड़ी कर दी है । लेकिन इतना सा सिर्फ सोचने की तकलीफ नहीं ली कि... स्त्री शरीर से या कपड़े या किसी से भी केवलज्ञान या मोक्ष की प्राप्ति का कोई संबंध नहीं है ।

आखिर केवलज्ञान किसको प्राप्त होता है ? आत्मा को या शरीर को ? शरीर ज्ञानादि गुण रहित जड़ साधन मात्र है । मृत्यु के पश्चात् इसे जलाकर भस्म कर दिया जाता है । एकमात्र चेतन आत्मा होती है । आत्मा गुणस्थानों के सोपानों पर चढती हुई अग्रसर होती है । जैसे-जैसे आत्मा गुणस्थानों के जिन जिन सोपानों पर चढती हुई आगे ही आगे बढती जाती है वैसे वैसे संचित कर्मों की निर्जरा होती जाती है और आत्मा के गुण प्रगट होते जाते हैं । 9वें अनिवृत्ति बादर गुणस्थान पर पहुंचते ही वेद मोहनीय कर्म की प्रकृति नष्ट करके उसमें छुटकारा पा लेती है । परिणाम स्वरूप अब स्त्री कौन और पुरुष कौन ? या नपुंसक आदि का कोई लक्ष्य नहीं रहता है । स्त्री-पुरुष का कोई भेद न रहने पर आत्मा विषय-वासना की संज्ञा से सर्वथा ऊपर उठ जाती है । फिर 10वें गुणस्थान पर पहुंचकर सर्वथा लोभ रहित हो जाती है । क्षपकश्रेणी की आत्मा वहां से सीधे 12वें गुणस्थान पर पहुंचकर... मोहनीय कर्मरहित वीतराग भाव के गुण युक्त बन जाती है । बस अब रुकना कहां है ? फिर 13वें गुणस्थान पर आरुढ होते ही केवलज्ञान-केवलदर्शन और अनन्त वीर्य, एवं पहले की वीतरागता ये चारों गुण अनन्त की कक्षा में प्रगट हो जाते हैं । चारों घनघाती कर्मों के क्षय से अनन्त चतुष्ट्यी प्राप्त हो जाती है । ये सभी गुण सर्वोच्च कक्षा के अप्रतिपाती की कक्षा के गुण है । जो एक बार प्रगट होकर वापिस कभी चले जाने वाले या नष्ट होने वाले नहीं है । बस अन्त में मोक्ष की प्राप्ति ही करानेवाले हैं ।

इस तरह आत्मा इन गुणस्थानों की श्रेणी पर अग्रसर होती है । न कि शरीर । आत्मा सर्वथा लिंग रहित है । अतः आत्मा न तो स्त्री है । न ही पुरुष है । न ही नपुंसक है । ये मोहनीय कर्म की प्रकृतियों के उदय के कारण लिंग-वेद आदि प्राप्त होने वाली अवस्था विशेष है । अतः स्त्री हो या पुरुष किसी को भी केवलज्ञान की प्राप्ति संभव है । स्त्री के शरीर की तरफ देखकर... या उसके अंगोपांगों के कारण और सामाजिक मनःस्थिति का विचार करके तथा स्त्री पुरुष के लिए भोगने योग्य सामग्री मात्र ही है । अतः वह कैसे नग्न रह सकती हैं ? वह कैसे समाज और संघ के बीच निर्वस्त्र घूम सकती है ? इसलिए मात्र कपड़े का कारण बीच में लाकर उसे दीक्षा से ही सर्वथा दूर रखना और फिर उसे गुणस्थानों से अलग रखना । आत्म धर्म से भी वंचित रखना यह कहां तक उचित है ? स्त्री पुरुष ने कपड़े पहन भी लिये तो क्या फर्क पड़ता है और नहीं भी पहने तो क्या फर्क पड़ता है ? एकमात्र कपड़े ही राग-मूर्छा या मोह के कारण नहीं है । शरीर का देहराग कपड़े से भी ज्यादा भयंकर होता है । स्त्री हो या पुरुष, या भले ही हो नपुंसक- लेकिन आत्म-धर्म की आध्यात्मिक साधना करने के लिए सभी अधिकारी है समान अधिकारी है । देहभाव, देहाध्यास और देहराग की वृत्ति से ऊपर उठ जाने के पश्चात् एक बार आत्मलक्षी-आत्मजागृति या फिर आत्मसाक्षीभाव से ही जब साधना करनी है तो फिर ऐसी कक्षा में देह बीच में बाधक नहीं बन सकता है । अतः अन्तिम निष्कर्ष यह है कि... स्त्री देहधारी, पुरुष देहधारी और नपुंसक देहधारी भी दीक्षा ले सकते हैं । केवलज्ञानादि सभी आत्मगुणों को प्राप्त कर सकते हैं और अन्त में मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हैं ।

इस प्रकार की ऐसी स्पष्ट सिद्धान्त की विचारधारा न स्वीकारने के परिणाम स्वरूप सिद्धान्त लोपी दिगम्बर मतानुयायी कितनी भयंकर अव्यवस्था करेंगे जिनकी कोई कल्पना नहीं की जा सकती । परमात्मा आदिनाथ — ऋषभदेव की माता मरुदेवी का भी मोक्षगमन वे नहीं मानेंगे । "मल्ली" कुमारी स्त्री नाम, स्त्री देहवाली कुमारिका होते हुए भी उसे पुरुष रूप से कुमार मानेंगे । चौबीस में से 23 तीर्थंकर भगवान के माता-पिता सभी मोक्ष में गए हैं इस मान्यता का भी वे खण्डन कर देंगे तथा भगवान नेमिनाथ की पत्नी होने वाली वह राजुल थी राजीमति की दीक्षा भी नहीं मानेंगे, मोक्ष की तो बात ही कैसे मानेंगे ? तथा भ. महावीर स्वामी के पास जो चंदनबाला और मृगावती साध्वीजीयां थी उनकी भी दीक्षा-केवलाज्ञान की प्राप्ति और मोक्ष भी वे कहां मानेंगे ? इन सब सत्यों और तथ्यों का लोपक दिगंबरों को होना ही पड़ेगा । और भी कहीं से भी शास्त्रों-चरित्रों में से जहां जहां भी स्त्री मुक्ति- केवली भुक्ति की बातें आएगी वहां वहां से दिगम्बर मतानुयायीयों के सबकुछ हटाकर अव्यवस्था बहुत बड़ी भारी करनी पड़ेगी । ठीक है ना तो कह देंगे । लेकिन इन सबके लिये नया मत क्या बनाएंगे ? नई व्यवस्था अपने मत में क्या बैठाएंगे ? इस तरह सिद्धान्त लोपीयों को कितनी बड़ी पहाड़ जितनी अव्यवस्था को बैठानी पड़ती है ? इस तरह समूची व्यवस्था और परंपरा तोड़कर पुनः मिथ्यात्व के गर्त की तरफ अग्रसर होने की अपेक्षा श्रेयस्कर तो यही है कि... सम्यग् सिद्धान्त को स्वीकार कर... सम्यग् दृष्टि बने रहें । निरर्थक मूर्खता का प्रलाप करने की आवश्यकता ही नहीं रहती है । इसलिए स्त्री देहधारी हो या पुरुष-नपुंसक देहधारी हो तो भी वे मोक्ष में जा सकते हैं यह मानना- स्वीकारना श्रेयस्कर-हितावह है ।

(9) पुरुष सिद्ध- पुरुष शरीरधारी पुरुष देह के माध्यम से जो मोक्ष में जाते हैं ऐसे बाहुबली, जंबुस्वामी, आदि दृष्टान्तभूत है । स्त्री शरीर की अपेक्षा पुरुष देह से मोक्ष में जाने वाले अनेक गुने ज्यादा है । पुरुष देह से मोक्ष पाना आसान जरूर है ।

(10) नपुंसक सिद्ध- शास्त्रों में नपुंसक देहधारी जो सिद्ध होते हैं उनके विषय में काफी विचारणा की गई है । यद्यपि नपुंसक एक ही प्रकार के नहीं होते हैं । नपुंसक बने हुए के प्रकार भी अनेक है । आखिर अपने कर्मानुसार वह वैसा शरीरधारी बना है । फिर भी धर्म साधना के मार्ग पर यदि चढ जाय, और गुणस्थानों के मोक्ष मार्ग पर क्रमशः कर्म निर्जरा करते हुंए एक एक सोपान आगे चढता ही जाय, तथा श्रेणी पर आरुढ होकर तीव्र निर्जरा करते हुए केवलज्ञान पा ले तो अन्ततः मोक्ष में भी जा सकता है । इस तरह नपुंसक देहधारी के लिए भी जैन शासन ने मोक्षमार्ग बंध नहीं रखा है । गांगेय जो कि नपुंसक था वह भी सिद्ध हुआ है- मोक्ष में गया है ।

(11) प्रत्येक बुद्ध सिद्ध- इसके उदाहरण में नाम करकंडु मुनि का प्रसिद्ध है । दधिवाहन राजा के पुत्र करकंडु थे जिन्होंने एक बैल की दुःखी अवस्था को देखकर उस प्रसंग से विरक्त हो गए और दीक्षा ग्रहण करके अपनी साधना करने लगे । अन्त में वे भी केवलज्ञान पाकर मोक्ष में गए । वे प्रत्येक बुद्ध कहलाए ।

(12) स्वयंबुद्ध सिद्ध- कौशांबी नगरी के जितशत्रु राजा के पुरोहित काश्यप का पुत्र कपिल था । बाल्यावस्था में ही यह ब्राह्मणपुत्र काशी में पढने के लिए पंडित के पास रहा था । भोजन हेतु किसी शेठ के घर जाता था तब दासी की पुत्री के साथ प्रेम में फंस गया । राजा को प्रातःकाल प्रतिबोधित करने गया, वहीं पकड़ा गया । सत्य उत्तर पर राजा ने मांगने के लिए कहा और वह चिन्तन करने बगीचे में गया । वृक्ष के नीचे चिन्तन करने बैठा वहीं केवलज्ञान हो गया । ध्यान धारा उत्कृष्ट कक्षा की लग गई । दैवी वेष धारण करके ये कपिल केवली विचरने लगे । आयुष्य क्षय करके मोक्ष में गए । स्वयं अपने आप ही बोध पाने वाले ये स्वयंसंबुद्ध के भेद में गिने गए ।

(13) बुद्ध बोधित-भगवान, गुरु या और किसी से भी बोध पाकर जो चारित्र ग्रहण कर केवलज्ञान पाए उसे बुद्ध बोधित कहते हैं । जैसे भ. महावीर से बोध पाकर गौतम स्वामी, सुधर्मास्वामी आदि केवलज्ञान पाकर मोक्ष में गए ।

(14) एक सिद्ध- एक समय में जो अकेले ही मोक्ष में गए वह एक कहलाते हैं । जैसे भ. महावीर स्वामी अन्त में अकेले ही मोक्ष में गए ।

(15) अनेक सिद्ध- एक समय में एक से ज्यादा अनेक सिद्ध बनते हो मोक्ष में में जाते हो उन्हें अनेक सिद्ध कहते हैं । जैसे भ. ऋषभदेव और उनके 99 पुत्र और भरत चक्रवर्ती के 8 पुत्र कुल मिलाकर 108 एक साथ सभी मोक्ष में गए अतः वे अनेक सिद्धों की गणना में आए ।

इस तरह उपरोक्त 15 प्रकार से जो मोक्ष में जाते हैं सिद्ध बनते हैं । समस्त प्रकारों में सबका समावेश हो जाता है ।

संख्या विषयक विचारणा-

नवपद में जो पंच परमेष्ठी है उनमें सिद्ध परमेष्ठी जो स्वयं सिद्ध बन चुके हैं । वे मुक्त हैं । यह साध्य पद है । अरिहंत पद से अरिहंत भगवान बनकर मोक्ष में गए हुए की संख्या साधु आदि अन्य पदों की तुलना में थोड़ी है । कम है । यद्यपि काल सापेक्ष विचार करने पर अनन्त काल बीत चुका है । याद रखिए 1 अवसर्पिणी में 24 अरिहंत भगवान होते हैं । और ठीक इसी तरह 1 उत्सर्पिणी काल में भी 24 तीर्थंकर बनकर

मोक्ष में जाते हैं। इस तरह 1 उत्सर्पिणी +1 अवसर्पिणी = 1 कालचक्र होता है। इसमें 24 + 24 = 48 तीर्थंकर भगवान बनकर मोक्ष में जाते हैं। इस तरह बीते हुए भूतकाल में अनन्त कालचक्र बीत चुके हैं। अतः अनन्त X48 = अनन्तानन्त अरिहंत भगवान बनकर मोक्ष में गए है।

एक उत्सर्पिणी काल में 24 ही तीर्थंकर होते हैं। 25वां बनने के लिए उतना पर्याप्त सुयोग्य काल भी नहीं बचता है। अर्थात् 4थे आरे के अन्त में 24वें तीर्थंकर भगवान का निर्वाण होने के पश्चात् सिर्फ 3 वर्ष और 8 मास का ही काल अवशिष्ट रहता है। मात्र इतने से काल में कोई कैसे भगवान बने ? अतः संभव ही नहीं है। इसलिए तीर्थंकर 24 ही होते हैं। 25वें संभव ही नहीं है।

अतः तीर्थंकर बनकर मोक्ष में जाना हर किसी के लिए संभव नही है। स्वर्ग के देवी-देवता, नरक के नारकी जीव, या तिर्यंच गति के पशु-पक्षी आदि कदापि मोक्ष में जाते ही नहीं है। जो तीर्थंकर बनते हैं उनके द्वारा स्थापित धर्म तीर्थ में कितने ही जीव दीक्षा लेकर साधु बनकर मोक्ष में जाते हैं। भगवान के द्वारा संस्थापित इस धर्म तीर्थ में चतुर्विध श्री श्रमण संघ में साधु-साध्वीजीओं की संख्या कितनी बड़ी लम्बी-चौड़ी रहती है ? जैसा कि... "जगचिन्तामणी" चैत्यवंदन सूत्र में निर्देश करते हुए लिखा है कि...

संपइ जिणवर वीस मुणि, बिहुं कोडिहिं वरनाणि।
समणह कोडि-सहस्स दुअ, थुणिज्जइ निच्च विहाणि ।।2 ।।

—गौतमस्वामी आद्यगणधर द्वारा निर्मित जगचिंतामणि चैत्यवंदन सूत्र में लिखा है कि... संप्रति अर्थात् आज के वर्तमान काल में 5 महाविदेह क्षेत्र में सीमंधरस्वामी आदि कुल मिलाकर 20 तीर्थंकर भगवान विचरण कर रहे हैं। जिनके द्वारा स्थापित धर्म-शासन में चतुर्विध संघ की व्यवस्था में 2 करोड़ केवलज्ञानी मुनि भगवंत है। तथा साधु-साध्वीजीओं की संख्या 2000 करोड़ अर्थात् 20 अरब है। जिनको हम नित्य प्रतिदिन प्रातःकाल में वंदन स्तुति करते हैं। यह सूत्र जो हम प्रतिदिन चैत्यवंदन के रूप में बोलते हैं। इसमें 20 अरब की विशाल संख्या में रोज साधु साध्वीजीओं को वंदन-नमस्कार करते हैं। जिनमें 2 करोड़ तो सर्वज्ञ केवलज्ञानी महापुरुष है। अतः यह तो निश्चित ही हो गया है कि... केवली सर्वज्ञ तो अनिवार्य रूप से आयुष्य कर्म के क्षय से मोक्ष में जाने ही वाले हैं। शेष सभी साधु-साध्वी मोक्ष में जाएंगे ही ऐसा नहीं भी कह सकते हैं, तो सर्वथा सबका निषेध भी नहीं कर सकते हैं। अनेक उत्कृष्ट कक्षा की आत्माएं हैं। मोक्ष मार्ग ही धारण किया है। मोक्ष मार्ग पर आरुढ हुए हैं अतः मोक्ष में जाएंगे। फिर भी यदि नहीं भी गए तो दूसरे-तीसरे भव में मोक्ष में जाएंगे ही जाएंगे।

उपरोक्त संख्या में आप ध्यान से देखिए स्पष्ट ख्याल आएगा कि... तीर्थंकर अरिहंत बनकर मोक्ष में जाने वाले मात्र 20 ही है। जबकि 20 अरब की संख्या साधु-साध्वी की है। इसलिए अरिहंत तीर्थंकर बनकर मोक्ष में जाना बहुत कठीन है। अत्यन्त मुश्किल है। लेकिन साधु पद से मोक्ष में जाना बहुत आसान है। सरल है। उदाहरण के लिए पालीताणा तीर्थ पर से आज दिन तक जितने मोक्ष में गए हैं उनमें पांच पदों में से किस पद से कितने मोक्ष में गए हैं उसका विश्लेषण करके देखने पर... 24 में से 1 भी तीर्थंकर पालीताणा-शत्रुंजय तीर्थ पर मोक्ष में नहीं गए हैं। फिर भी साधु पद से अरबों की संख्या में मोक्ष में गए हैं। क्योंकि पुंडरिक स्वामी, द्राविड़-वारिखिल्लजी आदि करोड़ों की संख्या में मोक्ष में गए हैं। रामचंद्रजी आदि लाखों की संख्या में मोक्ष में गए हैं। इस तरह आज दिन तक जितने भी मोक्ष में गए हैं उन सब की संख्या का कुल योग करने जाएंगे तो अरबों की संख्या हो जाएगी। आपको ख्याल आना चाहिए कि संख्या की दृष्टि से साधु पद कितना बड़ा विशाल है।

उत्कृष्ट संख्या–

कम्मभूमिहिं कम्मभूमिहिं पढम संघयणि;
उक्कोसय सत्तरिसय, जिणवराण विहरंत लब्भइ।
नवकोडिहिं केवलीण, कोडिसहस्स नव साहु गम्मइ ।।

—5 भरत क्षेत्र + 5 ऐरावत क्षेत्र + और 5 महाविदेह इन 15 कर्मभूमियों में प्रथम वज्रऋषभनाराच संघयणवाले ऐसे अरिहंत तीर्थंकर भगवान उत्कृष्ट रूप से एक साथ 170 की संख्या में हुए थे। जब यहाँ दूसरे अजितनाथ भगवान हुए थे तब की बात है। 170 तीर्थंकर जो उत्कृष्ट से हुए उनके श्रमण परिवार में सामान्य केवलज्ञानिओं की संख्या अधिक से अधिक नौं करोड़ की होती है। तथा सबके साधुओं की संख्या... अधिक से अधिक नौं हजार करोड़ की होती है अर्थात् 90 अरब की होती है। जबकि वर्तमान संपूर्ण विश्व की कुल जनसंख्या ही 6 अरब की है। आप सोचिए जब केवलीओं की संख्या और साधुओं की उत्कृष्ट संख्या इतनी हुई थी तब समग्र 15 कर्मभूमिओं में कुल श्रावक-श्राविकाओं की संख्या कितनी होगी ? और समग्र देशवासी जनता की कुल जन संख्या भी कितनी विशाल होगी ? लेकिन साथ-साथ यह भी स्मृति पटल पर स्थिर रखिए कि यह संख्या 15 कर्मभूमिओं की जनसंख्या की है। वर्तमान विश्व तो 15 में से सिर्फ 1 भरत क्षेत्र के 6 में से 1 खण्ड में ही समा जाता हैं।

साधु पद से मोक्ष में गए हुए अनन्त—

नवकार के पंच परमेष्ठीयों में मूलभूत पद- साधु पद है । किसी को भी नवकार में प्रवेश करना हो तो साधु बनकर ही प्रवेश कर सकता है । बिना साधु बने कोइ भी नवकार में प्रवेश नहीं कर पाएगा । अभी जो श्रावक है भले ही 12 व्रत उच्चरे हुए हैं, फिर भी महाव्रती साधु नहीं बने हैं तथा गृहस्थाश्रम के त्यागी विरक्त वैरागी नहीं बने हैं । अतः नवकार में उनका प्रवेश संभव ही नहीं है । नवकार के पदों की व्यवस्था का आधार मुक्ति है । जिसने भी मोक्ष पद जिस स्वरूप से प्राप्त किया है वे ही नवकार महामंत्र में परमेष्ठी बनने के अधिकारी हैं । अन्य नहीं । शायद आप कहेंगे कि ऊपर जो 15 भेद दर्शाए गए हैं उन प्रकारों से जो जो मोक्ष में गए हैं उन सब पदों के वाचक पद नवकार में रख सकते हैं । जिससे 15 पद का बड़ा नवकार महामंत्र बन जाएगा । यह विचार आपने प्रस्तुत किया लेकिन इनमें सबकी अवस्था देखने जाएंगे तब आपको पता चलेगा कि... जिन सिद्ध होने वाले तीर्थंकर अरिहंत विशिष्ट कक्षा के हैं शेष सबका विचार करने पर साधु पद में ही सबका समावेश हो जाएगा । केवलज्ञान की प्राप्ति चाहे जिस किसी भी स्वरूप या तरीके से हो जाय लेकिन मोक्ष की प्राप्ति तो निश्चित रूप से साधु स्वरूप में ही होगी । उदाहरणार्थ भरत महाराजा को शीशमहल में चिन्तन से ध्यान की धारा में चढे हुए कर्मों की निर्जरा होने के पश्चात् केवलज्ञान गृहस्थाश्रम की अवस्था में ही हो गया । लेकिन देवताओं के द्वारा प्रदत्त मुनिवेष को ग्रहण करके वे मुनि महात्मा साधु बने । और उनका निर्वाण साधु पद में ही हुआ । अतः मुक्ति की प्राप्ति-मोक्ष गमन के समय साधु अवस्था ही होती है । शायद आप कहेंगे कि... मरुदेवी माता तो गृहस्थ वेष्य में ही मोक्ष में गई है । अतः इसके उत्तर में कहना है कि... मरुदेवी माता का दृष्टान्त अपवाद स्वरूप है । उन्हें हाथी पर बैठे-बैठे जाते समय ध्यान की विशुद्ध धारा में केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई, और उसके पश्चात् तुरंत आयुष्य की समाप्ति भी हो गई । ये दोनों कार्य अन्तर्मुहूर्त मात्र काल में ही हो गए । अतः दोनों के बीच में कितना अवकाश रहा यह ढुंढना असंभव सा लगता हैं । अन्तर्मुहूर्त जघन्य-मध्यम और उत्कृष्ट तीनों कक्षा का होता है । अतः कौन सा लेना ? किसी प्रकार की संभावना ही नहीं रही होगी इसलिए शास्त्रकार महर्षीयों ने मरुदेवी माता को मुनिवेषधारी की गणना में नहीं गिनी । लेकिन क्वचित्-कदाचित् होने वाले ऐसे अपवाद को राजमार्ग कदापि नहीं समझना चाहिए ।

मोक्ष गमन के लिए राजमार्ग तो एकमात्र चारित्र पद ही है चारित्र धारी साधु-मुनि पद पर से ही मोक्ष में जा सकता है । आज दिन तक भूतकाल के अनन्त जन्मों में अनन्त आत्माएं जो मोक्ष में गई है वे चारित्रधारी होकर मुनि वेषधारी साधु बनकर ही मोक्ष में गई है । यही राजमार्ग है । द्रव्य से मुनिवेष धारण करने को ही स्वलिंग सिद्ध कहते हैं । मरुदेवी माता आदि कोई भी मोक्ष जानेवाला जीव भाव से अवश्य ही गुणस्थानों की श्रेणि पर आरुढ होकर भाव चारित्रधारी बनता ही है । गुणस्थानों की कक्षा पर चढते हुए, कर्मक्षय करते हुए, भाव से आत्मिक परिवर्तन यथाशीघ्र होता ही है । क्षपक श्रेणि पर आरुढ हुए साधक कर्मो का क्षय करता हुआ केवलज्ञान पाता है और अन्त में सर्वकर्मों के क्षय से मोक्ष में जाता है ।

चाहे तीर्थंकर अरिहंत परमात्मा मोक्ष में जाय, या चाहे सामान्य साधु मोक्ष में जाय, या कोई स्त्री साध्वी मोक्ष में जाय, या गणधर भगवान मोक्ष में जाय या कोई भी मोक्ष में जाय आखिर उन सबके लिए मोक्ष में जाने का गुणस्थानों के सोपान चढने का मार्ग एक ही है । इसी कर्मक्षय के मार्ग से सबको समान रूप से मोक्ष में जाना है । यह त्रैकालिक शाश्वत मार्ग है । इसमें कदापि कोई परिवर्तन नहीं होगा । हां, जाने वाली व्यक्ति चाहे कोई भी हो । वल्कलचीरी तापस भी मोक्ष में गए तो भी आत्मा के अन्दर गुणस्थान की प्रक्रिया तो यही रही । व्यक्ति चाहे जिस किसी भी अवस्था में रहे, जैसी भी कैसी अवस्था हो उसकी । वह सब बाह्य स्वरूप है । बाह्य स्वरूप बदलेंगे । लेकिन आंतरिक गुणस्थानों पर आरुढ होना, आगे बढना और कर्मक्षय करते हुए आगे बढकर आत्म गुणों को पूर्ण स्वरूप में प्रगट करना और अन्त में सर्व कर्म रहिंत होना ही एक मात्र राजमार्ग है । इसमें कभी भी रत्तिभर भी परिवर्तन संभव नहीं है । यह आभ्यन्तर मार्ग ही शाश्वत मार्ग है । बाह्य स्वरूप शाश्वत नहीं है । बाह्य स्वरूप जरूर परिवर्तनशील है । बदलता रहेगा । कोइ किस रूप में रहेगा ? कोई किस रूप में होगा ? शरीर से कोई स्त्री हो, कोइ पुरुष हो, और नपुंसक भी हो । बाह्यरूप से भिन्न-भिन्न होंगे, चलेगा । आखिर सबकी आन्तरिक आत्मा तो ज्ञानादि गुणमय है ही । इसलिए आत्म तत्त्व में ही मुक्ति पाने की योग्यता है । वही पाएगी । मोक्ष तो आत्मा का ही होगा । आत्मा संसारीआत्मा से मुक्त होकर सिद्धात्मा बनेगी । शरीर कदापि नहीं । वह तो सर्वथा जड़ है । पौद्गलिक है । अतः उसकी मुक्ति का कोइ सवाल ही नहीं उठता हैं । इसलिए एक मात्र चेतन आत्मा की ही मुक्ति होती है । कार्मण वर्गणा को पुद्गल परमाणुओं के संचय से जो कर्म बना है वह भी तो जड़ ही है । अतः आत्मा को यदि मुक्त होना ही है तो निश्चित रूप से जड़ के संसर्ग एवं संबंध से सर्वथा मुक्त होना ही पड़ेगा । तभी मुक्ति होगी । अन्यथा नहीं । इसलिए "कृत्स्न कर्म क्षयो मोक्षः" का सिद्धान्त शास्त्रकार महर्षि ने सही बताया है कि सर्वथा सब कर्मों का संपूर्ण क्षय होने से ही मोक्ष प्राप्त होगा । . .

चाहो उस पद से मुक्ति पाओ—

अरिहंत पद से भी मुक्ति पाकर सिद्ध बन सकते हो । इसी तरह आचार्य-उपाध्याय और साधु पद से भी मुक्ति पा सकते हो । गुरु के इन तीनों पदों में आचार्य और उपाध्याय ये दोनों पद तो पदवी विशेष हैं । मूलभूत पद तो एक मात्र साधु पद ही है । हर कोई सामान्य व्यक्ति दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् आचार्य या उपाध्याय की जिम्मेदारी भरी गरिमामयी पदवी पा सके या न भी पा सके, लेकिन हां, साधु पद तो हरकोई पा सकता है । साधु पद पाना अर्थात् मोक्ष मार्ग के उपासक-साधक बनना है । पुरुष प्रधानता की दृष्टि से 'साधु' पुरुषवाची शब्द का प्रयोग चलता है । लेकिन साथ ही साथ साध्वी भी अभिप्रेत पुरुषवाची शब्द का प्रयोग चलता है । लेकिन साथ ही साथ साध्वी भी अभिप्रेत ही हैं । साध्वी बनकर भी अनेक आत्माएं शरीर से भी मुक्ति पा सकती है ।

इस तरह मुक्ति की प्राप्ति हेतु पंच परमेष्ठीयों में 2 ही पद मुख्य रूप से रहे । (1) अरिहंत बनकर और (2) साधु बनकर । अरिहंत तीर्थंकर बनना संभव होते हुए भी, हर किसी सामान्य व्यक्ति के लिए इतना आसान नहीं है । जहां 90 अरब की आबादी में से सिर्फ 170 ही अरिहंत – तीर्थंकर हुए थे । और आज भी 20 अरब साधु-साध्वीयों श्रमण संघ के बीच 5 महाविदेह क्षेत्रों में मात्र 20 ही तीर्थंकर है, जो अभी विचर रहे हैं । या आदिनाथ से महावीर तक के 24 तीर्थंकर लाखों साधु-साध्वीयों के बीच हुए हैं । अतः अनन्त भूतकाल की दृष्टि से यह कहा जा सकता हैं कि... अनन्त गुने साधु पद से जीव मोक्ष में गए हैं तो अरिहंत तीर्थंकर पद से उनकी तुलना में मात्र अनन्तवें भाग के ही मोक्ष में गए हैं । श्रावक पद एवं वेष से मोक्ष में गए ही नहीं है । अतः अरिहंत और साधु इन दो पदों में से अब आप ही चयन करीए कि आपको किस पद के मार्ग से मोक्ष में जाना है ? सब दृष्टि से अरिहंत तीर्थंकर बनकर मोक्ष में जाना बहुत दुष्कर है, जबकि साधु बनकर मोक्ष में जाना आसान लगता है । यदि चाहते ही हो तो आज पहले साधु बनीए ।

श्री महावीर विद्यार्थी कल्याण केन्द्र - मुबई द्वारा

पू. पंन्यास प्रवर श्री अरुणविजयजी गणिवर्य महाराज द्वारा संपादित एवं पुनर्मुद्रित प्रताकार —

आगम शास्त्र प्रकाशन

सुख और दुःख के कर्म विपाक को समझाने वाला ४५ आगमों में ११वां अंग सूत्र —

१. श्री विपाक सूत्र—गुजराती भावार्थ सहित मूल एवं टीका युक्त प्रताकार आगम शास्त्र

श्री वीर प्रभु के परम उपासक १० महाश्रावकों का चरित्रवर्णनात्मक शास्त्र —

२. श्री उपासक दंशाग सूत्र - ४५ आगमों में ११ अंग सूत्रों में ७वां अंग सूत्र प्रताकार शास्त्र

अंतमुहूर्त में कितने केवल ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष में गए हुए, महापुरुषों के चरित्र तथा अनुत्तर स्वर्ग में जाकर एकावतारी बने हुए, १ भव में मोक्ष में जाने वाले महापुरुषों के चरित्र वर्णनात्मक आगम शास्त्र —

(३, ४, ५) अन्तगड दसाओं, अनुत्तरोपपातिकदसा—८वां और ९वां अंग सूत्र आगम शास्त्र

उपरोक्त चारों आगम शास्त्र अंगसूत्र गुजराती भावार्थ सहित वाले प्रताकार – (पोथी आकार) में है । पुनर्मुद्रण करके सुंदर छपाई करके प्रकाशित किए गए हैं ।

प्राप्ति स्थान — **"वीरालयम्"** – एन.एच. ४ मुंबई-पुणे हाइवे, कात्रज-देहु रोड बाय पास, आंबेगांव खुर्द पोस्ट जांभुलवाडी – कोलेवाडी, ता. हवेली पुना – ४११०४६ फोन नं. ४३७७७५७ ।

जाप में—एकाग्रता लाने के कुछ उपाय

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

(छोटे बालकों से लेकर वृद्धावस्था वाले बुझूर्ग तथा बालिका से लेकर प्रौढ एवं वृद्ध महिलाएं सभी वर्ग के लोग महामंत्र नवकार का जाप करते हैं। श्रमण-श्रमणी वर्ग में भी नवकार की साधना काफी अच्छी चलती रहती है। फिर भी 80% से 90% प्रतिशत लोगों की यह शिकायत रहती है कि जप साधना करते समय मन स्थिर नहीं रहता है। एकाग्रता नहीं आती है। जप में स्थिरता नहीं रहती है। अन्य विचारों की भरमार से मन विक्षुब्ध रहता है। इस परेशानी से मन ऊब जाता है। निराशा व्याप्त हो जाती है। जप साधना छोड़ने का विचार मंडराता रहता है। नियमानुसार न ही जप छोड़ा जा सकता है और न ही करने में मन लगता है। ऐसी स्थिति में कुछ एकाग्रता एवं स्थिरता के विकल्प है इनको भी उपाय के रूप में अजमाए जा सकते हैं। प्रयत्न करके देखिए.....)

मन क्या और कैसा है ?—

अनन्त ज्ञान का स्वामी चेतन आत्मा जो अनादि-अनन्त शाश्वत स्वरूप है। वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तपादि लक्षण वाला है। अपने ज्ञान योग से पदार्थो को जानने का उसका मूलभूत स्वभाव है। अतः वह सतत जानता रहता है। दर्शन गुण से उन्हें देखता रहता है। चारित्र गुण से हेय-ज्ञेय-उपादेय के विवेक से उनका ग्रहण-उपयोग के साथ आचरण करना आदि कार्य होता है। अनन्त वीर्य गुण से आत्मा अपनी विभिन्न प्रकार की शक्ति लगाती है। इस तरह आत्मा को अपने ज्ञान गुण से पदार्थो, वस्तुओं और व्यक्तियों के बारे में विचारणा करनी पड़ती है। विचार ये ज्ञानात्मक है। समय के अनुसार क्रमशः ज्ञान प्रवाह में आता रहता है उसे विचार कहते हैं। चेतनात्मा अपने ज्ञान को क्रमशः प्रगट करने के लिए मन बनाता है। लोक में सर्वत्र प्रसृत अष्ट महावर्गणाओं में "मनोवर्गणा" के विशिष्ट कक्षा के सूक्ष्मतम परमाणु है। ये अनन्तानन्त संख्या में समस्त लोक क्षेत्र में सर्वत्र व्याप्त है। अपने नामकर्मानुसार जीव पंचेन्द्रिय एवं संज्ञि की कक्षा में आकर इन "मनोवर्गणा" के पुद्गल परमाणुओं को ग्रहण करता है, और इनकी सहायता से विचार करता है। "मनोवर्गणा" इस विशिष्ट कक्षा के जड़ पुद्गलपरमाणुओं के बनाए गए इस पिण्ड को "मन" कहते हैं। आत्मा ने बनाया हुआ यह मन आत्मा के समीप ही रहता है। निरन्तर आत्मा ज्ञानोपयोग की तरंगे इस मन पटल पर आती रहती है जो विचारों के रूप में प्रवाहित होती रहती है। और वाणी द्वारा अभिव्यक्त होती रहती है। इस अभिव्यक्ति से हमारे विचारों का दूसरों को ख्याल आता है। इन विचारों में जो और जैसा ज्ञान होता है उसे श्रवण कर अन्य जीव समझ सकते हैं। उन्हें भी अपने जीवन में दिशा मिलती है।

ज्ञान में मिश्रित मोह की मात्रा—

आत्मा का जैसा ज्ञान गुण है वैसा ही चारित्र गुण भी है। ज्ञान गुण पर आवरण के रूप में आकर उसे ढकने-दबानेवाला ज्ञानावरणीय कर्म कहलाता है। इसी तरह मोहनीय कर्म आत्मा के चारित्र गुण को ढकता है। परिणाम स्वरूप कर्म से आवृत्त अवस्था में ये दोनों गुण अपने मूलभूत स्वरूप में प्रगट नहीं हो सकते हैं। अब इनका विकार विकृति और विपरीतता प्रगट होती है। अतः चारित्र गुण का विकार है राग-द्वेष की विकृति तथा ज्ञान गुण का विकार है अज्ञान, विपरीत एवं असत्य ज्ञान। कर्माधीन स्थिति में जीव ये और ऐसे 8 कर्मो के आधीन रहता है। ऐसी पराधीन अवस्था में कर्मो के परदे में से आत्मा को अपने गुणों को विकृत-विपरीत स्वरूप में प्रगट करना रहता है। जिस कर्म का प्रमाण जितना कम ज्यादा रहता है उतनी मात्रा में कर्म अभिव्यक्त होते हैं। आठों कर्मों में मोहनीय कर्म सबसे बड़ा राजा है। इसकी सेना (प्रकृतियां) भी काफी लम्बी-चौड़ी बड़ी है। सबसे ज्यादा इसीकी प्रवृत्तियां प्रचलित है। 100% जीवों के जीवन की प्रमुख प्रवृत्तियां 18 पापस्थानों की है। इनका बहुत ज्यादा असर प्रभाव भी सर्वत्र सब जीवों पर रहता है। मोहनीय कर्म के मूलभूत आधार स्तंभ है- राग-द्वेष। बस, ये दो मुख्य है। शेष सभी इनकी ही प्रकृतियां (संज्ञा) है। राग-द्वेष मुख्य रूप से इनके अंग है, और संपूर्ण मोहनीय कर्म की समस्त प्रवृत्तियों में इनकी गंध बरोबर रहती है।

यहाँ तक कि ज्ञानावरणीय कर्म की आधीन अवस्था के कारण चेतनात्मा अज्ञानावस्था में शुद्ध-सत्य-सम्यग् ज्ञान का कुछ भी विचार नहीं कर सकता है। एकमात्र अशुद्ध-असत्य-मिथ्या ज्ञान में ही प्रवृत्तिशील रहता है। ऐसी भयंकर अवस्था में... इस तरह का जो भी, जितना भी असत्य-मिथ्याज्ञान प्रगट होता है वह भी..., मोहनीय कर्म के रागद्वेष से ग्रस्त होकर ही प्रवृत्ति करता है। इसी कारण प्रत्येक विचारों में राग द्वेष की बरोबर गंध आती रहती है। राग द्वेष रूप मोहनीय कर्म का परिवार काफी बड़ा है। काम-राग-द्वोष-क्रोध-मान-लोभ-ईर्ष्या-स्वार्थवृत्ति, असूया-मत्सरवृत्ति-कलह, आक्षेप-आरोप-विषय-वासना- की काम संज्ञा आदि अनेक प्रवृत्तियां है। हंसना, रोना, लड़ना-झगड़ना, डरना-डराना, प्रिय-अप्रिय, पसंद-नापसंद, शोक-जुगुप्सा, दुर्गंछा, आदि अनेक प्रकार प्रवृत्तियां इस कर्म के घर में चलती रहती है। क्षमा-समता-नम्रता-सरलता-सज्जनता, दया-करुणा-गंभीरता- मित्रता, गुणानुरागिता, संतोष-निर्भयता-परोपकार पराणयता आदि सेंकड़ों गुणों को अन्दर दबाकर एक मात्र मोहनीय कर्म के औदयिक काल में इन सबसे विरुद्ध-विपरीत भावों को प्रगट करता है। जिसके कारण संसार के व्यवहार में जीव दोषयुक्त-दोषवाला बनकर फिरता है। ऐसी स्थिति मोहनीय कर्म ने जीवात्मा की इस संसार में कर दी है।

मोहनीय कर्म की बंध स्थिति का उत्कृष्ट काल 70 कोडा-कोडी सागरोपम का है। जबकि ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय कर्म 30 कोडा-कोडी सागरोपम का है अर्थात् आधे से भी कम है। इसी तरह आज के वर्तमान संसार के अरबों लोगों की जनसंख्या में सच्चे ज्ञान की दिशा प्रवृत्ति करने वाले-आगे बढने वाले जीवों की संख्या कितनी होगी ? तथा राग-द्वेष-क्रोध-मान-माया-लोभादि कषायों की प्रवृत्ति करने वाले जीवों की संख्या कितनी होगी ? (आप अपनी दृष्टि व्यापक बनाकर चारों तरफ घुमाते हुए व्यापक रूप से प्रतिशत संख्या निकालने की कोशीस करीए, आपको स्पष्ट ख्याल आएगा। आप सहमत होंगे कि—संसार में जीवों की 100% प्रवृत्तियां मोहजन्य-राग-द्वेष की ही ज्यादा है। सच्चे ज्ञान की दिशा में शायद आधा प्रतिशत जीवों की भी प्रवृत्ति नहीं है। अतः जो प्रवृत्ति में है उसी कर्मों का बंध होता है और बंध के बाद उदय काल में उस कर्म का उदय होता है। अतः मोहनीय कर्म के उदय में राग-द्वेष-क्रोधादि सब प्रगट रूप से सामने आएंगे। और पुनः राग-द्वेष का स्वभाव ही प्रवृत्ति में दिखाई देगा।

किसने कहा मन चंचल है ?—

मन बेचारा जड पुद्गल परमाणुओं का बना हुआ जड साधनमात्र है। जो कि आत्मा के आधीन गुलाम बनकर रहता है। चेतनज्ञानमय आत्मा विचार करने के लिए मनोवर्गणा के जड पुद्गल परमाणुओं को ग्रहण कर के पिण्ड रूप में बनाता है। इसे मन कहते हैं। ऐसे मन को हम चंचल या चपलादि कैसे कह सकते हैं ? भला कोई जड़ पदार्थ चंचल-चपल होता भी है ? जड़ अजीव पदार्थ सर्वथा निष्क्रिय होते हैं। फिर चंचलता और चपलता का प्रश्न ही कहां खड़ा होता है ? इस "मन" के विषय में "पदार्थ विज्ञान" एवं "तत्त्व ज्ञान" की दृष्टि से सही विचारणा करने पर मन का वास्तविक स्वरूप उपस्थित होगा। इसे समझकर मन का सही यथार्थ स्वरूप हमें समझ लेना चाहिए।

दूसरी तरफ कर्मों की भी ऐसी ही स्थिति है। कर्म भी जड पौद्गलिक कार्मण वर्गणा के परमाणुओं के संयोजन से बने हुए पिण्ड का नाम है जो आत्म प्रदेशों पर लगे हुए हैं। वे भी जड पौद्गलिक होने से चंचल-चपल कैसे हो सकता है ? लेकिन हमारे जैसे लाखों करोड़ों लोग चंचलता-चपलता का अनुभव निश्चित रूप से करते हैं, उसमें सच्चाई है... आखिर वह क्या है ? किसकी है ? उसके लिए आधारभूत कारणरूप कौन है ?

इसके उत्तर में स्पष्ट सत्य है कि... चेतन आत्मा कर्मों के बंधन में बंधी हुई है। इन कर्मों में मोहनीय कर्म प्रबल शक्तिशाली है, और इसकी अनेक प्रकृतियां है। आत्मा पर दूसरे अन्य कर्मों में ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीयादि अनेक कर्म है। इनके कारण ज्ञाता-दृष्टा-कर्ता-भोक्ता बनी हुई आत्मा निरन्तर बहती हुई नदी के प्रवाह की तरह ज्ञान-दर्शनादि गुणों के कारण ज्ञानाकार-दर्शनाकार उपयोग वाली रहती है। जबकि ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय जैसे भारी कर्मों के निरन्तर उपयोग में रहने के कारण से उपयोगभाव में रहती है। जिस समय जिस वस्तु या व्यक्ति विशेष के ज्ञान का उपयोग होगा उस समय आत्मा उस उपयोगाकार रहती है चिन्तन के क्षेत्र में। और इसी बीच मोहनीय कर्म का भी निरन्तर उदय है। ज्ञानोपयोग में तदाकार बननेवाली आत्मा मोहनीय कर्म के उदय में वैसी मोहाकार अर्थात् रागाकार-द्वेषाकार रूप बनती है। मोहनीय कर्म की अनेक प्रकृतियां है। इन प्रकृतियों का सबका उदय प्रतिक्षण होता रहता है। लेकिन आत्मा 1 समय में 1 ही उपयोगाकार होती है, रहती है। और यहाँ एक साथ अनेक कर्म की प्रकृतियों का उदय साथ में आता हो ऐसे समय में आत्मा की स्थिति कैसी होती होगी ?

"समय" यह काल की सूक्ष्मतम इकाई है। यह अविभाज्य अंतिम सूक्ष्मतम स्वरूपवाला है। इसलिए पता नहीं चलता है। ज्ञानावरणीय कर्म जन्य अज्ञान के के साथ मोहनीय कर्म की प्रकृतियों में से हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्री आदि वेद की तथा क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायों की ऐसी 18 प्रकृतियां उदय में आती है। यद्यपि एक साथ सब उदय में नहीं रहती है, फिर भी अनेक उदय में आती है। तब उस कर्म के आधीन वैसी उपयोगाकार बनकर आत्मा जैसे जिन विचारों को मन की सहायता से करती है, उन विचारों में कर्म प्रकृतियों के

औदयिक भाव से अनेक कर्म प्रकृतियां सतत उदय में आती है । इनके अनुसार आत्मा को प्रत्येक कर्म प्रकृति के अनुसार वैसे विचार करने पड़ते हैं । तदाकार उपयोगवासी होना पड़ता है । इनमें अनेक विचारों की भरमार होने के कारण किसी भी एक विचार पर आत्मा स्थिर रहने जाती है उतने में तो दूसरे 10 विचार तेजी से आ जाते हैं । उनमें से 1 राग का, 1 द्वेष का, एक प्रेम का, एक वैर का, एक काम की विषय वासना का तो उसी समय दूसरा भय संज्ञा का । इस तरह परस्पर विरोधी भी अनेक विचार आते रहते हैं । शायद बहती नदी के प्रवाह का वेग कम होगा, अतः विचार आंधी-तूफान के तीव्र वेग से आते हैं । बाहरी जगत में में आंधी-तूफान में हवा तेज बहती है । अत्यन्त तीव्र गति से दौड़ती है । इसकी गति की तीव्रता के मापक यन्त्र द्वारा मापकर हवामान शास्त्री कहते हैं कि... 110, या 180 किमी. प्रति घण्टे की रफ्तार से हवा बह रही है । इसे बाहरी जगत में आंधी तूफान कहा जाता है । ठीक इसी तरह ठीक हमारे अन्दर मन में विचारों का तूफान कहा जा सकता है । लेकिन विचारों का प्रवाह मन में प्रति घण्टे लाटखों की संख्या से भी ज्यादा हो जाएगी । इसलिए मन की गति को कोई नहीं पहचान सकता है । बस इन सैंकड़ों विचारों के प्रवाहों के कारण चंचलता-चपलता कही जाती है । लेकिन इनमें मन तो निमित्त मात्र है । आत्मा पर कर्मों का उदय मुख्य कारण है । इस तरह मोहनीयादि कर्मों के कारण चंचलता-चपलता की मात्रा कम-ज्यादा होती है । व्यक्ति विशेष में कम ज्यादा का प्रमाण रहता है । बच्चों में भी विचार तंत्र तो इसी तरह काम करता है लेकिन अब लक्ष्य की तरफ मन विभाजित न होने के कारण मन की चंचलता-चपलता शरीर द्वारा या पर प्रतिबिम्बित होती है । इसी कारण उछल-कूद का प्रमाण ज्यादा रहता है । खेलकूद-नाच-गान आदि द्वारा बच्चे अभिव्यक्त करते हैं । प्रौढ व्यक्ति के पास वैसी अभिव्यक्ति स्वभाव गत रूप से कम है । वह अनेक विचारों के कारण परेशान रहता है । कईयों के लिए तो यह मानसिक रोग भी बन जाता है । आखिर इसके उपाय में क्या करें ?

स्थिरता के लिए-जाप-ध्यान साधना—

जाप के अपने अनेक नियम हैं । उस विधि से योग्य जपादि साधना करनी चाहिए । जाप में आसनों की योग पद्धति का पालन करने से स्थिरता लाने में सहायता मिलती है । यद्यपि आसनों में अनेक प्रकार के आसन है । इन सब में से सिर्फ 2-4 प्रकार के ही आसन ऐसे हैं जो जाप-ध्यान करने में उपयोगी सिद्ध होते हो । जिनसे पूर्ण या अर्ध पद्मासन, सिद्धासन श्रेष्ठ है । फिर भी उपयोगी सुखासन भी ग्राह्य है । सुखरूप या शरीर के लिए जो भी अनुकूल सुखकर लगे ऐसा आसन चुना जाय, लेकिन एक बार उस आसन से कायिक (शारीरिक) स्थिरता का तात्पर्य बड़ा है । कायिक स्थिरता भी मानसिक स्थिरता लाने में सहयोगी-उपयोगी हैं ।

वचन योग से संपूर्ण मौन पूर्वक जप-ध्यान किया जाय । 3 में से 2 योग के रास्ते बंद हो गए । भाष्य जप करने की अपेक्षा मानस जप करने से मन की पक्कड़ अच्छी आती है । भाष्य जाप में जीभ-मुंह को काम करता रहना है इसलिए मन को भटकने के लिए खुल्ला मैदान मिल जाता है । मन सोचता है कि यहाँ तो काया काम कर रही है । जीभ-मुंह-होठ चला रही है । मेरा तो कोई कार्य ही नहीं है । फिर मैं क्यों निरर्थक यहाँ रहुं । चलो आराम से सैर करेंगे । लेकिन ऐसा होने से पहले ही साधक सावधान होकर यदि पहले से ही मानस जाप में लग जाय, और काया को आसन में स्थिर कर दे तो फिर मंत्र जप करने का काम मन का ही रहे । अब मन ही महामंत्र के एक-एक पद को उठाएगा । मन ही मन में मानसिक उच्चार करता रहेगा । अब जीभ-होठ-मुंहादि कोई अंग हिलेगा ही नहीं । इस तरह पूरा जाप चलता ही रहे तो स्थिरता आती है । अन्य विचारों में मन को भटकने न दिया जाय और एक ही मंत्र में स्थिर किया जा सकता है । जो जाप करने के सही आनन्द का अनुभव कराएगा । साधक को भी अन्य विचारों में ही भटकता नहीं रहा, जाप-में स्थिर रहा का एहसास स्पष्ट रूप से होगा ।

स्थिरता के लिए साधना के भिन्न-भिन्न प्रकार—

"नवकार महामन्त्र" तो एक ही है । वह अपरिवर्तनशील नित्य है । मात्र साधक को स्थिरता लाने हेतु साधना करने के तरीके बदलने होंगे । उसे यह देखना है कि साधना की पद्धति बदलने से किसमें मन की स्थिरता ज्यादा रहती है वही अपनाना श्रेयस्कर है । उदाहरणार्थ- यदि दिवाल के सहारे आराम से बैठकर जाप करने में निंद आने की संभावना रहती हो तो खड़े-खड़े जप करना हितावह है । यदि माला हाथ में लेने पर मन भटकता रहता हो तो... माला के स्थान पर नंदावर्त, शंखावर्त आदि आवर्तों के सहारे जाप करना चाहिए । ऊचार करते हुए यदि जाप करने की आदत हो तो उसे भी बदलकर मानस जाप की आगे की कक्षा में जाना चाहिए । इसमें भी "अनानुपूर्वी" का आलंबन लेकर जाप करने में मन को भागने का मौका ही नहीं मिलेगा । अष्टदल कमलबद्ध जाप की पद्धति से जाप करने पर भी स्थिरता अच्छी आती है । इसी तरह नवपद पद्धति से तथा तीर्थंकर भगवान की प्रतिमा का आलंबन लेकरभी नवांगी पूजा की तरह नवकार से पूजा करते हुए मन को स्थिर किया जा सकता है । इसी तरह चतुर्मुख समवसरण के आलम्बन द्वारा दर्शन-पूजा विधि सहित जाप में भी एकाग्रता लाई जा सकती है । इसी तरह हृदय कमल पर-अपने शरीर पर ही कर्णिका युक्त अष्टदल कमलाकार की स्थापना करके उस पर मंत्राक्षरों की स्थापना द्वारा जाप में नवकार पढने का होता है

उसमें भी स्थिरता अच्छी रहती है । लेखन विधि भी काफी अच्छी है । जिसमें नवकार लिखकर जाप करने का संतोष माना जा सकता हैं । चित्रालंबनात्मक पद्धति से जाप किया जा सकता है तथा योगसाधना पद्धति में "प्राणायाम" के प्रकारों में श्वास के आवागमन को आलंबन बना कर भी जाप करते हुए मन को भटकने से रोका जा सकता है । गुणालम्बन पद्धति में गुण स्मरणपूर्वक नमस्कार करते हुए जप करने में परमेष्ठी भगवन्त के स्वरूप का बोध होता रहता है । यह भी एक अच्छा तरीका है स्थिरता लाने का । तथा आरोह-अवरोह क्रम से (चढ़ते-उतरते क्रम से) सीधा और उल्टा नवकार गिनते हुए भी मन को अन्य निरर्थक विचारों में जाने से रोका जा सकता है । अर्थ-भाव सहित चिन्तनात्मक नवकार के जाप में यद्यपि समय काफी लम्बा लगता है, तथा संख्या की दृष्टि में वह दूसरों की अपेक्षा काफी पीछे रहेगा लेकिन आनन्द की अनुभूति में, स्थिरता के विषय में भी ऐसा साधक पहला नंबर आएगा । इस तरह संख्या की अपेक्षा गुणवत्ता का प्रमाण बढाना यही श्रेष्ठ है । जिस पद्धति से निर्जरा का प्रमाण जितना ज्यादा बढता जाय वही पद्धति साधक के लिए श्रेयस्कर है । उसी पद्धति को अपनाकर विशुद्ध कक्षा की साधना करनी चाहिए ।

स्थिरता साधक साधना पद्धतियां—

जाप और ध्यान में लाखों गुना अन्तर है । जप साधना में मन्त्र जाप करते समय संख्या का लक्ष्य रखा जाता है । जबकि ध्यान साधना में संख्या की गणना करने का रहता ही नहीं है । जप में एक ही मन्त्र का बारबार रटण करने का रहता है । जबकि ध्यान में मन्त्र रटने की आवश्यकता ही नहीं रहती है । एक विषय पर, चिन्तन की धारा में स्थिर रहने को ध्यान कहते हैं । जप में देवातादि के वाचक मंत्र का पुनः पुनः रटण रहता है । जबकि उस मन्त्र से ध्यान में प्रवेश करके बाद में उस मन्त्र के वाच्य परमेष्ठी में ही स्थिर होना रहता है । उनके स्वरूप-गुणादि का मानस चित्र बनाकर अनुभूति का आनन्द प्राप्त करना रहता है । इस तरह जाप और ध्यान में आसमान जमीन का अन्तर जरूर है । जप साधना, ध्यान साधनारूपी महल के प्रवेश द्वार रूप है । इसलिए ध्यान योग में पहुंचने के लिए जप प्रवेश द्वार के रूप में आवश्यक है । हो सकता है प्रवेश मार्ग कितना भी लम्बा हो । लम्बे समय तक जप करने के पश्चात् बड़ी अच्छी सरलता से ध्यान में प्रवेश हो सकता है । इसलिए जाप की कक्षा सुधारने के लिए सतत प्रयत्नशील रहना ही चाहिए । इसके लिए जाप में एकाग्रता-स्थिरता साधने का प्रयत्न करना चाहिए और इसी लक्ष्य से पद्धतियां बदलनी भी पड़े तो नुकशान नहीं है । जैसे पर्याय बदलने पर भी द्रव्य का स्वरूप वही रहता है । ठीक इसी तरह जाप करने की पद्धति बदलने के बावजूद भी मंत्र का केन्द्रीभूत क्षेत्र वही रहता है । उपरोक्त सूचित कुछ प्रवृत्तियों का विशेष विचार करें-

(1) स्थिर आसन में-माला जाप—

गिनति करने में संख्या की चिन्ता न रहे इसके लिए 108 मणके एक धागे में पिरोकर... माला बनाकर हाथ में दे दी गई है । ताकि जाप करनेवाले साधक के लिए संख्या गिननी ही न पड़े । इसमें शायद गहराई से सोचने जाएं तो ऐसा लगता है कि... मन को जो काम करना पड़ता है वह उसके पास से दूर कर दिया गया । मन का काम हटाकर माला के रूप में निश्चित संख्या देकर मन को घूमने का मैदान दे दिया है । फिर भी अष्टांग योग के आसन के सोपान पर साधक स्थिर हो सकता है । निश्चित रूप से पद्मासन, अर्धपद्मासन, सिद्धासन, वीरासन, आदि किसी भी जाप योग्य आसन में स्थिर बैठकर, मेरुदण्ड स्थिर रखकर माला भी नियमानुसार सही पकड़ें । हृदय से नाभी के बीच शरीर से 4 अंगुल दूर रहे ताकि शरीर का स्पर्श न हो । आलम्बन हेतु अरिहंतादि परमात्मा की मूर्ति-प्रतिमा या तस्वीर आदि हो दृष्टि उन पर स्थिर रखें । मानस जाप करते हुए होंठ-जीभ न हिलाते हुए धिरे-धिरे जाप करते जाय... । यदि मन थोड़ा सा भी इधर-उधर भागने की कोशीस करे... तब पुनः आंखे बंद-करें- खोलें और पुनः मूर्ति- परमात्मा की तरफ गौर करते हुए देखें । थोड़ी क्षण के लिए रुककर पुनः जाप आगे बढाए... इस तरह करने से मन को स्थिर किया जा सकता है । अन्य विचारों में बाहर भटकने से बचाया जा सकता है । आलस्य आसन की स्थिरता से छूट जाता है, अप्रमत्तभाव बढने लग जाय तो स्थिरता नहीं जा सकती । काया में आसन की स्थिरता और मौन में वचन योग की स्थिरता रहने से इन दोनों योगों से होने वाले आश्रवों से बचा जा सकता है । मनोयोग स्थिरता-एकाग्रता के आधार पर जितना सधा जाय उतना ही अच्छा है ।

(2) आवर्त पद्धति से जाप—

हमारे दो हाथों की हथेलियों (पंजे) के आगे 5-5 अंगुलियां है । 1 अंगूठा और 4 अंगुलियां है । इन अंगुलियों पर तीन-तीन रेखां अन्तर-अन्तर पर है । जिनसे अंगुलियों के 3-3 भाग पड़ते हैं- ऐसे चारों अंगुलियों के कुल मिलाकर 12 विभाग होते हैं । भिन्न-भिन्न आकृतियों को आधार बनाकर उनके ऊपर अंक संख्या गणना के लिए लगाकर क्रमशः जाप करते जाएं । अंगुलियां परस्पर सटी हुई होनी चाहिए । अंगूठे को ऊपर से न उठाते हुए बरोबर अंगुलियों पर लगाए रखें । और क्रमशः घूमाते रहें । अंक संख्या के आधार पर क्रमशः चलते चलते निर्धारित रेखाचित्र की आकृति बनती है । इन आकृतियों में शंखावर्त, नंदावर्त, ॐकारावर्त, ह्रींकारावर्त, जैसी अनेक आकृतियां बनती है । इनके आवर्त बनते हैं ।

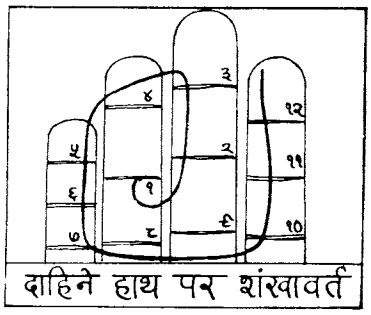

(1) दाहिने हाथ की चारों अंगुलियों पर चित्रानुसार 1 से 12 तक के अंकों की स्थापना करनी चाहिए। नंदावर्त का जो मंगलाकृति वाला बड़ा स्वस्तिक बनाते हैं उसकी 1 पंखुड़ी की आकृति उस पर बनेगी। जो अंक संख्या के साथ रेखा खिंची गई है उसके आधार पर ख्याल आता है।

जिस समय नंदावर्त की आकृति पर गिनते हुए 12 नवकार पूरे हो जाय तब बांए हाथ पर दक्षिण आवर्त की आकृति वाले शंख की आकृति वाले शंख की आकृति बनती हो वैसे क्रम से 1 से 9 अंक तक की संख्या निर्धारित करके चित्रानुसार स्थापना करके अंगूठा उसी क्रम से चले...। जैसी चित्र में रेखा बनी है तदनुसार दक्षिणावर्त शंखाकृति का 1 आवर्त (Round) बनेगा। इस तरह नंदावर्त का पुनः दूसरा आवर्त पूरा होने पर शंखावर्त का दूसरा अंक आएगा। इस तरह क्रमशः 3,4,5,6,7,8,वां और अन्त में शंखावर्त का 9वां अंक आएगा। इस प्रकार 12 X 9 = 108 नवकार पूरे हो जाएंगे। नंदावर्त के 12 तथा शंखावर्त के 9 इस तरह 108 नवकार आसानी से पूरे होते हैं। अतः संख्या की गणना करने की चिन्ता नहीं सताती है। माला की तरह इसमें मन को बाहर भागने का अवसर कम मिलता है। इसमें और ज्यादा मन पर नियंत्रण लाने के लिए... अंगूठा भी अंगुलियों के आवर्त पर न घूमाते हुए उस जगह मन को ही सीधे उस रेखाचित्राकृति पर घूमाते रहें। ताकि मन पर थोड़ा और ज्यादा नियंत्रण हो जाएगा। जिससे मन भटकेगा नहीं। दूसरे तरीके दूसरे तरीके में इस तरह भी कर सकते हैं- कायोत्सर्ग ध्यान की मुद्रा में दोनों घूटनों पर उल्टी हथेलीयां स्थापित करके- एक ही दाहिने हाथ पर नंदावर्त विधि में 9 बार नवकार महामंत्र गिनें। शंखावर्त का सहारा न लेते हुए नौं ही बार नंदावर्त की चित्राकृति अनुसार गिनने से भी 108 ही नवकार होंगे।

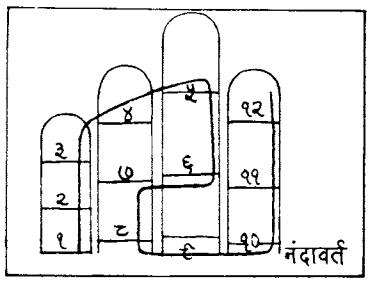

इसी तरह दाहिने हाथ पर शंखाकृति की मानसिक स्थापना करके चित्रानुसार अंक संख्या बैठानी चाहिए। और उस पर रेखा की तरह मन चलता रहे। ऐसा शंखावर्त पद्धति से नौ बार जाप करने पर... भी (12X9 = 108) की संख्या में जाप होगा।

इसी तरह अन्य आवर्त भी है- उनकी चित्राकृतियां इस प्रकार है-

अनानुपूर्वी पद्धति से जाप—

आनुपूर्वी सीधे क्रम को कहते हैं। क्रमशः संख्यानुसार सीधे चलने पर आनुपूर्वी कहते हैं। न आनुपूर्वीति अनानुपूर्वी। अर्थात् जिसमें सीधा क्रम न हो उसे अनानुपूर्वी कहते हैं। नवकार म्रहामंत्र में पदों की संख्या क्रमशः 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 इस तरह है। इस संख्या को उल्टे-सुल्टे क्रम से... 5,4,3,1.7,8,2,9,6 इस प्रकार भी लिख सकते हैं। यह एक रीत हुई। इस तरह दूसरी रीत में अंकों का आगे पीछे का क्रम बदला जा सकता है तीसरे में तीसरी तरह, चौथे में चौथी रीत से, इस तरह अनेक रीति से उल्टे-सुल्टे क्रम से लिखकर नौं पदों की अनानुपूर्वी बनाई जाती है।

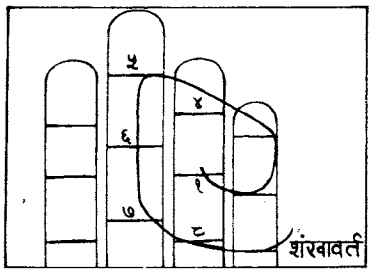

गणित शास्त्र के नियमानुसार—

इसी तरह 5 पदों की अनानुपूर्वी भी बनती है। नवकार के 5 पदों में- 1ले- अरिहंत पद, 2रे सिद्ध पद, 3रे आचार्य पद, 4थे उपाध्याय पद, 5वें साधु पद इन पांच पदों में पांच परमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार किया गया है। जिसका सूचक नमो शब्द पद में आगे जुड़ा है। आनुपूर्वी के क्रम से यदि नमस्कार करें तो इसी क्रम से पांचों परमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार करते हुए ये 5 पद बोले (पढे) जाते हैं। बचपन से इसी तरह पाठ करने एवं सदा गिनने-जपने के कारण यह क्रम हमारे दिमाग में स्थिर हो चुका है। धारणा और स्मृति इसी प्रकार की बनी हुई है। अतः अब जब भी कभी नवकार महामंत्रादि का जप करना हो तब निंद में से आधी रात में उठते ही यह नवकार महामंत्र इस सीधे क्रम से मुंह से तेजी से बोला जा सकेगा। परन्तु आनुपूर्वी के बजाय अनानुपूर्वी के उल्टे क्रम से बोलने में सहज स्वाभाविक तेज गति नहीं रहेगी। उसमें मन को आगे का पद पीछे बोलना और पीछे का पद आगे- पहले बोलने में काफी दिक्कत होती है। इसलिए साधक को इतना ध्यान जरूर रखना चाहिए कि

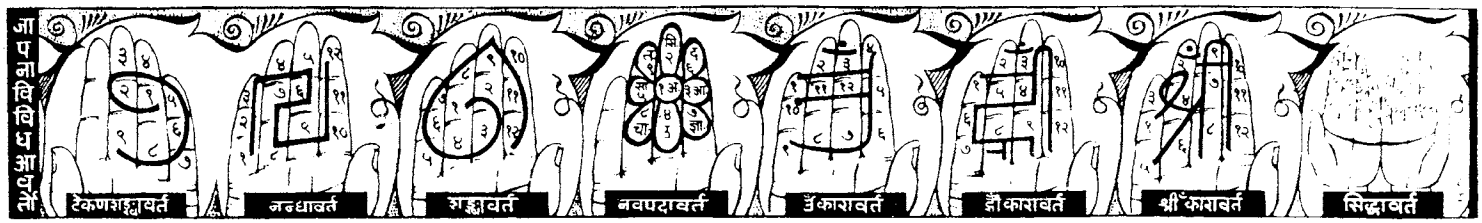

जिस कार्य में मन बीच में शामिल हो, प्रमुख रूप से मन उस कार्य को करते हो, या मन लगाए बिना वह कार्य न होता हो, ऐसे कार्यों में बरोबर मन लगाकर ही काम करना चाहिए।

अनानुपूर्वी में 5 पद सीधे क्रम से न आकर- उल्टे-सुल्टे ही आते हैं। सीधा क्रम है- 1,2,3,4,5 पद। उल्टे-सुल्टे क्रम में- 1,2,5,4,3. 3,4,5,2,1. 2,1,5,3,4. 4,3,2,1,5 तथा 2,3,5,1. 4, 3,2,5,1. 4,5,1,2,3, इस तरह 5 पदों की अनानुपूर्वी में भिन्न-भिन्न क्रम से भिन्न भिन्न संख्या वाले—भेद होंगे। गणितीय नियमानुसार निश्चित रूप से इतने ही होंगे। न कम न ज्यादा।

इस तरह 9 पदों की तथा 5 पदों की 2 प्रकार की अनानुपूर्वी प्रसिद्ध है। 5 पदों पर आधा नवकार ही गिना जाता है। जबकि नौं तक की अंक संख्या पर नवकार चूलिका सहित नौं पद वाला तथा नवपदजी का भी जपं इसी तरह किया जाता है। इसकी बनी बनाई अनानुपूर्वी पुस्तिका रूप में तैयार भी आती है। जिसमें क्रमशः छपे हुए अंकों की संख्या के आधार पर वही पद बोलना चाहिए। भिन्न-भिन्न क्रम से अलग-अलग पद बोलने में मन को ज्यादा एकाग्र होना पड़ता है। क्योंकि इसमें मन की पूरी कसरत होती है। अतः मन को बाहर भागकर दूसरे विचार करने का मौका नहीं मिल पाता है। विचारों का निग्रह करते हुए मन स्थिर होने में काफी अच्छी सहायता मिलती है।

अनुलोम-विलोम पद्धति से जाप—

साधे हुए एक भूत से बचने के लिए सेठ ने जैसे ही उसे कूंएं में सीढी लगाकर चढ-उतर निरंतर करने के लिए कह दिया। वैसे ही मनरूपी इस भूत के नवकार महामंत्र के नौं पदों के सोपानों की इस सीढी पर एक-एक पद का स्मरण करते हुए चढना-उतरना चाहिए।

अवरोह क्रम	आरोह क्रम
नमो अरिहंताणं ॥1॥	पढमं हवइ मंगलम् ॥9॥
नमो सिद्धाणं ॥2॥	मंगलाणं च सव्वेसिं ॥8॥
नमो आयरियाणं ॥3॥	सव्व पावप्पणासणो ॥7॥
नमो उवज्झायाणं ॥4॥	एसो पंच नमुक्कारो ॥6॥
नमो लोए सव्व साहूणं ॥5॥	नमो लोए सव्व साहूणं ॥5॥
एसो पंच नमुक्कारो ॥6॥	नमो उवज्झायाणं ॥4॥
सव्व पावप्पणासणो ॥7॥	नमो आयरियाणं ॥3॥
मंगलाणं च सव्वेसिं ॥8॥	नमो सिद्धांणं ॥2॥
पढमं हवइ मंगलम् ॥9॥	नमो अरिहंताणं ॥1॥

नवकार महामंत्र लिखे हुए 2 पट सामने रखिए या अभ्यास हो जाने पर मानस चित्र उपसाते हुए दो नवकार (मन में) लिखे हुए रखिए। पहले नवकार मंत्र को पदानुसार 1-2-3 आदि पदों को क्रमशः सीधे जाप करते हुए अवरोह क्रम से नीचे उतरते हुए नौंवे पद तक आइये फिर वहां से पास में रहे हुए दूसरे नवकार महामंत्र पर नीचे से आरोहण करीए। अतः आरोह क्रम से ऊपर चढते हुए... एक-एक पद का जाप करते जाइये। पहले 9वां पद- फिर 8,7,6,5,4,3,2,1- इस तरह उल्टे क्रम से चढते हुए जाप करते जाइए। 2 नवकार पूरे हो गए... अब पुनः 1ले वाले नवकार मंत्र का अवरोह क्रम से जाप करीए... फिर वापिस आरोह क्रम वाला जाप करीए। इस तरह दोनों क्रमों से जाप करने पर सीधे और उल्टे नवकार गिनने को अनुलोम- विलोम पद्धति कहते हैं। इस तरह जाप करने पर भी कोई दोष नहीं लगता है। परन्तु मन को भागने से रोका जा सकता है।

अष्टदल कमलबद्ध जाप—

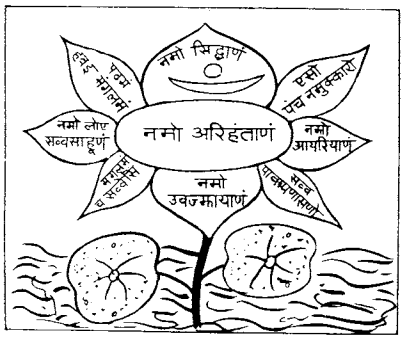

सरोवर में उगने वाले, जल से निर्लेप रहने वाले एक कमल का पुष्प लिया जाय... जिसकी 4 मूल दिशा में 4 पंखड़ियां हो, तथा 4 विदिशा में भी 4 पंखुड़ियां हो। ऐसे कमल को अष्टदल कमल कहते हैं। इसकी मध्यस्थ कर्णिका में 1ले "नमो अरिहंताणं" पद की स्थापना करनी चाहिए। फिर आगे क्रमशः 4 मूल दिशा में मंत्र के शेष 4 पदों की स्थापना, तथा 4 विदिशाओं में चूलिका के 4 पदों की स्थापना करनी चाहिए। इस तरह नवकार के नौं पदों की स्थापना करनी चाहिए। चूलिका के 4 पदों के स्थान पर दर्शन, ज्ञान, चारित्र तथा तप इन चार पदों की स्थापना करने से नवपद जी की आराधना होती है। या तो ऐसा चित्रपट बनाकर आलंबन हेतु दृष्टि समक्ष रखना चाहिए। और सामने साधक को पद्मासनादि आसन में स्थिर होकर बैठना चाहिए। माला लेनी ही नहीं है। अब साधक इस अष्टदल कमल की पंखुडियों पर लिखे अनुसार पढते जाने में एकाग्रता अच्छी आती है। इस तरह 12 बार गिनने पर 108 नवकार हो जाएगें।

चित्रपट पर थोडे दिन अभ्यास हो जाने के बाद अब चित्र पट भी हटा देना चाहिए, और साधक को मानस चित्र बनाना चाहिए। और उस पर उसी तरह नवकार गिनते रहना चाहिए।

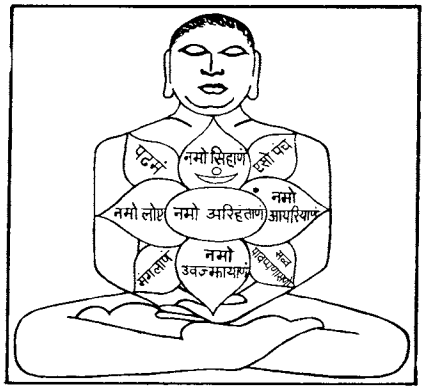

अष्ट दल कमल पद्म जाप प्रतिमा पर—

जिनालय में चित्र पट पर परमात्मा का पद्मासन में ध्यानस्थ चित्र हो, या साक्षात् प्रतिमा हो (मूर्ति) उस पर अष्ट दल कमल की पंखुडियां स्थापित करनी चाहिए। उनमें महामंत्र नवकार की स्थापना करनी चाहिए। अब स्थिरता के लिए 2 निमित्त सामने है। नवपद-नवकार के साथ-साथ मूर्ति (प्रतिमा) के रूप में भगवान भी है एवं कमल भी है। साधक अच्छी तरह मन स्थिर करके जाप आराधना कर सकता है। नव पदों के नवकार का अरिहंत के 12 गुणों का स्मरण करते करते.... 12 बार जाप करने पर 108 हो जाएगें।

अष्ट दल कमल बद्ध जाप स्वशरीर पर—

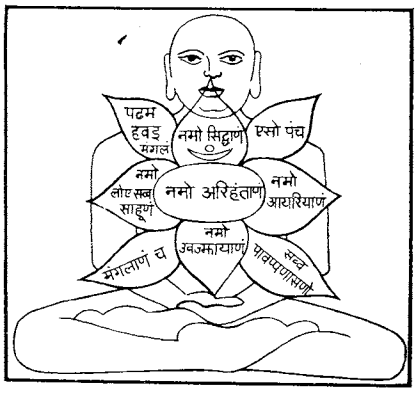

जैसे अरिहंत भगवान की मूर्ति या चित्र पट पर अष्टदल कमल की स्थापना करके नवकार महामंत्र का जप किया था ठीक उसी तरह..... साधक को पद्मासन में (प्रभु प्रतिमा की तरह) स्थिर बैठना चाहिए। अपने शरीर पर अष्टदल कमल की स्थापना करनी चाहिए। हृदय रूपी सरोवर में खिले हुए कमल की स्थापना करनी चाहिए। ऊपर की पंखुडी नासिका तक जाय उसमें नमो सिद्धाणं, बांए हाथ की भूजा तक जो पंखुडी जाय उस पर नमो आयरियाणं, नाभि की तरफ नीचे की पंखुडी पर नमो उवज्झायाणं, और दांए हाथ की भुजा की तरफ वाली पंखुडी पर.... नमो लोए सव्व साहूणं। इसी तरह - बाएं खंधे की तरफ वाली विदिशा की पंखुडी पर एसो पंच नमुक्कारो, बांए हाथ की कोनी की तरफवाली पंखुडी पर "सव्व पावप्पणासणो", इसी तरह दांए हाथ की तरफ वाली पंखुडी पर - "मंगलाणं च सव्वेसिं", और अन्त में दाहिने खंधे की तरफ वाली पंखुडी पर - "पढमं हवइ मंगल" नौंवे पद की स्थापना करनी चाहिए। तथा इसी क्रम से मन क्रमशः 1-1 पद का स्मरण करता रहे। इस तरह 12 बार नवकार महामंत्र का जाप करने पर 108 मंत्र का जाप होगा।

मुख कमल का जाप—

हृदय कमल के विस्तृत स्वरूप का संक्षिप्तिकरण करके उसे मुख कमल पर स्थापित करना चाहिए। वक्षस्थल एवं मध्य शरीर का विस्तार काफी ज्यादा है। उसके बजाय मुख कमल काफी छोटा है। मुख को कमल को उपमा देते हुए "मुखपद्मं" शब्दों का प्रयोग मिलता है। मुखारविंद शब्द भी इसी अर्थ में है। इस मुख पर अष्ट दल कमल की स्थापना करके पहले के क्रमानुसार स्थान निश्चित करना चाहिए। ऐसे में मन स्थिर होना संभव है।

नवाठी पूजा में जाप की पद्धति—

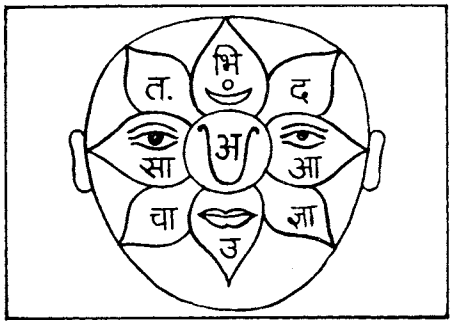

जिनेश्वर परमात्मा की प्रतिमा मन्दिर में प्रतिष्ठित है। मंदिर का वातावरण पवित्र रहता है। साधक द्रव्य पूजा करके भाव पूजा करने बैठे। एक आसन में स्थिर बैठकर प्रभु के समक्ष स्थिर दृष्टि स्थापित करें। जिस क्रम से अंग पूजा करते हैं। चंदन से परमात्मा के नौं अंगों पर द्रव्य पूजा की थी। उसी क्रम से उसी तरह मानसिक रूप से मन बरोबर एक-एक अंग पर स्थिर होकर भाव पूजा करता जाय। भाव में पुष्पांजली अर्पण करे। परमात्मा की अंग पूजा करता जाय। जिससे भाव विशुद्धि बढती जाय और अंग का महत्व समझ में आता जाय।

दूसरी तरह इस साधना पद्धति के करने में साधक स्वयं प्रभु प्रतिमा की आकृति की तरह पद्मासन में स्थिर बैठें और प्रतिमा की तरह नौं अंगों की स्थापना करके उन उन पदों के अंगों पर 1-1 नवकार गिनते-गिनते 12 गुणों का क्रमशः स्मरण-नमस्कार करे। इस प्रक्रिया में मन और ज्यादा एकाग्र-स्थिर बनेगा। प्रभु के प्रत्येक गुण का स्मरण करते हुए 9 नवकार गिनने चाहिए। ऐसे 12 गुण है। अतः बारह बार नौं नौं नवकार गिने जाएंगे जिससे 108 नवकार आसानी से हो जाएंगे।

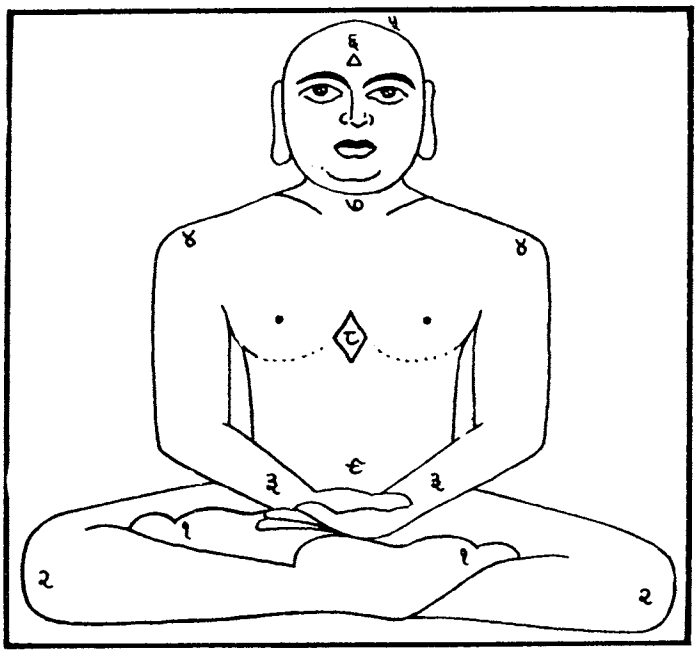

पठन पद्धति से जाप—

मानसिक स्थिरता और एकाग्रता साधनी मुख्य लक्ष्य रखकर साधना पद्धति में आलंबन को जरूर बदलते हैं। नवकार की साधना आदि सब कुछ वही है। नवकार को चित्रपट पर लिखकर रखें। उसके चारों तरफ अरिहंतादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के चित्र बनाने चाहिए। वे भी उनके निश्चित रंग के अनुरूप ही बनाने चाहिए। सामने दिवाल पर आलंबन के रूप में लगाकर साधक पद्मासनादि आसन स्थिर करके बैठ जाय। और लिखे हुए नवकार को सिर्फ पढने का रखें। मन पढता जाएगा। उसमें भी आरोह-अवरोह क्रम से एक नवकार ऊपर से नीचे तक सीधा पढकर, फिर दूसरी बार उल्टा नीचे से ऊपर की तरफ उल्टे क्रम से पढना चाहिए। एक तरफ पढते जाना और दूसरी तरफ शंखावर्त नंदावर्त पर अंगूठा घूमता जाय। इस तरह 108 बार मात्र देखते हुए पढते ही रहना चाहिए।

लेखन पद्धति से जाप—

सिर्फ कॉपी-पेन लेकर एकान्त में स्थिर आसन में बैठकर पूर्ण शुद्ध नवकार लिखने का प्रयत्न करें। लिखते समय यदि दूसरे विचार आते रहेंगे तो वे लिखे जाएंगे। या लिखना रूक जाएगा। इसलिए अन्य विचार रहित स्थिति में ही लिखा जाएगा। अन्यथा संभव ही नहीं है। इसलिए भले ही समय ज्यादा लगे फिर भी लेखन कार्य जारी रखना चाहिए।

प्राणायाम पद्धति से नवकार जाप—

योगांगों का अभ्यास करने वाले साधक अष्टांग योग की साधना करते समय "प्राणायाम" का अभ्यास अच्छी तरह करते हैं। उसमें पूरक-कुंभक-रेचक की प्रक्रिया करते समय पूरक करते हुए धीरे-धीरे नवकार का उच्चार (स्मरण) करते हुए श्वास लेते जाय। ऐसे समय नवकार गिनने से श्वास के पुद्गल परमाणु भी शुद्ध होते जाएंगे। पूरक प्रक्रिया में धीरे धीरे श्वास लेने में समय लगभग 30-40 सेकण्ड का भी लग सकता है। अभ्यासु साधक संभव है कि... 2,-3, नवकार पूरे मानसिक भाव से आसानी से गिने जा सकते हैं। फिर कुंभक में श्वास को अन्दर रोकना है। पूरक की अपेक्षा कुंभक में दुगूना समय लगना चाहिये। इस तरह नरकार भी दुगूनी संख्या में गिने जा सकेंगे। शायद 4-5 तो हो सकते हैं। तीसरे दौर में रेचक की प्रक्रिया है। उसमें पुनः पूरक के जितना या थोड़ा कम समय लगता है। अतः 2 नवकार तो आसानी से गिने जा सकते हैं। इस तरह पूरक में 3, कुम्भक में 4 और रेचक में 2 नवकार गिनने का अभ्यास बनाने का पुरुषार्थ करें तो संभावना पूरी है। इन

तीनों प्रक्रिया के होने पर 1 दीर्घश्वास होगा । अतः 1 दीर्घश्वास में मानसिक रूप से 9 नवकार गिने जा सकते हैं । भले ही कुछ लम्बे काल के बाद इसमें सफलता मिले । ऐसे दीर्घ श्वासों के 12 प्राणायाम करने पर 108 नवकार आसानी से होते हैं । यद्यपि यह प्रक्रिया थोड़ी कठिन लगेगी लेकिन अभ्यास साध्य है । बाद में मन की स्थिरता बढने का आनन्द काफी अच्छा लगेगा । बिल्कुल बाहरी विचार नहीं आएंगे ।

अभ्यास हो जाने के पश्चात् साधकों को निवेदन है कि... इसी में अनुलोम-विलोम पद्धति से नवकार गिनने का रखें । पूरक में नवकार पुनः सीधा गिने । फिर कुम्भक में भी 2 सीधे- 2 उल्टे ऐसे 4 नवकार गिने । और अन्त में रेचक के समय भी 1 सीधा 1 उल्टा नवकार गिने । यद्यपि इसमें मन को काफी ज्यादा परेशानी होगी । लेकिन मनरूपी बन्दर को साधने का यह रास्ता अच्छा है ।

गुणस्मरण पूर्वक 108 *नवकार*

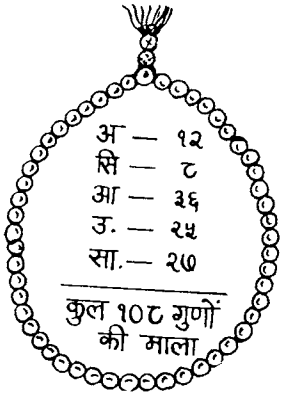

	पंच परमेष्ठी	गुण संख्या
1)	अरिहंत भगवन्त के	12
2)	सिद्ध भगवन्त के	8
3)	आचार्य भगवन्त के	36
4)	उपाध्याय भगवन्त के	25
5)	साधु भगवन्त के	27
	कुल गण	108

इस तरह पांच परमेष्ठी भगवन्तों के 108 गुण होते हैं । ऐसे 108 गुणों के स्मरणार्थ-गणना हेतु 108 मणकों की माला बनाई गई है । अतः साधक पंचवर्णी सूत की माला लेकर वर्णानुसार परमेष्ठी भगवन्तों की पहचान करके उनके 108 गुणों का स्मरण करता हुआ वहां उस पर 1-1 नवकार गिनता हुआ नमस्कार महामंत्र का जप करता हुआ आगे बढ़ता जाय । उदाहरणार्थ अरिहंत के १२ गुणों में पहला गुण है—अशोक वृक्ष प्रातिहार्याति शय युक्ताय श्री अर्हते नमः । (अब 1 नवकार) इस तरह दूसरा गुण, तीसरा गुण, ऐसे 12 गुण अरिहंत परमेष्ठी के हो जाने के पश्चात् सिद्ध के 8 गुण, फिर आचार्य के 36 गुण, फिर उपाध्याय के 25 गुण और अन्त में साधु के 27 गुणों का स्मरण करते करते, 108 गुणों का स्मरण करते हुए- प्रत्येक गुम के अन्त में 1 नवकार गिनने पर 108 नवकार अच्छी तरह गिने जा सकेंगे ।

इस तरह की पद्धति में हमने मन को थोड़ा ज्यादा काम करने के लिए दिया है । अच्छी तरह जोड़ दिया है । इसलिए मन नवकार को छोड़कर बाहर अन्यत्र कहीं घूम ही नहीं सकता है । ऊपर से एक-एक गुण बरोबर याद करके स्मृति पटल पर लाएगा, अर्थ चिन्तन होगा । इससे उन परमेष्ठी भगवन्तों के प्रति अहोभाव, पूज्यभाव, सद्भाव काफी अच्छा बढता रहता है । इससे नमस्कार करने में भी काफी अच्छा आनन्द आता है । इस आनन्द के आधार पर निर्जरा भी काफी अच्छी होती है । एकाग्रता-स्थिरता का भी प्रमाण बहुत बढता है । समय भले ही ज्यादा लगे । कभी कभी संख्या की अपेक्षा गुणवत्ता का प्रमाण भी बढाने का लक्ष्य रखना चाहिए । लेकिन गुणवत्ता अपने स्वयं की निर्जरा में उपयोगी सिद्ध होती है ।

समवसरण प्रदक्षिणा पूर्वक जाप—

तीर्थंकर परमात्मा को केवलज्ञान प्राप्त हो जाने पर देवता आकर प्राकारत्रय युक्त तीन गढवाले विशाल भव्य समवसरण की रचना करते हैं । इन 3 गढों के ऊपर अशोक वृक्षादि की रचना करते हैं । अशोक वृक्ष के नीचे सिंहासन पर पूर्व दिशा में प्रभुजी बिराजमान होकर देशना फरमाते हैं ।

समवसरण की इस प्रकार की रचना से प्रायः सभी अवगत है । इस समवसरण का आलंबन लेकर साधक 108 नवकार भावपूर्वक गिन सके इसके लिए समवसरण की प्रदक्षिणा देता हुआ ऊपर तक पहुंचकर परमात्मा का दर्शन एवं मानसिक रूप से भावपूजा अच्छी तरह कर सके इसके लिए यह समवसरण प्रदक्षिणा पूर्वक जाप की पद्धति अपनाना श्रेयस्कर है । साधक को स्थिर रूप से पद्मासन में स्थिर बैठकर मानस पटल पर परमात्मा के भव्यातिभव्य 3 गढ-अशोकवृक्षादि से युक्त समवसरण का चित्र दृष्टि समक्ष लाना । अपने अध्यवसायों को विशुद्ध बनाते हुए मन को क्रमशः प्रदक्षिणा में घूमाते हुए ले जाएं और एक-एक नवकार गिनते जाएं । (जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है ।)

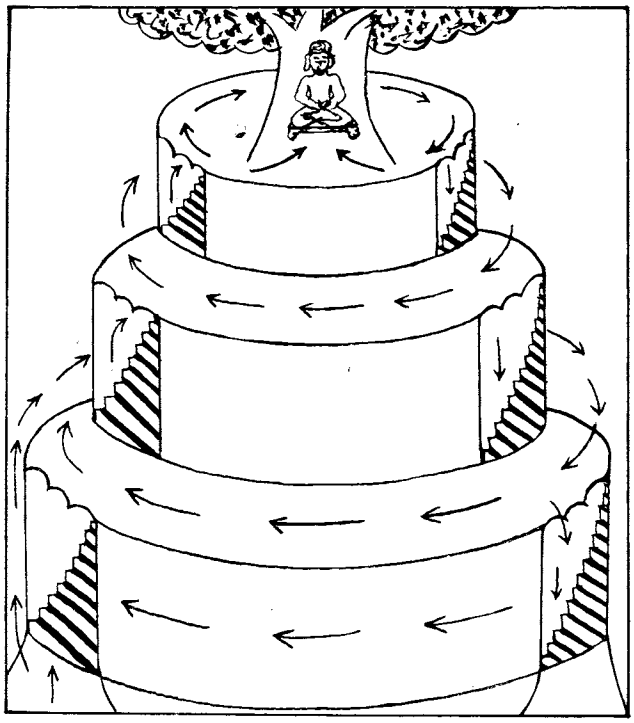

सर्वप्रथम समवसरण के पूर्व द्वार से प्रवेश करके ऊपर चढीए । प्रथम गढ के ऊपर की बाहरी गेलेरी में आइये । सामने दूसरे गढ का प्रवेश द्वार है । वहां से सीधे ऊपर देखने पर प्रभु के दर्शन होंगे । वहां आप (हाथ जोड़कर) 1 नवकार पूरा गिनीए । फिर आगे बढते हुए पश्चिमी प्रवेश द्वारा पर तीसरा नवकार गिनीए । फिर वहां से आगे बढकर चौथे उत्तरी प्रवेश द्वार पर 4था नवकार गिनीए । इस तरह प्रथम गढ पर 4 द्वारों पर 4 नवकार प्रथम प्रदक्षिणा में गिने गए । इसी क्रम से दूसरे गढ पर ऊपर चढिए । वहां भी ठीक इसी तरह पूर्वी द्वार से 5वां नवकार गिनीए । दूसरी प्रदक्षिणा में आगे बढते हुए दक्षिण द्वार पर 6ट्ठा, पश्चिमी द्वार पर 7वां, उत्तरी द्वार पर 8वां, इस तरह दूसरी प्रदक्षिणा के 4 नवकार हो जाएंगे । अब तक 4 + 4 = 8 नवकार हो चुके हैं । अब तीसरे गढ पर पूर्वी द्वार से प्रवेश कर ऊपर चढीए । सामने प्रत्यक्ष परमात्मा बिराजमान हैं । प्रभु को नमस्कार करके 9वां नवकार गिनीए । फिर तीसरी प्रदक्षिणा देते हुए आगे बढीए । दक्षिण द्वार समक्ष बिराजमान प्रभुजी के सामने नमस्कार करके 10वां नवकार, फिर पश्चिमी द्वार पर 11वां, और उत्तरी द्वार पर 12वां नवकार गिनीए । इस तरह 3 प्रदक्षिणा पूर्वक 12 नवकार हुए । पश्चात् प्रभुजी की मानसिक भाव से नवांठी पूजा करते हुए प्रथम अंग चरण अंगुठे पर पूजा करीए । फिर उत्तरी द्वार से संपूर्ण नीचे उतरकर पुनः दूसरी बार पहले के ही क्रम से पूर्वी द्वार से निसीही पूर्वक ऊपर चढीए । प्रथम गढ के ऊपर गैलेरी में आकर पूर्वी द्वार से ऊपर प्रभुजी को देख कर 13वां नवकार गिनीए । फिर प्रदक्षिणा देते हुए... पहले की तरह ही करते जाएं । दूसरी बार भी 3 प्रदक्षिणा पूर्वक पुनः 11 नवकार गिनी । और ऊपर तीसरे गढ पर प्रभुजी के दूसरे अंग घुटने पर पूजा करीए ।

फिर वापिस नीचे उतरकर तीसरी बार इसी क्रम से प्रदक्षिणा छट्ठी-सातवीं-आठवीं और अन्त में नौंवी बार इसी क्रम से प्रदक्षिणा देते हुए चढते जाइए । क्रमशः एक बार में प्रभुजी के 1-1 अंग की पूजा मानस भाव से करते जाइए । इस तरह 12 नवकार X 9 बार करने पर = 108 नवकार काफी अच्छी तरह हो जाएंगे ।

समवसरण का ध्यान भी काफी अच्छी तरह होगा । मन को भी काम मिल जाएगा । मन पूरी तरह समवसरण में लगा रहेगा । भगवान के भी दर्शन हो जाएंगे । मानसिक रूप से भावपूजा भी अच्छी तरह हो जाएगी । और साथ ही साथ 108 नवकार की माला भी हो जाएगी । एकाग्रता-स्थिरता काफी अच्छी रहेगी तथा आनन्द काफी अच्छा आएगा ।

इसी तरह नवपदजी (सिद्धचक्र) के नौं पदों पर मन केन्द्रित करने पर एक एक पंखुड़ी पर 12-12 नवकार गिनते-गिनते भी 9X12 = 108 नवकार हो जाएंगे ।

मन की स्थिरता बढे, चित्त की एकाग्रता बढे, भावोल्लास बढे, और अध्यवसाय की विशुद्धि बढते हुए आनन्द बढता जाय और इन सबके आधार पर... कर्मों की निर्जरा काफी अच्छी होती जाय... जिससे "सव्व पावप्पणासणो" का उद्देश्य सार्थक रूप से सिद्ध हो । पाप कर्म धूलते जाय । और क्रमशः हमारी आत्मा मुक्ति के समीप पहुंचे, मोक्ष मार्ग पर आगे बढती जाय... इस तरह क्रमशः कल्याण होगा । नवकार महामंत्र का आलंबन, जाप-ध्यान साधना आदि द्वारा सभी साधक स्व आत्म कल्याण साधे इसी शुभेच्छा पूर्वक....

॥शुभं भवतु॥

अध्यात्म योगी गुरुदेव और श्री नवकार

लेखक- मुनि रत्नसेनविजय

इस 14 राजलोक रूप समूचे विश्व में विद्यमान सर्वोत्कृष्ट आत्माओं का समावेश 'नमस्कार-महामंत्र' में हो जाता है। 'श्री नवकार' यह 'महामंत्र' है, क्योंकि इसमें किसी व्यक्ति विशेष को नमस्कार नहीं किया गया है, बल्कि जो भी गुण संपन्न आत्माएँ है, उन सबका समावेश नवकार मंत्र में हो जाता है।

इस नवकर मंत्र में आत्मा की पूर्णता को संप्राप्त सिद्ध भगवंतों का समावेश है तो इसके साथ ही जगत के प्राणियों को उस सिद्धि पद का दिग्दर्शन कराने वाले 'अरिहंतों' के द्वारा निर्दिष्ट मुक्ति मार्ग पर चलने वाले आचार्य, उपाध्याय और साधु भगवंतों का भी समावेश इस महामंत्र में हो जाता है। इस प्रकार इस महामंत्र में मार्गदर्शक, साधक और साध्य तीनों का समावेश होने से यह मंत्र परिपूर्ण मंत्र है।

नमस्कार महामंत्र को विधिपूर्वक की आराधना मोक्षाभिलाषी आत्मा को ऊर्ध्वगामी बनाती है। अपने हृदय में ज्यों-ज्यों पंच परमेष्ठि भगवंतों के प्रति तीव्र आदर बहुमान भाव पैदा होता जाता है, त्यों त्यों पंच परमेष्ठि भगवंतों के अनुग्रह से अपनी आत्मा में सद्गुणों की वृद्धि और दोषों की हानि होती जाती है।

सारी दुनिया सुख के पीछे पागल है, जबकि मोक्षाभिलाषी आत्माएँ गुण-पिपासु होती हैं। गुण प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा के कारण ही वह गुण संपन्न आत्माओं को पुनः पुनः नमस्कार करती है।

यह सामान्य नियम है कि हम जिसके प्रति आदर वाले होगें, उस व्यक्ति में रहे गुण या दोष हमारे जीवन में आए बिना नहीं रहेगें।

किसी व्यक्ति को नमस्कार करने का अर्थ है कि हम उसके जीवन में रहे हुए गुण अथवा दोष के प्रति पक्षपाती है।

» गुणवान् को किया गया नमस्कार हमारे जीवन में गुण संपत्ति को बढ़ाता है।
» दोषवान को किया गया नमस्कार हमारे जीवन में दोषों को बढ़ाता है।

आपको क्या पसंद है ?

गुण या दोष ?

यदि गुण पसंद है तो इस जगत् में सर्वोच्च गुण संपन्न आत्माएं ये पांच ही है- उनके प्रति अपने हृदय में आदर-बहुमान भाव बढाना चाहिये।

नमस्कार महामंत्र शाश्वत-मंत्र है। इसकी महिमा का कोई पार नहीं है।

इस महामंत्र की आराधना-साधना कर अनेक भव्यात्माओं ने अपनी आत्मा का कल्याण किया है।

निकट भूतकाल में ही नमस्कार महामंत्र की अजोड साधना कर स्व पर के जीवन को प्रकाशित करने वाले अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि वात्सल्य के महासागर पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजय जी गणिवर्य के नाम से भला कौन अपरिचित होगा ?

विशाल भाल !

तेजस्वी नेत्र युगल ! ! !

आजानु बाहु ! ! !

मुख मंडल पर ब्रह्मचर्य का अपूर्व तेज ! !

गौर वर्ण और प्रसन्न मुख मुद्रा... आदि आदि बाह्य गुण संपदा के साथ ही पूज्य पाद श्री का आभ्यंतर व्यक्तित्व भी उतना ही महान था।

नमस्कार महामंत्र के प्रति उनके हृदय में गाढ़ श्रद्धा थी। बाल्यकाल से ही नमस्कार महामंत्र की उनकी साधना प्रारम्भ हो चूकी थी।

संयम जीवन में भी उनकी साधना, चिंतन प्रवचन और अनुप्रेक्षण का केन्द्र नवकार मंत्र ही था। वे जीवन भर नवकार के 68 अक्षरों के इर्द-गिर्द ही घूमे थे।

पादविहार की दृष्टि से भले ही वे महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश और राजस्थान की धरती पर सैकड़ों मील घूमे होगें... परन्तु उनका मन तो 68 अक्षर स्वरूप मंत्राधिराज को ही प्रदक्षिणा लगाता रहता था।

न्याय, दर्शन, इतिहास, आगम प्रकरण या योग के ग्रंथों में भी वे नवकार की ही शोध करते रहते थे । उन्हें समूचा विश्व नवकारमय प्रतीत होता था ।

"मेरे तो गिरधर गोपाल दूजो न कोई" मीरा के इस वचन के अनुसार पूज्यपाद श्री को नवकार ही सबसे अधिक प्रिय था... सचमुच वे नवकारमय बन चूके थे... उनका अस्तित्व 'नवकार' की ही प्रतीति कराता था ।

नवकार की निरंतर ध्यान साधना के फलस्वरूप ही उन्होंने राता महावीर जी की पवित्र तीर्थ भूमि में महावीर प्रभु के ध्यान में मग्न बनकर नमस्कार महामंत्र की 'अनुप्रेक्षा' का सर्जन किया था । पूज्यपाद गुरुदेव श्री की अमूल्य कृति का प्रकाशन अनुप्रेक्षा-किरण 1,2 व 3 के रूप में हुआ था । इस कृति में उनके हृदय के उद्गार है । नमस्कार महामंत्र की विराटता तथा गहनता का बोध हमें इसे कृति में हुए बिना नहीं रहता ।

'अनुप्रेक्षा' पुस्तक के एक-एक शब्द अवश्य पठनीय और गंभीर है ।

अत्यंत ही शांत चित्त से पुनः पुनः परिशीलन करने पर ही उन पदार्थों की गहराई को समझा जा सकता है ।

'अनुप्रेक्षा' कृति में 'अनुभूति के स्वर' संकलित है, अतः एक कहानी या उपन्यास की भाँति जल्दबाजी से पढ़ने की पुस्तक नहीं है । खुब शांत चित्त से एकाग्रता पूर्वक उसका स्वाध्याय करने से अवश्य ही हमें 'नवनीत' की प्राप्ति हुए बिना नहीं रहेगी ।

कोटि कोटि वंदन हो
महामंत्र के महान साधक
योगीश्वर
पूज्यपाद पन्यास प्रवर
श्री भद्रंकरविजय जी गणिवर्य को !

महाराष्ट्र राज्य की — संस्कार एवं विद्या नगरी — पुना शहर के कात्रज परिसर में कात्रज घाट की सुरम्य पर्वतमाला के बीच ..... प्राकृतिक सौंदर्य से सुशोभित शान्त वातावरण वाले हवा खाने के MINI HILL STATION स्वरुप —

"वीरालयम्" के विराट संकुल में

पू. पंन्यास प्रवर श्री अरुणविजयजी गणिवर्य महाराज की .....

पावन प्रेरणा, सदुपदेश एवं मार्गदर्शनानुसार निर्माण हो रहे .....

श्री महावीर जैन साधर्मिक नगर

विशाल जमीन पर — १०८ घरों एवं अनेक दुकानों का विशाल संकुल निर्माण हो रहा है जिसका प्रथम युनिट २८ घरों तथा १० दुकानों का तैयार हो चुका है ।

श्री महावीर जैन साधर्मिक कल्याण केन्द्र - पुना शाखा

नामक ट्रस्ट जो 80G आयकर विभाग अन्तर्गत करमाफी पत्र रजिस्टर्ड ट्रस्ट है । Trust Registration No. E-28001-Pune है ।

बैंक में अपना खाता है । एक सुंदर सुव्यवस्थित ट्रस्ट है । विगत १० वर्षों से पुना में साधर्मिक परिवारों के उद्धारार्थ, सर्वांगीण विकासार्थ कार्यरत है । एक स्थायी दिशा में प्रथम कदम आगे बढाया ..... और अनेक दानवीर दाताओं के उदार सहयोग से २८ घरों तथा १० दुकानों का प्रथम युनिट तैयार किया है ।

आवश्यकता वाले अनेक साधर्मिक परिवारों को एक-एक घर निवासार्थ निःशुल्क वितरित किया जाएगा । गृह उद्योग में प्रवृत्त करके उनका आर्थिक विकास किया जाएगा । सुंदर धार्मिक संस्कारों से सुसंस्कृत किये जाएंगे ।

जी ..... हां ..... आइए ..... पधारिए ..... एक बार प्रत्यक्ष देखिए ..... आपको सुंदर सुव्यवस्थित लगे ..... तो ..... अपना उदार आर्थिक सहयोग प्रदान कीजिए ।

नवकार की शब्द देह रचना

— पन्यास मुनि अरुणविजय महाराज

नवकार का शास्त्रीय नाम—श्री पंच मंगल महाश्रुतस्कंध।

—प्रथम मंत्र गाथा	पद संख्या	अक्षर	लघु अक्षर	गुरू अक्षर	स्वर	व्यंजन	अनुस्वार	मात्रा	शब्दो	आधा अक्षर	संपदा
नमो अरिहंताणं	॥१॥	७	७		७	८	२	३	२		१
नमो सिद्धाणं	॥२॥	५	४	१	५	७	१	३	२	ध्	१
नमो आयरियाणं	॥३॥	७	७		७	७	१	४	२		१
नमो उवज्झायाणं	॥४॥	७	६	१	७	८	१	३	२	ज्	१
नमो लोए सव्व साहूणं	॥५॥	९	८	१	९	१०	१	४	४	व्	१
—दूसरी चूलिका गाथा											
एसो पंच नमुक्कारो	॥६॥	८	७	१	९	७	१	४	३	क्	१
सव्व पावप्पणासणो	॥७॥	८	६	२	८	१०		३	३	व्,प्	१
मंगलाणं च सव्वेसिं	॥८॥	८	७	१	८	१२	३	३	३	व्	१
पढमं हवइ मंगलं	॥९॥	९	९		९	१२	३		३		१
	९ पद	६८	६१	७	७०	८१	१३	२७	२४		८

पुनरावृत्त शब्द—

1) "नमो"—शब्द-५ बार पांच पदों में प्रयुक्त है। नमस्कार के ही अर्थ में "नमुक्कारो" 1 बार और प्रयुक्त होने से अर्थ की दृष्टि से "नमो" 6 बार प्रयुक्तहै।

2) "सव्व"—सर्व-सब अर्थ में उपयोग में लाया गया "सव्व" शब्द इस महामंत्र में 3 बार प्रयोग किया गया है। 5, 7 और 8 वे पदों में 3 पदों में 3 बार।

3) "मंगल"—शब्द 8 वे और 9 वे इन दो पदों में 2 बार प्रयुक्त है।

संख्यावाची शब्द—

1) "पंच"—पाचवें पद में प्रयुक्त "पंच" शब्द 5 की संख्या का द्योतक है। जो पंच परमेष्ठी भगवंतो को किये गए नमस्कार की तरफ इंगित करता है।

2) "सव्व"—यह भी संख्यावाची शब्द है। सर्व-सब के अर्थ में है। 1) विषय के साथ प्रयुक्त होकर 5 वे पद में "सव्व" शब्द साधुओं की संख्या सूचित करते हुए कहता है कि-"नर लोक क्षेत्र में रहा हुए सब साधु भगवंतो को नमस्कार। 2) 7 वें पद में प्रयुक्त "सव्व" शब्द पाप के साथ जोडा गया है। यह "पापों" की संख्या का द्योतक है। सब पाप, सब प्रकार के पाप कर्मों को नाश करने की बात करता है। इसलिए पाप कर्मों का नाश करते समय अंशमात्र भी पाप शेष न रखते हुए सबका नाश करना है। 3) 8 वे पद में प्रयुक्त "सव्व" शब्द मंगलों की संख्या

सूचित करता है । द्रव्य मंगलों में जितने भी मंगल है उनको "सव्व" शब्द से सूचित किया है ।

ब्रह्माण्ड वाची शब्द—

"लोए"—"लोक में" इस अर्थ में प्रयुक्त है । भौगोलिक स्थिति का वाचक यह "लोए" शब्द 3 लोक-उर्ध्व, अधो और तिर्च्छा लोक के अर्थ में है । इसी तरह 14 राज लोक के क्षेत्र-जिसको संपूर्ण ब्रह्माण्ड कहा गया है इस अर्थ में प्रयुक्त है ।

8 संपदा—

जिस वाक्य का पूरा अर्थ निकलता हो उसे संपदा कहते हैं । नवकार महामंत्र के नौं पदों में 7 पदों के प्रत्येक के अपने-अपने अर्थ बराबर बैठते हैं । जबकि 8 वें और 9 वें पद को साथ में मिलाने पर अर्थ पूरा बनता है । "मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं" - सभी मंगलों में प्रथम कक्षा का सर्वोच्च मंगल है । यह अर्थ 8 + 9 इन दोनों पदों को मिलाने पर अर्थ पूरा बनता है । अतः इन दोनों पदों की १ संपदा बनती है । इस तरह 8 + 1 = 9 संपदाएं बनती है ।

महामांगलिकता—

8 वें पद - "मंगलाणं च सव्वेसिं"-अर्थ-सभी मंगलों में । इसमें जगत् के सभी द्रव्य मंगलों की गणना की गई है जो द्रव्यात्मक या व्यक्ति स्वरूप हो । और 9 वे पद में "पढमं हवइ मंगलं" प्रथम कक्षा का भाव मंगल है । सभी द्रव्य मंगलों से सब पाप कर्मो का क्षय-नाश होना संभव ही नहीं है । इसलिए 9 वें पद में "पढमं" शब्द के साथ पुनः "मंगल" शब्द का प्रयोग किया गया है । इसे "भाव मंगल" कहा है । भाव मंगल से सब पापकर्मो का नाश हो सकता है । इसलिए इस महामंत्र में "मंगल" शब्द का 2 बार प्रयोग किया गया है ।

क्रिया वाची शब्द—

"क्रिया प्रवृत्ति की सूचक है । जिसमें कुछ किया जाता है । क्रिया के करने वाले को कर्ता कहा जाता है । कर्ता द्वारा की जाती प्रवृत्ति विशेष को क्रिया कहते हैं । 1) नमस्कार यह क्रिया है । मन-वचन और काया के साधनों द्वारा आत्मा नमस्कार करने की क्रिया करती है । काया पंचांग आदि नमस्कार करने में सहायक है । "एसो पंच नमुक्कारो" इस छट्ठे पद में "नमुक्कारो" शब्द - नमस्कार की क्रिया का वाचक शब्द है । इस महामंत्र का नाम ही इस क्रिया वाची शब्द से बना हुआ है । इसलिए "नवकार महामंत्र" या "नमस्कार महामंत्र" कहा गया है ।

2) "प्पणासणो" 7 वें पद में प्रयुक्त यह धातु वाची शब्द है । संस्कृत भाषा में "प्रनाशनं" होता है । "प्र + नाशनं" में "प्र" उपसर्ग पूर्वक "नश्" धातु नाश करने के अर्थ में है । इससे बना है शब्द "प्रनाशनं" । इसका अर्धमागधी स्वरूप है-"प्पणासणो" । वैसे भी 'नश्' धातुका नाश अर्थ ही होता है तो फिर "प्र" उपसर्ग ज्यादा लगाने से क्या मतलब ? इसके उत्तर में कहते हैं कि - नश्-नाश करने की क्रिया में भी "प्रकृष्ट" अर्थात् उत्कृष्ट रूप से संपूर्ण नाश करना है । इस अभिप्रेत भाव को लेने के लिए 'प्र' उपसर्ग जोडा गया है और "प्पणासणो" शब्द बनाया गया है । इस क्रिया वाची शब्द के प्रयोग से साधक को पापों का उत्कृष्ट नाश करने की क्रिया सदा इस महामंत्र से करनी ही चाहिए ।

3) "हवइ" - 'भू '- धातु के 'भव' आदेश से वर्तमान कालिक रूप 'भवति' बनता है । इसका अर्धमागधी भाषा में 'हवइ' रूपान्तर होता है । अर्थ - "है" । "भू-सत्तायाम्" धातु भव आदेश - "होवा-थवा" (गुजराती में) के अर्थ में है । जो अस्तित्व, विद्यमानता को सूचित करता है । नोंवे पद में प्रयुक्त यह क्रिया वाची धातु जन्य शब्द मंगल के साथ है । अतः "पढमं" विशेषण के साथ प्रथम कक्षा का श्रेष्ठ मंगल है । ऐसा सूचित अर्थ है । भूत-भविष्य काल का प्रयोग न करके वर्तमान काल सूचक "हवइ" शब्द का प्रयोग होने से, नवकार की महामांगलिकता तीनों काल में विद्यमान रहती है ।

श्री लुणावा जैन संघ के जिन मंदिर में अंगरचना से सुशोभित श्री वासुपूज्य स्वामी आदि भगवान

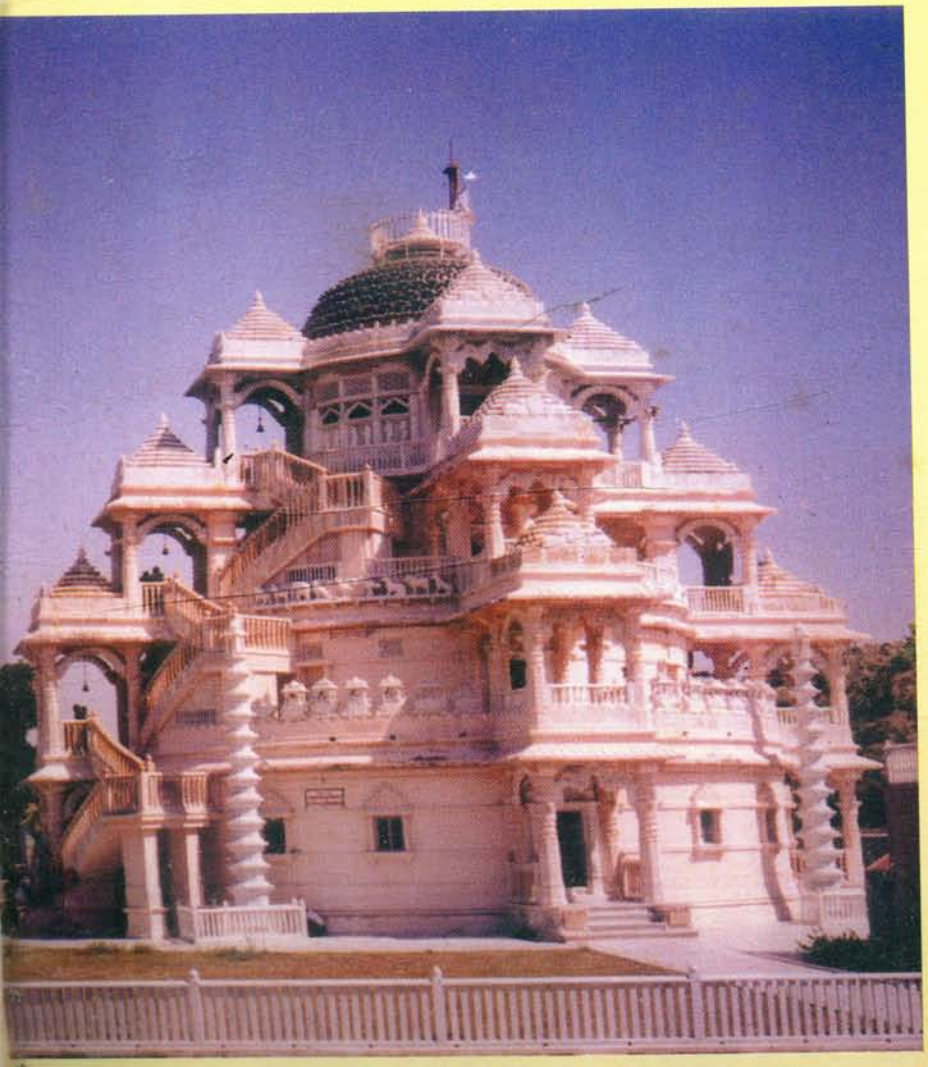

१७०० वर्ष प्राचीन श्री हथूण्डी राता महावीर स्वामी तीर्थ - बीजापुर
में नव-निर्मित - श्री महावीर वाणी समवसरण महामंदिर

भव्य आंगी में सुसज्ज आदिनाथ भगवान

पंन्यास डॉ. श्री अरुणविजयजी महाराज

श्री आदीश्वरजी भगवान का भव्य मंदिर - लुणावा

राजस्थान राज्य की - मरूस्थली (मारवाड़) के गोडवाड प्रान्त के
फालना स्टेशन के पास - बाली तहसील में स्थित -

लुणावा गांव

के विविध जिनालयों के दर्शन करने पधारिए।
श्री नागेश्वर पार्श्वनाथ-भंद्रकर नगर तीर्थ के दर्शनार्थ पधारिए

श्री वासुपूज्य स्वामी जिन मंदिर (दादावाडी) - लुणावा

श्री शान्तिनाथ भगवान जिन मंदिर - लुणाव

श्री पद्मप्रभु भगवान जिन मंदिर - लुणावा

Serving JinShasan
183514
gyanmandir@kobatirth.org

Designed & Printed at ITP, Graphic, Jodhpur